तन्त्रस्वतन्त्र, कवितार्किकसिंह वेदान्ताचार्य

श्रीवेङ्कटनाथदेशिक (श्रीवेदान्तदेशिक)

विरचित

यतिराज सप्तति

व्याख्याद्वयसमेत

[illegible]

व्याख्याकार—

[illegible]

स्वामी श्री [illegible]चार्य जी, काशी

व्यवस्थापक
श्रीबालमुकुन्द ग्रन्थमाला
श्रीरमा वैकुण्ठ
पुष्कर (अजमेर)

प्रथम संस्करण
संवत् २०१३

सम्पादक, मुद्रक, प्रकाशक,
राघवाचार्य

प्रकाशक
श्रीआचार्यपीठ

मुद्रक
आचार्य प्रेस

बरेली (उत्तर प्रदेश)

श्रीमन्निगमान्तमहादेशिकैः

अनुगृहीता

यतिराज सप्ततिः

व्याख्याद्वयसहिता

निवेदन



आचार्यसार्वभौम श्रीवेदान्तदेशिक ने भगवान् रामानुजाचार्य के विषय में **'यतिराज सप्तति'** स्तोत्र की रचना की। इस स्तोत्र में स्तुति के साथ-साथ श्रीरामानुज दर्शन के सिद्धान्तों की चर्चा हुई है।

श्रीभाष्यसिंहासनाधिपति स्वामी श्री नीलमेघाचार्य जी महाराज ने इस स्तोत्र की संस्कृत तथा हिन्दी में विस्तृत व्याख्या की है।

वैकुण्ठवासी सेठ श्री मगनीराम जी बाँगड़ की पुण्य स्मृति में उनके आचार्य अनन्तश्रीसमलंकृत जगद्गुरु उत्तराहोबिलझालरिया-मठाधीश्वर स्वामी श्री बालमुकुन्दाचार्य जी महाराज के नाम से **'श्रीबालमुकुन्द ग्रन्थमाला'** का आरम्भ किया गया है।

व्याख्याद्वय समेत यतिराजसप्तति को **'श्रीबालमुकुन्द ग्रन्थमाला'** के प्रथम पुष्प के रूप में प्रकाशित किया गया है। त्रुटियों की ओर ध्यान न देते हुए पाठक गण इसे अपना कर अनुगृहीत करेंगे, ऐसी आशा है।

—**सम्पादक**

॥ श्रीः ॥

॥ श्रीमते लक्ष्मीहयवदनपरब्रह्मणे नमः ॥

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

॥ श्रीमते निगमान्तमहादेशिकाय नमः ॥

—: व्याख्या द्वय सहिता :—

॥ यतिराज सप्ततिः ॥



श्रीमान् वेङ्कटनाथार्यः कवितार्किककेसरी ।
वेदान्ताचार्यवर्यो मे सन्निधत्तां सदा हृदि ॥

॥ संस्कृत व्याख्या ॥

श्रीमच्छ्रीशेषतार्क्ष्यप्रमुखसुरवरैरेकतः सेव्यमानं
सेनेशश्रीशठारिप्रभृतिभिरनघैश्चान्यतः सूरिवृन्दैः ।
श्रीभूनीलाभिजुष्टं प्रसृमरकरुणापाङ्गमानन्दरूपं
वन्दे पादारविन्दप्रणतपरवशं दिव्यधामाधिनाथम् ॥१॥

॥ हिन्दी व्याख्या ॥

जिनकी सेवा के लिये एक पार्श्व में श्रीशेष गरुड़ आदि सुर वर उपस्थित हैं तथा दूसरे पार्श्व में श्रीविष्वक्सेन, शठकोप आदि सूरिगण विद्यमान हैं। ऐसे दिव्यधाम के स्वामी, प्रणतपरवश आनन्दस्वरूप श्रीदेवी, भूदेवी, तथा नीलादेवी, सहित कल्याण कटाक्षों की वर्षा करते हुये श्रीभगवान् को प्रणाम करता हूँ ॥१॥

सर्वाभीष्टवरप्रदानचतुरो भक्तव्रजानां सदा
धर्मादींश्चतुरः पुमर्थनिवहान् यो दातुकामो भृशम् ।
बिभ्राणश्चतुरो भुजान् करुणया जागर्ति शेषाचले
वन्दे तं हृदयाभिरामवपुषं श्रीवेङ्कटेशं हरिम् ॥२॥

श्रीपादाश्रित—सद्गताखिलतमः—सूर्यायितानुग्रह-
प्राज्ञाग्रेसरनाथयोगियमुनापुत्रादिभिर्भूषितम् ।
श्रीरामानुजयोगिवर्य—निगमान्ताचार्य—गोपालसू-
र्यादि—श्रीगुरुवर्धितप्रथमहं वन्दे गुरूणां कुलम् ॥३॥

दृप्यद्दुैतुकवादिवर्ग — कुमतिक्षीबोक्ति — संक्षोभितं
वेदान्तार्थसुधापयोधिमतलस्पर्शं बुधानामपि ।
गाहन्ते सुधियोऽवरुह्य विमलं यत्सूक्ति—तीर्थान्तरं
तं रामानुजयोगिपुंगवमहं सेवे कृपावारिधिम् ॥४॥

भक्तों को सर्व अभीष्ट प्रदान करने वाले, धर्म, अर्थ आदि चतुर्विध पुरुपार्थ के प्रदाता चेतोहारि शरीरधारि वेंकटाचल पर स्थित चतुर्भुज भगवान् श्रीवेंकटेश को नत होता हूँ ॥२॥

सर्वश्री नाथमुनि, यामुनाचार्य, रामानुजाचार्य, वेदान्तदेशिक, गोपालसूरि आदि गुरुजनों से सुशोभित अपनी गुरुपरम्परा को प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने अपने श्रीचरण में आश्रित सज्जनों के अज्ञानान्धकार को दूर करने में सूर्य के समान अनुग्रह का प्रयोग किया है ॥३॥

जो वेदान्त शास्त्र दुरभिमानी कुतर्की वादियों से संक्षोभित हो गया है, तथा बड़े २ विद्वान् भी जिसकी गहराई को पा नहीं सकते ऐसे गम्भीर वेदान्तामृत सागर का परिज्ञान जिनकी वाणी से हो जाता है उन श्रीआचार्य रामानुज भगवान् के चरणों की सेवा करता हूँ ॥४॥

विद्यावित्तप्रदानव्रत — हयवदनब्रह्म — पादारविन्द-
द्वन्द्वध्यानैकतानस्तदमितकरुणावाप्तवैदुष्यसीमा ।
यस्तादृक्स्वदाक्ष्य — क्षपित — बहुविधावद्यदुर्वादिपक्ष-
स्तं वन्दे वेदचूडागुरुवरमखिलोज्जीवनार्थावतारम् ॥५॥

ब्रह्मज्ञानप्रदत्वादघपरिहरणादच्छसंविन्मयत्वा-
दानन्दैकाकृतित्वादमितशुभगुणैकालयत्वाद्विभुत्वात् ।
नित्यं सत्यव्रतत्वात्सकलबुधकुलाभ्यर्चितत्वाद्वशित्वा-
च्छ्रीमच्छ्रीरङ्गरामानुजगुरुमनिशं विष्णुरूपं नमामि ॥६॥

वात्स्यैःदोर्वरदार्यदेशिक — गुरोर्मान्याद् बुधाग्रेसरे-
र्जातो यः कमलासती — सदुदरे श्रीनीलमेघः सुधीः ।
श्रीवेदान्तगुरूत्तमेन रचितान् ग्रन्थान् जनोज्जीवनान्
व्याचष्टेऽखिललोकबोधनकृते हिन्द्यां तथा संस्कृते ॥७॥

जिन्होंने श्रीभगवान् हयग्रीव की परम करुणा से परिपूर्ण विद्वत्ता प्राप्त की है, विद्यादान ही जिनका व्रत है, अपनी विद्वत्ता एवं कुशलता से जिन्होंने दुर्वादियों का मुख मुद्रित कर दिया है, जिनका जन्म लोकोज्जीवन के लिये हुआ है ऐसे वेद वेदान्त के मर्मज्ञ श्रीवेदान्तदेशिक को प्रणाम करता हूँ ॥५॥

ब्रह्मज्ञान के प्रदाता, पापनिवारणकर्ता, शुद्ध बुद्धि प्रदाता, आनन्द स्वरूप, अनन्त-कल्याण-गुणाकर, सत्य में दीक्षित सब विद्वद्गणों द्वारा समर्चित वशी गुरुवर श्रीरङ्ग रामानुज महाराज के चरणों में नत होता हूँ ॥६॥

वात्स्य कुलकुमुद सुधाकर श्रीवरददेशिक जिसके जनक हैं श्रीसती कमला जिसकी माता हैं, इनका पुत्र श्रीनीलमेघाचार्य सुधी श्रीवेदान्त

इह खलु भगवान् आत्रेयरामानुजाचार्यवरिवस्यालब्ध-वेदवेदान्तदिव्यज्ञानः "त्रिंशद्वारं श्रावितशारीरकभाष्यः" इत्युक्तरीत्याऽसकृत्प्रथमकैङ्कर्यभूतश्रीभाष्यप्रवचनसमेधितामन्दा — नन्दतुन्दिलमनास्तत्प्रीतिपरीवाहात्मना श्रीभाष्यकारस्य यतिराजस्य स्तुतौ "मौनद्रुहो मुखरयन्ति गुणास्त्वदीयाः" इति न्यायेन तद्गुणपरवशतया प्रविवृत्सुः कवितार्किकसिंहः सर्वतन्त्रस्वतन्त्रः श्रीमद्वेङ्कटनाथनामा श्रीमन्निगमान्तमहादेशिकः श्रीभाष्यादिप्रति-

---

देशिक द्वारा विरचित जनमनोमोहक ग्रन्थों की सर्व साधारण के उपकार के लिये हिन्दी तथा संस्कृत में व्याख्या करता है ॥७॥

भगवान् श्रीवेदान्तदेशिक स्वामी जी महाराज ने आत्रेय रामानुजाचार्य की सेवा कर उनके अनुग्रह से बीस वर्षों में ही वेद वेदान्त इत्यादि सभी विद्याओं में दिव्य ज्ञान प्राप्त किया। तभी तो आपने स्वयं कहा कि "विंशत्यब्दे विश्रुतनानाविधविद्यः"। आपने जब श्रीरङ्ग में प्रतिवादियों को परास्त कर श्रीरङ्गनाथ भगवान् के कैङ्कर्य को अबाधित रूप में चलाने में सहायता की, उस समय विद्वन्मण्डली ने आपको "कवितार्किकसिंह" बिरुद से सम्मानित किया, श्रीरङ्गनाथ भगवान् ने अपना असाधारण "वेदान्ताचार्य" पद देकर अनुगृहीत किया तथा श्रीरङ्गनायिका ने "सर्वतन्त्र स्वतन्त्र" पदवी से विभूषित किया। तबसे श्रीवेदान्तदेशिक स्वामी जी महाराज "कवितार्किकसिंह सर्वतन्त्र स्वतन्त्र वेदान्ताचार्य" नाम से प्रसिद्ध हुये। श्रीदेशिक स्वामी जी महाराज ने अपनी आयु में कम से कम तीस बार श्रीभाष्य का प्रवचन किया। प्रत्येक प्रवचन में

पादितार्थानां भगवन्तमारभ्याविच्छिन्नसंप्रदायप्राप्ततां सूचयितुं भगवन्तमारभ्य श्रीभाष्यकारपर्यन्तां गुरुपरम्परामनुसन्धत्ते दशभिः श्लोकैः। तत्र प्रथमगुरुभूतं श्रीमन्नारायणं प्रथमतो नमस्करोति —

कमप्याद्यं गुरुं वन्दे कमलागृहमेधिनम्।
प्रवक्ता छन्दसां वक्ता पञ्चरात्रस्य यः स्वयम् ॥१॥

*कमप्याद्यं गुरुं — कमपि = अनिर्वाच्यं, स्वरूपरूपगुणविभूत्यादिभिरयमित्थंभूत इति परिच्छेद्य निर्देष्टुमशक्यम्, आद्यम्

परीवाह के रूप में श्रीभाष्यकार स्वामी जी के विषय में "यतिराज सप्तति" नामक एक स्तोत्र का निर्माण किया। इस स्तोत्र के आरम्भ में आपने श्रीभगवान् से लेकर श्रीभाष्यकार पर्यन्त गुरुपरम्परा की वन्दना की। श्रीभाष्यादि ग्रन्थों से प्रतिपादित उत्तमोत्तम सिद्धान्तार्थ श्रीभगवान् से लेकर अविच्छिन्न सम्प्रदाय द्वारा प्राप्त होने से परम प्रामाणिक तथा अत्यन्त श्रद्धेय हैं। इस बात को सूचित करने के लिये भी स्तोत्रारम्भ में श्रीदेशिक स्वामी ने श्रीभगवान् से लेकर श्रीभाष्यकार पर्यन्त गुरु परम्परा की वन्दना की। इस वन्दना के प्रसङ्ग में सर्व प्रथम श्रीसम्प्रदाय के प्रथम आचार्य श्रीभगवान् की वन्दना प्रथम श्लोक से करते हैं—

यः = जो, *छन्दसां* = वेदों के, *प्रवक्ता* = प्रवक्ता तथा, *स्वयं* = स्वयं, *पञ्चरात्रस्य* = पञ्चरात्र आगम के, *वक्ता* = वक्ता हैं, उन, *कमलागृहमेधिनम्* = लक्ष्मीपति, *आद्यं गुरुं* = आदि गुरु, *कमपि* = अनिर्वचनीय शक्तिशाली भगवान् नारायण को, *वन्दे* = नमस्कार करता हूँ।

"कमप्याद्यं गुरुं वन्दे"—श्रीदेशिक स्वामी जी महाराज कहते हैं कि मैं प्रथम गुरु श्रीभगवान् की वन्दना करता हूँ। श्रीभगवान् गुरु हैं

प्राथमिकम्, गुरुम् = अज्ञानान्धकारनिरोधकमाचार्यम् । सृष्ट्यादौ ब्रह्मणे वेदप्रदानादाद्यगुरुरित्युच्यते । अथवा श्रीशठकोपादि-प्रवर्तितसंप्रदायस्य प्रथमगुरुरित्याशयेनाद्यगुरुरित्युच्यते । स आद्य-गुरुः क इत्यत्राह * कमलागृहमेधिनमिति — लक्ष्मीपतिमित्यर्थः । अनेन आद्यगुरुर्लक्ष्मीपतिरित्युक्तं भवति । अनेन लोके यथा गृहिण्या अभावे गृहस्थस्य गृहेयोगक्षेमौ न सिध्यतः, तथा सर्वेश्वरस्य कमलाया अभावे प्रपञ्चयोगक्षेमौ न सिध्यत इति सूचितं भवति । गृहैर्दारैर्मेधते संगच्छत इति गृहमेधी गृहस्थ इत्यर्थः ।

तस्य गुरुत्वं विव्रियते उत्तरार्धेन * यश्छन्दसां प्रवक्ता — यः श्रियः पतिः वेदानां केवलं प्रवचनकर्ता, नतु निर्माता ।

क्योंकि उन्होंने अज्ञानान्धकार को दूर किया । वे प्रथम गुरु हैं क्योंकि सृष्टि के आरम्भ में उन्होंने ब्रह्माजी को वेद प्रदान किया तथा श्रीशठ-कोपादि प्रवर्तित श्रीसम्प्रदाय का प्रथम प्रवर्तन किया । वे श्रीभगवान् कैसे हैं ? "कमपि" वे अनिर्वाच्य हैं । स्वरूप, रूप, गुण, विभूति, आदि किसी में भी "वे ऐसे हैं इतने हैं" ऐसा नहीं कहा जा सकता । अतः वे अनिर्वाच्य हैं । अच्छा, वे कौन हैं ? "कमलागृहमेधिनम्" । वे लक्ष्मीपति हैं । श्रीमहालक्ष्मी जी के सहयोग से ही श्रीभगवान् संपूर्ण जगद्व्यापार को निभाने वाले हैं । जिस प्रकार धर्मपत्नी के सहयोग न होने पर गृहस्थ घर के योगक्षेम को नहीं चला सकता, ठीक उसी प्रकार श्रीभगवान् भी श्रीमहालक्ष्मी जी के सहयोग के विना सृष्टि स्थिति प्रलय और मोक्ष प्रदान इत्यादि प्रपञ्च योगक्षेम को नहीं चला सकते क्योंकि श्रीभगवान की पराशक्ति श्रीमहालक्ष्मी जी हैं ।

श्रीभगवान् ने कौनसा ऐसा काम किया जिससे वे प्रथम गुरु कहलाये ? "प्रवक्ता छन्दसां वक्ता पञ्चरात्रस्य यः स्वयम्" श्रीभगवान् ने

वेदानां नित्यत्वात्। स श्रियः पतिः सृष्ट्यारम्भे ब्रह्मणे पूर्वकल्पस्थवेदानां यथापूर्वं प्रवचनमात्रमकरोत् "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै" इति श्रुतेः।* यः पञ्चरात्रस्य स्वयं वक्ता—यः श्रियःपतिः पञ्चरात्रागमस्य स्वयं वक्ता निर्माता। अत्र प्रवक्ता तत्र वक्तेति निर्देशेन ईश्वरस्य वेदविषयेऽध्यापकत्वं पञ्चरात्रविषये कर्तृत्वं च प्रतीयते। स्वयं वक्ता न तु ऋष्यादिद्वारेत्यर्थः। अनेन ऋष्यादिप्रणीतस्मृतिपुराणाद्यपेक्षया स्वयं भगवत्प्रणीतस्य श्रीपञ्चरात्रस्य प्रामाण्यं प्रकृष्यत इति व्यज्यते। अथवा, स्वयं स्वासाधारणाकारेण, नतु बौद्धादिमतवत् तामसजीवाधिष्ठानद्वारेत्यर्थः। अनेन तामसजीवाधि-

---

ऐसे दो कार्य किये, उससे वे प्रथम गुरु कहलाये। (१) उन्होंने सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा जी के लिये पूर्व कल्पस्थ वेदों का प्रवचन किया। (२) श्रीपञ्चरात्र शास्त्र को उन्हों स्वयं निर्माण कर नारदादि महर्षियों को उपदेश दिया। इसलिये वे प्रथम गुरु कहलाये।

वेद और पञ्चरात्र में यह अन्तर है कि श्रीभगवान् ने वेदों का प्रवचन भर किया, निर्माण नहीं किया, क्योंकि वेद नित्य अपौरुषेय हैं। पञ्चरात्रका श्रीभगवान् ने निर्माण किया है। वह निर्माण भी श्रीभगवान् ने स्वयं किया न कि किसी जीव पर अधिष्ठान कर। किसी तामस जीव पर अधिष्ठान कर श्रीभगवान् ने बौद्धागम का निर्माण किया। अतएव बौद्धागम अप्रमाण हो गया। वैसे श्रीभगवान ने किसी जीव पर अधिष्ठान कर श्रीपञ्चरात्र को नहीं बनाया किन्तु स्वयं बनाया। अतएव श्रीपञ्चरात्र परम प्रमाण माना जाता है। किंच, श्रीभगवान् ने महर्षियों के द्वारा स्मृति पुराण आदि का निर्माण कराया। वैसे महर्षियों के द्वारा श्रीपञ्चरात्र शास्त्र का निर्माण नहीं कराया। किन्तु स्वयं

ष्ठानद्वारा प्रवर्तिताद् बौद्धागमात् स्वयं प्रणीतस्य श्रीपञ्च-रात्रस्य वैशेष्यं सूचितं भवति।

*वन्दे — नमस्करोमीत्यर्थः । इत्थं महोपकारं कृतवतो विषयेऽनमस्कृत्य स्थातुं न शक्यते। अतो नमस्करोमि, नतु प्रत्युपकारबुद्ध्या नमस्करोमीति भावः। एवमग्रिमश्लोकेष्वपि द्रष्टव्यम्। अत्र गुरुं वन्दे इति निर्देशेन वन्दनीयत्वे प्रयोजकं गुरुत्वमेव न तु परदेवतात्वम्। परदेवतात्वमात्रे सति अज्ञाना-वृतस्य लोकस्य स्वरूपकृतदास्यमात्रवहनं हि स्यात्। गुरुत्वे सति तु अज्ञानान्धकारस्य नाशाद्गुणकृतदास्यवहनमपि भवतीति सूच्यते । अत्राविघ्नपरिसमाप्त्यर्थं इष्टदेवतानमस्कारात्मकं मङ्गलं कृतमिति वेदितव्यम् ॥१॥

निर्माण किया। अतएव महर्षि कृत ग्रन्थों की अपेक्षा श्रीपञ्चरात्र का अधिक प्रामाण्य है।

श्रीभगवान् में दो विशेषतायें हैं। (१) श्रीभगवान् पर देवता हैं अर्थात् श्रेष्ठ देवता हैं। (२) श्रीभगवान् प्रथम गुरु हैं। यदि श्रीभगवान् केवल पर देवता ही होते और गुरु न होते तो अज्ञानान्धकार से आवृत जीवों को कुछ भी लाभ नहीं होता। जब श्रीभगवान ने पर देवता भाव के साथ गुरु भाव धारण कर सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्माजी को वेदों का उपदेश दिया, स्वयं श्रीपञ्चरात्रागम को निर्माण कर नारदादि ब्रह्मर्षियों को उपदेश किया, तब से जीव स्वस्वरूप और परस्वरूप को समझकर कल्याणपथ में अग्रसर होने लगे। इस प्रकार श्रीभगवान् ने गुरु भाव में आकर जीवों के अज्ञानान्धकार को दूर कर ज्ञान चक्षु प्रदान किया। इस महोपकार का स्मरण कर श्रीभगवान् के चरणों में प्रणत होने की इच्छा होती है इसलिये प्रणाम करता हूँ। प्रणाम को प्रत्युपकार मानकर नहीं, क्योंकि मैं तो नित्य ऋणी हूँ ॥१॥

प्रथमश्लोके श्रीसंप्रदायस्य प्रथमगुरुं श्रीभगवन्तं नमस्कृत्य अस्मिन् द्वितीयश्लोके श्रीसंप्रदायस्य द्वितीयगुरुं महालक्ष्मीं नमस्करोति—

सहधर्मचरीं शौरेः सम्मन्त्रितजगद्धिताम् ।
अनुग्रहमयीं वन्दे नित्यमज्ञातनिग्रहाम् ॥२॥

*शौरेः सहधर्मचरीं वन्दे—जगद्व्यापारशरणागतरक्षण-प्रभृतयः शौरेर्धर्माः, तान् शौरिणा सहाचरन्तीं महालक्ष्मीं वन्दे इत्यर्थः। इयं धर्माचरणे सदा भगवता सहैव वर्तते न तु क्षणमात्र-

---

प्रथमश्लोक से श्रीसम्प्रदाय के प्रथमगुरु श्रीभगवान् को प्रणाम कर श्रीदेशिक स्वामी जी महाराज इस दूसरे श्लोक से श्रीसम्प्रदाय के द्वितीय गुरु श्रीमहालक्ष्मी जी को प्रणाम करते हैं—

नित्यमज्ञातनिग्रहाम्—जो निग्रह करना जानती ही नहीं, *अनुग्रहमयीं*—सदा अनुग्रह करने वाली हैं, तथा, *सम्मन्त्रितजगद्धिताम्*—जगत के कल्याण की मन्त्रणा करने वाली हैं, *शौरेः*—भगवान् को, *सहधर्मचारिणीं*—सहधर्मचारिणी उन लक्ष्मी जी की, *वन्दे*—वन्दना करता हूँ।

शौरेः सहधर्मचरीं वन्दे—अर्थात् श्रीभगवान् की सहधर्मचारिणी महालक्ष्मी जी की वन्दना करता हूँ। सहधर्मचारिणी उस स्त्री को कहते हैं जो पति के साथ धर्माचरण करती है। यहाँ पर श्रीभगवान् के साथ श्रीमहालक्ष्मी जी धर्माचरण करती हैं, इसलिये श्रीभगवान् की सहधर्मचारिणी कहलाती हैं। जगत की सृष्टि स्थिति प्रलय करना शरणागत जीवों की रक्षा करना इत्यादि ये सब कार्य श्रीभगवान् के धर्म हैं। इन सब कार्यों को श्रीलक्ष्मी जी श्रीभगवान् के साथ करती हैं। इन धर्मों के आचरण के समय श्रीमहालक्ष्मी जी कभी भी श्रीभगवान् को

ष्ठानद्वारा प्रवर्तिताद् बौद्धागमात् स्वयं प्रणीतस्य श्रीपञ्च-रात्रस्य वैशेष्यं सूचितं भवति ।

*वन्दे — नमस्करोमीत्यर्थः । इत्थं महोपकारं कृतवतो विषयेऽनमस्कृत्य स्थातुं न शक्यते । अतो नमस्करोमि, नतु प्रत्युपकारबुद्ध्या नमस्करोमीति भावः । एवमग्रिमश्लोकेष्वपि द्रष्टव्यम् । अत्र गुरुं वन्दे इति निर्देशेन वन्दनीयत्वे प्रयोजकं गुरुत्वमेव न तु परदेवतात्वम् । परदेवतात्वमात्रे सति अज्ञाना-वृतस्य लोकस्य स्वरूपकृतदास्यमात्रवहनं हि स्यात् । गुरुत्वे सति तु अज्ञानान्धकारस्य नाशाद्गुणकृतदास्यवहनमपि भवतीति सूच्यते । अत्राविघ्नपरिसमाप्त्यर्थं इष्टदेवतानमस्कारात्मकं मङ्गलं कृतमिति वेदितव्यम् ॥१॥

निर्माण किया । अतएव महर्षि कृत ग्रन्थों की अपेक्षा श्रीपञ्चरात्र का अधिक प्रामाण्य है ।

श्रीभगवान में दो विशेषतायें हैं । (१) श्रीभगवान् पर देवता हैं अर्थात् श्रेष्ठ देवता हैं । (२) श्रीभगवान् प्रथम गुरु हैं । यदि श्रीभगवान् केवल पर देवता ही होते और गुरु न होते तो अज्ञानान्धकार से आवृत जीवों को कुछ भी लाभ नहीं होता । जब श्रीभगवान ने पर देवता भाव के साथ गुरु भाव धारण कर सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्माजी को वेदों का उपदेश दिया, स्वयं श्रीपञ्चरात्रागम का निर्माण कर नारदादि ब्रह्मर्षियों को उपदेश किया, तब से जीव स्वस्वरूप और परस्वरूप को समझकर कल्याणपथ में अग्रसर होने लगे । इस प्रकार श्रीभगवान ने गुरु भाव में आकर जीवों के अज्ञानान्धकार को दूर कर ज्ञान चक्षु प्रदान किया । इस महोपकार का स्मरण कर श्रीभगवान् के चरणों में प्रणत होने की इच्छा होती है इसलिये प्रणाम करता हूँ । प्रणाम को प्रत्युपकार मानकर नहीं, क्योंकि मैं तो नित्य ऋणी हूँ ॥१॥

रामस्यातिशयमिव "अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकात्मजा" "अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा" इति वर्णयन् श्रीसीतासम्बन्धेन श्रीरामस्यातिशयं श्रीरामसम्बन्धेन श्रीसीतायाश्चातिशयं वर्णयति तथैवात्र श्रीकवितार्किकसिंहोऽपि "कमलागृहमेधिनम्" सहधर्मचरीं शौरेः" इति लक्ष्म्या भगवन्तं भगवता च लक्ष्मीं निरूपयन् लक्ष्मीसम्बन्धनिबन्धनं भगवतोऽतिशयं भगवत्सम्बन्धनिबन्धनं च लक्ष्म्या अतिशयं व्यनक्ति।

से श्रीलक्ष्मण जी का महत्व तथा श्रीलक्ष्मणजी के सम्बन्ध से श्रीरामजी का महत्व व्यक्त किया गया।

कीदृशीं सहधर्मचारीमित्यत्राह * नित्यमज्ञातनिग्रहामिति—वात्सल्यातिशयात् अज्ञातनिग्रहहेतुम्, अज्ञातनिग्रहस्वरूपां वा। कदाचिद्भगवतो निग्रहसंकल्पः उदियादपि, अस्यास्तु कदाचिदपि निग्रहसंकल्पो नोदेति। यतस्सा परमवात्सल्यमयी।

पुनः कीदृशीमित्यत्राह * अनुग्रहमयीमिति। अनुग्रहप्रचुरामित्यर्थः प्राचुर्यार्थे मयट्। यद्वा अनुग्रहस्वरूपाम्, मूर्तिमदनुग्रहरूपामित्यर्थः।

पुनः कीदृशीमित्यत्राह * संमन्त्रितजगद्धितामिति। समित्येकीभावे। भगवता सह एकीभूय जगद्धितविचारं कुर्वाणा

श्रीमहालक्ष्मी जी में निग्रह की भावना तक नहीं है। अतः वह जीवों पर निग्रह कैसे कर सकती है? इतना ही नहीं निग्रह के कारण तो अपराध होते हैं, इन अपराधों पर उनका ध्यान ही नहीं जाता। जीवों के अपराधों को वे बच्चों का खेल समझती हैं। ऐसी महालक्ष्मी जी जीवों पर निग्रह करें कैसे? अतः महालक्ष्मी जी "अज्ञात निग्रहा" है। इसमें सन्देह नहीं है।

प्रश्न यह होता है कि जिस प्रकार श्रीमहालक्ष्मी जी निग्रह करना नहीं जानतीं वैसे ही अनुग्रह करना भी नहीं जानती होंगी। इस प्रश्न के उत्तर में श्रीस्वामी जी महाराज कहते हैं कि "अनुग्रहमयीम्" अर्थात् श्रीमहालक्ष्मी जी जगन्माता होने के कारण अनुग्रहमयी हैं, अनुग्रह से परिपूर्ण हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अनुग्रह ही मानों श्रीमहालक्ष्मी जी के रूप में प्रकट हुआ हो।

अनुग्रहमयी श्रीमहालक्ष्मी जी जीवों पर कैसा अनुग्रह करती हैं? इस प्रश्न के उत्तर में श्रीस्वामी जी महाराज कहते हैं कि "सम्मन्त्रित जगद्धिताम्" अर्थात अनुग्रहमयी होने के कारण ही श्रीमहालक्ष्मी जी

मित्यर्थः। तदा तदा बहुविधेषु जगद्धितमन्त्रणेषु कृतेषु सत्स्वपि अत्र जगद्धितमन्त्रणविशेषे तात्पर्यम्। स चेत्थं भाव्यः। पूर्वश्लोकोक्तरीत्या वेदे पाञ्चरात्रे च प्रवर्तिते सत्यपि तयोरपार्थान् कल्पयित्वा दिव्यदम्पती जगत्कारणत्वेनाज्ञात्वाऽधोगतिं प्राप्नुवत्सु जीवेषु, एतेषामधोगतिं दृष्ट्वा दिव्यदम्पत्योर्दयाया-

---

श्रीभगवान् से मिलकर मन्त्रणा करती हैं कि कैसे और क्या करने पर जगत का हित होगा? इन मन्त्रणाओं में अन्त में श्रीभगवान् और महालक्ष्मी जी का एक ही मत होता है कभी भी मतभेद नहीं होता। इस प्रकार श्रीभगवान् के साथ जगद्धित की मन्त्रणा करने के बाद उसे अनुष्ठान में लाती हैं। तीनों कालों में जगत में जितने प्रकार के हित सम्पन्न होते हैं वे सबके सब श्रीभगवान् तथा श्रीमहालक्ष्मी जी की मन्त्रणा का ही फल हैं, क्योंकि इनके संकल्प के बिना जगत में कुछ भी नहीं हो सकता है। अन्यान्य प्रसङ्गों में भले श्रीमहालक्ष्मी जी से भिन्न २ मन्त्रणायें की गई हों, यहाँ पर तो श्रीगुरुपरम्परा के प्रणाम के प्रसङ्ग में श्रीस्वामी जी महाराज को एक विलक्षण मन्त्रणा अभिप्रेत है। वह यह है—

मुदितायां कुरुकापुर्यां दिव्यसूरौ चावतीर्णे दिव्यदम्पत्योरेवं मन्त्रणा प्रववृते।

श्रीभगवान्—प्रिये, अधुना भूतलेऽवतीर्णस्य शठकोपसूरेर्द्वारा वेदार्था यथावद्विशदीकर्तुं शक्यन्ते किल।

श्रीमहालक्ष्मी—शक्यन्ते। अयं समीचीन एवोपायः। किं तु अधुनाऽऽवाभ्यां समक्षमुपस्थाय "आवामेव जगत्कारणम्, आवामेव वेदप्रतिपाद्यौ" इति साक्षादुपदेशे क्रियमाणेऽयमतिशंकेत यदिमौ स्वयमेत्य स्वप्रशंसां कुरुतः,

---

समझकर अनादि दुर्वासना से विपरीत आचरण कर जीव गण अधोगति को प्राप्त होते गये। जीवों की इस दुर्दशा को देखकर दिव्य दम्पती के मन में दया आई। तब उन दोनों ने सोचा कि किसी तरह इन जीवों का उद्धार होना चाहिये। उस समय श्रीमहालक्ष्मी जी तथा श्रीभगवान् में जो मन्त्रणा हुई वह इस प्रकार है—

श्रीभगवान्—प्रिये ! इस समय भूलोक में श्रीशठकोप सूरि जी का अवतार हो गया है। मैं चाहता हूँ कि उनके द्वारा वेदार्थों का विशद निरूपण कराया जाय।

श्रीमहालक्ष्मी जी—नाथ ? उपाय अत्युत्तम है इनके द्वारा वेदार्थों का प्रचार किया जा सकता है। परन्तु कठिनायी यह है कि इनको उपदेश कौन दे। यदि हम दोनों इनको दर्शन देकर उपदेश दें कि हम दोनों ही जगत के आदि कारण हैं हम दोनों का आश्रय लेना ही परमहित है हम दोनों को प्राप्त करना ही परम पुरुषार्थ है। इस प्रकार के उपदेश को सुनते ही इनके मन में शङ्का होने लगेगी कि ये

कथमिदं प्रमाणं स्यादिति । अत आत्मान्यानुपदेशनं न सांप्रतं मन्ये ।

श्रीभगवान्—तर्हि अथापि विष्वक्सेनोऽपि नैव एव । तदुभाभ्यामेव उपदिश्यताम् ।

श्रीमहालक्ष्मी—युज्यते ।

श्रीभगवान्—तर्हि भवती मया भवत्यै उपदिष्टानर्थान् वक्तु

लक्ष्मीतन्त्रे चोपदिष्टांश्चार्थान् विष्वक्सेनायोपदिश्य तम् एतदुपदेशार्थं नियुङ्क्ष्वाम् । एतन्मन्त्रणानुरोधेन महालक्ष्मी- र्विष्वक्सेनाय उपदिश्य तं सूर्युपदेशाय प्रेरयामास ।

*सम्मन्त्रितजगद्धितां शौरेः सहधर्मचरीं वन्दे—इत्थं श्रीभगवता संमन्त्र्य जगद्धिताय श्रीविष्वक्सेनप्रेरणरूप- महोपकारस्य करणात् तदनुसन्धानेनोन्मिषन्त्या कृतज्ञतया प्रणाममकृत्वा स्थातुमशक्यत्वाद् महालक्ष्मीं प्रणमामि, न तु प्रत्युपकारबुद्ध्येति भावः ॥२॥

इत्थं द्वाभ्यां श्लोकाभ्यां श्रीसम्प्रदायस्य प्रथमद्वितीय गुरू

दिया, तथा आप ने श्रीलक्ष्मी तन्त्रादि में जिन अर्थों को प्रकाशित किया, उन सभी अर्थों को श्रीविष्वक्सेन जी को उपदेश कर आप श्रीशठकोप सूरि को उपदेश देने के लिये श्रीविष्वक्सेन जी को प्रेरित करें।

इस मन्त्रणा के अनुसार श्रीमहालक्ष्मी जी ने विष्वक्सेन जी को सर्वार्थों का उपदेश देकर श्रीशठकोप सूरि जी को उपदेश देने के लिये भेजा। उन्होंने भी वैसा ही किया। इस मन्त्रणा विशेष को मन में रख कर श्री स्वामी जी महाराज कह रहे हैं कि—"संमन्त्रितजगद्धिताम्"। इस प्रकार जगद्धितकारी श्रीविष्वक्सेन प्रेरणा रूपी महोपकार करने वाली श्रीमहालक्ष्मी जी के विषय में प्रणाम किये बिना रहा नहीं जाता अतः उनको प्रणाम करता हूँ ॥२॥

श्रीदेशिक स्वामी जी ने प्रथम श्लोक में श्रीसम्प्रदाय के प्रथमाचार्य श्रीमन्नारायण भगवान को प्रणाम किया है। द्वितीय श्लोक में श्रीसंप्रदाय के दूसरे आचार्य श्रीमहालक्ष्मी जी को प्रणाम किया है। अब तीसरे

नमस्कृत्यानेन तृतीयश्लोकेन तृतीयगुरुं श्रीविष्वक्सेनं नमस्यति—

वन्दे वैकुण्ठसेनान्यं देवं सूत्रवतीसखम् ।
यद्वेत्रशिखरस्पन्दे विश्वमेतद् व्यवस्थितम् ॥३॥

*देवम्—"यत्रपूर्वेसाध्याः सन्तिदेवाः" इत्युक्तरीत्या नित्यसूरिं *वैकुण्ठसेनान्यम्—वैकुण्ठस्य श्रीभगवतः सेनापतिम् । सेनान्यमित्युक्तौ देवसेनापतेः कार्तिकेयस्य प्रतीतिः स्यादिति तद्व्यावृत्तये वैकुण्ठसेनान्यमित्युक्तिः । एवंभूतं विष्वक्सेनं *वन्दे—अभिवादये । श्रीशठकोपसूरये मन्त्रमन्त्रार्थाद्युपदेशरूप-

---

श्लोक में श्रीसम्प्रदाय के तीसरे आचार्य श्रीविष्वक्सेन जी को प्रणाम करते हुये कहते हैं—

यद्वेत्रशिखरस्पन्दे—जिनके वेत्राग्र के संचालन मात्र से, *एतत् विश्वम्*—यह सम्पूर्ण चराचर जगत्, *व्यवस्थितम्*—अपनी मर्यादा में स्थित रहता है। तं *सूत्रवतीसखम्*—उन सूत्रवती के स्वामी, *वैकुण्ठसेनान्यम्*—वैकुण्ठ के सेनापति, *देवम्*—देव को, *वन्दे*—नमस्कार करता हूँ।

महोपकारकरणात् तादृशमहोपकारेऽनुसंहिते एतद्विषयेऽप्रणम्य-स्थातुमशक्ततया प्रणमामि, ननूपकारबुद्ध्येति भावः। कीदृशं-वैकुण्ठसेनान्यमित्यत्राह *सूत्रवतीसखम्—सूत्रवत्या भर्तारम्। सूत्रवतीति श्रीविष्वक्सेनभार्याया नाम। अत्र पत्नीविशिष्टं सेनापतिं नमस्कुर्वतः कोभाव इति चेत् अयं भावः—

श्रीमद्रामायणे वर्ण्यते यत् श्रीभरते चित्रकूटात् श्रीरामप्रत्यानयनाय यात्रायां सैनिकान् सहगमनार्थमादिष्टवति सति योधाङ्गनाः भर्तॄन् प्रेरयामासुरिति तथा च श्लोकः—

ततो योधाङ्गनाः सर्वाः भर्तॄन् सर्वान् गृहे गृहे।

हुआ। इस महोपकार का अनुसन्धान करने पर उनके चरणों में नतमस्तक हुए विना नहीं रहा जाता, अतः उनको प्रणाम करता हूँ।

श्री विष्वक्सेन महाराज कैसे हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं "सूत्रवतीसखम्"—वे सूत्रवती के भर्ता हैं। मैं सूत्रवतीदेवी से युक्त श्रीविष्वक्सेन महाराज को प्रणाम करता हूँ क्योंकि जगदुद्धार में श्रीसूत्रवतीदेवी का भी कम हाथ नहीं है, उन्होंने इस काम में बहुत कुछ हाथ बँटाया है।

यहाँ पर यह वृत्तान्त ध्यान देने योग्य है कि श्रीमद्रामायण में कहा गया है कि श्रीभरतजी ने श्रीरामचन्द्रजी को चित्रकूट से अयोध्या लाने के लिये बहुत उत्सुक होकर सैनिकों को साथ चलने के लिये आदेश दिया। इस आज्ञा को सुन कर सैनिकों की स्त्रियों ने क्या किया ? इस विषय में कहा गया है कि—

"श्रीभरतजी की आज्ञा से अपने पतिदेवों की चित्रकूट यात्रा

यात्रागमनमाज्ञाय त्वरयन्ति स्म हर्षिताः ॥ इति ।

तथैवात्रापि श्रीशठकोपसूरिद्वारा वेदार्थान् यथावत् प्रकाश्य जीवा उज्जीवनीयाः तदर्थं तस्मै मन्त्रमन्त्रार्थान् उपदिशेति महालक्ष्म्यां श्रीविष्वक्सेनमाज्ञापयन्त्यां सत्यां तामाज्ञां श्रुत्वा सूत्रवती लोकोज्जीवनार्थं हर्षप्रकर्षेण श्रीविष्वक्सेनं त्वरयामास । एतमर्थमभिसन्धाय कृतज्ञतया सूत्रवती सहितं श्रीविष्वक्सेनं प्रणमन्ति आचार्याः ।

को जानकर सभी सैनिकों की स्त्रियाँ घर घर में अपने अपने पतियों को शीघ्र चलने के लिये प्रेरित करने लगीं।" यह बात श्रीवाल्मीकि रामायण में कही गयी है ।

ननु श्रीविष्वक्सेने श्रीशठकोपसूरये उपदिश्य तद्द्वारा जीव-लोकं मुमुक्षूकृत्योज्जीवयति सति--

श्रूयते-किल गोविन्दे भक्तिमुद्वहतां नृणाम् ।
संसार न्यूनताभीतास्त्रिदशाः परिपन्थिनः ॥

इत्युक्तरीत्या देवाः किं न विघ्नमाचरेयुरिति शङ्कायामाह *यद्वेत्रशिखरस्पन्दे विश्वमेतद् व्यवस्थितम् इति । यस्य सेना-पतेर्वेत्रशिखरस्य वेत्राग्रस्य स्पन्दे किंचित् चलनमात्रे एतद्विश्वम्

यहाँ पर यह शङ्का होती है कि भले ही श्रीविष्वक्सेन महाराज श्रीशठकोप स्वामी जी को मन्त्र मन्त्रार्थों को उपदेश देकर जीवों का उद्धार करने के लिसे उद्योग करें किन्तु देवतागण इस पवित्र कार्य में बाधा डालेंगे तो क्या किया जाय । क्योंकि शास्त्रों में यह बात स्पष्ट रूप से कही गई है कि—

परिदृश्यमानः कृत्स्नचराचरप्रपञ्चः व्यवस्थितः आज्ञातिक्रममन्तरा स्वस्वमर्यादायां स्थितमित्यर्थः। एतद्वेत्रयष्टि शिखरभागचलनमात्रेण कृत्स्नप्रपञ्चे महाभयेन स्वस्वमर्यादायां तिष्ठति सति देवाः कथं विघ्नमाचरेयुरितिभावः ॥३॥

अथास्मिन् तुर्ये श्लोके श्रीसम्प्रदायस्य तुर्यमाचार्यं श्रीविष्वक्सेनेन मन्त्रतदर्थप्रदानेनानुगृहीतं दुरूहवेदार्थानां सर्वसुगमतया द्राविडप्रबन्धैर्विशदीकरणरूपं महोपकारं कृतवन्तं योगदशायामाविर्भूय श्रीमन्नाथमुनये तत्वार्थान् प्रबन्धांश्चोपदिष्टवन्तं महोपकारकं श्रीशठकोपसूरिं नमस्यति—

जो वेंत है, उसका अग्र भाग हिलते ही चेतनाचेतनात्मक यह सारा विश्व अत्यन्त भयभीत होकर अपनी अपनी मर्यादा में व्यवस्थित रहता है। इनकी आज्ञा का उल्लङ्घन करने के लिये किसी का भी साहस नहीं होता। ऐसी स्थिति में देवतागण श्रीविष्वक्सेन जी के शुभ संकल्प के विरुद्ध भला कैसे विघ्न कर सकते हैं, सर्वथा नहीं कर सकते हैं ॥३॥

यस्य सारस्वतं (तस्रो) स्रोतो बकुलामोदवासितम् ।
श्रुतीनां विश्रमायालं शठारिं तमुपास्महे ॥४॥

अत्रेदं बोध्यम् देहदार्ढ्यवन्तः पुरुषाः घर्मसंतापं सहेरन्नपि प्रकृत्यैव सुकुमाराङ्ग्यः स्त्रियः आतपाग्न्यादितप्ताः कथमपि तं संतापं न सहेरन् । एवं संतप्तास्ताः स्त्रियः कंचित् शीतलं नदीप्रवाहमभिलषन्त्यस्तदलाभान्निर्विण्णा यदा वर्तन्ते तदा कस्माच्चिदुत्तुङ्गात् पर्वतात् प्रसृते तीरप्ररूढवृक्षलतापुष्पभरसुरभिते कस्मिंश्चित् नदीप्रवाहे दृष्टिपथमुपगते ताः स्त्रियस्तस्मिन् प्रवाहे

उपकारों को स्मरण कर कृतज्ञता से प्रणाम करते हुए श्रीदेशिक स्वामी जी महाराज स्तुति करते हैं—

यस्य—जिन, *बकुलामोदवासितं*—मौलश्री की गन्ध से सुवासित, *सारस्वतं स्रोतः*—वाकप्रवाह, *श्रुतीनां विश्रमाय*—श्रुतियों के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये, *अलं*—पर्याप्त है, *तं शठारिं*—उन शठकोप स्वामी की, *उपास्महे*—उपासना करता हूँ ।

निमज्य संतापमुपशमयेयुः श्रमपरिहारं कुर्युः कियन्तं कालं विश्रान्तिं च लभेरन्निति संभाव्यते । अयं दृष्टान्तः । दार्ष्टान्तिकस्त्वित्थम् । श्रीसंप्रदाये स्थिरप्रतिष्ठितो निष्कम्प उत्तुङ्गस्वभावः श्रीशठकोपसूरिर्गिरिराजस्थाने भाव्यः । तन्मुखोद्गतो दिव्यप्रबन्धरूपः सरस्वतीप्रवाहः नदीप्रवाहत्वेन भाव्यः । सरस्वती नाम काचिन्नदी सर्वा अपि महानद्यः सरस्वत्य एव यासां सलिलेन सरांसि पूर्यन्ते तासां प्रवाहोऽपि सरस्वतीप्रवाह इति सुवचः । श्रूयते नित्यमिति श्रुतिः अनादिनिधनोऽपौरुषेयो वेदः श्रुतिः । स्त्रीलिङ्गश्रुतिशब्दबोधिता वेदाः स्त्रीत्वेन भाव्याः ।

अपने सन्ताप और श्रम को दूर करती हैं तथा विश्रान्ति का अनुभव करती हैं ।

श्रुतीनां कुदृष्टिकृतान्यपार्थकल्पनानि तासां घर्माभितापाः । तादृशकल्पनाजनितं तासां "बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति" इत्युक्तं प्रतारणभयं स्त्रीणां वैयाकुलीत्वेन भाव्यम् । यथा घर्माभितप्ताः स्त्रियः शीतलं नदीप्रवाहं क्लेशापनयनार्थमन्वेषयन्ति तथैवापार्थकल्पनतप्ताः श्रुतयो यथावत् स्वार्थप्रकाशकं वाक्प्रवाहमन्वेषयन्ति । यथा ताभिः स्त्रीभिः पर्वतान्निसृतः तीररूढलतापुष्पसुरभितो महानदीप्रवाहो लभ्यते, तथा श्रुतिभिरपि गिरिसन्निभादुत्तुङ्गाच्छ्रीशठकोपसूरेरुद्गतस्तदीयबकुलमालाभिः सुरभितो दिव्यप्रबन्धरूपः सरस्वतीप्रवाह उपलभ्यते ।

से डरते हैं कि कहीं ये मनगढन्त अर्थ करके हमारी प्रतारणा न करें । इस प्रकार जब से वेदों के मनगढन्त अर्थ होने लगे, तब से श्रुतियों को मानो लू लग गई । इस मनगढन्त अर्थों को सुनकर श्रुतियाँ व्याकुल होती हैं । जैसा दृष्टान्त में गर्मी से सन्तप्त स्त्रियाँ अपने अनुकूल नदी प्रवाह को ढूँढती हैं वैसे ही अपार्थ कल्पना से सन्तप्त श्रुतियाँ भी अपने इष्ट अर्थ, अर्थात् सही सही वेदार्थों को ठीक ठीक बतलाने वाले वाक् प्रवाह रूपी सद्ग्रन्थों को ढूँढती हैं । जिस प्रकार दृष्टान्त में बहुत खोजने पर उन स्त्रियों को किसी उन्नत पर्वत मे निकला महा नदी प्रवाह मिलता है ठीक उसी प्रकार बहुत खोजने पर श्रुतियों को श्रीसिद्धान्त में स्थिर प्रतिष्ठित प्रतिवादियों के वाग्जालरूपी चण्डमारुत से कभी भी विचलित न होने वाले तथा उन्नत गुणों से संपन्न श्रीशठकोप सूरिजी के श्रीमुख से निकला हुआ दिव्य प्रबन्धरूपी सरस्वती कहते हैं । जिस प्रकार दृष्टान्त में वह नदी प्रवाह तीरस्थ वृक्ष लताओं के पुष्पों से सुगन्धित रहता है उसी प्रकार श्रीशठकोप स्वामी जी का वाक्प्रवाह

यथा ताः स्त्रियः स्वानुकूले तस्मिन् प्रवाहे निमज्य संतापमुपशमयन्ति श्रमं परिहरन्ति, विश्रान्तिसुखं च लभन्ते, तथैवात्रापि श्रुतयः स्वाभिमतार्थप्रतिपादके दिव्यप्रबन्धरूपे सरस्वतीप्रवाहे निमज्यार्थात् गुप्तरूपेणावस्थाय दिव्यप्रबन्धेन वैदिकार्थानां यथावल्लोके प्रकाशनात् अपार्थकल्पनजसंतापं शमयन्ति, दिव्यप्रबन्धावतारात्प्राक् बाह्यकुदृष्टिप्रचुरे लोके वैदिकार्थप्रकाशनेन जातं श्रममपनयन्ति, स्वप्रतिपिपादयिषितानां गूढगूढानामपि वैदिकार्थानां स्त्रीशूद्रपर्यन्तमपि प्रकाशनभरस्य दिव्यप्रबन्धेन स्वीकाराद्विश्रान्तिसुखं च लभन्ते।

अयमर्थोऽस्मिन् श्लोके प्रतिपाद्यते *यस्य शठकोपसूरेः

भी बकुल (मौलश्री) पुष्पमाला के पुष्पों की सुगन्धि से सुगन्धित रहता है क्यों कि श्रीशठकोप स्वामी बकुल मालाधारी हैं। जिस प्रकार दृष्टान्त में वे स्त्रियाँ अपने अनुकूल उस नदी प्रवाह में डूब कर स्नान करती हैं, विश्रान्ति सुख लेती हैं, उसी प्रकार दार्ष्टान्तिक में वे श्रुतियाँ अपने अभिमत अर्थों को बतलाने वाले अतएव अपने लिये अत्यन्तानुकूल दिव्य प्रबन्ध रूपी वाक् प्रवाह में डूब जाती हैं अर्थात् दिव्य प्रबन्ध में द्राविड भाषा से अपने सन्ताप को छिपाकर निवास करती हैं, दिव्य प्रबन्ध से सही सही वेदार्थों के प्रचार में आने के कारण अपने सन्ताप को दूर करती हैं जो अपार्थ कल्पना से उत्पन्न हो गया था। तथा वे अपने श्रम को दूर करती हैं सारी घबराहटों से छूट जाती हैं, स्त्री शूद्रों तक वेदार्थों को प्रचारित करने के भार को दिव्य प्रबन्धों में सौंपकर विश्रान्ति सुख लेती हैं।

*वकुलामोदवासितं वकुलपुष्पसुगन्धसुरभितं *सारस्वतं स्रोतः सरस्वतीप्रवाहो दिव्यप्रबन्धरूपो वाक्प्रवाहः। सारस्वतस्रोतः शब्देन नदीप्रवाहोऽपि श्लेषेण प्रतिपाद्यते *श्रुतीनां वेदानां *विश्रमाय विश्रान्त्यर्थं तापश्रमपरिहारार्थम् *अलम् पर्याप्तम् तं शठारिं शठानां वेदापार्थकल्पकानां कुदृष्टीनां शत्रुं श्रीशठकोपसूरिम् *उपास्महे भजामः। पूजायां बहुवचनेन स्वस्यैवंविधभाग्योदयेनाभिनन्दनमनेवं विधानां निन्दा च गम्यते ॥४॥

अनेन श्लोकेन श्रीनाथमुनिं नमस्यति—

नाथेन मुनिनाथेन (तेन) भवेयं नाथवानहम्।
यस्य नैगमिकं तत्त्वं हस्तामलकतां गतम् ॥५॥

यहाँ पर श्रीशठकोप सूरि को शठारि कहा गया है। शठारि माने शठों के शत्रु। वेदों के अपार्थ करने वाले प्रतिवादि गण शठ कहलाते हैं। श्रीशठकोपसूरि उनके शत्रु हैं। इसलिये ये शठारि कहलाये। यहाँ पर श्रीदेशिक स्वामी जी महाराज "उपास्महे" ऐसा बहुवचन प्रयोग करके श्रीशठकोप स्वामी जी की उपासना करनेवाले अपने को धन्य मानकर प्रशंसा करते हैं, श्रीशठकोप स्वामी जी की उपासना न करने वालों को अधन्य मानकर खेद प्रकट करते हैं ॥४॥

*बकुलामोदवासितं बकुलपुष्पसुगन्धसुरभितं *सारस्वतं स्रोतः सरस्वतीप्रवाहो दिव्यप्रबन्धरूपो वाक्प्रवाहः। सारस्वतस्रोतः शब्देन नदीप्रवाहोऽपि श्लेषेण प्रतिपाद्यते *श्रुतीनां वेदानां *विश्रमाय विश्रान्त्यर्थं तापश्रमपरिहारार्थम् *अलम् पर्याप्तम् तं शठारिं शठानां वेदापार्थकल्पकानां कुदृष्टीनां शत्रुं श्रीशठकोप-सूरिम् *उपास्महे भजामः। पूजायां बहुवचनेन स्वस्यैवंविध-भाग्योदयेनाभिनन्दनमनेवं विधानां निन्दा च गम्यते ॥४॥

अनेन श्लोकेन श्रीनाथमुनिं नमस्यति—

नाथेन मुनिनाथेन (तेन) भवेयं नाथवानहम्।
यस्य नैगमिकं तत्त्वं हस्तामलकतां गतम् ॥५॥

यहाँ पर श्रीशठकोप सूरि को शठारि कहा गया है। शठारि माने शठों के शत्रु। वेदों के अपार्थ करने वाले प्रतिवादि गण शठ कहलाते हैं। श्रीशठकोपसूरि उनके शत्रु हैं। इसलिये ये शठारि कहलाये। यहाँ पर श्रीदेशिक स्वामी जी महाराज "उपास्महे" ऐसा बहु-वचन प्रयोग करके श्रीशठकोप स्वामी जी की उपासना करनेवाले अपने को धन्य मानकर प्रशंसा करते हैं, श्रीशठकोप स्वामी जी की उपासना न करने वालों को अधन्य मानकर खेद प्रकट करते हैं ॥४॥

इस श्लोक से श्रीशठकोपसूरि जी के शिष्य श्रीमन्नाथमुनि स्वामी जी को प्रणाम करते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं—

नैगमिकं तत्त्वं—वैदिक रहस्य, *यस्य हस्तामलकतां गतं*—जिनको हस्तामलकवत् स्पष्ट है, *तेन नाथेन मुनिना*—उन नाथमुनि से, *अहं नाथ-वान् भवेयम्*—मैं सनाथ होऊँ, यह मेरी इच्छा है।

*नैगमिकं तत्त्वम्-वेदप्रतिपाद्यं भगवत्तत्त्वम् *यस्य नाथमुनेः *हस्तामलकताम् हस्तस्थितामलकफलवत् स्पष्टदृश्यतां *गतम् प्राप्तम्। यथा "शुभां निमित्तानि शुभानि भेजिरे" इत्युक्तरीत्या हनूमति सन्निहितेऽशोकवनिकायां शुभां श्रीजानकीं शुभानि निमित्तानि अहमहमिकया भेजिरे तथा श्रीशठकोपसूरेरनुग्रहात् तद्रूपामकमेन नाथमुनिं वेदप्रतिपाद्यं परं तत्त्वं भगवत्तत्त्वं स्वयमेव दर्शनदानार्थमाससाद। अतएव भगवत्तत्त्वमस्य-

---

श्रीनाथमुनि स्वामी जी का प्रभाव अपार है क्योंकि "यस्य नैगमिकं तत्त्वं हस्तामलकतां गतम्"—वेद प्रतिपाद्य सभी अर्थों को यहाँ तक कि श्रीभगवत्तत्व को भी श्रीनाथमुनि स्वामी जी महाराज इतना स्पष्ट प्रत्यक्ष देखते थे जैसा कोई अपने हाथ पर रक्खे हुये आँवले को देखे। इसी प्रकार समस्त वेदार्थों के साक्षात्कार करने में श्रीनाथमुनि जी को अणुमात्र भी क्लेश नहीं हुआ। श्रीशठकोप स्वामी जी महाराज के अनुग्रह से "मैं इनको पहले दर्शन दूँ मैं इनको पहले दर्शन दूँ" इस

करतलामलकवद् स्पष्टदृश्यं बभूव। अहो प्रभावः श्रीमन्नाथमुनेरिति भावः *तेन नाथेन मुनिना श्रीमन्नाथमुनिना। श्रीमन्नाथमुनेः श्रीरङ्गनाथ इति पूर्णं नाम। "नामोक्तावर्धोक्तिरपि पूर्णोक्तिकार्यकरी" इति न्यायेन नाथमुनिरिति व्यवह्रियते *अहं नाथवान् भवेयम् स स्वामी भवतु अहं तस्य स्वीयवस्तु भवेयम् यथा स्वामी स्वीयवस्तुनः क्रयविक्रयदानविनिमयादौ अधिकरोति तथा नाथमुनिर्मम क्रयविक्रयदानविनिमयादौ अधिकरोति, यतस्तत्कृत उपकारो निरतिशयः। तेन लुप्ताः प्रबन्धा आविर्भाविताः भागिनेयावध्याप्य प्रचारिताश्च, यथा स्वेन दिव्यप्रबन्धाध्ययनेन नैगमिकं भगवत्तत्वं हस्तामलकवत् स्पष्टदृश्यतां नीतं स्वाधीनीकृतम्,

---

महाराज के अनुग्रह से श्रीमन्नाथ स्वामीजी ने वेद प्रतिपाद्य तत्वत्रय का साक्षात्कार कर उसी के आधार पर श्रीसिद्धान्त को स्थिर कर प्रचारित किया। यह उनका महोपकार है। इस महोपकार का अनुसन्धान कर श्रीस्वामी जी महाराज कहते हैं कि "तेन नाथेन मुनिना नाथवान् भवेयम्" मैं उस श्रीनाथमुनि स्वामी जी का वस्तु बनकर रहूँ वे मेरे स्वामी होकर रहें। लोक में देखा जाता है कि स्वामी अपनी वस्तु को बेच सकता है दान दे सकता है बदल सकता है, वैसे ही श्रीमन्नाथमुनि स्वामी जी महाराज हमको बेचें, दान में दें, बदली करें, यह सब मुझे इष्ट हैं क्यों कि उनके किये हुये उपकारों को याद करते ही प्रतीत होता है कि मेरी यह सब कुछ स्वीकृति अति तुच्छ है। भगीरथ स्वर्ग लोकस्थ गङ्गा को भूतल पर लाये। इन्होंने लुप्त दिव्य प्रबन्धों को भूलोक में प्रगट किया, यह कितना श्रम साध्य कार्य है? उन दिव्य प्रबन्धों से सम्पूर्ण वेदार्थ का साक्षात्कार कर सिद्धान्त को स्थिर किया, अपने भागिनेयों को दिव्य प्रबन्ध पढ़ाकर उनके द्वारा दिव्य प्रबन्धों को अविच्छिन्न रूप से प्रचारित

तथा दिव्यप्रबन्धप्रचारणात् भगवत्तत्वमस्मदादीनामपि हस्तामल-कतां नीतम् एवं विधे महोपकारेऽनुसंहिते नाथमुनये आत्म-समर्पणमकृत्वा स्थातुं न शक्यते मया तदीयत्वं प्रार्थ्यत इति भावः। मुनिनाथेनेति पाठे मुनीनां नाथेन नाथेनेत्यन्वयः ॥५॥

इत्थं श्रीमन्नाथमुनिं प्रणम्याथ ततः प्राप्तसर्वार्थं श्रीराममिश्रस्वामिनो वेदान्तार्थोपदेष्टारं श्रीपुण्डरीकाक्षस्वामिनं नमस्यति—

नमस्याम्यरविन्दाक्षं नाथभावे व्यवस्थितम् ।

कराया जिससे हम लोगों को भी वेदार्थों को सरलता से समझने में सुविधा हुई तथा भगवान् के कल्याण गुणों का अनुभव करने में सुविधा हुई। इस प्रकार उनके किये हुये उपकारों को याद करने पर मेरी आत्मा उनकी वस्तु बनकर रहने के लिये लालायित हो रही है। "मुनिनाथेन" इस पाठ में यह अर्थ है कि मुनियों के नाथ हैं श्रीनाथमुनि स्वामीजी ॥५॥

शुद्धसत्वमयं शौरेरवतारमिवापरम् ॥६॥

*अरविन्दाक्षम् श्रीपुण्डरीकाक्षस्वामिनं *नमस्यामि नमस्करोमि। श्रीपुण्डरीक्षस्वामी कथं वर्तते इत्यत्राह *शौरेर-परमवतारमिव स्थितमिति। श्रीपुण्डरीकाक्षस्वामी श्रीकृष्णस्या-परोऽवतार इव वर्तत इत्यर्थः। कथमुभयोः सादृश्यमित्यत्र त्रेधा सादृश्यं निर्वहति—

तत्र प्रथमः प्रकारो *अरविन्दाक्षम् इति। श्रीकृष्णः "तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणम्" इत्युक्तेः कमलदलायतेक्षणतया पुण्डरीकाक्षः अयं तु नाम्ना पुण्डरीकाक्षः।

दूसरे भगवान ही हों ऐसे, *अरविन्दाक्षं*—श्रीपुण्डरीकाक्ष स्वामी जी को, *नमस्यामि*—नमस्कार करता हूँ।

"नमस्याम्यरविन्दाक्षम्—अरविन्दाक्ष और पुण्डरीकाक्ष ये दोनों शब्द समानार्थक हैं। कमलदल के समान विशाल नेत्र वाले श्री भगवान् हैं, अतः उनको पुण्डरीकाक्ष कहते हैं। वही नाम श्रीपुण्डरीकाक्ष स्वामी जी का है। उनको प्रणाम करता हूँ। वे कैसे हैं? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि "शौरेरपरमवतारमिव (स्थितम्) अर्थात् श्रीपुण्डरी-काक्ष स्वामी जी श्री कृष्ण भगवान् के दूसरे अवतार की तरह विराजमान हैं। श्री कृष्णावतार और श्रीपुण्डरीकाक्ष स्वामी जी में कैसा सादृश्य है? इस प्रश्न के उत्तर में श्री देशिक स्वामी जी इन दोनों में तीन प्रकार का सादृश्य वर्णन करते हैं।

उनमें प्रथम प्रकार यह है कि "अरविन्दाक्षम्" दोनों ही पुण्डरीकाक्ष हैं। श्री कृष्ण भगवान तो कमल दल के समान विशाल नेत्र वाले

अथ द्वितीयः प्रकारः *नाथभावे व्यवस्थितमिति श्रीकृष्णः सर्वदा नाथभावे नाथत्वे व्यवस्थितः जगन्नाथत्वात् तस्य । अथवा नाथभावे व्यवस्थितः नाथत्वविषयेऽर्थात् राजत्वविषये पूर्वजकृत-व्यवस्थायां श्रीकृष्णोऽवर्तत । कंसवधानन्तरं स्वयं राजत्वं ग्रहीतुमधिकृतः सन्नपि यदुवंश्यानां राजत्वं नास्तीति ययातिकृत-व्यवस्थां पालयन् उग्रसेनं राजानं कृतवान् इति श्रीकृष्णो नाथ-भावे व्यवस्थितः तथाऽयं श्रीपुण्डरीकाक्षस्वाम्यपि नाथभावे

होने के कारण पुण्डरीकाक्ष हैं, श्री पुण्डरीक्ष स्वामी जी नाम से पुण्डरीकाक्ष हैं ।

व्यवस्थितः, नाथस्य नाथमुनेर्भावेऽभिप्रायेऽर्थादभिप्रेतार्थे व्यवस्थितः। नाथमुन्युक्तार्थान् विना स्वबुद्ध्या कमपि सिद्धान्तार्थं न कल्पितवानिति भावः। अथवा नाथभावे व्यवस्थितम् "भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन च लक्ष्मण" इत्युक्तेर्यथा श्रीलक्ष्मणः श्रीरामस्य भावं विज्ञाय तदनुरोधेन कैङ्कर्यमकरोत् तथाऽयं श्रीमन्नाथमुनेर्भावानुकूले कैङ्कर्ये व्यवस्थित इत्यर्थः। अथवा नाथभावे व्यवस्थितम् अस्मत्पौत्रस्य यामुनस्याकांक्षायामुदितायां

स्वामीजी भी "नाथभावे व्यवस्थित" हैं। श्रीनाथमुनि स्वामीजी का जो अभिप्राय है वह नाथभाव है, उसमें श्रीपुण्डरीकाक्ष स्वामीजी व्यवस्थित हैं अर्थात् श्रीमन्नाथमुनि स्वामीजी के अभिप्रेत अभिमत अर्थों में ही दृढ़ रहते थे। श्रीनाथमुनि स्वामीजी ने जिन अर्थों का उपदेश दिया उन अर्थों का ही उपदेश करते थे, उनके विरुद्ध किसी अर्थ को मनमाने रूप में कल्पना कर उपदेश नहीं करते थे। अतः श्रीपुण्डरीकाक्ष स्वामीजी नाथभावे व्यवस्थित कहलाते हैं। "नाथभावे व्यवस्थितम्" का दूसरा भाव यह है—श्रीनाथमुनि स्वामीजी की जो इच्छा है वह नाथभाव है। उसी श्रीनाथमुनि स्वामी जी के भाव में श्रीपुण्डरीकाक्ष स्वामी जी दृढ़ रहते थे। अर्थात् श्रीलक्ष्मण जी जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी की इच्छा के अनुसार कैङ्कर्य करते थे, ठीक उसी प्रकार श्रीपुण्डरीकाक्ष स्वामी जी श्रीनाथमुनि स्वामी जी की इच्छा के अनुसार उनका कैङ्कर्य करते थे। अतः इस दृष्टि से श्रीपुण्डरीकाक्ष स्वामी जी "नाथभावे व्यवस्थित" कहलाते हैं। "नाथभावे व्यवस्थितम्" का तीसरा भाव है श्रीनाथमुनि स्वामी जी ने अपने अन्तिम समय में श्रीपुण्डरीकाक्ष स्वामी जी के सामने एक इच्छा व्यक्त की कि हमारे पौत्र श्रीयामुनार्य जी को जब श्रीवैष्णव दीक्षा लेने की इच्छा होगी उस समय आप उनको पञ्चसंस्कार

तस्मै सर्वानर्थानुपदिशेत्यादेशेन श्रीमन्नाथमुनेर्भावं विज्ञाय स्वस्यान्तिमदशापर्यन्तं प्रतीक्ष्य तस्याकांक्षाया अनुदयात् स्वशिष्यं श्रीराममिश्रं यामुनार्यस्याकांक्षामुत्पाद्य तस्मै मन्त्रमन्त्रार्थानुपदिशेत्यादिश्य परमपदमेयिवान्, श्रीपुण्डरीकाक्षाचार्यो नाथभावे व्यवस्थित इत्युच्यते। अत उक्तरीत्योभावपि नाथभावे व्यवस्थितौ इति सादृश्यम्।

अथ तृतीयः प्रकारः *शुद्धसत्वमयमिति श्रीकृष्णोऽप्राकृत शुद्धसत्वमयदिव्यमङ्गलविग्रहवत्वात् शुद्धसत्वमयः। श्रीपुण्डरीकाक्षाचार्योऽपि रजस्तमोऽसंस्पृष्टशुद्धसत्वगुणवत्वात् शुद्धसत्वमयः इति सादृश्यम्। अतस्त्रेधा शौरेरपरमवतारमिव स्थितं श्रीपुण्डरीकाक्षस्वामिनं नमस्यामीत्यर्थः ॥६॥

पूर्वंभगवतोऽपरावतारमिवस्थितं श्रीपुण्डरीकाक्षाचार्यं प्रणम्यानेनश्लोकेन तच्छिष्यं श्रीयामुनाचार्यस्याचार्यं श्रीराममिश्रार्यं श्रीभगवदवताराधिकमभिसन्धाय नमस्यति—

इस दृष्टि से विचार करने पर भी सिद्ध होता है कि श्रीपुण्डरीकाक्ष स्वामी जी "नाथभावे व्यवस्थित" हैं।

श्रीकृष्ण भगवान् और श्रीपुण्डरीकाक्ष स्वामी जी का तीसरा सादृश्य यह है—"शुद्धसत्वमयम्" श्रीकृष्ण भगवान् शुद्ध सत्वमय हैं क्योंकि उनका श्रीविग्रह अप्राकृत है शुद्ध सत्वमय है। श्रीपुण्डरीकाक्ष स्वामी जी भी शुद्ध सत्वमय हैं क्योंकि रज और तम से रहित शुद्ध सत्व गुण के निधि हैं।

इस प्रकार तीनों दृष्टियों से विचार करने पर श्रीकृष्ण भगवान् और श्रीपुण्डरीकाक्ष स्वामी जी में समता सिद्ध होती है। अतः श्रीकृष्ण भगवान् के दूसरे अवतार की तरह श्रीपुण्डरीक्ष स्वामी जी विराजमान हैं। उनको मैं श्रीकृष्ण भगवान् का अवतार मानकर प्रणाम करता हूँ। यह श्रीदेशिक स्वामी जी का कथन है ॥६॥

श्रीदेशिक स्वामी जी इस श्लोक से श्रीपुण्डरीकाक्ष स्वामी जी के शिष्य तथा श्रीयामुनाचार्य के आचार्य श्रीराममिश्र स्वामी जी को प्रणाम करते हुये कहते हैं—

अनुज्झितक्षमायोगमपुण्यजनबाधकम् ।
अस्पृष्टमदरागं तं रामं तुर्यमुपास्महे ॥७॥

*राममुपास्महे श्रीराममिश्रार्यं भजामः अयं रामः कीदृश इत्यत्राह *तुर्यमिति । अयं श्रीराममिश्रार्यश्चतुर्थो रामः । अद्य यावत् परशुरामश्रीरामबलरामा इति भगवदवतारास्त्रयो रामा अभूवन् अयं तु तेभ्योऽत्यन्तविलक्षणस्तुर्यो रामः । त्रिभ्यो रामेभ्योऽत्यन्तोत्कृष्टं चतुर्थं राममुपास्महे ।

अयं परशुरामात्प्रथमरामात् कथमुत्कृष्यते इत्यत्राह *अनुज्झितक्षमायोगम् इति । क्षमा शब्देन क्षमागुणः पृथिवी

अनुज्झितक्षमायोगं—क्षमा को कभी न छोड़ने वाले, *अपुण्यजन बाधकं*—अपुण्यजनों के बाधक, *अस्पृष्ट मदरागं*—मद-राग से शून्य, *तं*—उन, *तुर्यं रामं*—चतुर्थ राम की, *उपास्महे*—उपासना करते हैं ।

श्रीकृष्ण के सदृश श्रीपुण्डरीकाक्ष स्वामी जी को प्रणाम करने के पश्चात् उनके शिष्य तथा श्रीयामुनार्य के आचार्य श्रीराममिश्रार्य स्वामी जी को जोकि राम होते हुये भी अन्य रामों से विलक्षण हैं उनको हम भजते हैं । वे कैसे रामावतारों से विलक्षण हुये ? श्रीस्वामी जी महाराज कहते हैं कि अब तक तीन रामावतार हुये (१) परशुरामावतार (२) दाशरथि श्रीरामावतार (३) बलरामावतार । इन तीनों रामों से हमारे चौथे राम श्रीराममिश्रार्य स्वामी जी अत्यन्त विलक्षण प्रतीत होते हैं ।

पहले श्रीपरशुरामावतार से उत्कर्ष सुनिये । "अनुज्झितक्षमायोगम्" संस्कृत भाषा में क्षमाशब्द के दो अर्थ (१) क्षमागुण और (२) पृथिवी । श्रीपरशुराम जी ने क्षमागुण का त्याग कर इक्कीस बार क्षत्रियों का वध

चोच्यते । परशुरामस्त्रिःसप्तकृत्वः क्षत्रियाणां हननात् यागे पृथिव्याः काश्यपाय दानाच्च उभयथापि क्षमासम्बन्धरहितः, राममिश्रार्यस्तु नित्यं क्षमागुणवत्वात् क्षमासम्बन्धवान् । क्षमा-सम्बन्धरहितात् नित्यं क्षमावान् उत्कृष्यत इति परशुरामात् राम-मिश्रार्य उत्कृष्ट इति भावः । तर्हि "क्षमया पृथिवीसम" इत्युक्तस्य दाशरथिरामस्य सदृशोऽस्तु इत्यत्राह *अपुण्यजनबाधकम् इति ।

किया और यज्ञ में सारी पृथिवी काश्यप जी को दान में देकर पृथिवी सम्बन्ध को भी छोड़ दिया । इस प्रकार दोनों दृष्टियों से ही सिद्ध हुआ कि श्रीपरशुराम जी क्षमा सम्बन्ध रहित हैं । हमारे श्रीराममिश्र जी तो सर्वदा क्षमा गुण वाले हैं, कभी भी उन्होंने क्षमा गुण का परित्याग नहीं किया । अतः क्षमा का परित्याग करने वाले श्रीपरशुराम जी से क्षमा को न त्यागने वाले श्रीराममिश्र स्वामीजी विलक्षण सिद्ध होते हैं ।

इस प्रकार श्रीराममिश्र स्वामी जी की श्रीपरशुराम जी से विल-क्षणता सिद्ध होने पर भी वे श्रीरामचन्द्र जी के तो समान हो सकते हैं क्योंकि उनके विषय में श्रीवाल्मीकि महर्षि कहते हैं "क्षमया पृथिवीसमः" अर्थात् श्रीरामचन्द्र जी पृथिवी की तरह अत्यन्त क्षमावान थे । इसलिये श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं "अपुण्यजनबाधकम्" संस्कृत भाषा में पुण्यजन शब्द के दो अर्थ हैं (१) राक्षस (२) धर्मात्मा सज्जन । श्रीराम-चन्द्र जी पुण्यजनों के बाधक थे क्योंकि इन्होंने रावणादि राक्षसों का वध किया, किन्तु श्रीराममिश्र स्वामी जी पुण्यजनों का अर्थात् धर्मात्मा सज्जनों के बाधक नहीं थे किन्तु अपुण्यजन अधर्मात्मा दुष्टों के ही बाधक थे । अतः पुण्यजन बाधक श्रीरामचन्द्र जी से पुण्यजनों का बाधक न बनने वाले श्रीराममिश्र स्वामी जी विलक्षण हैं ही ।

अयं श्रीराममिश्रार्यो दाशरथिरामादप्युत्कृष्यते । कुतः इत्यत आह *अपुण्यजनबाधकमिति दाशरथिरामः पुण्यजनबाधकः अयं तु अपुण्यजनबाधकः । पुण्यजनशब्दस्य द्वौ अर्थौ राक्षसो धर्मात्मा च । श्रीदाशरथिरामः पुण्यजनानां रावणप्रभृतीनां राक्षसानां बाधकत्वात् पुण्यजनबाधकः । अयं तु पुण्यजनानां धर्मात्मनां न बाधकः किं तु अपुण्यजनानां पापिनां नास्तिकानामेवबाधकः इति पुण्यजनबाधकच्छ्रीरामादपुण्यजनबाधकोऽयमुत्कृष्यते ।

अथ तर्हि बलरामस्यायं समः किं नस्यादित्यत्र ततोऽप्ययमुत्कृष्यत इत्याह *अस्पृष्टमदरागमिति । मदशब्देन मदिरा पानजन्यो मदः रागशब्देन तज्जन्यो नेत्ररक्तिमोच्यते । तथा मदशब्देन गर्वः रागशब्देन विषयराग श्चोच्यते । यादवा मदिरापायिन इति प्रसिद्धम् । अतो बलरामस्यतज्जन्यो मदस्तज्जन्योनेत्ररक्तिमा च सभाव्यत इति स मदरागस्पर्शवान् । अस्य

राममिश्रार्यस्य तु गर्वो विषयानुरागो वाऽणुमात्रमपि नास्तीत्ययं मदरागस्पर्शहीन इति स्पृष्टमदरागात् बलरामादस्पृष्टमदरागोऽयं चतुर्थो रामः श्रीराममिश्रार्य उत्कृष्यते। अत उक्तप्रकारेण त्रिभ्यो रामेभ्य उत्कृष्टं तुर्यं रामं तं प्रसिद्धं श्रीराममिश्रार्यमुपास्महे। आचार्याज्ञया बहुकालपर्यन्तमनुवर्त्य श्रीयामुनार्यस्याकाङ्क्षा-मुत्पाद्यायं तं श्रीवैष्णवधर्मे दीक्षयित्वाऽऽचार्यप्राचार्ययोर्मनोरथं पूरयांचक्रे इति ह्यस्य श्रीसंप्रदाये प्रसिद्धिः। *राममुपास्महे— श्रीराममिश्रार्यविषये प्रेमानुविद्धामविच्छिन्नस्मृतिसंततिमावर्त यामः। इदमावर्तनं तत्कृतमहोपकारस्य न प्रत्युपकारभूतम्

मिश्र स्वामी जी मद अर्थात् गर्व अर्थात् राग अर्थात् विषयानुराग से सर्वदा अछूते थे। अतः यह सिद्ध होता है कि मदराग वाले श्री बलराम जी से मदराग शून्य श्री स्वामी जी विलक्षण हैं।

इस श्लोक में श्री देशिक स्वामी जी ने तीनों रामावतारों से श्रीराम मिश्र स्वामी जी का व्यतिरेक श्लेषालङ्कार के आधार पर बतलाया है। इसके आश्रय केवल श्रीराम मिश्र स्वामी जी की प्रशंसा करना ही है न कि तीनों रामावतारों की हीनता प्रदर्शन करना।

श्री देशिक स्वामी जी आगे कहते हैं "तं रामं तुर्यमुपास्महे" इस प्रकार तीनों रामों से विलक्षण प्रसिद्ध चौथे राम को अर्थात् श्रीराम मिश्र स्वामी जी को हम भजते हैं। श्रीराम मिश्र स्वामी जी के विषय में ऐसी प्रसिद्धि है कि आपने ही आचार्य श्री पुण्डरीकाक्ष स्वामी जी की आज्ञा से बहुत काल तक श्री यामुनार्य का अनुवर्तन कर उनको श्री वैष्णव धर्म में श्रद्धा बढ़ा कर पञ्चसंस्कार सम्पन्न किया, उनके

किं तु तद्विषये स्मृत्यावर्तनमन्तरास्थातुमशक्यत्वादावर्तयामः। अत्र वन्दे नमस्यामीतिवत् उपासे इति एकवचनान्ततया प्रयोक्तव्ये उपास्महे इति बहुवचनान्तप्रयोगः, राममिश्रस्मर्तुः स्वस्यधन्यतां ध्वनयन् पूजां व्यनक्ति अनेवंकर्तृणामधन्यतामपि द्योतयति ॥ ७ ॥

पूर्वश्लोके श्रीराममिश्रार्यं प्रणम्याथास्मिन् श्लोके तच्छिष्यं श्रीमहापूर्णस्य गुरुं श्रीयामुनाचार्यं नमस्यति—

विगाहे यामुनं तीर्थं साधुवृन्दावने स्थितम्।
निरस्तजिह्मगस्पर्शे यत्र कृष्णः कृतादरः ॥८॥

द्वारा श्री सम्प्रदायकी अभिवृद्धि करायी। इस प्रकार महोपकार करने वाले श्रीराम स्वामी जी के विषय में प्रेममय निरन्तर स्मरण किये विना रहा नहीं जाता, अतः उनके विषय में हम निरन्तर स्मरण करते हैं प्रत्युपकार भावना से नहीं। इस प्रकार निरन्तर स्मरण करने से मैं अपने को धन्य धन्य मानता हूं। यह श्री देशिक स्वामी जी का अनुसन्धान है। इस श्लोक से श्री देशिक स्वामी जी हम लोगों के लिये यह सत् शिक्षा दे गये हैं कि श्री भगवान् से बढ़कर आचार्यों को मानना चाहिये ॥ ७ ॥

पूर्वश्लोक में श्रीदेशिक स्वामीजी महाराज श्रीराममिश्र स्वामीजी को प्रणाम कर इस श्लोक में उनके प्रिय शिष्य तथा श्रीमहापूर्ण स्वामीजी के आचार्य श्रीयामुनाचार्य स्वामीजी को प्रणाम करते हुये कहते हैं—

*यामुनं तीर्थं विगाहे यामुनतीर्थशब्दस्य द्वावर्थौ (१) यामुनाचार्यः (२) यमुनासम्बन्धिजलं च । यथा घर्माभितप्ता यमुनातीर्थेऽवगाह्य तापमुपशययन्ति शान्ति च लभन्ते तथाऽहं श्रीयामुनाचार्येऽवगाह्य निरन्तरानुसन्धानं कृत्वा संसारतापमुपशमयामि शान्ति च लभे इति भावः । यामुनजलस्य यामुनाचार्यस्य च कथं साम्यमित्यत्र द्वेधा साम्यमस्तीति श्लेषालङ्कारेण समर्थयते *साधुवृन्दावने स्थितमिति । यामुनं जलं तु श्रेष्ठे वृन्दावनक्षेत्रे स्थितम् श्रीयामुनार्यस्तु साधूनां

करता हूँ) *निरस्तजिह्मगस्पर्शे यत्र*—कौटिल्य शून्य जिनके हृदय में, कृष्णः कृतादरः—श्रीकृष्ण भगवान साग्रह निवास करते हैं ।

संस्कृत भाषा में तीर्थ शब्द के दो अर्थ हैं (१) आचार्य और (२) जल । यामुनतीर्थ शब्द से यामुनाचार्य और यमुना का जल बतलाये जाते हैं । श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं "यामुनं तीर्थं विगाहे"—गर्मी से संतप्त लोग जैसे यमुना जल में स्नान कर संताप को दूर करते हैं शान्ति पाते हैं, वैसे ही संसार ताप से संतप्त मैं श्रीयामुनाचार्य के अनुसन्धान में लगता हूँ संसार ताप को दूर करता हूँ तथा शान्ति पाता हूँ ।

श्रीयामुनाचार्य और यमुना जल में समता प्रदर्शित करते हुये श्रीदेशिक स्वामीजी श्लेषालङ्कार द्वारा उक्त अर्थ का समर्थन करते हैं । "साधुवृन्दावने स्थितम्" यमुना जल श्रेष्ठ तीर्थ श्रीवृन्दावन में है इसलिये उसे "साधुवृन्दावने स्थित" कहा है । श्रीयामुनाचार्य जी भी "साधुवृन्दावने स्थितं" कहे जा सकते हैं क्योंकि श्रीमहापूर्ण स्वामी इत्यादि जो शिष्यगण हैं वे साधु हैं, उन लोगों का जो समूह है वह साधुवृन्द है, उस साधुवृन्द की रक्षा करना साधुवृन्दावन है । रक्षा को अवन कहते हैं । साधुवृन्दों

श्रीमहापूर्णप्रभृतीनां महात्मनां वृन्दस्य समूहस्यावनेरक्षणे स्थितः दृढप्रतिष्ठितः। इदमेकं सादृश्यम्।

अथ द्वितीयं सादृश्यं घटयति *निरस्तजिह्मगस्पर्शे यत्र कृष्णः कृतादर इति। जिह्मगशब्देन सर्पाः कुटिलबुद्धयो रागमदादिदोषाश्चाभिधीयन्ते। निरस्तजिह्मगस्पर्शे निरस्तकालियस्पर्शे यत्र यामुनजले कृष्णः कृतादरः अत्यन्तादरवान् वर्तते इति यामुनजलविषये योजना श्रीयामुनाचार्यविषये योजना त्वित्थम्—निरस्तजिह्मगस्पर्शे श्रीयामुनाचार्यो जिह्मगानां मदरागादिदोषाणां स्पर्शमपि निरस्तवान्। चोलराजप्रत्तार्धराज्यं भुञ्जानो रागमदादिदोषा-

---

की रक्षा करने में श्रीयामुनाचार्य स्वामी जी तत्पर रहते हैं। इस दृष्टि से श्रीयामुनाचार्य को "साधुवृन्दावने स्थितम्" कहे जाते हैं।

अब दूसरा सादृश्य बताते हैं 'निरस्तजिह्मगस्पर्शे यत्र कृष्णः कृतादरः' संस्कृत भाषा में जिह्मग शब्द के तीन अर्थ हैं (१) सर्प (२) कुटिल बुद्धि वाले मनुष्य (३) मदराग इत्यादि दोष। यमुना जल में पहले कालिय सर्प रहता था, श्रीकृष्ण भगवान् ने कालिय सर्प को भगा कर यमुना जल को कालिय के स्पर्श से रहित बना दिया। इसलिये यमुना जल "निरस्त कालिय स्पर्श" कहलाता है। उस यमुना जल में श्रीकृष्णचन्द्र जी बड़े आदर के साथ विहार करते थे। इसलिये यमुना जल के विषय में "निरस्तकालियस्पर्शे यत्र कृष्णः कृतादरः" यह अर्थ सुसंगत होता है।

क्रान्तो हि यामुनार्यः श्रीराममिश्रप्रत्तालर्कपत्रभक्षणेन संजातसत्त्ववृद्धिः श्रीराममिश्राद्गीतार्थान् श्रुत्वाऽवधूतरागमदादिदोषोऽर्धराज्यमपि परित्यज्य श्रीरङ्गमेत्य संन्यस्तवानिति हि प्रसिद्धिः। अतः श्रीयामुनार्योऽपि निरस्तजिह्मगस्पर्शः किं च श्रीयामुनार्य आत्मसिद्ध्यादिप्रणयनेन कुटिलबुद्धीन् कुदृष्टीन् निरस्तवान्। अतोऽपि श्रीयामुनार्यो निरस्तजिह्मगस्पर्शः। एवं भूते यत्र यामुनार्ये कृष्णः कृतादरो वर्तते "ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्" इत्युक्तरीत्याऽऽदरं कुर्वाणो वर्तते।

अत्रेदं बोध्यम्—श्रीमन्नाथमुनेः पूर्वजेषु अन्यतमो महात्मा

शास्त्रार्थ में हरा कर पूर्व प्रतिज्ञानुसार राजा से आधा राज्य लेकर राज्य भोग सुख में अत्यन्त मग्न हो गये थे। उस समय श्रीराममिश्र स्वामी जी ने अलर्क पत्र खिला कर इनका सत्व गुण बढ़ाया तथा अवसर पाकर श्रीभगवद्गीता का उपदेश दिया था। इस सदुपदेश से प्रभावित होकर श्रीयामुनाचार्य राजमद और राज्य राग इत्यादि दोषों को परित्याग कर किं बहुना आधे राज्य को भी त्याग कर श्रीरङ्ग पहुंचे वहाँ श्रीरङ्गनाथ भगवान् की सन्निधि में संन्यास लेकर उनकी सेवा में रहने लगे।

किंच, श्रीयामुनाचार्य ने सिद्धि त्रय इत्यादि ग्रन्थों का निर्माण कर कुटिल बुद्धि वाले पर वादियों को परास्त किया। इसलिये भी श्रीयामुनाचार्य स्वामी जी "निरस्त जिह्मग स्पर्श" कहलाते हैं। एवं विध प्रभावसंपन्न भक्तराज श्रीयामुनाचार्य स्वामी जी के विषय में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी बहुत आदर करते थे। क्योंकि श्रीकृष्ण भगवान् ने गीता में कहा है कि "ज्ञानी [illegible] मे मतम्" अर्थात् ज्ञानी भक्त मेरी आत्मा ही है।

श्रीकृष्णस्य विभवावतारकाले लब्धजन्मा श्रीकृष्णमाश्रित्योज्जीवनोपायं पृच्छन् तेन स्वविग्रहं प्रदाय तदाराधने नियुक्तस्तमाराधयां बभूव। ततो वंशपरंपरयाऽऽराधितः सोऽर्चावतारः श्रीकृष्णो नाथमुनिनाऽऽराधितो बभूव ततस्तत्पुत्रेणेश्वरभट्टेन ततो यामुनाचार्येणाप्याराधितो बभूवेति प्रसिद्धिः इमां प्रसिद्धिमभिप्रेत्योच्यते *यत्र कृष्णः कृतादर इति।

किं च श्रीयामुनाचार्याय सर्वार्थानुपदिष्टपूर्वी श्रीराममिश्रार्य आज्ञापयांचक्रे यत् भवत्पितामहेन श्रीमन्नाथमुनिना कुरुकाधीशे न्यासत्वेन निक्षिप्तं योगमभ्यस इति। इमामाज्ञां शिरसि कृत्वा

---

*यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिये कि श्रीनाथमुनि स्वामी जी के पूर्वजों में एक महानुभाव श्रीकृष्ण भगवान् के समकाल में विराजमान थे। वे श्रीकृष्ण भगवान् के समाश्रित हो गये थे। उन्होंने श्रीकृष्ण भगवान् से प्रार्थना की कि मेरा आत्मोज्जीवन कैसे हो इस प्रार्थना को सुनकर श्रीकृष्ण भगवान् ने अपनी एक प्रतिष्ठित श्रीमूर्ति को प्रदान कर कहा कि इसकी पूजा करते रहो, आपका आत्म कल्याण हो जायेगा। तब से वह स्वामी जी उस श्रीमूर्ति की पूजा करते रहे। वही श्रीकृष्ण भगवान् का श्रीविग्रह श्रीनाथमुनि स्वामी जी की सेवा में था तथा श्रीयामुनाचार्य स्वामी जी को भी प्राप्त हुआ था।

इसके अतिरिक्त श्रीराममिश्र स्वामी जी ने श्रीयामुनाचार्य को श्रीसम्प्रदाय में दीक्षित कर गुरुपरम्पराप्राप्त सभी अर्थों का उपदेश दिया तथा आज्ञा दी कि आपके पितामह श्रीनाथमुनि स्वामी जी श्रीकुरुकाधीश स्वामी जी को योग रहस्य का उपदेश देकर आज्ञा दे गये हैं कि प्रार्थना करने पर हमारे पौत्र यामुनाचार्य को इसे उपदेश

श्रीयामुनमुनौ कुरुकाधीशमुपगते स प्राह किं नाथमुनिवंश्यः कश्चिदिह समागत इति। श्रीयामुनाचार्यें चोपसृत्य प्रणम्य मदागतिर्भवद्भिः कथं विज्ञातेति पृष्टवति स प्रत्युवाच योगे मद्धृदये श्रिया सह विहरन् श्रीकृष्णः श्रियमप्युपेक्ष्यत्वदवस्थानदिशं पुनः पुनः पश्यन्नासीत्। अतोलक्ष्म्यपेक्षयाऽप्यभिमतं श्रीमन्नाथमुनिकुलादन्यन्नभवितुमर्हतीति निश्चिन्वानेन मया तथाऽन्वयथायीति इदमप्यैतिह्यमभिसन्धायोच्यते *यत्र कृष्णः कृतादर इति अत उक्तविधाद्वयानुसारेण यमुनातीर्थसाम्यं श्रीयामुनाचार्येऽनुपपन्नम्।

दीजिये। अतः आप जाकर श्रीकुरुकाधीश स्वामी जी से योग रहस्य का उपदेश लीजिये। इस आज्ञा को स्वीकार कर श्रीयामुनाचार्य स्वामी जी महाराज श्रीकुरुकाधीश स्वामी जी के पास पहुँचे। योगाभ्यास में मग्न श्रीकुरुकाधीश स्वामी जी एकाएक पूछने लगे कि "क्या यहाँ पर श्रीनाथमुनि स्वामी जी के वंशज कोई महानुभाव उपस्थित हुये हैं ?" श्रीयामुनाचार्य जी ने उनके चरणों में गिरकर विनती की कि "मेरा आगमन श्रीमान को कैसे विदित हुआ ?" उत्तर में कुरुकाधीश स्वामी जी ने कहा कि "मेरी योगानुभूति में हृदय कमल में श्री जी के साथ विराजने वाले श्रीभगवान श्री जी को भी उपेक्षा कर उधर ताकने लगे जिधर आप थे। मैंने सोचा कि श्रीभगवान को श्री जी से बढ़कर प्रिय श्रीमन्नाथमुनि स्वामी जी के वंशज ही हो सकते हैं। अतः मैंने ऐसा प्रश्न किया।"

इन दोनों चरित्रों से यह व्यक्त हो जाता है कि श्रीभगवान् श्रीयामुनाचार्य स्वामी जी के विषय में कितना आदर भाव रखते थे। इस प्रकार "निरस्त जिह्मग स्पर्शे यत्र कृष्णः कृतादरः" यह अर्थ श्रीयमुनातीर्थ और यामुनाचार्य में अक्षरशः संगत

अत उच्यते यमुनाजलवद्वर्तमानं यामुनं तीर्थं विगाहे इति ॥८॥

पूर्वश्लोकेन श्रीयामुनाचार्यं प्रणम्याथानेन श्लोकेन तच्छिष्यं श्रीभाष्यकारस्याचार्यं श्रीमहापूर्णस्वामिनं प्रणमति—

दयानिघ्नं यतीन्द्रस्य देशिकं पूर्णमाश्रये ।
येन विश्वसृजो विष्णोरपूर्यत मनोरथः ॥९॥

अत्रेदं बोध्यम् । महाप्रलये उज्जीवनगन्धहीनेषु अचिद्-विशिष्टेषु जीवेषु अपारदयां कृत्वा "विचित्रादेहसंपत्तिरीश्वराय निवेदितुम् । पूर्वमेव कृता ब्रह्मन् हस्तपादादिसंयुता" इत्युक्तरीत्या

होता है। यह ध्यान में रखकर देशिक स्वामी जी ने कहा कि श्रीयमुना-तीर्थ के समान श्रीयामुनाचार्य के अनुसन्धान में लगा हूँ ॥८॥

श्रीदेशिक स्वामी जी पूर्व श्लोक से श्री यामुनाचार्य को प्रणाम कर इस श्लोक से श्रीयामुनाचार्य के प्रथम शिष्य श्रीरामानुजाचार्य के प्रथमाचार्य श्रीमहापूर्ण स्वामी जी को प्रणाम करते हुए कहते हैं—

येन—जिनके द्वारा, *विश्वसृजो*—विश्व के स्रष्टा, *विष्णोः*—विष्णु भगवान् का, *मनोरथः*—मनोरथ, *अपूर्यत*—पूर्ण हुआ, उन *दयानिघ्नं*—दयालु, *यतीन्द्रस्य देशिकं*—श्रीरामानुजाचार्य के आचार्य, *पूर्णं*—श्रीमहा-पूर्ण स्वामी का, *आश्रये*—आश्रय ग्रहण करता हूँ ।

प्रलयकाल में ये सभी बद्ध जीव अचेतन की तरह पड़े थे, देह और इन्द्रिय आदि से शून्य थे, आत्म कल्याणार्थ किसी भी साधना-नुष्ठान के लिये सर्वथा असमर्थ थे । चेतनों की इस दुर्दशा को देखकर श्रीमन्नारायण भगवान के मन में दया उमड़ी। श्रीभगवान ने आत्म-

उज्जीवनोपयोगिकरणकलेवरादिकं प्रदाय दिव्यसूरिमुखेन सकल-चेतनोज्जीवकं श्रीसिद्धान्तं प्रवर्तितवतापि कुदृष्टानामाक्रमणेन श्रीसिद्धान्तस्याव्याहतस्य प्रचारस्याभावं पश्यता कुदृष्टिनिरासपूर्वं श्रीसिद्धान्तप्रचारणे दक्षमधिकारिविशेषं गवेषयमाणेन श्रीरङ्गे श्रीरङ्गनाथरूपेण विराजमानेन श्रीभगवता आहूय 'भवान् श्रीमद्रामानुजार्याय श्रीयामुनाचार्यप्रोक्तान् अर्थान् उपदिश्य तद्द्वारा श्रीसिद्धान्तं वर्धयतु' इत्यादिष्टः श्रीमहापूर्णस्वामी भगवतो मनोरथः पूरयितव्यः किल, किं कुर्याम् काञ्चीस्थः श्रीमद्रामानुज

कल्याणार्थ भगवत्सेवा में प्रवृत्त होने के लिये इन जीवों को देह और इन्द्रियादि प्रदान किया। देहेन्द्रियादि मिलने पर भी बहुत से जीव आत्मकल्याण पथ में अग्रसर न हुए, अपनी पूर्ववासना के अनुसार पापमय मार्ग में चलने लगे। तब भगवान ने हित अहित का ज्ञान कराने के लिये इनको वेदादि शास्त्र प्रदान किये, यहाँ तक कि दिव्य सूरियों द्वारा दिव्य प्रबन्धों का निर्माण कराकर उससे वेदानधिकृत स्त्री शूद्रादिकों को भी हिताहित ज्ञान कराया। इतना होने पर भी यथेष्ट रीति से जीवों का उद्धार न होसका क्योंकि एक दिशा में वेद को न मानने वाले वेदबाह्य वादिगण नाना प्रकार के कुतर्कों द्वारा जनता को वेद मार्ग से विचलित कर रहे थे, दूसरी दिशा में ऊपर से वेदों को मानते हुए भी कुदृष्टि गण वेदों का अपार्थ करके जनता को सच्चे वेद मार्ग से विचलित कर रहे थे। ऐसी स्थिति में भगवान के मन में इच्छा हुई कि किसी सुयोग्य महानुभाव के द्वारा इन नास्तिक और अर्धनास्तिक मतों का खण्डन कराकर पुनः वेद मार्ग का प्रतिष्ठापन किया जाय। भगवान इस कार्य के लिये दक्ष व्यक्ति को खोजने लगे। उनकी दृष्टि श्रीरामानुज स्वामी जी पर पड़ी। भगवान ने शीघ्र

इहाहूयेत चेत् कुसुमसुकुमारस्तद्विग्रहः शर्करिलेकण्टकिते पथि संचरणेन दूयेत किल, अतोऽस्माभिरेव तत्रगत्वा श्रीभगवन्मनोरथः पूरणीय इति निश्चित्य झटिति प्रस्थाय श्रीमधुरान्तकमाससाद। अथ श्रीमहापूर्णमाश्रयेति श्रीकाञ्चीपूर्णद्वारा भगवता श्रीवरदराजेनाज्ञप्ते श्रीमद्रामानुजे श्रीरङ्गजिगमिषया काञ्चीतः प्रस्थाय मध्ये मार्गं मधुरान्तकमेत्य तत्र पूर्वोपस्थितं श्रीमहापूर्णस्वामिनं प्रणम्य स्वस्मिन् तस्य निरतिशयदयामनुभूयाविलम्बेन समाश्रयणार्थं

श्रीमहापूर्ण स्वामी जी को बुलाकर आज्ञा दी कि आजकल समीचीन तर्क और प्रमाणों से नास्तिक और अर्धनास्तिक मतों का खण्डन कर परम वैदिक श्रीसिद्धान्त का प्रचार करने की आवश्यकता है। हम इस कार्य के लिये काञ्चीस्थ श्रीरामानुज को उपयुक्त समझते हैं। आप श्रीरामानुज को श्रीसंप्रदाय में दीक्षित कर श्रीयामुनाचार्य से प्राप्त सदर्थों का उपदेश दें। इस प्रकार श्रीरङ्गनाथ भगवान ने आज्ञा दी। इस आज्ञा को स्वीकार कर श्रीमहापूर्ण स्वामी जी ने विचार किया कि भगवान की इस दिव्य आज्ञा को तो संपन्न करना चाहिये। तदर्थ क्या किया जाय ? काञ्ची में विराजने वाले श्रीरामानुजाचार्य को यदि यहाँ बुलाया जाय तो वे अवश्य आजायेंगे। परन्तु कण्टकमय

न *पूर्णमाश्रये—श्रीमहापूर्णस्वामिनमाश्रये । कीदृशमित्यत्राह *यतीन्द्रस्य दयानिघ्नमिति यतीन्द्रविषये दयापरतन्त्रमिति । दया एनं महापूर्णस्वामिनं यथा यथा प्रेरयामास तथा तथायं यतीन्द्रविषये अकरोदिति सर्वथाऽयं यतीन्द्रविषये दयापरतन्त्रः अतएव ह्ययं श्रीमद्रामानुजं श्रीसिद्धान्ते दीक्षयितुं तस्य क्लेशमसहमानो मधुरान्तकपर्यन्तं ययौ, आचार्यचतुष्कसंम्बन्ध-संपादनेन तैस्सर्वार्थान् दापयामास श्रीरामानुजं च विदितसकल-वेदितव्यं चकार ।

अथवा *दयानिघ्नम्—श्रीसिद्धान्तापरिज्ञानेन कापथचारिणं

पाने के लिये अनादि काल से जीवों को देहेन्द्रियादि देकर सृष्टि करने वाले परिपूर्ण भगवान के मनोरथ को श्रीमहापूर्ण स्वामीजी ने पूर्ण किया। यह युक्त ही है। क्यों? पूर्ण परब्रह्म के मनोरथ को महापूर्ण पूर्ण कर सकते हैं, क्योंकि लोक में देखा जाता है कि कोट्यधीश के मनोरथ को अरबपति ही पूर्ण कर सकते हैं।

लोकं श्रीयतीन्द्रद्वाराउज्जीवयेयमिति लोकेनिर्भरप्रसृताया दयायाः परतन्त्रम् ।

*यतीन्द्रस्यदेशिकंपूर्णमाश्रये--यतीन्द्रदेशिकत्वसिद्ध्युत्तरमेव तेषां वस्तुतः पूर्णत्वमसिध्यत् । ततः पूर्वं ते नाम्नैव पूर्णा आसन इति भावः ।

अथवा *यतीन्द्रस्य देशिकं पूर्णम्—इन्द्रदेशिको बृहस्पतिः कदाचिदपूर्णः स्यादपि, यतीन्द्रदेशिकास्त्वेते सर्वदा पूर्णा आसन् एषां पूर्तिर्भगवन्मनोरथपूरणजः सन्तोषातिशय एव ।

तमेवाह *येन विश्वसृजो विष्णोरपूर्यत मनोरथ इति । श्रीरामानुजाचार्यद्वारासिद्धान्तोवर्धयितव्य इति परिपूर्णतयापि-विश्वस्रष्टुर्भगवतः सृष्टिकालादारभ्यानुवृत्तोमनोरथोऽनेनैव पूरित

अथवा—दयानिघ्नम्—श्रीसिद्धान्त ज्ञान न होने के कारण अमार्ग में चलने वाले मनुष्यों के विषय में श्रीमहापूर्ण स्वामी जी की अपार दया है, तभी तो आपने इन जीवों के उद्धारार्थ दत्त श्रीरामानुज स्वामी जी को तैयार किया ।

यतीन्द्रस्य देशिकं पूर्णम्—इन्द्र के गुरु बृहस्पति भी अपूर्ण हो सकते हैं । किन्तु हमारे यतीन्द्र श्रीभाष्यकार के आचार्य तो सर्वदा पूर्ण हैं, पूर्ण ही नहीं महापूर्ण हैं ।

अथवा—यतीन्द्रस्य देशिकं पूर्णम्—श्रीमहापूर्ण स्वामी जी महाराज यतीन्द्र श्रीभाष्यकार स्वामी जी के आचार्य बन जाने के बाद अपने को पूर्ण मानने लगे अपने को कृतकृत्य मानने लगे, तबतक अपने को कृत-कृत्य नहीं मानते थे क्योंकि आपने श्रीभगवान् के मनोरथ को पूर्ण नहीं

इति महापूर्णेन इति दुष्पूरं भगवतोऽपिमनोरथं पूरितवतोऽस्या-
स्माकं मनोरथपूरणं कियती मात्रा लीलासाध्यं ह्येतत् अतः पूर्ण-
माश्रये इति भावः ॥९॥

पूर्वश्लोके श्रीमहापूर्णस्वामिनं प्रणम्यानेन श्लोकेन तच्छिष्यं प्रकृतग्रन्थप्रधानविषयभूतं श्रीभाष्यादिनिर्माणेन परमोपकारकं जगदाचार्यं भगवद्रामानुजाचार्यं प्रणमति—

प्रणामं लक्ष्मणमुनिः प्रतिगृह्णातु मामकम् ।
प्रसाधयति यत्सूक्तिः स्वाधीनपतिकां श्रुतिम् ॥१०॥

श्रीदेशिकस्वामी प्रार्थयते *लक्ष्मणमुनिः मामकं प्रणामं प्रतिगृह्णातु—श्रीभगवद्रामानुजमुनिर्मामकं प्रणामं स्वीकरोतु । श्रीमद्भिर्लक्ष्मणमुनिभिर्लोकस्य कृता उपकारा अनन्ताः । तेषां स्मरणे कृते मयाऽकिञ्चित्कृत्य स्थातुं न शक्यते, प्रणामातिरिक्तः किंचित्कारोऽपि मयि नास्ति । इमं प्रणामं मदनुग्रहार्थं किंचित्काररूपेण प्रतिगृह्णातु इति प्रार्थये ।

"स्नानानि चाङ्गरागाणि वस्त्राण्याभरणानि च । प्रतिगृह्णीष्वतत्सर्वं मदनुग्रहकाम्यया ।" इति श्रीविभीषणः श्रीरामं यथा प्रार्थयांचक्रे तथाहं श्रीरामानुजं प्रार्थये । अस्माभिः प्रणामे

श्रीरामानुज स्वामी जी महाराज मेरे प्रणाम को कृपया स्वीकार करें। श्रीरामानुज स्वामी जी ने जगत के उज्जीवन के लिये अनन्त उपकार किये। उनको स्मरण करते ही मुझ से रहा नहीं जाता, कुछ न कुछ सेवा करने की इच्छा होती है, प्रणाम के सिवाय मेरे पास और कुछ नहीं है, इसलिये प्रार्थना करता हूँ कि मेरे ऊपर अनुग्रह करने के लिये इस प्रणाम को ही एक निमित्त रूप में स्वीकार करने की कृपा करें।

रामायण में विभीषण ने श्रीरामचन्द्र जी से प्रार्थना की कि "यहाँ स्नान के साधन, चन्दन, वस्त्र और भूषण सब कुछ हैं, मेरे ऊपर अनुग्रह करने की इच्छा से आप इन सबको स्वीकार करें।" इस प्रकार विभीषण ने श्रीरामचन्द्र जी से प्रार्थना की, मुझे तो भगवान् श्रीरामचन्द्र जी से प्रार्थना करने की योग्यता नहीं है अतः मैं श्रीलक्ष्मणमुनि से अर्थात् श्रीरामानुजमुनि से प्रार्थना करता हूँ। यही अन्तर है।

हम लोग जितना भी प्रणाम करें, जब तक श्रीरामानुज स्वामी जी उसे स्वीकार न करें तब तक हम लोगों को कल्याण की आशा नहीं,

कृतेऽपि यावताऽयं प्रणामः श्रीमगवद्रामानुजमुनिना न स्वीक्रियेत तावदस्माकं न कल्याणसिद्धिः परगतस्वीकारोह्यन्तत उत्तारकः अतो लक्ष्मणमुनिर्मामकं प्रणामं प्रतिगृह्णात्विति प्रार्थये।

श्रीभाष्यकारेण कृता उपकाराः के यद्वशीकृतेन त्वया एवं प्रार्थ्यते इत्यत्राह *"यत्सूक्तिः स्वाधीनपतिकां श्रुतिं प्रसाधयति" इति। श्रीभाष्यकारकृता उपकारास्तु वाचामगोचराः तत्सूक्ति-प्रवचनपरायणैरस्माभिस्तत्सूक्तिकृता उपकारा एव कार्त्स्न्येन वर्णयितुं न शक्यन्ते, अथापि मात्रया वर्णयामः।

श्रुतिः स्त्री स्त्रीलिङ्गनिर्देशात् सा न सामान्यस्त्री, किंतु

क्योंकि जीव की शरणागति को जबतक श्रीभगवान स्वीकार न करें तबतक जीव के उद्धार की आशा नहीं। अतएव प्रार्थना करता हूँ कि मेरे इस प्रणाम को जो भले ही भाव पूर्वक नहीं हुआ हो स्वीकार करने की श्रीरामानुज स्वामी जी कृपा करें।

यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि श्रीभगवद्रामानुजाचार्य ने ऐसे कौन से उपकार किये हैं जिनसे प्रभावित होकर यह प्रार्थना हो रही है? इस प्रश्न के उत्तर में श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि—"प्रसाधयति-यत्सूक्तिः स्वाधीनपतिकां श्रुतिम्" मुझमें श्रीरामानुज स्वामी जी से किये गये उपकारों को बतलाने की कहाँ शक्ति है? कहाँ योग्यता है? वे उपकार अनन्त हैं, मन और वाणी से परे हैं। उनकी श्रीभाष्यादि श्रीसूक्ति ने जो कुछ उपकार किये हैं, उनमें एकाध को मैं बतला सकता हूँ। उनकी श्रीसूक्ति ने परम श्रद्धेय वेदों के विषय में जो उपकार किया है उसे बतलाता हूँ श्रीसूक्ति ने किसी अन्य का उपकार नहीं किया किन्तु परम श्रद्धेय वेदों का उपकार किया।

क्रान्ता बभूवुः । तदा श्रीभाष्यादिमयी श्रीभगवद्रामानुजाचार्यस्य सूक्तिः प्रियसखी सद्युक्तिभिर्वाद्यन्तरोक्तीः खण्डयन्ती ईश्वरस्यानुमानिकत्वानिरासेन श्रुतिपतेः पराधीनतां निराकुर्वाणा श्रुतिपतिं भगवन्तं नित्यनिर्दोषं निखिलकल्याणगुणनिधिं परमार्थभूत-विभूतिद्वयनायकं समर्थयन्ती श्रुतेरपतिकतां दुष्टपतिकतां निर्गुण-

---

वे ईश्वर अनुमान सिद्ध नहीं हैं अर्थात् अनुमान के अधीन नहीं हैं किन्तु श्रुति सिद्ध हैं अर्थात् श्रुति के अधीन हैं, इस प्रकार प्रमाण तर्कों से सिद्ध कर इस सिद्धान्त को प्रचारित कर दुष्प्रचार को बन्द कराया जिसमें कहा जाता था कि जगत्पति परमात्मा अनुमान सिद्ध हैं अर्थात् अनुमान के अधीन हैं श्रुति सिद्ध नहीं हैं अर्थात् श्रुति के अधीन नहीं हैं, साथ में यह भी प्रचार किया कि श्रुति स्वाधीन पतिका है अर्थात् पति को अपने अधीन में रखने वाली है। अतः अत्यन्त सौभाग्य वाली है।

किं च, श्रीभाष्यकार की श्रीसूक्ति ने यह भी प्रचार किया कि जगत्पति श्रीभगवान् नित्य निर्दोष हैं समस्त कल्याण गुणों के निधि हैं, तथा दोनों विभूतियों के स्वामी हैं अतएव अत्यन्त सम्पन्न हैं। इस सिद्धान्त को समीचीन प्रमाण और तर्कों से प्रचारित कर उन दुष्प्रचारों को बन्द कराया जिन्हें अद्वैतवादियों की उक्तियों ने फैला रक्खा था, कि जगत्पति परमात्मा परब्रह्म अविद्या दोष से ग्रस्त हैं निर्गुण हैं असल में दरिद्र हैं क्योंकि दोनों विभूतियाँ मिथ्या हैं, झूठी है।

इस प्रकार श्रीरामानुजाचार्य की श्रीसूक्ति ने परवादियों की उक्तियों से प्रचारित खोटे सिद्धान्तों का खण्डन कर श्रेष्ठ श्रीवैदिक सिद्धान्तों का प्रचार किया, श्रुति वधू को स्वाधीन पति का सिद्ध किया, तथा श्रुति

पतिकतां दरिद्रपतिकतां च समूलमुन्मूलयन्ती श्रुतिं स्वाधीनपतिकां प्रसाधयन्ती तस्यास्तदनुगानां च ज्वरं शमयतीत्यहो दुष्करमहोपकारव्यमनिता श्रीभगवद्रामानुजार्यश्रीसूक्तेरिति भावः ।

किं च अलङ्कारशास्त्रोक्तासु अष्टासु नायिकासु स्वाधीनपतिका श्रेष्ठा भाग्यवती नायिका, यैवं लक्ष्यते "आसन्नायत्तरमणा हृष्टा स्वाधीनभर्तृका" इति श्रीभाष्यकारस्य श्रीसूक्तिः सर्वासामुपनिषदां भगवति समन्वयप्रतिपादनेन श्रुतिदेवीमासन्न-

---

रमणां ईश्वरस्य श्रुत्येकगम्यत्वसमर्थनेन आयत्तरमणां परवाद्युक्त दोषनिराकरणेन हृष्टां चापादयन्ती सर्वथा स्वाधीनपतिकाया महाभागधेयशालिन्या उत्तमनायिकायाः पदेऽभिषिञ्चतीत्यहोश्रुतिवधूसेवापरायणता श्रीभगवद्रामानुजश्रीसूक्तेरिति भावः।

अथवा—प्रसाधयति अलंकरोति, सैरन्ध्रिकाकैङ्कर्यं करोति। सैरन्ध्री हि राजमहिष्याः केशप्रसाधनसेवां करोति। इह श्रुतिः

परमात्मा का ही गुणगान करती हैं। श्रीरामानुजाचार्य की श्रीसूक्ति ने सभी उपनिषदों का परमात्मा में समन्वय कराकर सिद्ध कर दिया कि श्रीभगवान् सर्वदा श्रुतिवधू के पास रहते हैं तथा श्रुति वधू उनके पास रहती है। किं च, श्रीरामानुजाचार्य की श्रीसूक्ति ने "ईश्वर अनुमान सिद्ध नहीं हैं। किन्तु श्रुति सिद्ध हैं" ऐसा सिद्ध कर यह बतला दिया कि श्रुतिवधू सर्वदा अपने पति श्रीभगवान् को अपने अधीन रखने वाली है। किं च, श्रीरामानुजाचार्य की श्रीसूक्ति ने परवादियों से आरोपित अपार्थों का खण्डन कर श्रुति वधू को हर्षित कर दिया इस प्रकार श्रीरामानुजाचार्य की श्रीसूक्ति ने श्रुति वधू को उत्तम नायिका स्वाधीन पतिका के पद पर प्रतिष्ठापित कर वेद सेवा में अपनी परायणता को व्यक्त किया। इस सूक्ति से हुये उपकारों को कहाँ तक कहूँ।

किं च संस्कृत भाषा में "प्रसाधयति" इस पद का दूसरा अर्थ है अलंकृत करना। इस अर्थ के आधार पर यह सिद्ध होता है कि श्रीरामानुजाचार्य की श्रीसूक्ति श्रुतिवधू को अलंकृत करती है। रनिवास में कई परिचारिकायें होती हैं, उनमें सैरन्ध्री एक होती है उसका काम है राज स्त्रियों का अलंकार करना। सैरन्ध्री राज स्त्रियों को स्नान कराकर उनकी मलिनता को दूर करती है, तथा उनके केशों को अच्छी तरह सँवार

स्वाधीनपतिका राजमहिषी, वेदान्तास्तस्याः शिरोरुहाः। केशाहि सैरन्ध्रया प्रसाधनात् पूर्वं मालिन्येन जटीभूता अविविक्ता-स्तिष्ठन्ति, तथा वेदान्ता अपि परवाद्यापादितमालिन्याः अवि-विक्ताः स्थिताः। शिरोरुहाः सैरन्ध्रिकाभिस्नेहयोजनेन विविच्यन्ते, वेदान्ता अपि श्रीभगवद्रामानुजोक्त्या भक्तिस्नेहयोजनेन भेदा-भेदघटकरूपेण तत्त्वहितपुरुषार्थप्रतिपादकरूपेण स्वरूपरूपगुण-विभूतिप्रतिपादकरूपेण च विविच्यन्ते। किं च, सैरन्ध्रिकाः

कर पुष्पों से अलंकृत करती है। केशों को सँवारते समय मलिनता के कारण जटा रूप में परिणत केशों को स्नेह अर्थात् सुगन्धि तेल लगा कर अलग २ करती है, तथा इधर उधर फैले हुये विप्रकीर्ण केशों को एक वेणी बना कर बाँधती है। यह सैरन्ध्री का काम है। श्रीरामानुजा-चार्य की श्रीसूक्ति श्रुतिवधू के विषय में इसी कैङ्कर्य को करती है। तथाहि—यहाँ पर श्रुति वधू पटरानी है। वेदान्त वाक्य ही उनके सुन्दर केश हैं। श्रुतिवधू के ये वेदान्त वाक्य रूपी सुन्दर केश परवादियों की दूषित व्याख्याओं से मलिन हो गये, जटा रूप में परिणत हो गये। जटा रूप में परिणत केशों में जिस प्रकार पता नहीं चलता कि कौन केश किधर पहुँचा है, उसी प्रकार परवादियों की दूषित व्याख्याओं से मलिन हुये वेदान्त वाक्यों में भी पता नहीं चलता कि कौन वाक्य किस अर्थ को बतलाने के लिये आया है। जिस प्रकार सैरन्ध्री पटरानी के उन केशों को स्नेह युक्त अर्थात् सुगन्धि तेल से युक्त अपनी अंगुलियों से विना तोड़े ही अलग २ निकाल कर व्यवस्थित कर देती है उसी प्रकार श्रीरामानुजाचार्य की श्रीसूक्ति स्नेह अर्थात् भगवद्भक्ति से ओत प्रोत सदुक्तियों से विना तोड़े मरोड़े ही वेदान्त वाक्यों को अलग २ निकाल कर व्यवस्थित कर देती है अर्थात् "यह वेदान्त वाक्य भेद

विप्रकीर्णान् केशान् एकीकृत्य बध्नाति तथा श्रीरामानुजश्रीसूक्ति-रापाततो विरुद्धार्थतया प्रतीयमानानि वेदान्तवाक्यानि ब्रह्मणि एकीकृत्य बध्नाति। एवं श्रीभगवद्रामानुजश्रीसूक्तिः स्वाधीन-पतिकां श्रुतिवधूमलंकरोति। अतः सैरन्ध्रीकृतराजमहिषीसेवा-तुष्टैः राजपरिजनैर्यथा सैरन्ध्री पित्रे पारितोषिकं दीयते, तथाहं श्रुतिवधूप्रसाधकश्रीसूक्तिपित्रे लक्ष्मणमुनये प्रणाममर्पयितु-

---

मिच्छामि, परिपूर्णः स मदनुग्रहार्थं स्वीकरोत्विति प्रार्थये ॥१०॥

एवं दशभिः श्लोकैः श्रीभाष्यकारस्य सम्प्रदायो भगवन्तमारभ्याविच्छिन्नतया प्रवृत्त इति प्रकाशनार्थं श्रीमन्निगमान्तमहादेशिकः श्रीभगवन्तमारभ्य श्रीभाष्यकारपर्यन्तामाचार्यपरम्परामनुसंदधे। अथानेनश्लोकेन श्रीभाष्यकारस्य दिव्यविग्रह संनिवेशमनुभवन् तं स्तौति—

उपवीतिनमूर्ध्वपुण्ड्रवन्तं त्रिजगत्पुण्यफलं त्रिदण्डहस्तम्
शरणागतसार्थवाहमीडे शिखया शेखरिणं पतिं यतीनाम्

भगवदनुभववदाचार्यानुभवोऽपि विलक्षणो नोपेक्ष्यः शिष्यै-रिति श्रीमद्रहस्यत्रयसारे शिष्यकृत्याधिकारे श्रीदेशिकस्वामिनः प्रत्यपीपदन्। "विग्रहालोकनपरस्तस्य चाज्ञाप्रतीक्षकः" इति शिष्यलक्षणं शास्त्रेष्वनुशिष्यते। साक्षादाचार्यस्य श्रीविग्रह-श्चक्षुर्भ्यां दृष्ट्वाऽनुभाव्यः। परमपदमधिरूढवतां परमाचार्याणां श्रीविग्रहसन्निवेशस्तु तच्छिष्यप्रशिष्यपरम्परया श्रुत्वाऽनुभाव्यः

यथा श्रीपरवासुदेवादिविग्रहाः शास्त्रतः श्रुत्वाऽनुभूयन्ते । प्रथमतः श्रीभाष्यकारस्य दिव्यविग्रहलक्षणानि प्रणतार्तिहराचार्यप्रभृतिपरम्परया श्रुत्वाऽऽनन्दतः श्रीवादिहंसाम्बुदाचार्यस्यो-

---

श्रीभाष्यकार स्वामी जी के दिव्य विग्रह सन्निवेश का ज्ञान श्री देशिक स्वामी जी को कैसे हुआ ? इस प्रश्न का उत्तर यह है। श्रीप्रणतार्तिहर स्वामी जी श्रीभाष्यकार स्वामी जी के साक्षात् शिष्य थे। ये श्रीभाष्यकार स्वामी जी के भिक्षा प्रदान कैङ्कर्य करते थे। श्रीभाष्यकार स्वामी जी के श्री विग्रह में इनकी अपार श्रद्धा है। श्रीगुरुपरम्परा प्रभाव में यह चरित्र वर्णित है कि "एक समय श्रीमहापूर्ण स्वामी जी गोष्ठिपुर जाकर श्रीगोष्ठिपूर्ण स्वामी जी के साथ रह गये थे। उस समय श्रीरङ्ग में श्रीरामानुजाचार्य के भिक्षान्न में किसी ने विष मिला दिया था। उससे दुःखित श्रीरामानुजाचार्य उपवास कर रहे थे। इस समाचार को पाकर श्रीमहापूर्ण स्वामी जी श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी जी के साथ श्रीरङ्ग आते हुए मध्यान्ह में कावेरी के उस पार आरहे थे। श्रीरामानुजाचार्य भी अगवानी के लिये गये थे। उस मध्यान्ह में तपते हुए रेत में श्रीरामानुजाचार्य ने श्रीमहापूर्ण स्वामी जी को साष्टाङ्ग नमस्कार किया। उन्होंने दो चार बार नमस्कार करने के बाद रुकने को कहा। परन्तु श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी जी ने बार बार साष्टाङ्ग नमस्कार करने पर भी रुकने को नहीं कहा। गरम रेत से श्रीरामानुजाचार्य का श्री विग्रह तप्त हो रहा था। उस समय श्रीप्रणतार्तिहर स्वामी जी से रहा न गया। वे श्रीरामानुजाचार्य जी के शरीर के नीचे आगये। इस प्रकार श्रीप्रणतर्तिहर के नीचे आते ही श्री गोष्ठिपूर्ण स्वामी जी ने कहा कि इस मण्डली में हम आपको ही ढूँढ रहे थे, अच्छा हुआ, आप मिल गये। श्रीरामानुजाचार्य के श्रीविग्रह पर इतना ध्यान रखने वाले आप ही आज से इनके भिक्षान्न

पदेशाच्छ्रुत्वा शिखायज्ञोपवीतादित्यागिकुदृष्टियतिवैधर्म्येण उपवीताद्यलंकृततांश्रीभाष्यकारश्रीविग्रहेऽनेनश्लोकेनानुभवन्त्याचार्याः। आज्ञाप्रतीतकत्वं संकल्पसूर्योदये "ततः प्रविशत आचार्यशिष्यौ"

देने की कृपा करें। श्रीमहापूर्ण स्वामी जी ने भी यही आज्ञा दी। श्रीप्रणतार्तिहर स्वामी जी इन आचार्यद्वय की आज्ञा को शिर से स्वीकार कर उसी दिन से श्रीरामानुज स्वामी जी को भिक्षा देने लगे।" इस प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामी जी के भिक्षा दान कैङ्कर्य करने वाले श्रीप्रणतार्तिहर स्वामी जी श्रीभाष्यकार स्वामी जी के श्री विग्रह का प्रत्यक्ष अनुभव कर आनंदित होते थे। उनसे उनके शिष्य श्रीरङ्गराज स्वामी जी ने श्रीभाष्यकार के श्रीविग्रह को अपने आचार्य से सुना। उनसे उनके शिष्य श्रीवादिहंसाम्बुवाहाचार्य स्वामी जी से सुना। इनके शिष्य थे श्रीदेशिक स्वामी जी। श्रीभाष्यकार के श्रीविग्रह के सन्निवेश को को अपने आचार्य श्रीवादिहंसाम्बुवाह स्वामी जी के उपदेश से सुनकर आप प्रतिदिन ध्यान करते थे इस ध्यानावस्थित रूप का वर्णन इस श्लोक में है श्रीशङ्कराचार्य सिद्धान्तानुयायी संन्यासिगण शिखाहीन यज्ञोपवीतहीन और एक दण्डी दिखाई देते हैं। श्रीदेशिक स्वामी जी ध्यान में श्रीरामानुज स्वामी जी वैसे नहीं दिखाई दिये किन्तु शिखायुक्त यज्ञोपवीत धारी त्रिदण्डी यति के रूप में दर्शन देते थे। इसी विशेषता को श्रीदेशिक स्वामी जी यहाँ व्यक्त करते हैं।

आचार्य की आज्ञा मानकर कार्य करना शिष्य का दूसरा लक्षण बतलाया गया है। श्रीदेशिक स्वामी जी ने इसी लक्षण को अपने में घटित किया है। आपका "संकल्प सूर्योदय" नामक नाटक है। उसके दूसरे अङ्क में आचार्य और शिष्य का प्रवेश होता है। श्रीरामानुज स्वामी जी आचार्य के रूप में उपस्थित होते हैं। श्रीदेशिक स्वामी जी

इति पात्रप्रवेशमुपवर्ण्य श्रीभाष्यकारमाज्ञापकतयाऽऽत्मानं चाज्ञाप्यतयोपनिबध्नन् प्रकाशयामास। किं च, श्रीरङ्गे श्रीभगवदाज्ञानुसारेणोभयवेदान्तप्रवचनं कुर्वन् श्रीदेशिकः एकदा स्वप्ने समुपस्थिते श्रीभाष्यकारे श्रीमन्त्रमन्त्रार्थानां श्रीभाष्यभगवद्विषययोश्च प्रवचनं कुर्वन् एषां सर्वेषामर्थानां सुप्रतिष्ठितरूपेण पाश्चात्यैरुपजीव्यत्वस्य संपत्त्यर्थं ग्रन्थान् प्रणयेति आज्ञाप्य करुणाकटाक्षपूर्वकं स्वचरणौ शिरसि निहितवति सति तादृशाज्ञानुसारेण परः शतान्

शिष्य के रूप में उपस्थित होते हैं। वहाँ श्रीरामानुज स्वामी जी जो आज्ञा देते हैं उसका अक्षरशः पालन श्रीदेशिक स्वामी जी करते हैं, अन्त में श्रीरामानुज स्वामी जी की आज्ञा के अनुसार श्रीदेशिक स्वामी जी परवादियों को शास्त्रार्थ में परास्त करते हैं। इस प्रकार श्रीरामानुज स्वामी जी की आज्ञा के अनुसार प्रत्येक कार्य करके श्रीदेशिक स्वामी जी ने अपने में आचार्याज्ञानुसार कार्य करने को व्यक्त किया।

किंच, श्रीगुरु परम्पराप्रभाव में यह चरित्र वर्णित है कि जब श्री देशिक स्वामी जी ने काञ्ची से श्रीरङ्ग पहुंच कर वहाँ शास्त्रार्थ में परवादियों को परास्त किया। तब प्रसन्न होकर श्रीरङ्गनाथ भगवान ने आज्ञा दी कि आप श्रीरङ्ग में ही रहकर सिद्धान्त प्रवचन करते रहें। तदनुसार श्रीदेशिक स्वामी जी श्रीरङ्ग में रहकर सिद्धान्त प्रवचन कर रहे थे। वहाँ एक दिन श्रीदेशिक स्वामी जी को स्वप्न में उपस्थित होकर श्रीरामानुज स्वामी जी ने आज्ञा दी कि आप सिद्धान्त प्रवचन के साथ २ सिद्धान्त की अभिवृद्धि के लिये ग्रन्थ रचना भी करें। भविष्य जनता के उज्जीवन के लिये ग्रन्थों की रचना आवश्यक है। यह कहकर श्रीभगवद्रामानुजाचार्य ने अपने चरण कमलों को श्रीदेशिक स्वामी जी के शिर पर रक्खा। इस स्वप्न वृत्तान्त से विस्मित होकर श्रीदेशिक

ग्रन्थान्निर्ममे इति श्रीगुरुपरम्पराप्रभावे वर्ण्यते । अतोऽस्याज्ञाप्रतीत्तकत्वं सुस्पष्टम् ।

श्रीभाष्यकारदिव्यविग्रहसंनिवेशानुभवपूर्वं स्तुतौ प्रवृत्तः श्रीदेशिकः कथयति *यतीनां पतिमीडे इति । यतिराजं स्तौमीत्यर्थः । परिगृहीततुर्याश्रमस्य श्रीरामानुजस्य भगवता श्रीवरदराजेन यतिराज इति नाम कृतमिति गुरुपरम्पराप्रभावे वर्ण्यते । यथा प्रजानां मध्ये राजा विराजते तथा यतीनां मध्येऽयं विराजते इति भावः । राज्ञो यतिराजस्य च साम्यं बहुधोपपादयिष्यते । कीदृशं यतीनां पतिमित्यत्राह *उपवीतिनमिति । श्रीयज्ञोपवीत-

---

स्वामी जी ने सौ से अधिक ग्रन्थ बनाने की प्रतिज्ञा की। वैसे ग्रन्थ भी बनाये। अतः इन दोनों चरित्रों से व्यक्त होता है कि श्रीदेशिक स्वामी जी ने श्रीभाष्यकार स्वामी जी के अनुसार कार्य करके शिष्य के दूसरे लक्षण को अपने में प्रमाणित किया। अस्तु।

श्रीभाष्यकार स्वामी जी के श्रीविग्रह की शोभा को अनुभव करते हुए श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि "यतीनां पतिमीडे" अर्थात् मैं यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी की स्तुति करता हूँ। श्री गुरु परम्परा प्रभाव में यह चरित्र वर्णित है कि "श्रीकाञ्ची में जब श्रीरामानुज स्वामी जी ने संन्यास लिया, तब श्रीवरदराज भगवान ने आप का "यतिराज" नाम रक्खा"। मनुष्यों में राजा का जो स्थान हैं, श्रीरामानुज स्वामी जी का संन्यासियों में वहीं स्थान है। राजा और यतिराज श्रीरामानुज स्वामी जी में कैसी समता है? यह बात आगे विस्तार से कही जायगी।

यतिराज कैसे दर्शन देते हैं? "उपवीतिनम्" आप यज्ञोपवीतधारी

विशिष्टमित्यर्थः । अनेन यज्ञोपवीतालंकृतदिव्यवक्षोऽनुभवः प्रतिपादितो भवति ।

*ऊर्ध्वपुण्ड्रवन्तमिति । श्वेतमृत्तिकया हरिपादाकृतिपुण्ड्रं धारयन्तमित्यर्थः । अनेन पुण्ड्रालंकृतललाटाद्यङ्गानुभव उक्तो भवति ।

*त्रिजगत्पुण्यफलमिति । त्रिलोकीस्थजीवकृतपुण्यफलभूतमित्यर्थः । अतएव श्रीश्रुतप्रकाशिकाचार्याः "भवभयाभितप्तजनभागधेयवैभवभावितावतरणेन" इत्याहुः । तत्त्वहितपुरुषार्थ-

---

के रूप में दर्शन देते हैं । आपके दिव्य वक्षस्थल की शोभा को यज्ञोपवीत बढ़ा रहा है । यज्ञोपवीत से अलंकृत उस दिव्य वक्षस्थल को ध्यान से अनुभव करने पर विलक्षण आनन्द प्राप्त होता है ।

"ऊर्ध्वपुण्ड्रवन्तम्" श्रीभाष्यकारस्वामी जी ललाट इत्यादि बारह अङ्गों में सुन्दर ऊर्ध्वपुण्ड्रों को (तिलक को) धारण किए हुए हैं । ये प्रत्येक ऊर्ध्वपुण्ड्र श्रीहरिपाद के समान आकार रखते हैं । इस प्रकार श्रीहरिपाद समानाकार वाले श्वेतमृत्तिकामय द्वादश ऊर्ध्वपुण्ड्रों से अलंकृत ललाट इत्यादि अङ्गों को ध्यान से अनुभव करने पर अपार आनन्द प्रस्फुटित होता है ।

प्रतिपादकानां वेदानां कुदृष्टिभिरपार्थेषु कल्पितेषु लोके तत्त्वहित-पुरुषार्थानां विषये विविधभ्रमाणामभिवृद्ध्या भूलोकस्थेषु स्वर्गादि-लोकस्थेषु च साधुषु शोकाक्रान्तेषु जातेषु तेषां पुण्यवैभवेना-वतीर्णः श्रीभाष्यकारोऽपार्थकल्पककुदृष्टीन् निरस्य यथावस्थित-वेदार्थानां प्रकाशनेन तेषां शोकं जहार। अतस्त्रिजगत्पुण्यफल-मित्युच्यते।

अथवा "आह्लादशीतनेत्राम्बुः पुलकीकृतगात्रवान्। सदा-परगुणाविष्टो द्रष्टव्यः सर्वदेहिभिः।" इति अत्यन्तं भगवद्गुणा-विष्टस्यदर्शनेन सर्वप्राणिनामुज्जीवनस्य प्रतिपादनात् त्रिलोकी-

---

वेद तत्त्व हित और पुरुषार्थों का वर्णन करते हैं। कुदृष्टि युक्त विद्वानों ने अपने कल्पित अर्थों को वेदार्थ बतलाकर वेदों के तात्त्विक अर्थों को छिपा दिया। उससे तत्त्वहित और पुरुषार्थ के विषय में लोक में अनेक प्रकार के भ्रम बढ़ने लगे। उसे देखकर भूलोक और स्वर्गादि लोक में रहने वाले साधुगण दुःखी हो गये थे। उस समय उन लोगों के पुण्य के प्रभाव से अवतार लेकर श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने शास्त्रार्थ में उन दुर्वादियों को परास्त कर तात्त्विक वेदार्थों को प्रकाशित किया और उन साधु महात्माओं के दुःख को भी दूर किया। अतः कहा जाता है कि श्रीभाष्याकर स्वामी जी का अवतार तीनों जगत के जीवों के पुण्य का फल है।

अथवा शास्त्रों में कहा गया है कि—"सभी जीवों को चाहिये कि ऐसे महात्मा का दर्शन करें जिसके नेत्रों से आनन्द से शीतल अश्रु बह रहे हों, जिसका शरीर रोमाञ्च से व्याप्त हो गया हो, जिसमें सर्वदा भगवद्गुणों का आवेश हो गया हो। ऐसे महात्मा का दर्शन करने से

स्था देवादयो जीवाः श्रीभाष्यकारं दृष्ट्वोज्जीवनं प्रापुः अतो-ऽपि त्रिजगत्पुण्यफलमित्युच्यते ।

अथवा "सर्वधर्मान्परित्यज्य" इत्यस्य सर्वधर्मस्वरूपत्यागो-ऽर्थः इतिशङ्करादिकुदृष्टिभिः प्रचारे क्रियमाणे तद्दर्शिषु देवेषु इमं दुरुपदेशं पथ्यं मत्वा भौमैर्नरैर्यज्ञादीनामकरणे हव्यकव्यभुजो वयं कथं जीवेमेति शोचत्सु, सात्त्विकप्रकृतिषु भूसुरेषु च लोको-ज्जीवनार्थं श्रीकृष्णेनोपदिष्टस्य चरमश्लोकस्येत्थमपार्थवर्णनेन एते साहसिका लोकं नरके पातयितुमुद्युञ्जते इति शोचत्सु । तदात्वावतीर्णेन श्रीभाष्यकारेण परमतानि निरस्य सकलश्रुति-

---

प्राणियों को उद्धार हो जाता है।" हमारे श्रीभाष्यकार स्वामी जी ऐसे ही उच्च कोटि के महात्मा हैं। उनका दर्शन कर तीनों लोकों में रहने वाले देव आदि जीवगण उज्जीवन को प्राप्त हो गये थे। इसलिये कहा जाता है कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी का अवतार तीनों जगत के पुण्य का फल है।

स्मृत्यादेर्यथावस्थितमर्थमुपवर्ण्य सर्वैः सर्वविधनित्यनैमित्तिक-कर्माणि अवश्यमनुष्ठेयानीति सिद्धान्ते स्थापिते सति तद्दर्शिन-स्सात्त्विकप्रकृतयो भूसुराः सुराश्च अस्मत्पुण्यफलमेव श्रीभाष्य-काररूपेणावततारेति श्रीभाष्यकारमभिननन्दुरित्यभिप्रायेणोच्यते त्रिजगत्पुण्यफलमिति ।

*त्रिदण्डहस्तमिति । त्रिदण्डं श्रीहस्तेन धारयन्तमित्यर्थः । अनेन त्रिदण्डालंकृतहस्तानुभव उक्तो भवति ।

*शरणागतसार्थवाहमिति । प्रपन्नसमूहनिर्वाहकमित्यर्थः यथा श्रीशठकोपमुनिः स्वयं प्रपत्तिमनुष्ठायोत्तरकालिकानामपि

के पुण्य प्रभाव से उस समय श्री भाष्यकार स्वामी जी ने अवतार लेकर परमतों का खण्डन किया। वेदादि शास्त्रों के तात्विक अर्थों को बतलाया तथा इस सिद्धान्त की स्थापना की कि सभी मनुष्यों को आजीवन नित्य नैमित्तिक कर्मों को करते ही रहना चाहिये। इस प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामी जी के सिद्धान्त प्रचार को देखकर सन्तुष्ट देवतागण और ब्राह्मणगण श्रीभाष्यकार स्वामी जी का अभिनन्दन करते हुए यह मानने लगे कि हमारे पुण्यों के फल ने ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी के रूप में अवतार लिया।

"त्रिदण्डहस्तम्" श्रीभाष्यकार स्वामी जी हाथ में त्रिदण्ड धारण किये हुए हैं। इस प्रकार त्रिदण्ड से अलंकृत श्री हस्तका ध्यान करने पर असीम आनन्द अनुभूत हो रहा है।

"शरणागतसार्थवाहम्" श्रीभाष्यकार स्वामी जी प्रपन्न समूह के नेता हैं। श्रीशठकोप स्वामी जी श्रीसंप्रदाय में 'प्रपन्नसन्तानकूटस्थ'

तदनुष्ठानसिद्ध्यर्थं प्रबन्धेन प्रकाशयन् प्रपन्नसंतानकूटस्थ इत्युच्यते तथा श्रीभाष्यकारोऽपि स्वयं प्रपत्तिमनुष्ठायोत्तरकालिकानामपि तदनुष्ठानसिद्ध्यर्थं गद्यत्रयेण प्रकाशनात् प्रपन्नानां श्रीभाष्यप्रवच-

---

अर्थात् प्रपन्न परम्परा के मूल पुरुष कहलाते हैं क्योंकि उन्होंने स्वयं भगवच्छरणागति का अनुष्ठान किया तथा उत्तरकाल में उत्पन्न होने वाले सज्जनों के कल्याणार्थ प्रबन्ध से भी प्रकाशित किया। वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने भी स्वयं भगवच्छरणागति का अनुष्ठान कर उत्तरकाल में उत्पन्न होने वाले सज्जनों के कल्याणार्थ गद्यत्रय से प्रकाशित किया इसलिये श्रीभाष्यकार स्वामी जी "शरणागतसार्थवाह" कहलाते हैं।

किंच, श्रीभाष्यकार स्वामीजी ने अपने अन्तिम समय में प्रपन्नशिष्यों को यह आदेश दिया कि प्रपन्नों को अपनी देह यात्रा अर्थात् देह निर्वाह केलिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये क्योंकि देहयात्रा कर्माधीन है प्रारब्धानुसार देह यात्रा होती ही रहेगी। प्रपन्नों को आत्मयात्रा के लिये अर्थात् आत्मकल्याण के लिये भी चिन्ता नहीं करना चाहिये क्योंकि आत्मयात्रा भगवदधीन है। श्रीभगवान प्रपन्नों के रक्षा भार अपने ऊपर ले लिया है। अब वे कल्याण करेंगे। प्रपन्नों को मनमाना आचरण भी नहीं करना चाहिये क्योंकि यथेष्टाचरण स्वरूपानुरूप नहीं है। अतः प्रपन्नों को चाहिये कि वे अपने शेष जीवन को कैंकर्य में सफल बनावें। यहाँ प्रपन्नों के लिये करने योग्य पाँच कैङ्कर्य हैं (१) श्रीभाष्य का अध्ययन कर प्रचार करें। (२) श्रीभाष्य को प्रचारित करने के लिये अपेक्षित योग्यता न होने पर दिव्य प्रबन्धों का अध्ययन कर प्रचार करें। (३) दिव्य प्रबन्ध के प्रचार में अपेक्षित योग्यता न रखने वाले प्रपन्न दिव्य देशों में श्रीभगवान की सेवा करें। (४) इसमें योग्यता नहीं रखने वाले

नादिकैङ्कर्यपञ्चके नियोगात् "श्रीभाष्यकारेऽतिलङ्घितसंसारे सति वयमपि तच्छारीरसम्बन्धात्संसारोत्तीर्णा भवामः" इति श्रीदाशरथिवचनाच्च शरणागतसार्थवाह इत्युच्यते।

यद्वा स्वपादं शरणमागतानां समूहस्य निर्वाहकमित्यर्थः। चिरकालानुवर्तनपूर्वकं "शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्" इत्युक्तरीत्या शरणागतिं कृत्वास्मानुज्जीवयेति प्रार्थितवतां

प्रपन्न अर्थके साथ द्वयमन्त्रका अनुसन्धान करें, इसमें योग्यता रहित प्रपन्न किसी श्रीवैष्णव का आश्रय लेकर रहें, यदि वह श्रीवैष्णव मानलें कि मेरा आश्रित है, उतने से भी कल्याण हो जायगा। इस प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने आज्ञा देकर प्रपन्नों को सफल जीवन बिताने में लगाया। अतः श्रीभाष्यकार स्वामी जी "शरणागतसार्थवाह" कहलाते हैं।

किंच दाशरथि स्वामी जी कहा करते थे कि यदि कोई सिंह एक पर्वत को लांघ कर दूसरे पर्वत में पहुंचाता है, तब उसके शरीर में लगे हुए अनेक क्षुद्रजीव भी एक पर्वत लांघकर दूसरे पर्वत पर पहुंच जाते हैं। ठीक उसी प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामी जी जब संसार को लांघकर परमपद पहुंचेंगे तब हम लोग भी उनके शरीर सम्बन्ध होने के कारण संसार लांघकर परमपद पहुंच जायंगे"। इस दाशरथि स्वामी जी के कथन से सिद्ध होता है कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी प्रपन्नों के समूह को लेकर चलने वाले हैं। अतः "शरणगतसार्थवाह" कहलाते हैं।

अथवा "शरणागतसार्थवाहम्" श्रीभाष्यकार स्वामी जी अपने चरणों के शरण में आने वाले सज्जनों के समूह को संभालने वाले हैं। सज्जनगण बहुत काल तक सेवाशुश्रूषा करके "शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्" इस श्रीगीता के श्लोकों के अनुसार श्रीभाष्यकार स्वामी जी के शरण

शिष्याणां वृन्दस्यात्मोज्जीवननिर्वाहकमिति यावत् । अतएव "विविधमहितच्छात्रश्रेणीमनोरथसारथिः" इति श्रीभाष्यकारो वर्ण्यते । यथा सारथी रथनिर्वाहको भवति तथा श्रीभाष्यकारः शिष्यश्रेणीमनोरथ निर्वाहक इति तद्भावः । अतएव हि "संसेवितः संयमिसप्तशत्या पीठैश्चतुस्सप्ततिभिस्समेतैः । अन्यैरसंख्यैरपि विष्णुभक्तैरास्तेऽधिरङ्गं यतिसार्वभौमः ।" इति वर्ण्यते सार्थ-शब्देन श्रीभाष्यकारं शरणमेत्योज्जीवितवन्तोऽसंख्यता इति प्रतिपाद्यते ।

*शिखया शेखरिणमिति शिखालंकृतशिरस्कमित्यर्थः यथा

में आकर अपने उज्जीवन के लिये जब प्रार्थना करते हैं तब श्रीभाष्य-कार स्वामी जी उनको उज्जीवित करने के लिये सन्नद्ध हो जाते हैं। इसलिये ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी के विषय में कहा जाता है कि जिस प्रकार रथ को गन्तव्य स्थान में पहुंचाने वाला सारथि है, वैसे ही अनेक श्रेष्ठ शिष्यों के समूहों के मनोरथों को अपने लक्ष्य तक पहुँचाने वाले सारथि श्रीरामानुज स्वामी जी हैं। इसलिये श्रीरामानुज स्वामी जी को "शरणागतसार्थवाह" कहा जाता है। सार्थ शब्द समूह को बतलाता है। इससे सिद्ध होता है कि अनेक सज्जन श्रीरामानुज स्वामी जी के चरणाश्रित हो गये थे। अतएव श्रीरामानुज स्वामी जी के चरित्र में कहा जाता है कि श्रीरामानुज स्वामी जी सात सौ संन्यासीगण शिष्यगण समेत ७४ पीठस्थ आचार्यगण और बारह हजार श्रीवैष्णवों के साथ श्रीरङ्ग में रहते हैं।

"शिखया शेखरिणम्" श्रीरामानुज स्वामी जी शिर में शिखा को भूषण के रूप में धारण किये हुए हैं। जिस प्रकार राजा का मस्तक

वाची सन् स्वगृहवत् स्वाधीनदेशं लक्षयति स्वगृहस्थप्रजानामिव स्वदेशस्थप्रजानां समूहस्य निर्वाहको राजेत्यर्थः।

*त्रिदण्डहस्तमिति राजाऽपराधानुगुण्येन प्राणशरीरार्थरूपत्रिविधदण्डधर इत्यर्थः।

*त्रिजगत्पुण्यफलमिति "नाराजके जनपदे यज्ञशीला द्विजातयः। सत्राण्यन्वासते दान्ता ब्राह्मणाः संशितव्रताः।" इत्युक्तरीत्याऽराजके देशे यज्ञादीनामनिष्पत्त्या यज्ञभुजां देवादीनां

शरण शब्द लक्षणा से घर के समान राज्य को बतलाता है। राजा के राज्य में रहने वाले सब मनुष्य शरणागत कहे जा सकते हैं। राज्य में रहने वाले सब मनुष्यों के योग क्षेम का निर्वाहक राजा होता है। इस दृष्टि से राजा को भी "शरणागतसार्थवाह" कहा जा सकता है। यह निरूपण श्लेषालङ्कार के अनुसार किया गया।

"त्रिदण्डहस्तम्" यह विशेषण भी श्लेषालंकार के अनुसार राजा में लागू किया जा सकता है। राजा अपने हाथ से अपराधियों को अपराधानुसार तीन प्रकार का दण्ड देता है। वे तीन दण्ड ये हैं— (१) शरीर दण्ड (२) प्राण दण्ड (३) अर्थ दण्ड। इस प्रकार अपने हाथ में तीन दण्डों को रख लेने के कारण राजा त्रिदण्डहस्त कहा जा सकता है।

"त्रिजगत्पुण्यफलम्" यह विशेषण भी राजा में लागू होता है। राजा का जन्म भी तीनों लोक में रहने वाले जीवों के पुण्य का फल ही है। क्योंकि शास्त्रों में कहा गया है कि "जिस देश में राजा नहीं रहता हो उस अराजक देश में दुष्टों का उत्पात बढ़ जायगा। मनुष्यों की दुर्गति होगी साथ ही साथ हव्यभोजी देवताओं की भी दुर्गति होगी

तृप्तिर्न जायते, अतो राजा भौमानामिव लोकान्तरस्थानामपि पुण्यफलभूत इत्यर्थः।

*उपवीतिनमूर्ध्वपुण्ड्रवन्तमिति राज्ञापि यज्ञोपवीतोर्ध्वपुण्ड्रयोर्धार्यत्वाद्राजा उपवीती ऊर्ध्वपुण्ड्रवाँश्चेति भावः।

यद्वा ऊर्ध्वपुण्ड्रवन्तमिति। अत्र ऊर्ध्वपुण्ड्रशब्द उन्नतपुण्ड्रेक्षुवाची सन् लक्षणया तत्सदृशमधुरभाषणं प्रतिपादयति, तथा च राजा पुण्ड्रेक्षुसदृशमधुरभाषणवानित्युच्यते।

उपवीतिनमिति। उपवीतस्वभाववन्तमित्यर्थः। यथोपवीत-

क्योंकि उनको हव्य मिलना असंभव हो जायगा। अतः राजा से पालित होने के कारण ही मनुष्य याग आदि धार्मिक कृत्य करके सद्गति पाते हैं देवता भी हव्य पाकर तृप्त होते हैं। अतः सिद्ध होता है राजा का जन्म तीनों लोकों में रहने वाले देव मनुष्य इत्यादि जीवों के पुण्य फल है। अतः राजा "त्रिजगत्पुण्यफल" कहा जा सकता है।

"उपवीतिनमूर्ध्वपुण्ड्रवन्तम्" ये दोनों विशेषणभी राजा में संगत होते हैं क्यों कि शास्त्रविधि के अनुसार राजा भी यज्ञोपवीत और ऊर्ध्वपुण्ड्र का धारण करते हैं।

अथवा—उपर्युक्त दोनों विशेषण श्लेषालंकार के अनुसार राजा में समन्वय पाते हैं। तथाहि—संस्कृत भाषा "ऊर्ध्वपुण्ड्र" शब्द ऊँचे श्वेतरेखा वाले इक्षु (ईख) दण्ड को बतलाता है। इक्षुदण्ड मधुर होता है। अतः ऊर्ध्वपुण्ड्रशब्द लक्षणा से प्रियभाषण को बतलाता है। प्रिय भाषण करना राजा का स्वाभाव है अतः प्रियभाषण करने वाला राजा भी "ऊर्ध्वपुण्ड्र" वाला कहा जा सकता है।

मपसव्यं न भवति किं तु सव्यमेव भवति तथा राजाऽपि अपसव्यो-ऽनृजुर्न भवति किंतु सव्य ऋजुर्भवतीत्यर्थः। तथा चैषां विशेषणानां राज्ञि यतिराजे च संगतत्वाद्राजसदृशो यतिराजः, तमीडे इत्युक्तं भवति।

"ब्रह्मसूत्रपरित्यागात् ब्रह्मचारी गृही वनी। परिव्राट् चापि पतति तस्मात्तन्न परित्यजेत्। यतीनां त्रीणि शुद्धानि संग्राह्याणि सदैव तु। यज्ञोपवीतं दण्डश्च तथा जन्तुनिवारणम्। ब्रह्मसूत्रं त्रिदण्डं च वस्त्रं जन्तुनिवारणम्"। इत्यादीनि यतीनां शिखा-यज्ञोपवीत त्रिदण्डधारणावश्यकतां प्रतिपादयन्ति। प्रमाणान्यत्र भाव्यानि॥११॥

"उपवीतिनम्" यह विशेषण भी श्लेषालंकार के अनुसार राजा में संगत होता है। यज्ञोपवीत ऋजु (सीधा) होता है, राजा भी ऋजु (सीधा) होता है, राजा यज्ञोपवीत के स्वभाव सीधापन को धारण करता है। अतः राजा भी "यज्ञोपवीती" कहा जा सकता है।

इस प्रकार सब तरह से राजा और यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी में समता झलकती है। अतः श्री भाष्यकार स्वामी जी को यतिराज मानने में कोई आपत्ति नहीं है।

उस प्रकार विलक्षण सन्यासाश्रमानुरूप वेषवाले श्रीभाष्यकार स्वामी जी की स्तुति करता हूं। सन्यासी को शिखा यज्ञोपवीत और त्रिदण्ड का धारण करना चाहिये। जैसा कि कहा है—

यज्ञोपवीत का परित्याग करने से ब्रह्मचारी गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी सभी पतित हो जाते हैं। संन्यासी लोगों को तीन वस्तु सदा संग्राह्य है—(१) यज्ञो पवीत, (२) त्रिदण्ड और जन्तुओं को हटाने के लिये वस्त्र॥११॥

अत्रेयं शङ्कोन्मिषति पूर्वं "शिखया शेखरिणं पतिं यतीनाम्" इति किरीटाद्यलंकृतराजवद्वर्तमानं यतिराजं स्तौमीत्यभ्यधायि। इयं स्तुतिस्तदैव युज्येत यदि स्तुतिप्रयोजका अस्मदाद्युपकारका गुणा यतिराजे स्युः किं तथाविधा गुणा अस्मिन् सन्तीति। अस्याः शङ्कायाः समाधानं राज्ञ इव प्रतिपत्तिविषये तैक्ष्ण्यमस्मत्परिरक्षणसामर्थ्यं च यतिराजस्यास्तीति स्तुतिरुपपद्यत" इति।

श्रीदेशिक स्वामी जी ने पूर्वश्लोक में कहा कि किरीट आदि से अलंकृत राजा के समान विराजने वाले यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी की स्तुति करूंगा। यह कहने पर जो शङ्कायें उठती हैं उनको मन में रखकर श्रीदेशिक स्वामी जी इस श्लोक में स्तुति करते हैं। उन शङ्का और उनके समाधानों को अच्छी तरह हृदयंगम करने पर ही अगले श्लोक का अर्थ ठीक २ समझ में आयेगा। तदर्थ उन शङ्का और समाधानों को वर्णन किया जाता है।

पुनः शङ्कोन्मिपति तर्हि एतयोर्गुणयो राज्यपि सत्त्वाद्राजैव कुतो न स्तूयत इति। अत्रोत्तरं राज्ञो देहरक्षणसामर्थ्ये सत्यपि अस्मदपेक्षितस्य आत्मरक्षणसामर्थ्यस्याभावात् राजा स्तोतुं न युज्यते, किं च राजस्तुतिर्निषिद्धा अतोऽपि स्तोतुं न शक्यत इति।

शंका—ये दो गुण राजा में भी पाये जाते हैं। क्योंकि राजा भी प्रतिपक्षियों के प्रति भयङ्कर रहता है। हम लोगों की रक्षा करने में सामर्थ्य रखता है। ऐसी स्थिति में राजा की ही स्तुति क्यों न की जाय?

समाधान—राजा की स्तुति नहीं की जा सकती क्योंकि राजा प्रजा के देह मात्र की रक्षा कर सकता है, आत्मा की रक्षा नहीं कर सकता। आत्मा की रक्षा सदाचार्य से ही हो सकती है क्योंकि वे ही सदुपदेश देकर जीवों को धर्म मार्ग में प्रेरित कर आत्मा को उज्जीवित करते हैं। हम लोग तो आत्मरक्षा ही चाहते हैं। देह तो नश्वर ही है, उसको कितना ही सुरक्षित रखा जाय तो भी एक दिन अवश्य नष्ट होगा ही। आत्मा नित्य है, वह संसार में फंसकर नानाविध दुःखों को भोग रहा है। यदि वह संसार से छूटकर परमपद पहुँच जाय, वहाँ अनन्तकाल के लिये ब्रह्मानन्द का आस्वाद करता रहे तो इससे बढ़कर रक्षा नहीं हो सकती। यह आत्मरक्षा तो आचार्य से ही होगी राजा से कभी नहीं होगी। अतः आचार्य प्रवर श्रीरामानुज स्वामी जी की ही स्तुति करना चाहिये। किंच, राजस्तुति शास्त्रों में निन्दित है। इसलिये भी राज स्तुति नहीं करनी चाहिये।

शंका—आचार्य में पाये जाने वाले ये दोनों महागुण श्रीभगवान के पांच आयुधों में भी पाये जाते हैं, अतः उनकी ही स्तुति क्यों न की जाय?

अत्र पुनः शङ्कोन्मिपति तर्हि एवं विधगुणानां सत्त्वाद्-भगवतः पञ्चायुधा कुतो न स्तूयत इति । अत्रोत्तरं इयं पञ्चायुधी नीरक्षीरवच्छ्रीभाष्यकारेऽपृथग्भावेनसंमिश्य श्रीभाष्यकाररूपेण किल विराजते अतः श्रीभाष्यकार एव स्तुत्य इति । इत्थं शङ्का-समाधानान्यभिप्रेत्याह ।

प्रथयन् विमतेषु तीक्ष्णभावं प्रभुरस्मत्परिरक्षणे यतीन्द्रः
अपृथक्प्रतिपन्नयन्मयत्वैर्ववृधे पञ्चभिरायुधैर्मुरारेः ॥१२

समाधान—ये दोनों दिव्य गुण श्रीभगवान् के दिव्यायुधों में पाये जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि श्रीभगवान् के पञ्चायुध तथा श्रीरामानुज स्वामी जी भिन्न २ नहीं हैं। श्रीरामानुज स्वामी जी में वे दिव्यायुध ऐसे घुल मिल गये हैं कि वे न कभी अलग किये जा सकते हैं न कभी अलग समझे जा सकते हैं। जिस प्रकार दूध और जल मिल जाने के बाद अलग नहीं किये जा सकते हैं, जिस प्रकार मधु में मिले हुये अनेक पुष्परस अलग नहीं किये

*यतीन्द्रो विमतेषु तीक्ष्णभावं प्रथयन् यतिराजः श्रीभाष्य-कारः प्रतिपक्षिविषये क्रौर्यं प्रकाशयन्वर्तते। राज्ञः प्रतिपक्षिणः

ववृधे—वृद्धि की गई, *विमतेषु*—प्रतिवादियों के प्रति, *तीक्ष्ण भावं प्रथयन्*—तीक्ष्ण भाव प्रदर्शित करने वाले, वह, *यतीन्द्रः*—यतिराज, *अस्मत्परिरक्षणे*—हमारे रक्षण में, *प्रभुः*—समर्थ हैं।

"यतीन्द्रो विमतेषु तीक्ष्णभावं प्रथयन्" श्रीरामानुज स्वामी जी प्रति-पक्षियों के प्रति अपने भयङ्कर स्वरूप को व्यक्त करते हैं। राजा भी प्रति-पक्षियों के प्रति भयङ्कर बनता है। अन्तर इतना ही है राजा के प्रति पक्षी शत्रु राजा गण हैं श्रीरामानुज स्वामी के प्रति पक्षी प्रतिवादि गण हैं जैसे शत्रु गण राजा को भयङ्कर मानते हैं वैसे ही प्रतिवादि गण भी श्रीरामानुज स्वामी जी को भयङ्कर मानते हैं।

यहाँ पर यह चरित्र ध्यान देने योग्य है कि जब श्रीरामानुज स्वामी जी श्रीरङ्ग छोड़कर मेल कोट्टा की ओर चले गये, उन दिनों में उस देश के अधिपति विट्ठल देवराय की पुत्री को एक ब्रह्म राक्षस सता रहा था। तब श्रीरामानुजाचार्य के एक शिष्य ने राजा से कहा कि हमारे आचार्य आये हैं, उनके कटाक्ष मात्र से ब्रह्म राक्षस छोड़ देगा, क्योंकि एक बार ऐसी बात काञ्ची में हुई थी। ऐसा कहकर काञ्ची के वृत्तान्त को उसने विस्तार से बताया। राजा ने कहा कि यदि उनके अनुग्रह से ब्रह्म राक्षस छोड़ देगा तो मैं सपरिवार उनका आश्रित बन जाऊँगा। वह शिष्य श्रीरामानुजाचार्य को ख्याति लाभ के लिये नहीं, किन्तु श्रीवैष्णवों की समृद्धि के लिये राजभवन में ले गया। वहाँ श्रीमदाचार्य के श्रीपादतीर्थ को ग्रहण कर राजकुमारी पूर्ववत् होकर प्रणाम करने लगी। इस आश्चर्य को देखकर राजा चकित हो गया और सपरिवार

शत्रवः यतिराजस्य प्रतिपक्षिणः कुदृष्टय इति विशेषः। प्रतिपक्षिषु क्रौर्यप्रकाशनमुभयानुगतम् अनेन शंकासूचनम्।

*अस्मत्परिरक्षणे प्रभुः अस्माकं परितो रक्षणे अर्थात् सर्वविधरक्षणे श्रीभाष्यकारः समर्थः। श्रीभाष्यकारोऽकिंचनाना-

---

आचार्य के आश्रित हो गया। उसका नाम विष्णु वर्धन नारायण रक्खा गया। उस समय उन राजा के गुरु १२००० जैन लोगों ने आकर एक साथ शास्त्रार्थ करना चाहा। और शास्त्रार्थ का यह नियम रक्खा कि जो हार जायेगा उसे कोल्हू में पेर दिया जायेगा। आचार्य हारते तो वे कोल्हू में पेर दिये जा सकते थे: आचार्य ने एक यवनिका डलवा दी और सहस्र फणा मण्डित आदि शेष रूप को धारण कर उन बारह हजार जैनों को एक साथ उत्तर देकर शास्त्रार्थ में हराया। राजा की आज्ञा से उन जैनों को उचित दण्ड दिया गया, और उनमें जो आचार्य के आश्रित हो गये, उन्हें अच्छे मार्ग पर लाया गया। इस चरित्र से व्यक्त होता है श्रीरामानुज स्वामी जी प्रतिपक्षियों के लिये भयङ्कर थे। राजा और श्रीरामानुज स्वामी जी में कोई अन्तर नहीं हैं क्योंकि दोनों भी प्रतिपक्षियों के लिये भयङ्कर बनते ही हैं। किन्तु एक बात में बहुत अन्तर है। वह बात यह है कि—

"अस्मत्परिरक्षणे प्रभुः" हम लोगों को सब प्रकार से रक्षा करने में श्रीरामानुज स्वामी जी ही समर्थ हैं। राजा तो शरीरमात्र की रक्षा कर सकते हैं आत्मा की रक्षा नहीं कर सकते हैं। हम लोगों का आत्मरक्षण ही अपेक्षित है। आत्मोज्जीवन ही आत्मरक्षा है। वह तो आचार्य से ही संपन्न होगी। श्रीरामानुज स्वामी जी ने अस्मदादि अकिंचन जीवों के उज्जीवन के लिये सब कुछ किया। जिन जिन गूढ़ वेदार्थों को

मस्माकमुज्जीवनार्थं वेदार्थसंग्रहादिभिरविशदान् वेदार्थान् विशदीचकार प्रपत्तिमार्गं गद्यत्रयेण प्रकाशयामास। वयमपि शिष्यप्रशिष्यपरम्परया सम्प्रदायार्थान्विज्ञायोज्जीवामः। अतोऽस्माकं सर्वविधरक्षणे यतिराज एव प्रभुः। राज्ञो देहरक्षकत्वे सत्यपि अस्मदपेक्षितमात्मरक्षणं ततोऽसंभवीति भावः।

तर्ह्येवं विधं रक्षणं पञ्चायुध्यापि सुकरमित्यत्राह *अपृथक्प्रतिपन्नयन्मयत्वैर्मुरारेः पञ्चभिरायुधैः ववृधे इति। शङ्खचक्रगदा-

---

हम लोग विशद नहीं समझते थे। उन सबको श्रीरामानुज स्वामी जी ने वेदार्थ संग्रह इत्यादि ग्रन्थों से विशद बतलाया। हम अकिंचन लोगों के लिये सुगम प्रपत्ति मार्ग को गद्यत्रय से प्रकाशित किया। हम लोग भी शिष्य प्रशिष्य परम्परा से उनसे प्रतिपादित उत्तम संप्रदायार्थों को जानकर आत्मोज्जीवन कर रहे हैं। अतः सिद्ध हुआ कि श्रीरामानुज स्वामी जी ही हम लोगों की सब प्रकार से रक्षा करने में समर्थ हैं।

श्रीभगवान् के पांच आयुधों से भी इस प्रकार की रक्षा हो सकती है, ऐसी स्थिति में उनकी ही स्तुति क्यों न की जाय? इस शंका के उत्तर में श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि "अपृथक्प्रतिपन्न यन्मयत्वैर्मुरारेः पञ्चभिरायुधैर्ववृधे"।

शङ्ख चक्र गदा शार्ङ्ग खड्ग ये पाँचों श्री भगवान के आयुध हैं। इन पांचों आयुधों का अवतार ही श्री भाष्यकार स्वामी जी हैं। श्रीभाष्यकार स्वामी जी में ये पाँचों आयुध इतने अत्यन्त घनिष्ट रूप में मिले हुए हैं कि कभी अलग नहीं किये जा सकते हैं। हाँ इतनी विशेषता भी है कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी के रूप में अवतार लेने से पहले इन पञ्चायुधों की सत्ता भर थी। वृद्धि तो श्रीभाष्यकार स्वामी

शार्ङ्गनन्दकरूपाणि भगवतः पञ्चायुधानि श्रीभाष्यकारादणुमात्रमपि पार्थक्यमनवाप्य श्रीभाष्यकारमयतां प्राप्य ववृधिरे। पञ्चा-

---

जी के रूप में अवतार लेने के बाद ही होने लगी। श्रुति श्रीभगवान के विषय में कहती है कि "स उ श्रेयान् भवति जायमानः"। अर्थ—अवतार लेने के बाद ही श्रीभगवान् प्रशंसापात्र बनते हैं। अवतार लेकर जब श्रीभगवान प्रकट रूप में लोक कल्याणकारी दिव्य लीला करते है तभी सब लोग उनकी प्रशंसा करते हैं। श्रीभगवान् के लिये पर स्वरूप में रहकर जिन कार्यों को करना दुष्कर है, उन कार्यों को वे अवतार लेकर अनायास ही करते हैं। वैसे ही पंचायुध भी स्वस्वरूप में रहकर जिन कार्यों को कर न सकते थे, उन कार्यों को श्रीरामानुजावतार में उन्होंने अनायास कर डाला। पञ्चायुध स्वस्वरूप में रहते समय दुष्टों का वध करते थे दोषों का नहीं। दोष मात्र को नष्ट करना उनसे नहीं बनता था। श्रीरामानुजावतार में ही यह कार्य सम्भव हो सका।

यहाँ पर धनुर्दास के चरित्र का मनन करना चाहिये। वह चरित्र इस प्रकार है एक दिन मध्यान्ह में श्रीरामानुज स्वामी जी कावेरी में स्नान कर रहे थे। उस समय कुछ दूर में एक पुरुष और एक स्त्री दोनों आ रहे थे। वह पुरुष उस स्त्री को गर्मी से बचाने के लिये आगे आगे अपने उत्तरीय को बालू में बिछाता जाता था सामने खड़े होकर उसकी नेत्र शोभा को देखता हुआ छत्र धारण करता था। इस घटना को देख कर श्रीभाष्यकार स्वामी जी के संग में गये हुये श्रीवैष्णव गण हँस पड़े। श्रीस्वामी जी ने पूछा क्या है? क्यों हँसते हो। शिष्यों ने उस घटना को दिखलाया। श्रीस्वामी जी उस घटना को देखकर दुःखी होते हुये चिन्ता करने लगे कि इनका उद्धार कैसे हो? उन स्त्री और पुरुष को समीप आते देखकर श्रीस्वामी जी ने उनको बुलाने के लिये शिष्यों

युधानि श्रीभाष्यकारमयताप्राप्तेः प्राक् केवलं सत्तामेव प्रापुः न त्वेवं विधां वृद्धिम् । इयं महिमवृद्धिस्तु श्रीभाष्यकारमयता प्राप्यु-

---

को आदेश दिया । शिष्यों के बुलाने पर वे दोनों श्रीरामानुज स्वामी जी के निकट आ गये। श्रीस्वामी जी ने उस पुरुष से पूछा कि क्यों ऐसा कर रहे हो । उसने उत्तर दिया कि इसकी नेत्र शोभा में आकृष्ट होकर ऐसा कर रहा हूँ। स्वामी जी ने उस पर कृपा करते हुये कहा कि इससे बढ़कर सुन्दर नेत्रों का दर्शन यदि तुम्हें प्राप्त होगा तब इस कामासक्ति को छोड़ सकते हो। उसने कहा कि अवश्य छोड़ दूंगा । श्रीरामानुज स्वामी जी ने उन दम्पतियों को श्रीरङ्ग मन्दिर में ले जाकर श्रीभगवान् का दर्शन कराते हुये श्रीभगवान् से प्रार्थना की कि हे भगवन् ? इन दोनों कामरोगाक्रान्त जीवों पर कृपा कीजिये। आप साक्षान्मन्मथ-मन्मथ उस सुन्दर दिव्य रूप का दर्शन इनको कराइये जिसे देखकर गोपिकायें मुग्ध हो जाती थीं । श्रीस्वामी जी की इस करुण प्रार्थना से वशीभूत होकर श्रीभगवान् ने वैसा ही दर्शन दिया । श्रीभगवान् के उस सुन्दर दिव्य विग्रह में अति मनोहर नेत्र शोभा को देखकर वे दोनों आपसी काम वासना को भूलकर सर्वदा के लिये श्रीभगवान् में अत्यन्त अनुरक्त हो गये । उस पुरुष का नाम ही धनुर्दास है।

इस चरित्र से यह व्यक्त हुआ कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी दुष्ट पुरुषों से घृणा नहीं करते थे किन्तु दोषों से घृणा करते थे । उत्तम वैद्य रोगी से घृणा नहीं करते किन्तु रोगों से घृणा करते हैं रोगों को नष्ट कर रोगी को बचाते हैं। वैसे ही श्रीरामानुज स्वामी जी भी काम क्रोध आदि दोषों को नष्ट कर जीवों को बचाते हैं। इस अलौकिक कार्य को पंचायुध स्वस्वरूप में रहते समय नहीं करते थे । श्रीरामानुज स्वामी जी के रूप में अवतार लेकर ही कर सके हैं। जैसे सूर्य की किरणें स्वस्वरूप

त्त्वमेव तेषां जाता अतो यन्मयतामवाप्य पञ्चायुधानि महिम-वृद्धिसंपन्नानि जायन्ते स भाष्यकार एव स्तुत्य इति भावः ।

अनेन श्लोकेन श्रीभाष्यकारो भगवत्पंचायुधावतार इति ख्यापितं भवति । श्रीभाष्यकारस्य पंचायुध्यवतारता श्रीरामानुजनूत्तन्दादिप्रबन्धे ३३ गाथायां श्रीरङ्गामृतस्वामिनापि वर्ण्यते ॥१२॥

में रहते समय जगत को संतप्त करती हैं जब वे ही किरणें जलमय चन्द्र मण्डल में प्रवेश कर बाहर आती हैं तब जगत को आह्लादित करती हैं। वैसे ही पंचायुध स्वस्वरूप में रहते समय दुष्टों का संहार करते हैं, श्रीरामानुज स्वामी जी के रूप में प्रकट होने पर दोषों को दूर कर दुष्टों को भी उज्जीवित करते हैं। जिस रूप में आने पर वे पंचायुध इतना उत्तम कार्य कर सके हैं, वह श्रीरामानुज स्वामी जी का रूप ही स्तुति करने योग्य है। किंच जैसे समुद्र में स्नान करने पर सभी नदियों में स्नान का फल प्राप्त होता है वैसे एक श्रीरामानुज स्वामी जी की स्तुति करने पर पंचायुधों की स्तुति का फल भी अनायास ही प्राप्त हो जायेगा। इस दृष्टि से भी श्रीरामानुज स्वामी जी ही स्तुति के पात्र हैं। अतः उनकी ही स्तुति करूंगा। यह श्रीदेशिक स्वामी जी का कथन है।

इस श्लोक से सिद्ध होता है कि श्रीरामानुज स्वामी जी श्रीभगवान् के पंचायुधों का अवतार हैं। इसी बात को श्रीरङ्गामृत स्वामी जी ने भी अपने प्रबन्ध की ३३वीं गाथा में कहा है।

इससे यह सूचित होता है कि श्रीरामानुज स्वामी जी का सिद्धान्त पंचों का सिद्धान्त है। अतएव सर्वमान्य होना चाहिये ॥१२॥

श्रीभाष्यकारः साक्षात् श्रीकृष्णस्यैवापरावतारः। कुतः? नामैक्यात्कर्मैक्याच्च। नामैक्यं कथमित्यत्राह *"स रामावरजो भूय एष रामावरजो ननु" इति। श्रीकृष्णस्य रामावरज इति नाम बलरामानुजत्वात्। श्रीभाष्यकारस्य श्रीरामानुज इति नाम प्रसिद्धमेव। अत उभयोः रामानुजसंज्ञकत्वान्नामैक्यमक्षतम्।

रूप में अवतीर्ण होकर, *शमितोदय शंकरादिगर्वः*—उदयन तथा शंकरादि के गर्व का विनाश करते हैं, *स्वबलादुद्धतयादवप्रकाशः*—अपने बुद्धि बल तथा शास्त्र बल से यादव प्रकाश के सिद्धान्तों का खण्डन करने वाले हैं तथा, *श्रुतेः अपार्थान् अवरोपितवान्*—श्रुति के अयुक्त अर्थों का निराकरण करते हैं।

श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि मैं आलंकारिक भाषा में मानता हूँ कि श्रीरामानुज स्वामी जी श्रीकृष्ण भगवान् के अवतार हैं क्योंकि दोनों के नाम एक हैं दोनों ने एक प्रकार से ही तीन कार्य किये हैं। दोनों का एक नाम कैसे? संस्कृत भाषा में लघु भ्राता को अनुज तथा अवरज कहा जाता है। श्रीकृष्ण भगवान् श्रीबलराम जी के लघु भ्राता हैं, इसलिये श्रीकृष्ण भगवान् को "रामानुज" नाम हुआ। हमारे श्रीभाष्यकार स्वामी जी का "रामानुज" नाम तो जगत्प्रसिद्ध है। अतः दोनों का "रामानुज" ऐसा एक ही नाम है। अतः कहा जा सकता है कि रामानुज अर्थात बलराम जी के लघु भ्राता उस श्रीकृष्ण भगवान् के दूसरे अवतार हैं हमारे श्रीरामानुज स्वामी जी महाराज। इसी बात को श्रीदेशिक स्वामीजी कहते हैं 'स रामावरजोभूय एष रामावरजो ननु'।

अच्छा, दोनों ने एक से काम किये यह बात कैसे? इस शङ्का के उत्तर में श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण भगवान् तथा

कर्मैक्यं कथमित्यत्र विशेषणत्रयेण तदुपपादयति—"शमितोदय-शङ्करादिगर्वः स्वबलादुद्धृतयादवप्रकाशः श्रुतेरपार्थान् अवरोपितवान्" इति । अत्र स्वबलादिति पदं काकाक्षिन्यायेनोभयत्रान्वेति । *"स्वबलाच्छमितोदयशङ्करादिगर्वः" इति प्रथमविशेषणं श्रीकृष्णे श्रीभाष्यकारे च योजयितुं शक्यते । तथाहि—श्रीकृष्णः शङ्करादीनां गर्वस्योदयं स्वबलेन शमितवान् । शङ्करादीत्यत्र आदिशब्देन कार्तिकेय गजाननादयः ब्रह्मेन्द्रादयश्च गृह्यन्ते । श्रीकृष्णो बाणासुरयुद्धे स्वबाहुबलेन शङ्करकार्तिकेयगजाननादीनां गोवर्ध-

---

श्रीरामानुज स्वामी जी इन दोनों ने एक ही प्रकार के तीन कार्य किये हैं। यह बात आलंकारिक भाषामें तीन विशेषणों से सिद्ध की जाती है।

"शमितोदयशङ्करादिगर्वः" "स्वबलादुद्धृतयादवप्रकाशः" "श्रुतेरपार्थानवरोपितवान्" ये तीन विशेषण श्रीकृष्ण भगवान् तथा श्रीरामानुज स्वामी जी में समन्वय पाते हैं। इन तीनों विशेषणों से तीन कार्य बतलाये गये हैं। ये तीनों कार्य भी श्रीकृष्ण भगवान् और श्रीरामानुज स्वामी जी में संगत होते हैं। इसे श्लेषालङ्कार के अनुसार सिद्ध किया जाता है।

शमितत्वानित्युच्यते। अतः "स्वबलात् शमितोदयशंकरादिगर्वः" इति विशेषणं श्रीकृष्णो श्रीभाष्यकारे च सुखेनान्वेनीति एकं कर्मैक्यमुभयोः संपन्नम् ।

"स्वबलादुद्धृतयादवप्रकाशः" इति विशेषणेनोभयोर्द्वितीयं कर्मैक्यमुच्यते। इदमपि विशेषणमुभयत्र संगमयितुं शक्यम्। तथाहि—श्रीकृष्णः स्वभुजबलेन यादवानां प्रकाशस्योद्धारमक-

---

चार्य आदि आचार्यों के सिद्धान्त के खण्डन श्रीरामानुजाचार्य स्वामी जी ने अपने बुद्धि बल से ही किया। इनके खण्डन में ही श्रीरामानुजाचार्य को अपने बुद्धि बल का प्रयोग करना पड़ा। सांख्य योग बौद्धजैन और पाशुपत इत्यादि सिद्धान्तों के खण्डन में श्रीरामानुजाचार्य स्वामी जी को उतनी अधिक मात्रा में अपने बुद्धि बल का प्रयोग करना नहीं पड़ा। क्योंकि सांख्यादि सिद्धान्तों को ब्रह्म सूत्रकार ने ही परास्त कर दिया। श्रीशङ्कराचार्य आदि आचार्यों के सिद्धान्त के खण्डनार्थ सूत्रकार ने प्रयास नहीं किया। अत: उन सिद्धान्तों का खण्डन श्रीरामानुजाचार्य को अपने बुद्धिबल से ही करना पड़ा। इस निरूपण से सिद्ध हुआ कि श्रीरामानुज स्वामी जी भी "स्वबलात् शमितोदय शंकरादिगर्वः" ऐसा कहे जा सकते हैं। इस बात में श्रीकृष्ण भगवान् तथा श्रीरामानुज स्वामी जी की अत्यन्त समता है कि दोनों ने शंकरादि के गर्व को नष्ट किया। शङ्करादि के गर्व को नष्ट करना ही यहाँ प्रथम कर्मैक्य है।

अब श्रीकृष्ण भगवान् और श्रीरामानुज स्वामी जी में दूसरे प्रकार से कार्य में समता बतलाई जाती है। "स्वबलादुद्धृतयादवप्रकाशः" यह दूसरा विशेषण है। यह विशेषण भी श्लेषालंकार के बल पर श्रीकृष्ण भगवान् तथा श्रीरामानुज स्वामी जी में समन्वय पाता है। श्रीकृष्ण

रोत्। श्रीकृष्णावतारात् प्राक् यादवेषु केचित्कंसाद्भीता देश-विदेशेषु निलीनाः प्रकाशहीना आसन्। अपरे यादवाः कंसमनु-वर्तमानाः प्रकाशहीना आसन्। श्रीकृष्णः स्वबाहुबलेन कंसं हत्वा यादवान् पुनः प्रकाशमानान् अकरोत् यादवानां प्रकाशस्यो-द्धारमकरोत्। अतः श्रीकृष्णः "स्वबलादुद्धृतयादवप्रकाशः" इति वक्तुं युज्यते। श्रीभाष्यकारोऽपि तथा वक्तुं शक्यते। उद्धृते-त्यस्य उत्पादितेत्यर्थः। श्रीभाष्यकारः स्वबुद्धिबलेन यादव-

---

भगवान् "स्वबलादुद्धृतयादवप्रकाशः" ऐसे कहे जा सकते हैं क्योंकि श्रीकृष्ण भगवान् ने यादवों के प्रकाश का उद्धार किया। श्रीकृष्णावतार के पूर्व की घटना है कि यादवों में कई लोग कंस से भयभीत होकर देश व विदेशों में जाकर छिप गये। दूसरे यादव कंस के नीचे दबे रहते थे। इस प्रकार यादवों का प्रकाश सर्वथा नष्ट हो गया था। श्रीकृष्णचन्द्र ने अवतार लेकर अपने बल से कंस का वध किया, देश विदेशों में छिपे हुये यादवों को बुलाकर उन्हें बढ़ने के लिये अवसर दिया। दबे हुये लोगों को ऊपर उठाया। इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् ने अपने बल से यादवों के प्रकाश का पुनरुद्धार किया। अतः श्रीकृष्ण-चन्द्र जी "स्वबलादुद्धृतयादवप्रकाशः" ऐसा कहे जा सकते हैं।

प्रकाशाचार्यमुत्पाटितवान् । एकदा यादवप्रकाशाचार्यः "कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी" इति श्रुतिवाक्यस्य मर्कटपृष्ठसदृशे भगवतोऽक्षिणी इत्यर्थमाचख्यौ । श्रीभाष्यकारः तस्याः श्रुतेः 'गम्भीराम्भः-संभूतसुमृष्टनालरविकरविकसितपुण्डरीकदलामलायतेक्षणः' इत्युक्तार्थवर्णनेन तत् प्रत्याचख्यौ । इत्थमसकृत् शास्त्रार्थेषु यादवप्रकाशः श्रीभाष्यकारोक्तमर्थं खण्डयितुमपारयन् निरुत्तरो बभूवेति

श्रीरामानुज स्वामी जी ने शास्त्रार्थ में श्रीयादव प्रकाशाचार्य को निरुत्तर कर उनकी प्रतिष्ठा उखाड़ दी। श्रीगुरुपरम्परा प्रभाव में यह चरित्र वर्णित है कि एक दिन यादव प्रकाश जी ने "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इस श्रुति का असंगत अर्थ किया जिसको खण्डन कर श्रीरामानुज स्वामी जी ने श्रीभगवान् के गुणों को व्यक्त किया। अन्य एक दिन श्रीरामानुजाचार्य यादव प्रकाश को तैलाभ्यञ्जन कर रहे थे। तब एक शिष्य ने यादव प्रकाश से "कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी" इस श्रुति का अर्थ पूछा। यादव प्रकाश ने यह अर्थ किया कि भगवान् के नेत्र बन्दर के पृष्ठ भाग की तरह लाल हैं। इस अर्थ को सुनने से श्रीरामानुज स्वामी जी को बड़ी चोट पहुंची और दो चार अश्रु बिन्दु, जोकि अत्यन्त गर्म थे, यादव प्रकाश पर गिर पड़े। यादव प्रकाश गर्मी से तिलमिला उठे, और उन्होंने श्रीरामानुज स्वामी जी से पूछा कि आप क्यों रो रहे हैं। श्रीरामानुज स्वामी ने कहा कि इस श्रुति का यह अर्थ है कि श्रीभगवान् के दिव्य नेत्र उस कमल के समान हैं जोकि गहरे जल से निकले हों तथा सूर्य के किरण से विकसित एवं सुगठित दण्ड से युक्त हों। आपने अपार्थ किया जिससे मुझे दुःख हुआ। यादव प्रकाश निरुत्तर हो गये। इस प्रकार अनेक बार शास्त्रार्थ में यादव प्रकाश को निरुत्तर होना पड़ा। इस चरित्र से स्पष्ट है कि श्रीरा[illegible] स्वामी जी

चरित्रे प्रसिद्धम्। अतः श्रीभाष्यकारः 'स्वबलादुद्धृतयादवप्रकाशः' इत्युच्यते।

अथवा "स्वबलादुद्धृतयादवप्रकाशः" इति विशेषणं प्रकारान्तरेण श्रीभाष्यकारे संगमयितुं शक्यते। श्रीभाष्यकारः स्वप्रभावेन यादवप्रकाशाचार्यस्योद्धारमकरोत्। श्रीभाष्यकारस्तं शिष्यमापाद्य तमुज्जीवयामास। अतः श्रीभाष्यकारोऽपि "स्वबला-

---

ने श्रीयादव प्रकाश की प्रतिष्ठा उखाड़ दी। इसलिये श्रीरामानुज स्वामी जी "स्वबलादुद्धृतयादवप्रकाशः" कहे गये हैं।

दुद्धृतयादवप्रकाश" इति वक्तुं युज्यते। इदं द्वितीयं कर्मैक्यमपि उभयत्र समन्वितम्।

"श्रुतेरपार्थानवरोपितवान्" इति विशेषणेन तृतीयं कर्मैक्यं प्रतिपाद्यते। तथाहि—इदमपि विशेषणमुभयत्र संगमयितुं शक्यम्। श्रीकृष्णः श्रुतेरपार्थानवरोपितवानिति वक्तुं युज्यते। श्रुतेरित्यस्यश्रवणेन्द्रियादित्यर्थतः। अपार्थानित्यस्य पाण्डव-

---

आश्चर्य पूर्ण हो गये, तथा उनका प्रायश्चित कराकर संन्यासाश्रम दिया। यादव प्रकाश का नामधेय अब श्रीगोविन्दयति हो गया। श्रीगोविन्द यति ने 'यतिधर्म समुच्चय' नामक ग्रन्थ बनाकर श्रीरामानुज स्वामी जी के चरणों में समर्पित किया जिससे श्रीरामानुज स्वामी जी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। इस चरित्र से स्पष्ट है कि श्रीरामानुज स्वामी जी ने यादव प्रकाशाचार्य का उद्धार किया। इसलिये भी श्रीरामानुज स्वामी जी "स्वबलादुद्धृतयादवप्रकाशः" ऐसा कहे जा सकते हैं। यादव प्रकाश का उद्धार करना श्रीकृष्ण भगवान् तथा श्रीरामानुज स्वामी जी के कार्य हैं। अतः दोनों की इस प्रकार से भी कार्य समता सिद्ध हुई।

अब श्रीकृष्ण भगवान् और श्रीरामानुज स्वामी जी में तीसरे प्रकार से कार्य में समता बतलाई जाती है। "श्रुतेरपार्थान् अवरोपितवान्" यह तीसरा विशेषण है। यह विशेषण भी श्लेषालंकार के बल पर श्रीकृष्ण भगवान् और श्रीरामानुज स्वामी जी में समन्वय पाता है। श्रीकृष्ण भगवान् "श्रुतेरपार्थानवरोपितवान्" ऐसा कहे जा सकते हैं। संस्कृत भाषा में श्रुति शब्द के दो अर्थ हैं श्रोत्रेन्द्रिय और वेद। अपार्थ शब्द के भी दो अर्थ हैं। "अ—पार्थ" ऐसा छेद करने पर पाण्डवों के शत्रु दुर्योधनादि अर्थ हैं। "अप—अर्थ" ऐसा छेद करने पर "गलत अर्थ" अर्थ है।

विरुद्धान् दुर्योधनादीनित्यर्थः । तथा च श्रीकृष्णः पार्थशत्रून् दुर्योधनादीन् लोकस्य श्रवणेन्द्रियादवतारितवान् । तावत्पर्यन्तं एकः परस्य श्रवणेन्द्रियमधिरुढ इति लोके उच्यते यावत्पर्यन्तमेकस्य कीर्तिः परेण श्रूयेत । श्रीकृष्णो दुर्योधनादीन् तथा विनाशयामास यथा तेषां नामापि परे न शृणुयुः । द्रौपदीपरिभावनरूपं महापराधं चक्रुरिति दुर्योधनादयः श्रीकृष्णेन घातिताः । प्रतीकारशक्ताः सन्तोऽपि निश्चेष्टा भूत्वा द्रौपदी परिभवं ददृशुरितिहेतोर्भीष्मादयो घातिताः । अनेन हेतुना पार्थेष्वपि घात-

---

श्रीकृष्ण भगवान् ने महाभारत संग्राम में पाण्डवों के द्वारा उनके शत्रु कौरवों का वध कराया यहाँ तक उनके नाम तक को मिटा दिया । उनका नाम लेने वाला सुनने वाला कोई न रहा । जब कौरवों के नाम को कोई भी सुनना नहीं चाहता तब कहा जा सकता है कि श्रीकृष्ण भगवान् ने पाण्डवों के शत्रु कौरवों को लोगों को श्रोत्रेन्द्रिय से उतार दिया । यही बात संस्कृत में कही जाती है कि "श्रुतेरपार्थानवरोपितवान्" । श्रीकृष्ण भगवान को यह सब क्यों करना पड़ा ? इसलिये करना पड़ा कि कौरवों ने भरी हुई सभा में द्रौपदी को अपमानित करने की घृणित चेष्टा की । इससे श्रीभगवान् को कौरवों पर अपार क्रोध हो गया । राजा का यह प्रथम कर्तव्य है अपने राज्य में स्त्री की लज्जा की रक्षा करे । राजा ही उद्दण्ड होकर किसी स्त्री की लज्जा का हरण करने में उतारू हो जाय तो इससे बढ़कर अधर्म और क्या होगा ? इसी से अत्यन्त संतप्त श्रीभगवान् ने उस प्रसङ्ग में उपस्थित रहने वाले सबका संहार करने के लिये संकल्प कर दिया । यहाँ तक कि श्रीभीष्माचार्य और द्रोणाचार्य आदि का भी वध कराने के लिये संकल्प किया क्योंकि इन लोगों ने रोकने में समर्थ होते हुये भी नहीं रोका । पाण्डव

यितव्येषु सत्स्वपि द्रौपदीसौभाग्यसंरक्षणार्थमेतेन घातिता इति तत्त्वम् । अतः श्रीकृष्णः श्रुतेरपार्थानवरोपितवानिति वक्तुं युज्यते । श्रीभाष्यकारोऽपि तथा वक्तुं युज्यते । श्रीभाष्यकार-पक्षेश्रुतेरित्यस्य वेदस्येत्यर्थः । अपार्थानित्यस्य दुरर्थानित्यर्थः । तथा च श्रीभाष्यकारः शङ्करादिकुदृष्टिभिः श्रुतेरुपर्यारोपितान्

द्रौपदी के पति हैं, उन्हें रोकना चाहिये था। परन्तु उन्होंने धर्म पाशबद्ध होने के कारण नहीं रोका। परन्तु जब द्रौपदी श्रीभगवान् के शरण में आ गई, तब तो श्रीवैष्णवी हो गई। पाण्डव भी श्रीवैष्णव हैं। श्रीवैष्णवों का यह धर्म है कि दूसरे श्रीवैष्णव के अपमान प्रसङ्ग को रोक दें। पाण्डव भले ही पति के नाते न रोकें, किन्तु वैष्णवत्व के नाते द्रौपदी के अपमान घटना को रोकना उनका परम कर्तव्य था। पाण्डव लोग अपने कर्तव्य से च्युत हो गये थे। इसलिये वे भी श्रीभगवान् का कोप भाजन होने से परे नहीं हैं। श्रीभगवान् का उन पर भी अवश्य क्रोध था। परन्तु शरणागता द्रौपदी के सौभाग्य की रक्षा के लिये श्रीभगवान् को उन्हें बचाना पड़ा। इस रहस्य को श्रीदेशिक स्वामी जी ने "अपार्थान्" शब्द से सूचित किया। उससे प्रतीत होता है कि श्रीभगवान् ने पाण्डवों को छोड़कर दूसरों को ही लोगों के श्रोत्रेन्द्रिय से उतार दिया।

"श्रुतेरपार्थानवरोपितवान्" यह विशेषण भी श्रीभाष्यकार स्वामी जी में समन्वय पाता है। श्रीभाष्यकार पक्ष में श्रुति शब्द का वेद अर्थ है। अपार्थ शब्द का "गलत अर्थ" अर्थ है। श्रुति शब्द स्त्री लिङ्ग है। वेद को एक स्त्री समझना चाहिये। वेद रूपी स्त्री का मस्तक है वेदान्त अर्थात् उपनिषद्। परवादियों ने उपनिषदों के अनेक गलत अर्थ किये। मानों वेद रूपी स्त्री के वेदान्त रूपी मस्तक पर अपार्थों का ढेर

दुर्थान् अवरोपितवान् खण्डयित्वाऽवतारितवान् । तथा च कुदृष्टिकल्पितापार्थनिरसनेन श्रुतिवध्वाः प्रतारणभयं प्रशमय्याश्रुमार्जनं चकार। अस्यार्थस्य व्यञ्जनार्थमेव शमितोदयशङ्करादिगर्वैः इत्युक्तया फलितत्वेऽपि पुनरुक्तिः। अत इदमपि विशेषणं भाष्यकारेऽन्वेतीति तृतीयं कर्मैक्यं संपन्नम् । तदेवं त्रेधाकर्मैक्या-न्नामैक्याच्च श्रीरामानुजस्वामी श्रीकृष्णस्यावतार इति स्तुति-रुपपद्यत इति भावः ॥१३॥

इत्थं श्रीभाष्यकारः पञ्चायुधावतारः श्रीकृष्णस्यापरावतार

चढ़ा दिया। उस भार से वेद रूपी स्त्री बहुत खिन्न हो गई। उसके खेद को देख श्रीरामानुज स्वामी जी के मन में दया उमड़ आई। दया के वशीभूत होकर श्रीरामानुज स्वामी जी ने अपने सत्तर्क रूपी कर्तनी (कैंची) से उन अपार्थों को काटते हुये श्रुति वधू की वेदान्त रूपी मस्तक से उतार दिया। इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् ने लोगों की श्रुति से अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय से अपार्थों को पार्थ (पाण्डव) शत्रुओं को उतार दिया। श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने श्रुति से अर्थात् वेद से अपार्थों को अर्थात् गलत अर्थों को उतार दिया। श्रुति से अपार्थों का उतारना दोनों का कार्य है।

इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् और श्रीरामानुज स्वामी जी में तीन प्रकार से कर्मों में एकता "रामानुज" ऐसा नाम में एकता पाई जाती हैं। अतः श्रीकृष्ण भगवान का दूसरा अवतार ही श्रीरामानुज स्वामी जी हैं। इनकी स्तुति ही श्रीकृष्ण चन्द्र की स्तुति है ॥१३॥

श्रीदेशिक स्वामी जी ने इसके पूर्ववर्ती दो श्लोकों द्वारा सिद्ध किया कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी श्रीभगवान् के पञ्चायुधों के अवतार हैं

इति सिद्धिमात्रेण स्तुतिर्न शोभते तेन स्तुतिप्रवर्तकः कोनु महोपकारो व्यधायीत्यत्र सर्वार्थसाधिकानां श्रुतीनां यथावस्थितार्थवर्णनेन प्रतिष्ठापनमेव तत्कृतो महोपकारः किमयं स्तुतौ न पर्याप्तो हेतुरित्यभिप्रेत्याह—

अबहुश्रुतसंभवं श्रुतीनां
जरतीनामयथायथप्रचारम् ।
विनिवर्तयितुं यतीश्वरोक्तिः
विदधे ताःस्थिरनीतिपञ्जरस्थाः ॥१४॥

तथा श्रीकृष्ण भगवान् के अपरावतार हैं। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि भले ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी अवतार हों, इतने ही से उनकी स्तुति का औचित्य सिद्ध नहीं होता। यदि श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने कोई विशिष्ट महोपकार किया हो, तो उनकी स्तुति उचित मानी जायेगी। ऐसा कौन सा महोपकार उन्होंने किया ? इस प्रश्न का उत्तर इस श्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी देते हैं कि कल्याणकारी सर्वार्थों को बतलाने वाले वेदों के यथावस्थित अर्थ का वर्णन कर श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने ऐसा महोपकार किया जो कि दूसरों के द्वारा साध्य नहीं था, अतः उनकी स्तुति करना उचित ही है।

यतीश्वरोक्तिः—यतिराज की सूक्ति ने, *जरतीनां श्रुतीनाम्*—जीर्णता अवस्था को पहुँचाई गई श्रुतियों का, *अबहुश्रुतसंभवं अयथायथप्रचारं*—जो बहुश्रुत नहीं हैं ऐसे लोगों द्वारा किये गये उलटे प्रचार को, *विनिवर्तयितुं*—रोकने के लिये, *ताः*—उन श्रुतियों को, *स्थिरनीतिपञ्जरस्थाः विदधे*—स्थिर नीति के पञ्जर (पिंजड़े) में स्थापित किया।

अत्र श्लोके पक्षिदृष्टान्तो गूढो वर्तते, स विव्रियते लोके दृश्यते यत् बालिशा अत्युत्तमान् शुकशारिकादिस्त्रीपक्षिणो लीलार्थं परिगृह्य तेषां सौकुमार्यादिकमविजानन्तो यथेच्छं तेषां पक्षशिरःपादाद्यङ्गानि क्लेशयन्ति ते पक्षिणो जीर्णाङ्गा भूत्वा यथावत् संचाराक्षमा उड्डयितुमसमर्था अयथायथं प्रचरन्तो वर्तन्ते। तद्दर्शी कारुणिकः कश्चित्समर्थः भृत्यद्वारा बालिशानामंगुली-प्रवेशस्यापि रोधकं लोहमयं पञ्जरं निर्माय तदभ्यन्तरे तान् पक्षिणः संरक्षति। अयं दृष्टान्तः। तथा अल्पज्ञैः शङ्करादिभिः

इस श्लोक में दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक रूप में जो बातें कही गई हैं, सुगमता के लिये इनका निरूपण आरम्भ में किया जाता है। लोक में देखा जाता है कि शुक और शारिका इत्यादि स्त्री पक्षिगण स्वेच्छा से वन में संचार करते रहते हैं। इनको जब अल्पज्ञ बालक देख लेते हैं, तब खेलने के लिये किसी तरह से उन्हें पकड़ लेते हैं। बालक उन पक्षियों की सुकुमारता को जानते तो नहीं, उन पक्षियों को खेलने के लिये इधर उधर खींचते हुये उनके सिर पंख और चरण इत्यादि अंगों में चोट पहुँचाते हैं। इससे उन पक्षियों के अङ्ग प्रत्यङ्ग जीर्ण हो जाते हैं। इसलिये वे पक्षिगण अच्छी तरह से संचार नहीं कर सकते उड़ नहीं सकते कष्ट पाते हैं। इन पक्षियों पर जब किसी दयालु राजा की दृष्टि पड़ती है, तो राजा अपनी कन्या को बुलाकर आज्ञा देता है कि 'लोहे का सुदृढ़ पिञ्जर बनवाओ जिसमें लड़कों की उंगुली तक घुस न सके, इनमें इन पक्षियों को रखकर पालो, इनके मधुर भाषण को सुनकर सब आनन्दित हो जायँ।' राज कन्या भी वैसे ही करती है। वे पक्षिगण आनन्द से सुखमय जीवन बिताते हैं। यह दृष्टान्त हुआ। अब दार्ष्टान्तिक देखें।

स्वसाधकत्वेन श्रुतीः परिगृह्य वेदावयवानां भञ्जनस्यायथार्थ-वर्णनरूपस्येतस्तत आकर्षणस्य च करणात् तज्जंश्रुतीनामयथा-यथप्रचारं वीक्ष्य दयालुः समर्थः श्रीभाष्यकारः स्वसूक्तिद्वारा—

श्रुति अर्थात् वेद ही वे पक्षी हैं। इनके पूर्व भाग और सिद्धान्त भाग ऐसे दो पक्ष जमे हुये हैं। इन पक्षों के सहारे वे वेद पक्षी श्रीभगवान् के कल्याण गुण रूपी शीतल छायाप्रद उपवन में स्वेच्छा से विचरण करते हैं। मतान्तर के आचार्य अल्पज्ञ बालक हैं। वे कभी उन वेद पक्षियों को देख लेते हैं। जैसे बालकगण उन पक्षियों को खेलने के लिये पकड़ लेते हैं, वैसे ही मतान्तर के आचार्य सिद्धान्त स्थापना के लिये वेदों को प्रमाण रूप में पकड़ लेते हैं। जिस प्रकार बालक उन पक्षियों की सुकुमारता को नहीं जानते हैं, उसी प्रकार ये मतान्तर-वादी आचार्य गण भी इन वेदों के मर्म को नहीं समझते। जैसे वे बालक खेलने के लिये उन पक्षियों को इधर उधर खींचते हुये उन पक्षियों के मस्तक इत्यादि अङ्गों में चोट पहुँचाते हैं, वैसे ही मतान्तर वादी आचार्य गण भी अपने २ मत की स्थापना के लिये उन वेद वाक्यों को इधर उधर मनमानी खींचते हुये उनमें गलत अर्थ करना इत्यादि नाना प्रकार के चोट पहुँचाते हैं। चोट पहुँचने से जैसा वे पक्षी क्लेश पाते हैं वैसे ही गलत अर्थ लगाने से वेद भी क्लेश पाते हैं। बारम्बार चोट लगने से जैसे उन पक्षियों के अङ्ग जीर्ण हो जाते हैं, वैसे ही गलत अर्थ लगाने पर प्रत्येक वेद वाक्य विकृत हो जाता है। जिस प्रकार चोट से खिन्न पक्षी स्वेच्छा से संचार नहीं करते हैं, उसी प्रकार गलत अर्थों का प्रचार होने के कारण वेद भी अपने अभि-मत अर्थ का प्रतिपादन नहीं कर पाते हैं। जिस प्रकार उन दीन पक्षियों पर किसी दयालु समर्थ राजा की दृष्टि पड़ती है, उसी प्रकार दीन दशा

शङ्करादिभिरभेद्यन्यायरूपं दृढपञ्जरं निर्माय तत्र श्रुतीरवस्थाप्य प्रतिष्ठितार्थांश्चकार । अयमर्थोऽस्मिन् श्लोके दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकरूपेण प्रतिपाद्यते।

*"अबहुश्रुतसंभ्रमम्" श्रुतीनामयथायथप्रचारोऽबहुश्रुते-

में पहुँचे इन वेदों पर सर्व समर्थ परम दयालु हमारे श्रीयतिराज की दृष्टि पड़ी। जिस प्रकार वह राजा तुरन्त अपनी कन्या को बुलाकर आज्ञा देता है कि लोहे के ऐसे सुदृढ़ पिञ्जर बनवाओ, जिसमें बदमाश लड़कों की उंगुली तक घुस न सके उनमें इन पक्षियों को रखकर पालो कि इनके मधुर शब्दों को सुनकर सब आनन्दित हो जायें। इस प्रकार यहाँ श्रीयतिराज ने अपनी सूक्ति को आदेश दिया है कि अकाट्य समीचीन तर्कों से ऐसे अनेक सुदृढ़ न्यायों को प्रतिपादन करो जिन न्यायों का खण्डन कभी परवादियों से न हो सके। उन न्याय रूपी पिञ्जरों में इन वेद रूपी पक्षियों को रखकर पालो, कि इन वेदों के मधुर सदुपदेशों को सुनकर सब आनन्दित हो जायें। जिस प्रकार राजकन्या अकाट्य लोहे से सुदृढ़ पिञ्जर बनाकर उनमें पक्षियों को रखकर पालती है। उसी प्रकार श्रीयतिराज की श्रीभाष्यादि रूपी दिव्य सूक्ति अकाट्य तर्कों से मीमांसा न्यायों को सुदृढ़ बनाकर उनमें श्रुति रूपी पक्षियों को रखकर पालती हैं। श्रीयतिराज दिव्य सूक्ति से परिपालित वेदों के सदुपदेश को सुनकर सभी जीव आत्म कल्याण प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार बालकों की यातनाओं से बचाये गये वे पक्षिगण उस राज कन्या से पालित होकर सुखमय जीवन बिताते हैं, उसी प्रकार मितज्ञ परवादियों से दी गई गलत कल्पना रूपी यातनाओं से बचाये गये वेद श्रीयतिराज की दिव्य सूक्ति से पालित होकर आनन्द से जगत में प्रचार रूपी जीवन प्राप्त करते हैं। यह अर्थ इस श्लोक से प्रतिपादित होता है।

रल्पज्ञैरेव संभूतः । यदि ते बहुश्रुता अभविष्यन् तर्हि नैवं श्रुती-नाभितस्ततः कर्षणमकरिष्यन् । सर्वथाज्ञानाभावेऽपि उदासीना एवाभविष्यन् । अल्पश्रुतत्वादेव तैरेवमकारि । वालिशा अपि शुकशारिकादयो विहङ्गाः भोगार्हा इति ज्ञानेऽसति तेषां समीपं नैवोपसर्पेयुः । तेषां मधुरभाषणाङ्गसौकुमार्यादिविषये विशेषज्ञाने

"अबहुश्रुतसंभवम्"—विद्वान दो प्रकार के होते हैं एक बहुश्रुत और दूसरे अबहुश्रुत । वे विद्वान बहुश्रुत कहलाते हैं जिन्होंने अनेक सद्-गुरुओं की परिचर्या कर उनसे अनेक सूक्ष्मार्थों को सुनकर हृदयंगम कर लिया हो । वे विद्वान अबहुश्रुत कहलाते हैं जिन्होंने एकाध सद्गुरु से थोड़े से अर्थों को सुन लिया हो । ये अबहुश्रुत मितज्ञ विद्वान ही वेदों का मनमाना अर्थ कर ऊटपटाँग ढँग से प्रचार करते हैं । इन लोगों के द्वारा ही वेदों का गलत प्रचार होता है । यदि ये विद्वान्गण बहुश्रुत होते तो मनमाना अर्थ करने के लिये वेदों की ऐसी खींचातानी नहीं करते, प्रत्युत वेदों का यथार्थ अर्थ लगा कर प्रचार करते । यदि वे विद्वान सर्वथा ज्ञानशून्य होते तो वेदों के अर्थ करने से तो दूर रहते । ये वादिगण सर्वथा ज्ञानशून्य नहीं बहुश्रुत भी नहीं अतएव वेदों को इधर उधर खींचकर मनमाना अर्थ करने लगे । इन परवादियों के कारण ही वेदों का गलत अर्थों में प्रचार होने लगा । दृष्टान्त में भी यह बात घटती है । जो बालक इस बात को बिलकुल नहीं जानते कि शुक और शारिका इत्यादि पक्षिगण हम लोगों को आनन्दित कर सकते हैं । वे सर्वथा ज्ञानशून्य बालक शुक और शारिकाओं के पास तक नहीं जायँगे । अथवा जो बालक उन पक्षियों के मधुर भाषण और अङ्गों की सुकुमारता के विषय में विशेष ज्ञान रखते हों, वे उन पक्षियों को इधर उधर मनमाने ढंग से खींचकर कष्ट नहीं देते प्रत्युत उन पक्षियों के

गति तेषांस्वैरमञ्चारं वीक्ष्य नन्देयुः। अनुभयकोटिनिविष्टत्वादेव बालिशाः पक्षिणां क्लेशं ददतीति भावः।

*"जरतीनां श्रुतीनाम्" जीर्णाङ्गानां श्रुतीनामित्यर्थः। बालिशैः पक्षिणामव्यवस्थितरूपेणेतस्ततः कर्षणेन तेषामङ्गानि जीर्णानि भवेयुः। तथैव श्रुतीनामपि अन्यथश्रुतैः स्वाभिमतार्थे नयने क्रियमाणे तासां वाक्यावयवाः क्लिष्टार्थाः संपद्यन्ते। इयमेव श्रुतीनां जीर्णाङ्गता। वेदानामिति पुंलिङ्गपदेनानिर्दिश्य श्रुतीनामिति स्त्रीलिङ्गशब्देन निर्देशात् श्रुतीनां स्त्रीपक्षिणामिव स्वभावतः कोमलत्वात्क्लेशासहत्वं व्यज्यते। यद्यपि शङ्करादिभिः

श्रुतीनां पूर्वभागोविशेषेणान क्लेशितः शिरोरूपउपनिषद्भाग एव विशिष्य क्लेशितः तथापि शिरः क्लेशनजा वेदना पूर्वकायमपि व्याप्नुयादेव न सन्देहः। उपनिषत्प्रतिपाद्याराध्यतत्वविषये विपर्यये जाते आराधनरूपकर्मप्रतिपादकांशस्यापि विषयेऽन्यथाप्रतिपत्तिर्जायत एवेत्यनुक्तिसिद्धम्।

*"अयथायथप्रचारं विनिवर्तयितुम्" यथायथप्रचारस्याभावः अयथायथप्रचारम् अर्थाभावेऽव्ययीभावः तत् यथावस्थितार्थावोधकत्वम्। पक्षिपक्षे यथावस्थितगमनादिसञ्चाराभाव-

---

के कारण क्लिष्ट अर्थों को सह नहीं सकती हैं।

यद्यपि मतान्तरस्थ आचार्यों ने वेदों के पूर्व भाग कर्म काण्ड की व्याख्या नहीं की उपनिषद् रूपी ब्रह्मकाण्ड पर ही व्याख्या की, जो वेदों का शिर कहलाता है। इससे सिद्ध होता है कि उन्होंने वेदों के मस्तक भाग में ही क्लेश पहुँचाया। तथापि शिर के कुचलने पर होने वाली वेदना जिस प्रकार सभी अङ्गों में व्याप्त होती है, उसी प्रकार वेदों के मस्तक रूपी उपनिषदों के गलत अर्थ करने से होने वाली भ्रान्ति कर्मकाण्ड में भी लग जाती है। कर्मों के आराध्य ईश्वर उपनिषदों के प्रतिपाद्य अर्थ हैं; ईश्वराराधन रूपी कर्म पूर्वकाण्ड का प्रतिपाद्य है। आराध्य ईश्वर तत्व के विषय में होने वाली भ्रान्ति आराधन रूपी कर्मों में भी हो जाती है। अतः सिद्ध हुआ कि उपनिषदों के गलत अर्थ करने से होने वाला भ्रम कर्मकाण्डों में भी फैल जाता है। परवादियों ने उपनिषदों का गलत अर्थ कर सम्पूर्ण वेदार्थों में भ्रम फैलाया।

"अयथायथप्रचारं विनिवर्तयितुम्" उन बालकों के कारण जिस प्रकार पक्षियों में अच्छी तरह उड़ने की क्षमता रही नहीं है उसी प्रकार अल्पज्ञ

मित्यर्थः। *विनिवर्तयितुम्—विशेषेण निवर्तयितुम् इत्यर्थः।

•"यतीश्वरोक्तिः" यतिराजसूक्तिरित्यर्थः। लोके प्रजाना-मार्तिसंभवे स्त्रीद्वारा तन्निवर्तनं राज्ञो न्यायप्राप्तम् अतो यतिराजोऽपि सूक्तिस्त्रीद्वारा निवर्हितवानित्युपपन्नम्। किं च स्त्रीणामार्तिसंभवे स्त्रीद्वारा तन्निवर्तनमेवयुक्तमिति यतिराजः श्रुतीनां स्त्रीणां जातं क्लेशं सूक्तिरूपया स्त्रियैव निवर्तितवानिति भावः।

यतीश्वरोक्तिः कथं श्रुतीररक्षेत्यत्राह *"ताः स्थिरनीति-पञ्जरस्था विदधे" इति। ताः सर्वाः श्रुतीर्युक्त्या ररक्ष। भेद श्रुते रक्षणे क्रियमाणेऽभेदश्रुतिरगतिकास्यादिति दुरवस्था प्राप्ता अभेदश्रुतेरक्षणे क्रियमाणे भेदश्रुतिरगतिकास्यादिति दुरवस्था प्राप्ता। अस्यां दशायां यतिराजसूक्तिरुभयविधानामपि श्रुतीनां

परवादियों के कारण श्रुतियों में भी सही अर्थ को बतलाने में क्षमता न रही। इसे अवश्य दूर करना चाहिये।

"यतीश्वरोक्तिः" जिस प्रकार उन पक्षियों की अक्षमता को दूर करने के लिये राजकन्या ने प्रयास किया, उसी प्रकार वेदों की अक्षमता को दूर करने के लिये यतिराज श्रीरामानुज स्वामी जी की सूक्ति ने प्रयास किया। जिस प्रकार राजा लोग प्रजा में उपस्थित क्लेश को स्त्रियों के द्वारा दूर करते हैं उस प्रकार श्रीयतिराज ने श्रुति रूपी स्त्री के क्लेश को सूक्ति रूपी स्त्री के द्वारा किया। यह ध्यान देने योग्य है कि यहाँ सूक्ति शब्द स्त्री लिङ्ग है।

"विदधे-ताः स्थिरनीतिपञ्जरस्थाः" श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति ने उन श्रुतियों की अच्छी तरह रक्षा की। जिस प्रकार राज कन्या आपस में लड़ने वाले उन पक्षियों के विरोध को शान्त कर उनकी

व्याकोपं प्रशमय्य ररक्ष । इत्थं परस्परविरुद्धार्थतया प्रतीयमानाः सर्वा अपि श्रुतीर्यथावस्थितार्थवर्णनेन ररक्षेत्यर्थः ।

रक्षणप्रकारमेवाह "स्थिरनीतिपञ्जरस्था विदधे" इति । यथा राजकन्या बालानामंगुलिप्रवेशस्याप्यनर्हे दृढेऽयोमये पञ्जरे निधाय तान् पक्षिणो रक्षति, तथा यतीश्वरोक्तिः शङ्कराद्यभेद्य-मीमांसान्यायेष्ववस्थाप्य ताः श्रुती ररक्षेति भावः । स्थिरपदेन शङ्कराद्युक्तन्यायानामस्थैर्यं श्रीभाष्यकारश्रीसूक्तिसिद्धन्यायानां स्थैर्यं च गम्यते ॥१५॥

पूर्वश्लोकोक्तरीत्या सिद्धान्तस्थापकत्वाच्छ्रीभाष्यकारस्य-स्तुत्यत्वे श्रीभाष्यकारात्प्राचीनाः श्रीमहापूर्णप्रभृतय आचार्याः

रक्षा करती है। उसी प्रकार यतिराज की सूक्ति ने भेद प्रतिपादक श्रुति और अभेद प्रतिपादक श्रुतियों में होने वाले विरोध को शान्त कर सब श्रुतियों की रक्षा की।

श्रीभाष्यकारादर्वाचीनाः श्रीप्रणतार्तिहरप्रभृतय आचार्याश्च दर्शन-स्थापकाः सन्तीति तान् हित्वा श्रीभाष्यकार एव कुतो विशिष्य स्तूयते, इत्यत्र यथा नवरत्नमयस्य हारस्य मध्येऽत्युत्तमस्य निरतिशयदीप्तियुक्तस्य कस्यचिन्नायकरत्नस्य योजने कृते स हारो निरतिशयशोभायुक्तः सन् हृदयंगमो भवति तथाऽस्यां गुरु-पंक्तौ मध्ये श्रीभाष्यकारस्य विराजमानत्वादेवेयं गुरुपंक्तिर्निरतिश-यशोभायुक्ता सती विबुधानां हृदयंगमा भवतीति नायकरत्नाय-मानः श्रीभाष्यकार एव स्तुत्यो भवतीति तत्स्तुतिरेवान्येषां स्तुति-

---

स्वामी जी से प्राचीन श्रीमहापूर्ण स्वामी जी इत्यादि आचार्य गण ने भी सिद्धान्त का प्रचार किया, श्रीरामानुज स्वामी जी के बाद श्रीप्रण-तार्तिहराचार्य इत्यादि आचार्य गण ने भी सिद्धान्त की स्थापना की। ऐसी स्थिति में उनकी स्तुति क्यों नहीं की जाती है ? श्रीरामानुज स्वामी जी की ही स्तुति क्यों की जाती है ? गुरुपरम्परा में इन सभी आचार्यों का समावेश सर्वसंमत है, ऐसी स्थिति में यह विषमता क्यों ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि जिस प्रकार नवरत्नमय हार के बीच में किसी अपार दीप्ति सम्पन्न अत्युत्तम नायक रत्न हार के बीच में गूंथा जाने वाला रत्न के गूंथने पर वह हार अपार कान्ति सम्पन्न होता है, रत्न तत्व को समझने वाले महानु-भावों के हृदय में विराजता है, उसी प्रकार इस गुरुपरम्परा के बीच में श्रीभाष्यकार स्वामी जी के विराजने के कारण यह गुरुपरम्परा अत्यु-ज्वल हुई तथा इसने विद्वानों के हृदय में स्थान पाया। अतः नायक रत्न के समान विराजने वाले श्रीभाष्यकार स्वामी जी की स्तुति करनी चाहिये। उनकी स्तुति करने से सबकी स्तुति सम्पन्न हो जाती है। इस उत्तर के समर्थन के लिये श्रीदेशिक स्वामी जी इस श्लोक में श्रीगुरु-

रिति प्रतिपिपादयिषन् श्रीदेशिकः पूर्वोक्तगुरुपरम्परां हारत्वेन श्रीभाष्यकारं च नायकरत्नत्वेन रूपयति—

अमुना तपनातिशायिभूम्ना
यतिराजेन निबद्धनायकश्रीः ।
महती गुरुपंक्तिहारयष्टिः
विबुधानां हृदयंगमा विभाति ॥१५॥

"तपनातिशायिभूम्ना" तपनवदतिशयितभूम्नेत्यर्थः । तपनस्य यथा सर्वग्रहातिशयितभूमत्वं स्वाभाविकम् तथा श्रीभाष्यकारस्यापि सर्वगुर्वतिशयितभूमत्वं स्वाभाविकमिति भावः । हारेऽपि नायकरत्नमतितेजोवद्भवति नायकरत्नापेक्षयाऽन्यानि-

---

परम्परा को हार के रूप में श्रीभाष्यकार स्वामी जी को नायक रत्न के रूप में चित्रित किया है ।

रत्नानि अल्पकान्तिमन्ति भवन्ति तथात्र गुरुपंक्तौ अन्ये गुरवः श्रीभाष्यकारापेक्षयाऽल्पभूमानो भवन्तीति सूचितं भवति।

अथवा "तपनातिशायिभूम्ना" तपनादप्यतिशयितमहिम्नेत्यर्थः। तमोनिवारकत्वादुभयोः साम्यम्। सूर्यः स्वतेजसा बाह्यान्धकारमात्रं निवर्तयति अयं तु स्वप्रभावेण तदनिवर्त्यमान्तरान्धकारमपि निवर्तयतीति ततोऽप्यतिशयितभूमेति भावः।

सूर्यसमत्वेन सूर्याधिकत्वेन वा प्रतिपादितस्यास्य किं तद्वदौग्र्यमप्यस्तीत्यत्राह "यतिराजेन" इति। अत्र राजशब्दश्चन्द्रपरः। यतीराजेवेति विग्रहः। अयं श्रीभाष्यकारश्चन्द्रवच्छीतल-

---

स्वभावः आह्लाद करश्चेत्युच्यते। "राजा प्रकृतिरञ्जनात्" इति ह्युच्यते। आभ्यां पदाभ्यां रत्नस्य हारमध्ये नायकरत्नत्वेन निवेशनौपयिकी आर्हन्तीव श्रीभाष्यकारस्य गुरुपंक्तिमध्ये निवेशनौपयिकी आर्हन्ती उक्ताभवति। "गुशब्दोह्यन्धकारे स्यादुशब्दस्तन्निवर्तकः" इत्युक्तरीत्याऽन्धकारनिवर्तकगुरुपंक्तिमध्ये निवेशनापादकमस्यान्धकारनिवर्तकत्वादिकं किमस्तीत्यत्र अयमान्तरान्धकारनिवर्तकत्वात्सूर्यापेक्षयाऽधिकमाहात्म्यवान् चन्द्रापेक्षयाऽधिकाह्लादकरश्चेत्युक्तं भवति।

"अमुना" "वृक्षे वृक्षे च पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम्"

होगी ? संस्कृत भाषा में राजन् शब्द चन्द्रमा को भी बतलाता है, अतः चन्द्रमा के समान श्रीभाष्यकार स्वामी जी यतिराज कहलाते हैं। हार के बीच में वही रत्न नायक रत्न के रूप में गूंथा जायेगा जो अधिक तेज वाला हो आनन्द दायक हो। गुरु उनको कहते हैं जो अज्ञानान्धकार को दूर करते हों। गुरुपरम्परा रूपी हार के बीच में वही गुरुनायक रत्न के रूप में गूँथे जा सकते हैं जो अधिक प्रभाव वाले हों तथा आह्लादकारी हों। श्रीरामानुज स्वामी जी अज्ञानान्धकार को दूर करने से सूर्य से अधिक प्रभाव रखते हैं, चन्द्रमा की तरह आह्लादकारी हैं। अतः इनको नायकरत्न मानना उचित ही है। यही इन दो पदों का तात्पर्य है।

"अमुना" ये श्री भाष्यकार स्वामी जी ही नायकरत्न हैं। श्री वेदान्त देशिक स्वामी जी को अनवरत ध्यान के कारण श्री रामानुज स्वामी जी प्रत्यक्ष थे। इसलिये श्री देशिक जी यहाँ पर कहते हैं कि "ये रामानुज स्वामी जी"। श्री वाल्मीकि रामायण में मारीच ने रावण से

इत्युक्तरीत्या यथा मारीचस्यानवरतभावनया श्रीरामः प्रत्यक्षो भाति स्म, तथा श्रीदेशिकस्यापि अनवरतभावनया श्रीभाष्यकारः प्रत्यक्षो भाति स्म। अतोऽमुनेति निर्दिश्यते।

"निबद्धनायकश्रीः" हारे नायकरत्नस्य मध्ये योजनेन यथा

कहा कि "वृक्षे वृक्षे च पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम्" अर्थात् मैं चीर और कृष्णाजिन को धारण करने वाले श्रीरामचन्द्र जी को प्रत्येक वृक्ष में देखता हूँ। मारीच श्रीरामचन्द्र जी से भयभीत होकर सर्वदा श्रीरामचन्द्र जी का ध्यान करता था। जो मनुष्य किसी से डर जाता है उसका उसे बारम्बार स्मरण होता है। ऐसा भी लोक में देखा जाता है कि किसी वस्तु का अनवरत स्मरण करने पर वही वस्तु प्रत्यक्ष दीखने लगती है। जब मारीच भी भय के कारण श्रीरामचन्द्र जी का अनवरत स्मरण करता था, तब उसको दिखाई देता है कि रामचन्द्र जी सामने खड़े हैं। अतएव वहाँ पर मारीच ने कहा कि मैं प्रत्येक वृक्ष में श्रीरामचन्द्र जी को देख रहा हूँ। श्रीदेशिक स्वामी जी प्रेम वृद्धि के कारण श्रीरामानुज स्वामी जी का अनवरत ध्यान करते थे, उस समय इनको श्रीरामानुज स्वामी जी प्रत्यक्ष दिखाई देते थे। अन्तर इतना ही है कि मारीच शत्रु होने के कारण भय से श्रीरामचन्द्र जी का अनवरत स्मरण करता था। हमारे श्रीदेशिक स्वामी जी शिष्य होने के कारण प्रेम से श्रीरामानुज स्वामी जी का अनवरत स्मरण करते थे, श्रीरामानुज स्वामी जी इनको प्रत्यक्ष दिखाई देते थे। अतएव श्रीदेशिक स्वामी जी यहाँ पर कहते हैं कि "ये यतिराज"।

"निबद्धनायकश्रीः" जिस प्रकार हार के बीच में नायक रत्न को गूँथने पर उस हार की शोभा बढ़ती है उसी प्रकार इस गुरुपरम्परा के

हारे शोभा वर्धते तथा श्रीभाष्यकारस्य मध्ये योजनेन गुरुपंक्तेः शोभा वर्धत इति भावः।

"महती गुरुपंक्तिहारयष्टिर्विबुधानां हृदयंगमा विभाति"। हृदयशब्दो वक्षश्चित्तं च वदति। यथा नवरत्नमाहात्म्यवेदिनो महानुभावाः महार्घां हारयष्टिं वक्षसि धारयन्तो नन्दन्ति, अनेवं विधा वानरप्रकृतयस्तु छिन्दन्ति।

"आघ्रातं परिचुम्बितं परिमुहुर्लीढं पुनश्चर्वितं
त्यक्तं वा भुवि नीरसेन मनसा तत्र व्यथां मा कृथाः।

बीच में श्री भाष्यकार स्वामी जी के विराजने के कारण इस गुरुपरम्परा की शोभा बढ़ती है।

"महती गुरुपंक्तिहारयष्टिर्विबुधानांहृदयंगमा विभाति" जिस प्रकार रत्न तत्व को समझने वाले महानुभाव अति तेजिष्ठ आह्लादकारी उत्तम नायक रत्न से अलंकृत रत्न हार को वक्षः स्थल में धारण कर आनन्दित होते हैं और उन विज्ञ महानुभावों के वक्षः स्थल में विराज कर रत्न हार शोभा पाता है, उसी प्रकार आचार्य तत्व को समझने वाले महानुभाव सूर्य से भी अधिक तेज वाले तथा आनन्द देने में चन्द्रमा के समान श्रीरामानुज स्वामी जी से अलंकृत इस गुरु परम्परा को हृदय में धारण कर आनन्दित होते हैं। इन विज्ञ महानुभावों के हृदय में विराज कर यह गुरु परम्परा भी सुशोभित हो रही है। रत्न तत्व को समझने में असमर्थ वानरों के हाथ में पड़ने पर रत्नहार छिन्न भिन्न हो जाता है, जैसे किसी कवि ने रत्न को सम्बोधित करते हुए कहा कि "हे उत्तम रत्न ! तुम को इस वानर ने सूँघा चुम्बन किया, वारम्वार जीभ से चाटा, वारम्वार चवाया; आखिर में उदास होकर जमीन में फेंक दिया

हे सद्रत्न तवैतदेव कुशलं यद्वानरेणादराद्
अन्तः सारविलोकनव्यसनिना चूर्णीकृतं नाश्मना" ॥

इति ह्युच्यते। तथेमां पूज्यां गुरुपंक्तिमभिज्ञा हृदयंगमीकृत्य नन्दन्ति अनभिज्ञास्तु दूषयन्ति, अनभिज्ञनिन्दनेन न हानिः अभिज्ञाभिनन्दनमेवोत्कर्षापादकमिति भावः। अतोऽत्र गुरुपंक्तिहारमध्ये नायकरत्नायमान श्रीभाष्यकारस्य स्तुतौ सर्वेऽप्याचार्यास्स्तुतप्राया भवन्तीति श्रीभाष्यकार एव स्तोतव्य इति समर्थितं भवति।

अत्र 'महतीगुरुपंक्तिहारयष्टिः' इति स्त्रीलिङ्गनिर्देशेन 'निबद्धनायकश्रीरिति' नायकपदोपदानेन च काचिदुत्तमस्त्री स्वानुरूपस्य सूर्यवत्तेजोनिधेश्चन्द्रवदाह्लादकस्योत्तमनायकस्य योगेनात्यन्तं

इससे तुम दुःख मत पाओ। इसे ही तुम अपना भाग्य समझो कि इस वानर ने तुम्हारे भीतरी सार को देखने की इच्छा से तुमको पत्थर से चूर चूर नहीं किया इसमें तुम अपनी कुशल समझो।" इसी प्रकार आचार्य तत्व को न समझने वाले मूर्ख ही इस गुरु परम्परा का अनादर करेंगे। इससे गुरु परम्परा की कोई हानि नहीं। प्रत्युत विद्वानों से आदृत होने के कारण इसकी महिमा बढ़ेगी ही।

अतः इस गुरु परम्परा रूपी हार के मध्य में नायक मणि के रूप में विराजने के कारण श्रीरामानुज स्वामी जी की ही स्तुति करनी चाहिये। उनकी स्तुति से ही इतर आचार्यों की भी स्तुति सम्पन्न मानी जायगी।

इस श्लोक में गुरु परम्परा का स्त्री लिंग से निर्देश है तथा 'नायक' शब्द का भी उल्लेख है, इससे यह भाव भी ध्वनित होता है कि जिस प्रकार कोई उत्तम स्त्री अति तेजस्वी आनन्द दायक अनुरूप पति का संग

शोभमाना मातापित्रादीनामभिनन्द्या हृदयंगमा भवति अर्थान्तरं ध्वन्यते ॥१५॥

पूर्वश्लोकेषु यदुक्तं श्रीभाष्यकारः परपक्षान्निरस्य सिद्धान्तं स्थापयामासेति, तत् कथं संगच्छेत ? श्रीभाष्यकारपक्षोऽपि ततोऽपि प्रबलैरन्यैः कुतो न छिद्येत ? छेदे श्रीमन्नारायण एव परतत्वमिति कथं नु सिध्येत ? तदा श्रीभाष्यकारसम्बन्धिनः सर्वेऽपि परतत्वनिर्णयाभावात् पाषण्डोपहता देवतान्तरपरा आसुरप्रकृतयश्च संपद्य भूभारायमाणाः किल भवेयुरिति शङ्कायामतिदुर्बलकुहनायुक्तचातुर्यैरेभिः कुदृष्टिभिः श्रीभाष्यकार पक्षः

पाकर अत्यन्त सुशोभित होती है तथा माता पिता इत्यादि बन्धुजनों के हृदय में उत्तम स्थान पाती है, उसी प्रकार यह गुरु परम्परा भी अति तेजस्वी श्रीरामानुज स्वामी जी संबद्ध होकर सुशोभित होती है, विद्वानों के हृदय में उत्तम स्थान प्राप्त करती जाती है ॥१५॥

सर्वथाऽच्छेद्य एवेत्यत्र न सन्देहः महापर्वतपक्षच्छेदिवज्रायुधधरेन्द्रसंनिभैः प्रबलयुक्त्यायुधैः परवादिभिरप्ययं श्रीभाष्यकारपक्षश्च्छेत्तुं न शक्यते एवं विधोऽस्य प्रभावः, अतः श्रीमन्नारायण एव परतत्त्वमिति सिद्धान्तस्य च्युतिरसंभाविनी, तत्संप्रदायनिष्ठः

यह है कि वेदों का गलत अर्थ करने वाले कुदृष्टि कहलाते हैं इन कुदृष्टियों से श्री भाष्यकार स्वामी जी से प्रतिष्ठापित सिद्धान्त का खण्डन होना असंभव है क्योंकि इनके पास जो युक्ति रूपी आयुध हैं, वे अति दुर्बल हैं। उनसे खण्डन नहीं हो सकता क्योंकि यह सिद्धान्त प्रबल प्रमाण और तर्कों के बल पर प्रतिष्ठित है। जिस प्रकार किसी पर्वत का कोई भाग कोमल पुष्पों के प्रहार से नहीं टूट सकता, वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी का पक्ष भी इन दुर्बल कुयुक्तियों से खण्डित नहीं हो सकता। पुराणों में यह कथा वर्णित है कि पूर्वकाल में पर्वतों के पक्ष (पंख) थे, इन्द्र ने वज्रायुध से उन पर्वतों के पक्षों को काट कर गिराया, तब से पर्वत उड़ न सके। उत्तरकाल में यदि इन्द्र के समान प्रबल वादिगण उत्पन्न हों, उनके पास वज्रायुध के समान प्रबल-तर्क रूपी आयुध भी हों तो भी यह श्रीभाष्यकार स्वामी जी का पक्ष उनसे खण्डित नहीं हो सकता। ऐसा इसका प्रभाव है। ऐसी ऐसी स्थिति में "श्रीमन्नारायण ही परतत्व हैं" इस निर्णय पर कभी बाधा नहीं पड़ सकती। यह प्रसङ्ग भी कभी न उपस्थित होगा कि श्रीभाष्यकार स्वामीजी के अनुयायी श्रीवैष्णवगण पाषण्डियों के मतों में प्रविष्ट हो जायंगे, देवतान्तर के उपासक बन जायंगे, असुर प्रकृतिवाले हो जायंगे, अन्त में भूमि के भार भूत हो जायंगे। ऐसा होने की अणु-मात्र भी संभावना नहीं। प्रत्युत श्रीभाष्यकार स्वामी जी के अनुयायी श्रीवैष्णवगण आज की तरह उत्तरकाल में भी तत्वज्ञान सम्पन्न ही रहेंगे,

सर्वेऽपि महाज्ञातारः प्रतिवादिविजेतारो वैराग्यानुष्ठानशमदमादि-गुणभूषिता भूदेवीभूषणभूतमुक्ता इव सर्वत्र विराजन्ते, एवंविध-श्रीवैष्णवदर्शनमात्रेणैव श्रीभाष्यकारपक्षोऽभेद्य इति ज्ञातुं शक्यते इत्युत्तरमभिप्रयन्नाह ।

अलूनपक्षस्य यतिक्षमाभृतो
विभाति वंशो हरितत्त्वमक्षतम् ।
यदुद्भवाः शुद्धसुवृत्तशीतलाः
भवन्ति मुक्तावलिभूषणं भुवः ॥१६॥

शास्त्रार्थ में प्रतिवादियों के विजेता बनकर ही रहेंगे, वैराग्य अनुष्ठान शम और दम इत्यादि कल्याण गुणों से भूषित ही रहेंगे, मुक्ताहार की तरह भूमि के भूषण बनकर रहेंगे। जैसे आजकल रहते हैं वैसे ही उत्तर काल में भी रहेंगे। इन श्रीवैष्णवों के देखने से यह अनायास विदित हो सकता है कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी का पक्ष अकाट्य है इस शङ्का और समाधान व्यक्त करते हुए श्रीदेशिक स्वामी जी इस श्लोक को उपस्थित करते हैं।

"अलूनपक्षस्य यतिक्ष्माभृतः" क्ष्मा भृच्छन्देन राजा पर्वतश्चोच्यते, यद्यपि इन्द्रेण सर्वेषां पर्वतानां पक्षाश्छिन्नाः, यदीन्द्रेणापि अच्छिन्नपक्षः कश्चित् पर्वतः स्यात स श्रीभाष्यकारस्य यतिराजस्योपमानं भवितुमर्हति, यतोऽयमपि अच्छिन्नपक्षः

दो अर्थ हैं (१) उन उन वादियों का पक्ष (२) पक्षियों का पक्ष (पंख)। क्ष्माभृत् शब्द के दो अर्थ हैं (१) राजा (२) पर्वत। वंश शब्द के दो अर्थ हैं (१) पुत्र पौत्र आदि रूप जन्म सन्तान अथवा शिष्य प्रशिष्य आदि रूप विद्यासन्तान, (२) बाँस। हरि तत्व शब्द के दो अर्थ हैं, हरित—त्व ऐसा छेद करने पर हरापन अर्थ है, हरि—तत्व ऐसा छेद करने पर हरि का स्वरूप अर्थ है। हरि शब्द का श्रीभगवान् सिंह और वानर इत्यादि अनेक अर्थ हैं। सुवृत्त शब्द के दो अर्थ हैं (१) श्रेष्ठ आचरण वाला मनुष्य आदि (२) गोल आकार वाला। मुक्त शब्द के दो अर्थ हैं (१) पुलिङ्ग में मुक्त जीव (२) स्त्रीलिङ्ग में मोती। ये शब्द इन अर्थों को लेकर इस श्लोक में प्रयुक्त हैं ये सब अर्थ आगे श्लोकार्थ के वर्णन में लिये जायंगे। श्लोकार्थ को सुगमता से समझने के लिये इन अर्थों को समझना आवश्यक है। तदर्थ यह निरूपण किया गया है।

"अलूनपक्षस्ययतिक्ष्माभृतः" श्रीभाष्यकार स्वामी जी का यहाँ उस पर्वत के रूप में चित्रण किया गया है जिसका पक्ष (पंख) न काटा गया हो। पुराणों में यह कथा वर्णित है कि सृष्टि के आरम्भ काल में पर्वतों के पक्ष थे, वे पर्वत उन पक्षों के बल पर पक्षी की तरह उड़कर जहाँ तहाँ बैठ जाते थे। उनसे प्रजायें नष्ट हो जाती थीं। इन्द्रदेव ने प्रजाओं के रक्षण के लिये उन पर्वतों के पक्षों को काट गिराये। तब से पर्वत उन स्थानों में ही स्थिर हो गये। संस्कृत भाषा में क्ष्माभृत शब्द के दो अर्थ हैं (१) राजा (२) पर्वत। श्रीभाष्यकार स्वामी जी यतिराज

यथा श्रीभाष्यकारेण खण्डितास्तथा श्रीभाष्यकारस्य पक्षः केनापि न खण्डितः। "अलूनपक्षस्य यतिक्षमाभृतः" इति निर्देशेन पर्वतपक्षच्छेदीन्द्रसंनिभैरपि प्रबलवादिभिर्वज्रायुधश्छेत्तुं न शक्यत इति सूच्यते।

होने के कारण यति क्षमाभृत कहलाते हैं। श्री भाष्यकार स्वामी जी इस श्लोक में उस पर्वत के समान माने गये हैं जिसके पक्ष (पंख) खण्डित नहीं हुए हों ऐसे पर्वत तो आजकल संसार में है ही नहीं, जिनका पक्ष न काटा गया हो। इस तरह के किसी पर्वत की कल्पना कर उसे यहाँ दृष्टान्त बनाया गया। अथवा इन्द्रदेव द्वारा पक्षों के काट जाने के पूर्व इन पर्वतों का जो स्वरूप था, वह यहाँ दृष्टान्त माना गया। उस पर्वत को "अलूनपक्ष क्षमाभृत्" कहा जाता है जिसका पक्ष न काटा गया हो। वही पर्वत यहाँ श्रीभाष्यकार स्वामी जी का उपमान है क्योंकि श्रीभाष्यकार स्वामी जी का पक्ष भी किसी प्रतिवादी से भी खण्डित नहीं हुआ। अतः अखण्ड पक्ष वाले श्री भाष्यकार स्वामी जी का वही पर्वत दृष्टान्त हो सकता है जो अखिण्डत पक्ष वाला हो। इतर वादियों के पक्ष श्री भाष्यकार स्वामी जी से अवश्य खण्डित हुए, परन्तु श्रीभाष्यकार स्वामी जी का पक्ष किसी से भी खण्डित नहीं हो सकता क्योंकि यह पक्ष प्रबल प्रमाण और तर्कों पर टिका हुआ है। उस को काटने के लिये किसी की क्षमता नहीं। आजकल के इन दुर्बल प्रतिवादियों से खण्डित हो ही नहीं सकता, क्योंकि इनके पास जो प्रमाण और तर्क हैं वे अत्यन्त दुर्बल है। पर्वतों के पक्ष को काटने वाले इन्द्र के समान कोई प्रबल प्रतिवादी हो उसके पास वज्रायुध के समान प्रबल प्रमाण तर्क हो, तो भी उस वादी से उन प्रबल प्रमाण और तर्कों से भी हमारे श्री भाष्यकार स्वामीजी का पक्ष काटा नहीं जा सकता

दृष्टान्तः। तथैवालूनपत्तस्य यतिराजस्य वंशे शिष्यप्रशिष्यपरं-परायां हरितत्वं परमात्मतत्त्वमक्षतं वर्तते। श्रीभाष्यकारशिष्य-प्रशिष्यपरम्परयां हरिर्नित्यवासं करोतीति भावः। अथवा अख-ण्डितपक्षस्य यतिराजस्य वंशे संप्रदाये हरितत्त्वं हेमप्रत्यनीकत्व कल्याणगुणाकरत्व दिव्यमङ्गलविग्रहयोग शरीर शरीरिभावादिकं प्रामाणिकं रूपमक्षतं क्षतिरहितं विभाति विराजते।

के वंश अर्थात् बाँस में हरितत्त्व अर्थात् हरापन स्थिर रहता है, उसी प्रकार अखंडितपक्षवाले हमारे यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी के वंश में अर्थात् शिष्य प्रशिष्य इत्यादि विद्या सन्तान में हरितत्त्व अर्थात् भगवत्तत्त्व अक्षत विराजमान रहता है। भाव यह है कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी की शिष्य परम्परा में श्री हरि भगवान नित्यवास करते हैं। अथवा हरितत्त्व का अर्थ है श्रीभगवान का स्वरूप और स्वभाव। श्रीभाष्यकार स्वामी जी के वंश में अर्थात् संप्रदाय में ही हरितत्त्व अर्थात् श्री भगवान् का स्वरूप और अक्षत रूप से अर्थात् यथावस्थित रूप से चमकता है। श्रीभगवान नित्य निर्दोष हैं सभी कल्याण गुणों

*'यदुद्भवाः शुद्धसुवृत्तशीतला भुवोमुक्तावलिभूषणं भवन्ति ।' हरितवंशेभ्यो मुक्ताउद्भवन्तीति प्रसिद्धिः । तथा च पर्वतस्थहरित-वंशेभ्यो उद्भूतामुक्तास्त्रासादिदोषराहित्याच्छुद्धाः सुवृत्ता वर्तुला-काराः शीतलाश्च सत्यो भुवो भूमेर्मुक्तावलिभूषणं मुक्ताहारभूषणं भवन्ति । अयं दृष्टान्तः । तथा अखण्डितपत्तस्य श्रीभाष्यकारस्य वंशे शिष्यप्रशिष्यपरम्परायां जायमानाः श्रीवैष्णवाः सर्वेऽपि

अर्थात् सम्प्रदाय में हरितत्व अर्थात् श्रीभगवान् के स्वरूप और स्वभाव स्थिर रूप से चमकता रहता है ।

"यदुद्भवाः शुद्धसुवृत्तशीतलाः भवन्तिमुक्तावलिभूषणंभुवः" इस उत्तरार्ध में सुवृत्त और मुक्त शब्द प्रयुक्त हुये हैं। इनके दो दो अर्थ हैं। सुवृत्त शब्द के दो अर्थ हैं (१) उत्तम आचरण वाले (२) गोल आकार वाले। मुक्त शब्द के दो अर्थ हैं पुलिङ्ग में मुक्त जीव अर्थ है, स्त्रीलिङ्ग में मोती अर्थ हैं। इन अर्थों को बतलाने के लिये ये शब्द यहाँ पर प्रयुक्त हुये।

अन्यथाज्ञानाभावाच्छुद्धाः सुवृत्ताः सत्कर्मानुष्ठानरूपसच्चरित्रोपेता शीतला दयार्द्रहृदयाश्च सन्तो भुवः भूमे मुक्तावलिभूषणं भवन्ति मुक्ताहारवदलंकारा भवन्ति। यद्वा—भुव इति पञ्चमी। भूमितोनिष्क्रम्य मुक्तानां समूहस्यालंकाराः संपद्यन्ते। एतेन श्रीभाष्यकारसंप्रदायस्थाः श्रीवैष्णवा इह लोके शुद्धा नित्यकर्मानुष्ठानपराः प्राणिषुदयार्द्र हृदयाश्च सन्तः परलोके मुक्तानां समूहस्यालंकारा

मोती सुवृत्त अर्थात् गोल आकार वाले रहते हैं ये श्रीवैष्णव भी सुवृत्त अर्थात् सच्चरित्रोपेत रहते हैं क्योंकि ये लोग सर्वदा नित्य नैमित्तिक रूप सत्कर्मों का आचरण करते रहते हैं। वे मोती शीतल रहते हैं, ये श्रीवैष्णव भी शीतल अर्थात् दयालु रहते हैं क्योंकि इनके हृदय सर्वदा दया रस से आर्द्र रहते हैं क्रोध इत्यादि गर्मी उनमें नहीं हैं। जिस प्रकार वे मोती जमीन में पड़कर भूमि के लिये मोतियों का हार बन जाते हैं, उसी प्रकार ये श्रीवैष्णव भी भूमि में जन्म लेकर भूमि के मुक्ताहार बन जाते हैं, वास्तव में एवं गुण सम्पन्न श्रीवैष्णव ही भूमि के भूषण हैं। भाव यह है कि भूमि में मोतियों के हार की तरह चमकने वाले ज्ञानवैराग्य शमदम इत्यादि कल्याण गुणों से सम्पन्न इन श्रीवैष्णवों को देखते ही ज्ञात हो जायेगा कि इस सम्प्रदाय में श्रीहरि भगवान् नित्य निवास करते हैं। इसलिये श्रीभाष्यकार स्वामी जी का पक्ष खण्डित नहीं हो सकता।

भवन्तीत्युक्तं भवति। यदुद्भवाइत्यत्रावधारणविवक्षया श्रीभाष्यकारसंप्रदायस्थानामेव मुक्तकोटिसमावेश इति सूचितं भवति। तथा च श्रीभूदेव्या मुक्ताभरणायमानानां ज्ञानवैराग्यशमदमाद्यनेकगुणविशिष्टानां श्रीभाष्यकारसंप्रदायस्थानामेषां श्रीवैष्णवानां दर्शनेनैवास्मिन् संप्रदाये श्रीहरेर्नित्यनिवासस्तस्य संप्रदायस्याखण्डयत्वं च सुवेदमिति तात्पर्यम्। एतेनावतारिकोक्ता शङ्का समाहिता भवति।

अत्र मैनाकहनूमद्वृत्तान्तोऽपि ध्वन्यते। तथाहि—इन्द्रेणालूनपक्षे समुद्रमग्ने मैनाकपर्वते समुद्रप्रेरणया बहिर्निर्गत्य समुद्रं तरन्तं श्रीहनूमन्तमातिथ्यस्वीकारार्थं प्रार्थयमाने तस्य वंशे हरित्वं वानरतत्वमर्थात् श्रीहनूमानत्तत्रूपेणावर्ततेति सूचितं भवति।

रहते हुये परलोक में मुक्त जीवों के समूह के अलंकार बनेंगे, दूसरों का यह सौभाग्य नहीं।

तिचक्रवर्तिनः पदपद्मपत्तनं प्राप्य निर्दोषा बुद्धिमन्तो भगवदा-
सीमाभूमिभूतभागवतदास्ये रासिक्यं दधाना दिव्यरत्नाय-
नस्य स्वस्वरूपस्य परस्परं क्रयविक्रयार्हां दशामापन्ना
राजन्ते इत्युत्तरमनेन श्लोकेनाह—

भिगम्य सम्यगनघाः सुमेधसो
यतिचक्रवर्तिपदपद्मपत्तनम् ।

कि हम लोग श्रीभगवान के दास हैं। अष्टाक्षर और द्वयमंत्र
समझना तो दूर रहा। तब श्रीआदिशेष ने श्रीयतिराज के रूप में
तार लिया। श्रीयतिराज सामान्य राजा नहीं हैं किन्तु चक्रवर्ती
ाट् हैं। इससे इन्हें यतिचक्रवर्ती कहा जाता है। यतिचक्रवर्ती
ामानुज स्वामी जी के चरणारविन्द ही चक्रवर्ती सम्राट् का महा-
र है। सामान्य जनता ने श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरणारविन्द
महानगर का आश्रय लिया। उसमें बहुत काल तक परिचर्या
नित्य निवास भी किया। उससे सामान्य जनता सब तरह के
दोषों से शून्य हुई, चतुर होगयी भगवत्सेवा के सीमाभूत
ावत सेवा में रस लेने लगी, दिव्यरत्न के समान अपने आत्म-
प को दूसरे भागवतों के इतना आधीन कर दिया कि वे इसे
सकें। इस प्रकार श्री भाष्यकार स्वामी जी के चरणाश्रित
गण अपने आत्मा रूपी दिव्य रत्न को आपस में बेचने योग्य
ते हुये कैंकर्य रूपी संपत्ति से सर्वदा सुसमृद्ध हो कर विराज रहे हैं।
समाधान को व्यक्त करते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी श्रीभाष्यकार
ी जी की स्तुति करते हैं—

सुमेधसो—मेधावी, *अनघाः*—पापरहित लोग, *यतिचक्रवर्तिपदपद्म-*

रासिकयादिकं जातम्, अस्य यतिचक्रवर्तिनः पत्तनं किमिति चेत् पदपद्ममेव पत्तनम्। पदस्य कथं पत्तनता ? इत्थम्, पत्तनं यथा ध्वजछत्रचामरादिभिः पूर्णं भवति तथा यतिराजपदमपि रेखाकार-ध्वजादिभिः पूर्णं वर्तते। किं च नगरं पद्ममानाकारतया निर्मातव्य-मितिशिल्पशास्त्रसिद्धत्वात्पद्मसदृशं भवति यतिराजपदमपि सुकु-मारत्वादिभिः पद्मसदृशं भवति। अत पदं पत्तनत्वेन रूपितम्। नगरस्य पद्मसादृश्यमित्थम्—पद्ममध्ये यथा सर्वोन्नता कर्णिका वर्तते, तथा नगर मध्ये सर्वोन्नतं राजगृहम्, यथा कर्णिकां

तो उनमें होती ही नहीं। चक्रवर्ती महाराजा के नगर में निवास करने वाले सज्जनों में ही अधिकमात्रा में चतुरता और रसिकता आदि गुण हुआ करते हैं। यहाँ पर एक प्रश्न होता है कि यतिचक्रवर्ती श्रीरामानुज स्वामी जी के चरणारविन्द सार्वभौम महाराजा के महानगर कैसे माना गया है ? यदि चरणारविन्द और महानगर में समता होती तो शायद माना जा सकता। वह समता भी तो नहीं है। इसका उत्तर यह है श्रीरामानुज स्वामी जी के दिव्य चरणारविन्द और महानगर में दो प्रकार की समता घटती है। (१) जिस प्रकार ध्वज छत्र और चामर आदि महानगर की शोभा बढ़ा रहे हैं उसी प्रकार रेखात्मक ध्वज छत्र और चामर आदि श्रीरामानुज स्वामी जी के चरणारविन्दों की शोभा बढ़ा रहे हैं। यह एक प्रकार की समता हुई। (२) शिल्पशास्त्र में कहा गया है कि नगर को कमल के आकार में निर्माण करना चाहिये। जिस प्रकार कमल के मध्य में सब से उन्नत कर्णिका रहती है। उसी प्रकार नगर के बीच में सब से उन्नत राजगृह का निर्माण करना चाहिये। जिस प्रकार कमलमें कर्णिका के चारों तरफ केसर रहते हैं उसी प्रकार नगर में राजगृह के चारों तरफ क्रम से सेनापति और अङ्गरक्षक

परितः केसराः सन्ति तथा राजगृहं परितो मन्त्रिप्रभृतीनामन्तरङ्गाणां गृहाणि स्युः यथा केसराणां बहिर्दलानि सन्ति, तथा मन्त्रिप्रभृतिगृहाणां बहिरापणादीनि स्युः यथा सर्वदलोपरि बृहद्दलानि भवन्ति तथा सर्वस्माद्बहीरक्षकभटानां गृहाणि स्युरिति शिल्पशास्त्रे वर्ण्यते अतः नगरस्याकारेण पदस्य कोमलत्वादिना पद्मसादृश्यं निराबाधम् । अतः पदपद्मपत्तनमिति रूपणं युक्तम् ।

*"सम्यगभिगम्य" पचाने चिरकालवासः कार्यः तदानीमेव लाभसंभवः नगरं गत्वापि चिरं वासेऽक्रियमाणे वाणिज्ये रत्नपरीक्षादिज्ञानादिकं सुष्ठु न संपद्येत, वाणिज्ये मिथ्यावादैः

पापान्यपि स्युः रासिक्यमपि न जायेत, चक्रवर्तिपत्तने चिरकाल-वासे राज्ञो रञ्जनशासनबलात् पापाचरणं न प्रसज्येत सद्बुद्धिरुदियात्, तथैव श्रीयतिराजचरणयोश्चिरकालसेवायां कृतायां "स्खालित्ये शासितारम्" इत्यादिना शासनादिना निष्पापाः सुबुद्धयश्च स्युः।

तदुच्यते *"अनघाः सुमेधसः" इति। श्रीयतिचक्रवर्तिपद-पद्मपत्तनमभिगम्य सामान्यतो निष्पापाः सुमेधसश्च संपद्यन्ते

चिरकाल तक वास न किया जाय तो व्यापार में रत्न परीक्षा आदि के लिये अपेक्षित पर्याप्त ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता है, रसिकता भी अधिक न बढ़ेगी, व्यापार में मिथ्या भाषण से पाप बढ़ेंगे। चक्रवर्ती के महा-नगर में चिरकाल तक वास करने पर चक्रवर्ती के सुशासन के कारण पापाचरण का प्रसङ्ग ही नहीं आयेगा। सुबुद्धि उत्पन्न होगी। यह हुई दृष्टान्त की बात। उसी प्रकार यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरणारविन्दों के समीप अधिक काल तक निवास करने पर तथा चिरकाल तक सेवा करने पर जनता पापाचरण से शून्य हो जायगी क्योंकि "स्खालित्ये शासितारम्" इस आचार्य लक्षण के अनुसार श्रीरामानुज स्वामी जी अपराध होने पर शासन करेंगे, उससे पापाचरण छूट जायगा। किं च जनता सद्बुद्धि संपन्न हो जायगी।

इत्येव न, किं तु प्रकृते प्रयोजनान्तरमुद्दिश्यात्मविक्रयरूपेणाघेन हीना भागवतानुद्दिश्यात्मविक्रयरूपेण महासुकृतेनाढ्या भवन्ति।

ही पाप समझते हैं। सन्त गण मानते हैं कि किसी क्षुद्र प्रयोजन की कामना से अपने आत्मा को श्री भगवान और भागवतों को छोड़कर दूसरों के हाथ में बेचना उनको सेवा करना महापाप है। श्रीरामानुज स्वामी जी के चरणाश्रित श्री वैष्णवों से ऐसा पाप नहीं बनता। सन्तगण मानते हैं कि भागवतों के चरणों में अपने आत्मा का समर्पण करना उत्तम सुकृत है। यह उत्तम सुकृत भी श्री रामानुज स्वामी जी के चरणाश्रितों में पूर्ण मात्रा में पाया जाता है। ऐसे उत्तम सुकृत करने के लिये अपेक्षित सुबुद्धि भी श्री रामानुज स्वामी जी के सदुपदेश से उनमें उत्पन्न हो जाती है। श्री रामानुज स्वामी जी के चरणाश्रित सज्जन समझते हैं कि हमारे स्वामी श्रीमन्नारायण हैं वे परम स्वतन्त्र हैं हम लोग उनके परतन्त्र दास हैं। हमारे स्वामी हम लोगों को अपनी इच्छा के अनुसार उपयोग करते हैं। क्योंकि वे स्वामी हैं, ऐसा करने के लिये उन्हें पूरा अधिकार है, वे परम स्वतन्त्र तथा सर्व शक्ति सम्पन्न हैं, अतः ऐसा कर सकते हैं। भागवत श्री भगवान के अत्यन्त अभिमत हैं। लोक में देखा जाता है कि स्वामी अपने भृत्य को अपने इष्ट की सेवा में लगाता है। श्रीभगवान् के लिये भागवत अत्यन्त इष्ट हैं, उनकी सेवा में स्वामी (श्री भगवान) दास (मुझ) को लगा सकते हैं। श्री भगवान ने शास्त्रों में अपनी इच्छा को इस प्रकार व्यक्त किया है कि मेरी सेवा से भी मेरे भक्त जनों की सेवा मुझे अत्यन्त इष्ट है। इससे सिद्ध होता है कि श्री भगवान अपने दास जनों को अपने भक्तों की सेवा में लगाना चाहते हैं। अतः इस निरूपण से यह सिद्ध हुआ कि हम लोगों को अपने भक्त भागवतों की सेवा में लगाने

सुमेधसो भवन्ति, भगवद्दासत्वस्यभागवतदासत्वपर्यन्तत्वात् तत्कैङ्कर्यमपितत्पर्यन्तं भवतीति ज्ञानवन्तो गुणकृतकैङ्कर्योपयुक्तगुणा-

---

के लिये श्री भगवान की इच्छा है अधिकार है और शक्ति है। ऐसी स्थिति में हम लोगों को यह सब बातें समझ कर अपने आपको भागवत सेवा में लगाने में ही कल्याण है। किंच, श्री भगवान भागवतों को अपनी आत्मा मानते हैं क्यों कि श्री गीता में उन्होंने कहा है कि "ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम्" अर्थात्—ज्ञानी भक्त मेरी आत्मा है, ऐसा मेरा मत है। ऐसी स्थिति में भागवत सेवा को श्री भगवान् अपनी आत्मा के विषय में की गई सेवा समझ कर अत्यन्त प्रसन्न होंगे, इसमें सन्देह नहीं। दास जनों को यह कार्य अवश्य करना चाहिये जिससे स्वामी अत्यन्त प्रसन्न हों। अतः सिद्ध होता है कि हम लोगों

इत्येव न, किं तु प्रकृते प्रयोजनान्तरमुद्दिश्यात्मविक्रयरूपेणाघेन हीना भागवतानुद्दिश्यात्मविक्रयरूपेण महासुकृतेनाढ्या भवन्ति।

ही पाप समझते हैं। सन्त गण मानते हैं कि किसी क्षुद्र प्रयोजन की कामना से अपने आत्मा को श्री भगवान और भागवतों को छोड़कर दूसरों के हाथ में बेचना उनकी सेवा करना महापाप है। श्रीरामानुज स्वामी जी के चरणाश्रित श्री वैष्णवों से ऐसा पाप नहीं बनता। सन्तगण मानते हैं कि भागवतों के चरणों में अपने आत्मा का समर्पण करना उत्तम सुकृत है। यह उत्तम सुकृत भी श्री रामानुज स्वामी जी के चरणाश्रितों में पूर्ण मात्रा में पाया जाता है। ऐसे उत्तम सुकृत करने के लिये अपेक्षित सुबुद्धि भी श्री रामानुज स्वामी जी के सदुपदेश से उनमें उत्पन्न हो जाती है। श्री रामानुज स्वामी जी के चरणाश्रित सज्जन समझते हैं कि हमारे स्वामी श्रीमन्नारायण हैं वे परम स्वतन्त्र हैं हम लोग उनके परतन्त्र दास हैं। हमारे स्वामी हम लोगों को अपनी इच्छा के अनुसार उपयोग करते हैं। क्योंकि वे स्वामी हैं, ऐसा करने के लिये उन्हें पूरा अधिकार है, वे परम स्वतन्त्र तथा सर्व शक्ति सम्पन्न हैं, अतः ऐसा कर सकते हैं। भागवत श्री भगवान के अत्यन्त अभिमत हैं। लोक में देखा जाता है कि स्वामी अपने भृत्य को अपने इष्ट की सेवा में लगाता है। श्रीभगवान् के लिये भागवत अत्यन्त इष्ट हैं, उनकी सेवा में स्वामी (श्री भगवान) दास (मुझ) को लगा सकते हैं। श्री भगवान ने शास्त्रों में अपनी इच्छा को इस प्रकार व्यक्त किया है कि मेरी सेवा से भी मेरे भक्त जनों की सेवा मुझे अत्यन्त इष्ट है। इससे सिद्ध होता है कि श्री भगवान अपने दास जनों को अपने भक्तों की सेवा में लगाना चाहते हैं। अतः इस निरूपण से यह सिद्ध हुआ कि हम लोगों को अपने भक्त भागवतों की सेवा में लगाने

सुमेधसो भवन्ति, भगवद्दासत्वस्यभागवतदासत्वपर्यन्तत्वात् तत्कैङ्कर्यमपितत्पर्यन्तं भवतीति ज्ञानवन्तो गुणकृतकैङ्कर्योपयुक्तगुणा-

---

के लिये श्री भगवान की इच्छा है अधिकार है और शक्ति है। ऐसी स्थिति में हम लोगों को यह सब बातें समझ कर अपने आपको भागवत सेवा में लगाने में ही कल्याण है। किंच, श्री भगवान भागवतों को अपनी आत्मा मानते हैं क्यों कि श्री गीता में उन्होंने कहा है कि "ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम्" अर्थात्—ज्ञानी भक्त मेरी आत्मा है, ऐसा मेरा मत है। ऐसी स्थिति में भागवत सेवा को श्री भगवान् अपनी आत्मा के विषय में की गई सेवा समझ कर अत्यन्त प्रसन्न होंगे, इसमें सन्देह नहीं। दास जनों को वह कार्य अवश्य करना चाहिये जिससे स्वामी अत्यन्त प्रसन्न हों। अतः सिद्ध होता है कि हम लोगों को भागवत सेवा अवश्य करनी चाहिये। किंच भागवतों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से श्री भगवान् भी विराजमान हैं, भागवतों की सेवा करने से उनके अन्तर्यामी श्री भगवान की भी सेवा हो जाती है, भागवतों की सेवा तो होती ही है। अतः भागवत की सेवा करने पर श्री भगवान और भागवत इन दोनों की सेवा अनायास सम्पन्न हो जाती है। यह महालाभ है, एक की सेवा करें उससे दो मूर्ति प्रसन्न हो जायें। इससे सिद्ध होता है कि भागवत सेवा भगवत्सेवा से भी बढ़कर है। भागवत सेवा दो प्रकार की है (१) अपना स्वरूप समझ कर भागवतों की सेवा करना। इसे स्वरूपकृत दास्य कहते हैं। (२) भागवतों के कल्याण गुणों से मुग्ध होकर उनकी सेवा करना। इसे गुणकृत दास्य कहते हैं। प्रथम सेवा से द्वितीय सेवा उत्कृष्ट है, क्यों कि द्वितीय सेवा से सेवक अत्यन्त रसानुभव करता है। हाँ द्वितीय सेवा के लिये भागवतों के गुणों को समझने की क्षमता होनी चाहिये।

दिपरिज्ञानवन्तश्च भवन्ति। अतएवैषांक्रयविक्रयार्हदशा संपद्यते।

तदिदमुच्यते *"हरिभक्तदास्यरसिकाः परस्परं क्रयविक्रयार्हदशया समिन्धते" इति। भागवतदास्ये रासिक्यवन्तोऽन्योन्यं क्रयविक्रययोग्यां दशामापद्य विद्योतन्ते। कस्यचिद्भागवतस्यावसथे भगवदाराधनोपयुक्तसामग्र्यभावेऽपरो भागवतस्तत्सन्निधिमेत्य प्रार्थयेत दासं विक्रीय भगवदाराधानोपयुक्तसामग्रीं संपादयितुमपेक्षिता स्वातन्त्र्यरूपाऽऽहन्ती भवत्सुविद्यते, दासेपि पश्वादिवत् विक्रयौपयिकी पारतन्त्र्यरूपाऽऽहन्ती वर्तते। अतो

श्री भाष्यकार स्वामी जी के चरणाश्रित श्री वैष्णव भागवत सेवा की महिमा को समझते हैं, भागवतों के कल्याण गुणों को भी समझते हैं अतएव भागवतों के कल्याण गुणों से आकृष्ट होकर उनकी सेवा के लिये अपनी आत्मा को बेचने में भी नहीं हिचकते हैं प्रत्युत आनन्द से अपनी आत्मा बेच देते हैं।

इसी बात को श्री देशिक स्वामी जी उत्तरार्ध से व्यक्त करते हैं कि "हरिभक्तदास्यरसिकाः परस्परं क्रयविक्रयार्हदशया समिन्धते" श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरणाश्रित श्री वैष्णव भागवतों की सेवा में रसानुभव करते हैं, भागवतों के इतने अधीन हो जाते हैं कि वे भागवत इनको बेच भी दे तो कोई आपत्ति नहीं प्रत्युत सन्तोष ही है। ऐसा श्री रामानुज स्वामी जी के चरणाश्रितों का आपस में व्यवहार होता है। इन लोगों का आपस में ऐसा सुमधुर व्यवहार है कि यदि किसी श्रीवैष्णव के यहां श्रीभगवदाराधन के लिये पर्याप्त सामग्री न हो तो इस अभाव को समझने वाले श्री वैष्णव उनके पास आकर प्रार्थना करते हैं कि आप हमको कहीं बेचकर सामग्री लाकर श्री भगवान

दासं विक्रीय सामग्रीं संपादनार्थं कृपा क्रियतामिति। तथैव सोऽपि भागवत एवं प्रार्थयेत। अत्रेदं चरित्रमनुसन्धेयम्। पतिगृहेनिवसन्ती श्रीमहापूर्णस्वामिनां दुहिता स्नानार्थगमनकाले श्वश्रं सहागमनार्थं प्रार्थयमाना तया च श्रीधनपरिचारिकाऽऽनीता चेत् तां नयेति प्रत्युक्ता, ततः कदाचित् श्रीरङ्गमेत्य पित्रे इममर्थं निवेदयन्ती, तैश्चात्र किं कर्तव्यमिति न जानामि त्वद्भ्रातृ-

---

की सेवा करें। आप हमारे स्वामी हैं, अतः आप को वेचने का पूरा अधिकार है। दास आपका अत्यन्त परतन्त्र है आपकी वस्तु है, अतः मुझमें विक जाने की योग्यता है, आपमें वेचने की योग्यता है अतः आप निःसंकोच मुझको वेच दें। यह तो एक भागवत की प्रार्थना हुई। दूसरे भागवत भी प्रसङ्ग उपस्थित होने पर प्रथम भागवत की सेवा करने के लिये ऐसी ही प्रार्थना करते हैं। यह भी भाष्यकार स्वामी जी के सदुपदेश का सुमधुर फल है।

यहाँ इस चरित्र का उल्लेख करना अप्रासङ्गिक न होगा कि श्री महापूर्ण स्वामी जी श्रीरामानुज स्वामी जी के आचार्य हैं। श्री महापूर्ण स्वामी जी की पुत्री को विवाह के बाद पतिगृह पहुँचने पर वहाँ स्नान करने के लिये बहुत दूर जाना पड़ता था। एक दिन श्री महापूर्ण स्वामी जी की पुत्री ने संग में चलने के लिये सास से प्रार्थना की। सास ने कहा कि 'श्री धन के रूप में किसी परिचारिका को लाई होती तो उसे संग में ले जाती।' सास के इस व्यङ्ग वचन को सुनकर श्री महापूर्ण स्वामी जी की पुत्री दुःखी हुई। प्रसङ्गवश अपने पितृगृह आने पर पुत्री ने अपने पिता से इस बात को कहा। तब श्री महापूर्ण स्वामी जी ने कहा कि 'इस समय मुझे कुछ नहीं सूझता कि क्या करना चाहिये। तुम श्री रामानुज

कल्पाय यतिराजाय निवेद्यतामित्युक्ता यतिराजसन्निधौ निवेदयन्ती श्रीयतिराजेन तदात्वोपस्थितं श्रीदाशरथिस्वामिनं श्रीधनपरिचारकत्वेन दत्ता एनं नयेतिसान्त्विता श्रीदाशरथिस्वामिनं सह निन्ये। तत्र श्रीदाशरथिस्वामिनि च सर्वविधकैङ्कर्यं कुर्वाणे तत्रत्यैश्चापचारभीत्या प्रतिषिद्धे, श्रीधनपरिचारकत्वेन प्रेषितेन मया सर्वं कैङ्कर्यं करणीयमेव न त्यक्तुं शक्यते, प्रेषकस्य श्रीयतिराजस्य सन्निधौ निवेद्यतां तैराहूतेनैव मया गन्तुं युज्यते इति प्रत्याचक्षाणे तैरेत्य प्रार्थितः श्रीयतिराजस्तत्र श्रीधनपरि-

---

स्वामी जी को अपना भाई मानती हो, उनसे जाकर कहो, वे शायद कुछ उपाय कर सकते हैं।' श्री महापूर्ण स्वामी जी की पुत्री ने श्री रामानुज स्वामी जी के सन्निधि में आकर अपना क्लेश सुनाया। उस समय वहाँ श्री दाशरथि स्वामीजी मौजूद थे। श्री रामानुज स्वामी जी ने श्री दाशरथि स्वामी जी से कहा कि 'हम तुमको इनके हाथ में बेचना चाहते हैं तुम श्रीधन परिचारक बनकर इनके श्वसुरगृह में सर्वविध कैङ्कर्य करो। इस आज्ञा को शिरोधार्य कर वे उनके साथ उनके श्वशुरगृह में पहुँच कर सर्वविध कैङ्कर्य करने लगे। कुछ दिनों के पश्चात् वहाँ के श्वशुर आदि ने श्री दाशरथि स्वामी जी को पहचान कर कैङ्कर्य से विरत होने के लिये प्रार्थना की तो श्री दाशरथि स्वामी जी ने कहा कि 'मुझसे प्रार्थना करने से कोई लाभ नहीं, श्री रामानुज स्वामी ने मुझे यहाँ भेजा है। उनकी आज्ञा मिलने पर ही मैं कैङ्कर्य से विरत हो सकता हूँ। जब वे बुलायेंगे तभी मैं उनके पास जा सकता हूँ।' इस बात को सुनकर श्वशुर इत्यादि महानुभावों ने श्री रामानुज स्वामी जी के यहाँ जाकर प्रार्थना की। श्री रामानुज स्वामी ने कहा कि 'मेरी बहन

चारिका नास्ति अतोऽयं श्रीधनपरिचारकत्वेन दत्तः श्रीमता-मनिच्छायां स प्रत्यानीयेतेत्युक्त्वा तमाहूतवानिति।

इत्थं श्रीयतिराजावतारात् प्राक् श्रीहरेः स्वरूपमेवाविजानाना जनाः श्रीयतिराजेऽवतीर्णे तं संश्रित्यानघाः सुमेधसश्च संपद्य श्रीहरेःस्वरूपं तद्भक्तमाहात्म्यं तद्दास्योत्कर्षं च विदित्वा तत्र रासिक्यमावहन्तः स्वात्मानं परेषां क्रयार्हमापाद्य विभ्राजन्ते इति नन्दन्ति श्रीदेशिकाः ॥१८॥

इत्थं श्रीभाष्यकारस्य स्तोतव्यत्वप्रयोजकेषु कल्याणगुणेषु सत्स्वपि भवदीयाया वाग्रूपायाः सरस्वत्या अनेकदोषदूषितत्वात्

के लिये एक श्रीधन परिचारिका की आवश्यकता थी यह बात उनसे मुझे विदित हुई। अतः मैंने परिचारक के रूप में श्री दाशरथि को भेजा। यदि आप लोगों का आग्रह है तो बुला लेता हूँ।' अनन्तर श्री रामानुज स्वामी जी के द्वारा बुलाये जानेपर ही श्री दाशरथि स्वामी जी वहाँ के कैङ्कर्य को छोड़कर श्रीरामानुज स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हुए थे।

इस प्रकार श्री रामानुज स्वामी जी के अवतार के पूर्व अर्चावतार भगवान के विराजने पर भी जनता ने उनका आश्रय न लिया। श्री रामानुज स्वामी जी के अवतार लेने पर उनका आश्रय लेकर भगवद्भागवतदास्य रूपी अलभ्य लाभ को प्राप्त कर कलियुगी जनता कृतकृत्य और कृतार्थ हो गयी। यह श्रीरामानुज स्वामी जी का विलक्षण प्रभाव है॥१८॥

यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि भाष्यकार स्वामी जी में स्तुति करने योग्य कल्याण गुण भले हो हों तो आपकी यह स्तुतिरूपी वाणी मय को

इयं स्तोत्ररूपा वाणी केभ्यो रोचेत ? अनास्वाद्यैर्व्याधिहेतुभिर्मृत्तिकादिभिः पङ्किलं सरस्वती नदी जलं केभ्यो रोचेत ? इति शङ्कायां कतकफलशोधितं तत् सरस्वतीजलमेव यथा सर्वेभ्यो रोचेत तथा श्रीभाष्यकारकीर्तिसम्बन्धात् शोधिता सौभाग्यमापन्ना मदीया सरस्वती सर्वेभ्यो रोचते इत्याह—

परुषातिवादपरिवादपैशुन—
प्रभृतिप्रभूतपतनीयपङ्किला ।

पसन्द नहीं आयेगी, क्योंकि आपकी सरस्वती पहले से ही अनेक दोषों से दूषित हो गयी। अरुचिकर और व्याधिवर्धक ऊसर भूमि की मृत्तिका से जो सरस्वती का जल कीचड़ हो गया है, क्या वह जल किसी का ग्राह्य हो सकता है ? कभी नहीं, वैसे ही आप की यह स्तोत्र रूपी सरस्वती (वाणी) भी अनेक दोषों से दूषित होने के कारण किसी को भी ग्राह्य नहीं हो सकती है। इस प्रश्न का उत्तर श्रीदेशिक स्वामी जी इस श्लोक में देते हैं कि जिस प्रकार पङ्कमय बना हुआ यह सरस्वती नदी का जल कतकफलों के संसर्ग होने पर निर्मल हो जाता है तथा सब को स्वादिष्ट लगता है, उसी प्रकार मेरी अनेक दोष दुष्ट यह सरस्वती भी श्रीभाष्यकार स्वामी जी कीर्ति से सम्बन्ध पाने से शुद्ध हो गयी, अतः सब के आस्वादन करने योग्य हो गयी है। इस शङ्का और समाधान को व्यक्त करते हुए श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं—

परुषातिवादपरिवादपैशुनप्रभृतिप्रभूतपतनीयपङ्किला—कठोर, अप्रिय निन्दायुक्त क्रूर आदि दोषों को कीचड़ में फंसी, *मम सरस्वती*—मेरी वाणी, *यतिराजकीर्तिकतकैर्विशोधिता*—यतिराज की कीर्तिरूप कतकों के

स्वदते ममाद्य सुभगा सरस्वती
यतिराजकीर्तिकतकैर्विशोधिता ॥ १६ ॥

*"पक्षातिवादपरिवादपैशुनप्रभृतिप्रभूतपतनीयपङ्किला"। यथा सरस्वती नदीप्रवाहो वर्षाकाले धूलधूसरितत्वात् पङ्किलो भवति, तथा मदीया वाण्यपि पङ्किला मलिना जाता। कैर्हेतुभिः ? पक्षपातिवादः क्रूरबहुजल्पनम्, प्रथमतो बहुजल्पनमेव दोषः तत्रापि क्रूरबहुजल्पनं दोष इति। किमुवाच्यम् ? परिवादः परनिन्दा, अयं द्वितीयो दोषः, पैशुनं पिशुनत्वम्, अयं तृतीयो दोषः। एतत्प्रभृतिभिः प्रभूतैरधिकैः पतनीयैः पातित्यहेतुभिः पङ्किला मलिना जाता। एते दोषा अल्पाश्चेत् मय्येतत्रापि नाल्पा किन्तु प्रभूताः पातित्यहेतवश्च संपन्नाः एवं भूतैर्दोषैर्मलिना

जाता । "पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः । अनि-(सं) बद्ध प्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्" ॥ इति मनूक्तानां सर्वेषां वाचिकदोषाणां साम्राज्यं वर्तते । जलं खण्डशर्करादिभिः पङ्किलं चेच्चन्दनपंकवदनुभाव्यं भवति, व्याधिकरोपरमृदा पंकिलं चेदनुभाव्यं भवति, सरस्वत्यपि साधुस्तुत्यादिभिः पंकिला चेत्सर्वानुभाव्योत्तारिका च भवति, परनिन्दादिभिर्दूषितत्वेऽनास्वाद्या भवति । मम सरस्वती तु तादृश्येव जाता ।

लेकर होने वाला अधिक जल्प कभी सहा नहीं जा सकता । अतः यह महादोष है । परिवाद—दूसरों की निन्दा करना तीसरा दोष है । पैशुन—चुगली करना चौथा दोष है । प्रभूत—एक एक दोष भी कम मात्रा में नहीं, किंतु अधिक मात्रा में है । पतनीय—एक एक दोष भी इतना प्रबल है उससे मनुष्य पतित हो जाता है । इस प्रकार के प्रबल अनेक दोषों से मेरी वाणी मलिन हो गई इसमें सन्देह नहीं है । मनु महाराज ने जितने वाचिक दोष बतलाये हैं, उन सभी दोषों का मेरी वाणी में साम्राज्य है ।

सरस्वती नदी का जल यदि अधिक मात्रा में गुड़ और शर्करा मिलाने से पङ्कमय हो गया हो तो भी वह सब लोगों को आस्वादन करने योग्य रहता है, किंतु यदि वह जल व्याधि वर्धक ऊसर भूमि की मृत्तिका से पङ्कमय हो जाय तो किसी को भी ग्राह्य नहीं रहता । इस प्रकार मेरी सरस्वती भी सज्जनों की स्तुति इत्यादि में अधिक मात्रा में उपयुक्त होने के कारण कुछ अंश में दूषित भी होजाय तो भी सब को ग्राह्य बन सकती है । किंतु यह तो पर निन्दा आदि दोषों से दूषित होने के कारण किसी के [illegible] नहीं हो सकती ।

*"मम सरस्वती"। यतीन्द्रमहानसिकवंशोद्भवश्रीमदात्रेयरामानुजाचार्यचरणसम्बन्धभाजो मम वाणी। सरस्वती शब्दस्यद्वावर्थौ वाणी सरस्वतीनदी चेति। उभयमप्यत्र ग्राह्यम्।

*"यतिराजकीर्तिकतकैर्विशोधिता"। श्रीभाष्यकारकीर्तिरूपकतकफलैर्विशोधिता जाता। मदीयाया वाचोऽनेकदोषदुष्टत्वेपि श्रीभाष्यकारकीर्तिप्रतिपादकत्वाद्विशुद्धिर्जाता यथा कतकफलरजोभिर्नदीजलं शुद्धं भवति।

*"सुभगाऽद्यस्वदते"। पंकिलसरस्वतीनदीजलस्य कतक-

"मम सरस्वती"—इस प्रकार दूषित मेरी सरस्वती (वाणी) भी अब अच्छी बनने लगी। इसका कारण सदाचार्य सम्बन्ध है। श्री प्रणतार्तिहर स्वामी जी श्री भाष्यकार स्वामी जी के परम प्रिय अन्तरङ्ग शिष्य हैं। श्री प्रणतार्तिहर स्वामी जी के वंश में उत्पन्न श्रीमान आत्रेय रामानुजाचार्य स्वामी जी मेरे गुरु हैं। उनके शिष्य होने के कारण आज मेरी सरस्वती शुद्ध होने लगी है।

कैसे शुद्ध हुई? "यतिराज कीर्तिकतकैर्विशोधिता"—जिस प्रकार कतक फलों के चूर्ण पड़ने से वह सरस्वती नदी जल भी जो पहले ऊसर मिट्टी के कणों से मलिन हो गया हो, निर्मल हो जाता है उसी प्रकार अनेक दोषों से दुष्ट मेरी वाणी भी श्री भाष्यकार स्वामी जी की कीर्ति से सम्बन्ध पाने मात्र से शुद्ध हो गयी। श्री भाष्यकार स्वामी जी की कीर्ति का वर्णन करने से मेरी वाणी का उस कीर्ति से सम्बन्ध हो गया है। उससे शुद्ध हो गयी है।

सम्बन्धात्पंकलत्वरूपदोषमात्रं निवर्तते, न तु नूतनतया सुभगत्वं किंचिद्भवति । मदीयायाः सरस्वत्याः श्रीभाष्यकारकीर्तिसम्बन्धान्न केवलं दोषा निवृत्ताः, किंतु सुभगवत्वमप्याविर्भूतम् इति विशेषः । एवं भूता मदीया सरस्वतीदानीं सर्वेभ्यः स्वदते। पूर्वं कस्मैचिदप्यरुचिता सत्यपि मदीया सरस्वतीकीर्तिसम्बन्धोत्तरं सर्वेभ्यः स्वदते । श्रीभाष्यकारकीर्तिवर्णनपरामिमां सूक्तिं सर्वेऽप्यभिनन्दन्तीत्यत्र तात्पर्यम् ॥१६॥

इत्थं श्रीदेशिका स्वसरस्वत्याः श्रीभाष्यकारकीर्तिसम्बन्धात् सकलदोषनिवृत्तिं सर्वजनास्वाद्यतां च दृष्ट्वा तेन गुणेन मुग्धः

पर मलिनता से छूट जाता है। उसमें नया कोई विशेष उत्पन्न नहीं होता । मेरी वाणी रूपी सरस्वती श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कीर्ति से सम्बन्ध पाने पर न केवल दोष मुक्त हुई, अपितु सौभाग्य युक्त भी हो गयी। तभी तो यह मेरी सरस्वती (वाणी) सब लोगों को अच्छी लग रही है।

यहां पर यह ध्यान देने की बात है कि श्री देशिक स्वामी जी ने हम लोगों के कल्याणार्थ इस श्लोक का निर्माण किया। वस्तुतः हम लोगों की वाणी में ही वे दोष हैं जो श्लोक में कहे गये हैं। हम लोगों की वाणी को ही शुद्ध होने की आवश्यकता है। वह श्री भाष्यकार स्वामी जी की इस स्तुति की आवृत्ति से शुद्ध हो जाती है। श्री देशिक स्वामी जी की वाणी में कोई दोष नहीं था, न उसे शुद्ध होने की ही आवश्यकता थी क्योंकि वह तो परम शुद्ध था ॥१६॥

पूर्व श्लोक में श्री देशिक स्वामी जी ने कहा कि अनेक दोषों से दूषित मेरी वाणी श्री भाष्यकार स्वामी जी की कीर्ति का गान करने से

श्रीभाष्यकारचरणं शरणं वृणीते। द्वयेन नारायणचरणयोः शरणत्वेन वरणं हि शास्त्रविहितमिति चेत् भगवच्चरणयोर्वर्तमाना गुणा अस्मिन्नपि सन्ति, श्रीभाष्यकारचरणापेक्षया श्रीभगवच्चरणावनुकल्पभूतौ वर्तेते, अतः श्रीभाष्यकारस्य चरणारविन्दमेव शरणत्वेनाध्यवस्यामीत्याह—

अनुकल्पभूतमुरभित्पदं सतां—
अजहत्त्रिवर्गमपवर्गवैभवम् ।

निर्दोष तथा सर्व जनों के आस्वादन करने योग्य हो गई यह श्री भाष्यकार स्वामी जी का विलक्षण प्रभाव है। श्री भाष्यकार स्वामी जी के गुणों से मुग्ध होकर इस श्लोक में श्री भाष्यकार स्वामी जी के दिव्य श्री चरणों के शरण लेते हैं। यद्यपि श्रीमन्नारायण भगवान के दिव्य चरणों के शरण में जाना ही शास्त्र विहित है, तथापि आचार्य प्रवर श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरणों के शरण में जाने से जीवका कल्याण अवश्य सिद्ध होगा। श्री भगवान के चरणों में जो गुण हैं, वे सब गुण श्री भाष्यकार स्वामी जी के चरणों में भी विद्यमान हैं। सूक्ष्म विचार करने से फलित होता है कि आश्रय लेने में श्री भाष्यकार स्वामी जी के चरण ही मुख्य हैं श्री भगवान के चरण गौण हैं। ऐसा सिद्ध करते हुये श्री देशिक स्वामी जी कहते हैं कि मैं श्री भाष्यकार स्वामी जी के चरणों को ही शरण रूप में वरण करता हूँ।

चलच्चित्तवृत्तिविनिवर्तनौषधं
शरणं यतीन्द्रचरणं वृणीमहे ॥२०॥

*"अनुकल्पभूतमुरभित्पदं सताम्" । सतामाश्रयणविषये

हैं, *यतीन्द्र चरणं*—यतिराज के ऐसे चरण की, *शरणं*—शरण, *वृणीमहे*—वरण करते हैं ।

"अनुकल्पभूतमुरभित्पदं सताम्"—श्री भगवान् ने मुर इत्यादि असुरों को शस्त्र बल से परास्त कर साधु जनों की रक्षा की । हमारे श्री भाष्यकार स्वामी जी ने उन असुरों से बढ़कर हानिकारक दुर्वादियों को शास्त्रार्थ में प्रज्ञाबल से परास्त कर श्री वैष्णवों की रक्षा की । जीव को यदि कल्याण प्राप्त करना है तो दो उपाय हैं । (१) श्री भगवान के शरण में जाँय । (२) अथवा श्री भाष्यकार स्वामी जी के शरण में जाँय । श्री भगवान संपूर्ण जगत के सृष्टि स्थिति और प्रलय करने वाले हैं अवाप्त समस्त काम हैं, परिपूर्ण हैं, नित्यनिर्दोष हैं, समस्त कल्याण गुणों के निधि हैं, जीव पर अपार वात्सल्य करने वाले हैं, सर्व शक्ति सम्पन्न हैं, सकल जगत के अन्तरात्मा हैं, परम दयालु हैं, कहाँ तक कहा जाय, उनकी महिमा का वर्णन वाणी से असाध्य है । शास्त्र कहता है कि उनके शरण में जाने से सर्व इष्ट सिद्ध होंगे । वही शास्त्र अन्यत्र कहता है कि आचार्य के शरण में जाने से भी जीव के सभी इष्ट सिद्ध होंगे । वास्तव में आचार्य और श्री भगवान में कोई भेद नहीं हैं शास्त्र कहता है कि "यस्माद्देवोजगन्नाथो कृत्वामर्त्यमयीं तनुम् । मग्नानुद्धरते लोकान् कारुण्याच्छास्त्रपाणिना ॥ तस्माद्भक्तिर्गुरौ कार्या संसारभयभीरुणा ॥" अर्थात् इस लीला विभूति में अनेक प्रकार से लीला करने वाले जगन्नाथ श्रीमन्नारायण भगवान् ही मनुष्य शरीर लेकर अर्थात् आचार्य रूप में

श्रीभाष्यकार चरण एव मुख्यः, श्रीभगवच्चरणावनुकल्पभूतौ श्रीभगवदपेक्षया आचार्यस्य श्रीभाष्यकारस्योत्कृष्टत्वात्। श्रीभग-

---

अवतार लेकर संसार समुद्र में डूबे हुए लोगों को करुणा से शास्त्र रूपी हाथ द्वारा उद्धार करते हैं। अतः संसारभयत्रस्त सब मनुष्यों को चाहिये कि आचार्य के चरणों में भक्ति करें। इस शास्त्र वचन से सिद्ध होता है कि आचार्य श्री भगवान के ही अपरावतार हैं। अतः जो कुछ आचार्य की महिमा बतलायी जाय वास्तव में वह श्री भगवान् की ही महिमा है शास्त्र में अन्यत्र कहा गया है कि—

"गुरुरेव परंब्रह्म गुरुरेव परागतिः। गुरुरेव पराविद्या गुरुरेव परायणम्॥
गुरुरेव परःकामो गुरुरेव परंधनम्। यस्मात् सदुपदेष्टाऽसौ तस्माद् गुरुतरो गुरुः॥"

अर्थात्—गुरु ही परब्रह्म हैं, गुरु ही परागति हैं, गुरु ही पराविद्या हैं, गुरु ही परम प्राप्य और परमोपाय हैं। गुरु ही अत्यन्त अभिलषित वस्तु हैं, गुरु ही आपद्धन हैं, क्योंकि गुरु ही सदर्थों का उपदेश देते हैं, अतः गुरु ही सर्व श्रेष्ठ तत्व हैं। इससे श्री गुरु की अपार महिमा सिद्ध होती है। शास्त्र में अन्यत्र कहा गया है कि "अर्चनीयश्चवन्द्यश्च कीर्तनीयश्च सर्वदा। ध्यायेज्जपेन्नमेद्भक्त्या भजेदभ्यर्चयन्मुदा। उपायोपेयभावेन तमेव शरणं व्रजेत्।" अर्थात्, श्रीगुरु सर्वदा अर्चना करने योग्य हैं, वन्दना

चलच्चित्तवृत्तिविनिवर्तनौषधं
शरणं यतीन्द्रचरणं वृणीमहे ॥२०॥

*"अनुकल्पभूतमुरभित्पदं सताम्"। सतामाश्रयणविषये

हैं, *यतीन्द्र चरणं*—यतिराज के ऐसे चरण की, *शरणं*—शरण, *वृणीमहे*—वरण करते हैं।

"अनुकल्पभूतमुरभित्पदं सताम्"—श्री भगवान् ने मुर इत्यादि असुरों को शस्त्र बल से परास्त कर साधु जनों की रक्षा की। हमारे श्री भाष्यकार स्वामी जी ने उन असुरों से बढ़कर हानिकारक दुर्वादियों को शास्त्रार्थ में प्रज्ञाबल से परास्त कर श्री वैष्णवों की रक्षा की। जीव को यदि कल्याण प्राप्त करना है तो दो उपाय हैं। (१) श्री भगवान के शरण में जाँय। (२) अथवा श्री भाष्यकार स्वामी जी के शरण में जाँय। श्री भगवान संपूर्ण जगत के सृष्टि स्थिति और प्रलय करने वाले हैं अवाप्त समस्त काम हैं, परिपूर्ण हैं, नित्यनिर्दोष हैं, समस्त कल्याण गुणों के निधि हैं, जीव पर अपार वात्सल्य करने वाले हैं, सर्व शक्ति सम्पन्न हैं, सकल जगत के अन्तरात्मा हैं, परम दयालु हैं, कहाँ तक कहा जाय, उनकी महिमा का वर्णन वाणी से असाध्य है। शास्त्र कहता है कि उनके शरण में जाने से सर्व इष्ट सिद्ध होंगे। वही शास्त्र अन्यत्र कहता है कि आचार्य के शरण में जाने से भी जीव के सभी इष्ट सिद्ध होंगे। वास्तव में आचार्य और श्री भगवान में कोई भेद नहीं हैं शास्त्र कहता है कि "यस्माद्देवोजगन्नाथो कृत्वामर्त्यमयीं तनुम्। मग्नानुद्धरते लोकान् कारुण्याच्छास्त्रपाणिना॥ तस्माद्भक्तिर्गुरौ कार्या संसारभयभीरुणा॥" अर्थात् इस लीला विभूति में अनेक प्रकार से लीला करने वाले जगन्नाथ श्रीमन्नारायण भगवान् ही मनुष्य शरीर लेकर अर्थात् आचार्य रूप में

श्रीभाष्यकार चरण एव मुख्यः, श्रीभगवच्चरणावनुकल्पभूतौ श्रीभगवदपेक्षया आचार्यस्य श्रीभाष्यकारस्योत्कृष्टत्वात् । श्रीभग-

---

अवतार लेकर संसार समुद्र में डूबे हुए लोगों को करुणा से शास्त्र रूपी हाथ द्वारा उद्धार करते हैं। अतः संसारभयत्रस्त सब मनुष्यों को चाहिये कि आचार्य के चरणों में भक्ति करें। इस शास्त्र वचन से सिद्ध होता है कि आचार्य श्री भगवान के ही अपरावतार हैं। अतः जो कुछ आचार्य की महिमा बतलायी जाय वास्तव में वह श्री भगवान् की ही महिमा है शास्त्र में अन्यत्र कहा गया है कि—

"गुरुरेव परंब्रह्म गुरुरेव परागतिः। गुरुरेव पराविद्या गुरुरेव परायणम् ॥
गुरुरेव परःकामो गुरुरेव परंधनम्। यस्मात् सदुपदेष्टाऽसौ तस्माद् गुरुतरो गुरुः ॥"

अर्थात्—गुरु ही परब्रह्म हैं, गुरु ही परागति हैं, गुरु ही पराविद्या हैं, गुरु ही परम प्राप्य और परमोपाय हैं। गुरु ही अत्यन्त अभिलषित वस्तु हैं, गुरु ही आपद्धन हैं, क्योंकि गुरु ही सदर्थों का उपदेश देते हैं, अतः गुरु ही सर्व श्रेष्ठ तत्व हैं। इससे श्री गुरु की अपार महिमा सिद्ध होती है। शास्त्र में अन्यत्र कहा गया है कि "अर्चनीयश्चवन्द्यश्च कीर्तनीयश्च सर्वदा। ध्यायेज्जपेन्नमेद्भक्त्या भजेदभ्यर्चयन्मुदा। उपायोपेयभावेन

वदपेक्षयाऽऽचार्यस्योत्कर्षो हि वहुधा सिध्यति इति सतां मतम् ।
तथाहि—

(४) ईश्वराचार्ययोर्दयालुत्वेन साम्येऽपि ईश्वरकृपाऽऽचार्य-कृपामपेक्षते आचार्यकृपा तु ईश्वरनिग्रहमपि शमयति, ईश्वरकृपा

श्री भगवान् का मूल स्वरूप हम लोगों का विशेष कल्याण करता है अथवा अवतार। उसी प्रकार यहाँ भी चित्त समाधान के लिये विचार करना है कि क्या श्री भगवान की शरण लेने में कल्याण है, अथवा आचार्य प्रवर श्रीरामानुज स्वामी जी की शरण लेने में कल्याण है। थोड़े समय के लिये श्री भगवान और आचार्य में भेद मानकर विचार करने पर अकाट्य युक्तियों से सत्पुरुषों को यही निश्चय होता है कि आश्रय लेने में आचार्य प्रवर श्री रामानुज स्वामी जी के दिव्य चरण ही मुख्य हैं श्री भगवान के चरण गौण हैं। यह बात इस श्लोक में वतलायी गई है। यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिये कि जो कुछ आगे कहा जायगा, वह आचार्य के महत्व को बढ़ाने के लिये है श्री भगवान की महिमा को घटाने के लिये नहीं।

विचार करने पर सिद्ध होता है कि आचार्य श्री भगवान से कई दृष्टियोंसे श्रेष्ठहैं। (१) ईश्वर और आचार्य दोनों जीवों पर अत्यन्त दयालु हैं, इसमें सन्देह नहीं है। परन्तु ईश्वर कृपा और आचार्य कृपा में आचार्य कृपा श्रेष्ठ सिद्ध होती है। ईश्वर की कृपा अनादि है, तो भी आचार्य कृपा के विना जीवों का कल्याण नहीं कर सकती। जीवों पर आचार्य की कृपा पड़ जाने के वाद ही ईश्वर कृपा कार्य करने लगती है। अतः जीवों के कल्याण साधन में ईश्वर की कृपा आचार्य कृपा की अपेक्षा रखती है। आचार्य की कृपा तो ईश्वर कृपा की अपेक्षा नहीं रखती। ईश्वर भले जीवों पर अत्यन्त रुष्ट

लीलारससहचरिता, आचार्यकृपात्वनुग्रहैकरसा ईश्वरस्य क्वचिद्धो निनीषापि वर्तते असाधुकारयितृत्वं च, आचार्यस्यतु सर्व-

---

ही क्यों नहीं, ऐसी स्थिति में भी आचार्य की कृपा ईश्वर के निग्रह को शान्त कर जीवों की रक्षा कर देती है। इससे सिद्ध होता है कि सापेक्ष ईश्वर की कृपा से निरपेक्ष आचार्य कृपा श्रेष्ठ है। किंच, ईश्वर की कृपा लीलारस मिश्रित है। श्रीभगवान् को परमपद में भोगरस मिलता है, और लीला विभूति में लीलारस। लीलारस उसे कहते हैं जिसमें लीलाप्रवृत्त अनेकों में एक को आनन्द मिले, दूसरों को कभी कभी दुःख मिले। इस लीलाविभूति में श्री भगवान जीवों के साथ लीला करते हैं, इसमें श्री भगवान को तो सर्वदा आनन्द मिलता है जीवों को तो कभी कभी दुःख मिलता है। दूसरों को कभी कभी दुःख देकर आनन्दित होना लीलारस कहलाता है। अतः सिद्ध हुआ कि श्री भगवान की कृपा लीला रस से मिश्रित है। आचार्य की कृपा तो कभी भी लीलारस से मिश्रित नहीं रहती अर्थात् आचार्य शिष्यों को दुःख देकर प्रसन्न होना नहीं चाहते, पूर्व कर्मानुसार दुःख देना श्री भगवान का कार्य है आचार्य का नहीं। आचार्य सर्वदा शिष्यों पर अनुग्रह ही करते रहते हैं, उसी मार्ग में जीवों को ले जाना चाहते हैं जिसमें जाने पर दोनों को आनन्द ही आनन्द मिले। सारांश यह है कि ईश्वर की कृपा आचार्य कृपा की अपेक्षा रखती है। आचार्य की कृपा को ईश्वर कृपा की उतनी आवश्यकता नहीं रखती। ईश्वर सांसारिक फल देकर भी विरत हो जाता है आचार्य की कृपा तो मोक्ष रूपी महाफल देकर ही विरत होती है। ईश्वर की कृपा लीला रस से मिश्रित है, आचार्य कृपा तो अनुग्रह से ही ओत प्रोत है। अतः ईश्वर की कृपा से आचार्य की कृपा श्रेष्ठ सिद्ध होती है। इससे आचार्य की श्रेष्ठता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

त्रोन्निनीषैव साधु कारयितुमेव । अत आचार्य ईश्वराच्छ्रेष्ठः सिध्यति ।

ईश्वर के विषय में श्रुति कहती है कि "एष एवासाधु कर्म कारयति तंयमेभ्यो लोकेभ्योऽधोन्निनीषति"। अर्थ यह है कि ईश्वर उन अत्यन्त प्रतिकूल दुष्ट जीवों से अनुचित कार्य कराते हैं जिन्हें अधोगति में पहुँचाना चाहते हैं। ऐसा व्यवहार ईश्वर अत्यन्त प्रतिकूल दुष्टों के साथ ही करते हैं सर्व साधारण के साथ नहीं। यह श्री भाष्य निर्मित सिद्धान्त है। इससे सिद्ध होता है कि ईश्वर अति दुष्ट जीवों को अधोगति में पहुँचाना चाहते हैं, तदर्थ अनुचित कार्य उनसे कराते हैं, यह उन जीवों के प्राचीन कर्मों के फल प्रदान का प्रकार है। अस्तु आचार्य तो परम दुष्टों को भी यहां तक अपने शत्रुओं तक को भी उत्तमोत्तम परम पद में पहुंचाना चाहते हैं, तथा उनसे उत्तम कार्य ही कराते हैं।

ऽधोनिनीषैव साधु कारयितुमेव। अत आचार्य ईश्वराच्छ्रेष्ठः सिध्यति।

ईश्वर के विषय में श्रुति कहती है कि "एष एवासाधु कर्म कारयति तंयमेभ्यो लोकेभ्योऽधोनिनीषति"। अर्थ यह है कि ईश्वर उन अत्यन्त प्रतिकूल दुष्ट जीवों से अनुचित कार्य कराते हैं जिन्हें अधोगति में पहुँचाना चाहते हैं। ऐसा व्यवहार ईश्वर अत्यन्त प्रतिकूल दुष्टों के साथ ही करते हैं सर्व साधारण के साथ नहीं। यह श्री भाष्य निर्मित सिद्धान्त है। इससे सिद्ध होता है कि ईश्वर अति दुष्ट जोवों को अधो-गति में पहुँचाना चाहते हैं, तदर्थ अनुचित कार्य उनसे कराते हैं, यह उन जीवों के प्राचीन कर्मों के फल प्रदान का प्रकार है। अस्तु आचार्य तो परम दुष्टों को भी यहां तक अपने शत्रुओं तक को भी उत्तमोत्तम परम पद में पहुंचाना चाहते हैं, तथा उनसे उत्तम कार्य ही कराते हैं।

यहां पर श्री कूरेश स्वामी जी का यह चरित्र ध्यान देने योग्य है। एक दिन श्री कूरेश स्वामी जी को श्री रङ्गनाथ भगवान ने वैकुण्ठ जाने के लिये आज्ञा दी। श्री कूरेश स्वामी जी ने कहा कि 'मेरे शिष्य चतुर्ग्रामाधिपति को भी मोक्ष देने की कृपा की जाय।' श्री भगवान ने कहा कि 'वह तो आचार्य द्रोही है, उनकी अनुचित मन्त्रणा के कारण आप तथा श्री महापूर्ण स्वामी जी को बहुत कष्ट भोगना पड़ा, यहां तक नेत्रों से भी हाथ धोना पड़ा।' श्री कूरेश स्वामी जी ने कहा कि 'उन्होंने जो कुछ किया वह प्रमाद से हो गया। हम लोगों को तो यही चाहिये कि हम लोगों के प्रति हुए शिष्य जनों के दुर्व्यवहार पर ध्यान न देकर उनका कल्याण करें। अतः यदि चतुर्ग्रामाधिपति को मोक्ष नहीं दिया जायगा तो मुझे भी नहीं चाहिये। मैं एक शिष्य को भी संसार में रखकर वैकुण्ठ जाना पसन्द नहीं

(२) आचार्य उभयोरप्युपकारकः, ईश्वराय शेषवस्तु प्रादात्, चेतनायशेषिणंप्रादादिति । ईश्वरस्तुचेतनस्यैवोपकारकः, तस्मै आचार्यंप्रादादिति । आचार्याय जीवदानं त्वाचार्यस्य विशिष्य नोपकारः ।

करता हूँ।' श्री कूरेश स्वामी जी के इस कथन से अत्यन्त प्रसन्न होकर श्री रङ्गनाथ भगवान ने आज्ञा दी कि 'आपको भी मोक्ष मिलेगा, श्री चतुर्ग्रामाधिपति को भी मोक्ष मिलेगा, यहां तक आपके सम्बन्ध सम्बन्धियों को भी मोक्ष मिलेगा।' यह सुन कर श्री कूरेश स्वामी जी अत्यन्त प्रसन्न होकर श्री भगवान के सामने नतमस्तक हुए। भाव यह है कि आचार्य शिष्यों को उत्तम गति पहुंचाना चाहते हैं, तदर्थ उनसे उत्तम कार्य ही कराते हैं। इस दृष्टि से विचार करने पर आचार्य की श्रेष्ठता प्रतीत होती है।

(२) ईश्वर जगत की सृष्टि स्थिति और प्रलय इस लिये करते रहते हैं कि कभी कोई जीव समाश्रित हो जायगा। परन्तु कोई जीव उनको प्राप्त नहीं होते, ऐसी स्थिति में आचार्य जीवों को सदुपदेश से प्रभावित कर श्री भगवान के हाथ में सौंप देते हैं। इस प्रकार आचार्य ईश्वर के लिये उपकार करते हैं तथा अनादिकाल से स्वस्वरूप और परस्वरूप को न समझने के कारण संसार में पड़कर अनेक प्रकार यातना भोगने वाले जीवों को सुधार कर उनके हाथ में श्री भगवान

(३) ईश्वर आचार्यपदं कामयेत, अत एव हि तेन गुरु-परम्परायामन्वितं गीतोपदेशश्च कृतः। आचार्यस्तु कदापीश्वर-पदं नेच्छति किंतु तद्दासतामेव वाञ्छतीति ईश्वरस्पृहणीयपद आचार्य उत्कृष्यते।

(४) ईश्वरसम्बन्धो बन्धमोक्षयोरुभयोरपि साधारणः आचार्य-सम्बन्धस्तु मोक्षस्यैवासाधारण इति मोक्षासाधारणसम्बन्धवाना-

---

से जीवों का अवश्य लाभ होता है। जीव सम्बन्ध से आचार्य का तो कोई विशेष लाभ नहीं। आचार्य जीव और ईश्वर दोनों को लाभ पहुँचाते हैं, ईश्वर तो जीव मात्र को लाभ पहुँचाते हैं आचार्य को विशेष नहीं। ऐसी स्थिति में आचार्य और ईश्वर इन दोनों में आचार्य अवश्य श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं।

(३) ईश्वर आचार्य बनना चाहते हैं तभी तो उन्होंने गुरुपरम्परा में अन्वय पाया, गुरुपरम्परा में सर्व प्रथम आचार्य श्रीमन्नारायण हैं। अर्जुन के लिये गीता का उपदेश देकर गीताचार्य बने, तथा "कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्" कहलाये। इससे सिद्ध होता है कि आचार्य पद श्रीभगवान के लिये अत्यन्त इष्ट वस्तु है। आचार्य तो कभी भी ईश्वर बनना नहीं चाहते, किन्तु ईश्वर के दास बनकर रहने में ही अपना अहो भाग्य समझते हैं, अतः यह सिद्ध हुआ कि ईश्वर को आकर्षित करने वाला आचार्य पद श्रेष्ठ है। आचार्य के लिये अभिमत नहीं होने के कारण ईश्वर पद उतना श्रेष्ठ नहीं है।

(४) ईश्वर सम्बन्ध और आचार्य सम्बन्ध में बहुत अन्तर है। ईश्वर परमस्वतन्त्र है, कर्मानुसार जीव को संसार में रख सकते हैं, अपनी करुणा के बल से मुक्त भी कर सकते हैं, अतः ईश्वर सम्बन्ध बन्ध और मोक्ष का साधारण हेतु है। आचार्य केवल करुणानिधि हैं, सर्व

चार्यः साधारणसम्बन्धवतो भगवतोऽप्युत्कृष्यते।

(५) आचार्यसम्बन्धे सति ज्ञानभक्त्यादिरूपो भगवत्सम्बन्धः सम्पादयितुं शक्यते। आचार्यसम्बन्धे नष्टे तु सन्नपि स ईश्वर-सम्बन्धो निष्फलोऽनर्थकरश्च, मङ्गलसूत्रे सति भूषणानि तदानीम-

---

प्रकारों से जीव को उज्जीवित करने के लिये ही लालायित रहते हैं। अतः आचार्य सम्बन्ध मोक्ष का ही हेतु होता है। अतः बन्ध और मोक्ष के प्रयोजक सम्बन्ध रखने वाले ईश्वर से मोक्ष मात्र के प्रयोजक सम्बन्ध रखने वाले आचार्य श्रेष्ठ हैं।

(५) श्रीभगवान् को समझना, उनका कीर्तन करना, उनकी सेवा करना, उनको प्रणाम करना, उनका अनवरत स्मरण करना, उनके विश्वास में रहना इत्यादि ही श्रीभगवत्सम्बन्ध कहलाता है। आचार्य के साथ जुड़े हुए उस घनिष्ठ सम्बन्ध को आचार्य सम्बन्ध कहते हैं जिस घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण आचार्य शिष्य के विषय में ऐसा अभिमान रखते हैं कि यह मेरा है। यदि शिष्य आचार्य के साथ हुये इस सम्बन्ध को न बिगाड़ कर दृढ़ करता रहे तो श्रीमद् आचार्य के अनुग्रह से श्रीभगवान् के साथ कीर्तन प्रणाम परिचर्या स्मरण और महा विश्वास इत्यादि ज्ञानभक्ति रूप सम्बन्ध प्राप्त कर सकता है। यदि कोई शिष्य सर्वकल्याणकारी उस आचार्य सम्बन्ध को अपनी दुर्बुद्धि से बिगाड़ लें तो प्राचीन सुकृतों से उत्पन्न स्मरण कीर्तन आदि भगवत्सम्बन्ध निरर्थक हो जायेंगे, निरर्थक होंगे। इतनी ही बात नहीं प्रत्युत दोषाधायक भी होंगे। पतिव्रता स्त्री मङ्गल सूत्र को जो पति सम्बन्ध का सूचक है धारण करती है। यदि वह मङ्गलसूत्र कंठ में सुरक्षित रहे तो भूषण आदि न होने पर भी कोई हानि नहीं, कालान्तर में संपत्ति मिलने पर भूषणादि बनाकर धारण किये जा सकते हैं। यदि

सन्त्यपि पश्चात्सम्पाद्य धारयितुं युज्यन्ते, मङ्गलसूत्रे सति धार्यमाणानि भूषणान्यवद्यमावहन्तीति लोकसिद्धम्। किंच, पद्मविकासकः सूर्यः जलाद्वियुक्तं कमलं स्वसम्बन्धे सत्यपि यथा शोषयति, जलेस्थितिकाले एव विकासयति, तथा जीवस्वरूपविकासकोऽपीश्वर आचार्यसम्बन्धे सत्येव तं स्वसम्बन्धेन विकासयति। आचार्यसम्बन्धशून्यं स्वसम्बन्धे सत्यपि शोषयत्येव। तदिदमुच्यते "नारायणोऽपि विकृतिं याति गुरोः प्रच्युतस्य दुर्बुद्धेः। कमलं जलादपेतं शोषयति रविर्न तोषयति" इति। किं च, अनादिसिद्धोऽपि भगवत्सम्बन्ध आचार्योपदेशात्प्रागसत्कल्प आचार्योपदेशोत्तरमेव कार्यकरो भवतीति आचार्यसम्बन्धे

कोई पतिव्रता स्त्री "मेरे पास इतने अधिक भूषण हैं" इस अभिमान में आकर उस मङ्गल सूत्र का परित्याग कर देवे, तो उसका वह भूषण धारण विधवालङ्कार समझा जाकर निन्दा का कारण बनेगा। उसी प्रकार आचार्य सम्बन्ध सुरक्षित रहने पर योग्यता बढ़ते ही पूर्वोक्तभगवत्सम्बंध प्राप्त किया जा सकता है। आचार्य सम्बंध टूट जाय तो वह भगवत्सम्बंध विधवालंकार की तरह निष्फल और हानिकारक होगा। इससे आचार्य सम्बंध की श्रेष्ठता सिद्ध होती है।

किंच, लोक में देखा जाता है कि सूर्य अपने कर अर्थात् किरणों से स्पर्श कर कमल को विकसित करते हैं, कब तक? जब तक वह जल में रहेगा अर्थात् जल सम्बंध को बनाये रक्खेगा। यदि कमल जल से अलग हो जाय तो वही सूर्य उस कमल को अपनी किरणों से सुखा देते हैं। वैसे ही यहां पर भी समझना चाहिये। जब तक शिष्य आचार्य सम्बंध को बनाये रक्खेगा, तब तक जीवात्मस्वरूप को विकसित करने वाले ईश्वर अपने सम्बंध से उस शिष्य को विकसित

नष्टे स कार्यकरो न स्यादिति भगवत्सम्बन्धेनापि स्वकार्य-करणार्थमुपजीव्यं सम्बन्धं वहन्नाचार्यो भगवतः प्रकृष्यते। अत-एवेत्थं भगवदपेक्षयाप्याचार्ये विशेषमभिसन्धायैवोच्यते शास्त्रेषु—

सुलभं स्वगुरुं त्यक्त्वा दुर्लभं य उपासते।
लब्धं त्यक्त्वा धनं मूढो गुप्तमन्वेषते क्षितौ॥
चक्षुर्गम्यं गुरुं त्यक्त्वा शास्त्रगम्यं तु यः स्मरेत्।
करस्थमुदकं त्यक्त्वा घनस्थमभिवाञ्छति॥इति॥

अत एतेनोपपादनेनाचार्यस्येश्वराधिकत्वसिद्धेस्तच्छरणस्य-

करते रहेंगे। यदि शिष्य आचार्य सम्बंध को तोड़ दे तो वही ईश्वर उस शिष्य को सुला देंगे, अर्थात संसार में यातनायें भुगायेंगे। इससे सिद्ध होता है कि आचार्य सम्बंध बने रहने पर ही ईश्वर सम्बंध से कल्याण होगा, अन्यथा हानि ही होगी। अतः आचार्य श्रेष्ठ हैं।

इन विचारों से सिद्ध होता है कि आचार्य की महिमा श्री भगवान की महिमा से बढ़कर है। अतएव शास्त्रों में कहा गया है कि "जो मनुष्य सुलभ अपने आचार्य की शरण में न जाकर दुर्लभ ईश्वर की शरण में जाते हैं वे उस पुरुष के समान हैं जो प्राप्त धन को फेंक कर भूमि में छिपे हुये धन को ढूंढता फिरे। आचार्य चक्षुरिन्द्रिय से प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, ईश्वर तो प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देते, किंतु शास्त्रों से जानने योग्य हैं। ऐसी स्थिति में प्रत्यक्ष आचार्य के शरण में न जाकर जो शास्त्रवेद्य परोक्ष ईश्वर के शरण में जाना चाहते हैं वे उस पुरुष के समान हैं जो हाथ में स्थित जल को फेंक कर मेघस्थ जल को चाहता हो।" इन शास्त्र वचनों से भी यही सिद्ध होता है कि आचार्य की महिमा श्री भगवान की महिमा से अधिक है।

आश्रयणीयत्वे मुख्यत्वं भगवच्चरणयोरनुकल्पत्वं च सिध्यति। अतएव सन्त आहुः स्वतन्त्रस्येश्वरस्यशरणवरणेन कार्यसाधनं करग्रहणेन कार्यसाधनवत् कदाचिन्नसिध्येदपि, आचार्यस्य शरण-वरणेन कार्यसाधनं चरणग्रहणेन कार्यसाधनवदवश्यं भावि। अतएव ह्युच्यते "अनतिक्रमणीयं हि चरणग्रहणमिति। अतः सद्भिराचार्यस्य चरणावेव शरणत्वेन वरणीयौ अयमेव मुख्यः पक्षः। आचार्यः शिष्यकल्याणार्थं भगवन्तं शरणं गच्छतीति-

---

इस मर्म को समझ कर ही सन्तों ने निष्कर्ष निकाला कि आश्रय लेने में आचार्य शरण मुख्य है तथा श्री भगवच्चरण गौण हैं। भगवच्छरणागति और आचार्य शरणागति में इतना अन्तर है जितना किसी के हाथ पकड़कर कार्य कराना तथा चरण पकड़ कर कार्य कराने में है। किसी का हाथ पकड़ कर कार्य कराने में यह बाधा कभी उपस्थित हो सकती है वे हाथ छुड़ाकर निकल भी जायं और हमारा कार्य नहीं भी करें। चरण पकड़ कर कार्य कराने में यह सुविधा है कि उन्हें अवश्य मानना ही होगा और हमारा कार्य करना ही होगा। अतएव कहा जाता है कि "अनतिक्रमणीयं हि चरणग्रहणम्" अर्थात् चरण पकड़ कर प्रार्थना करने पर टालना असंभव है। अतः सिद्ध हुआ कि किसी का हाथ पकड़ कर प्रार्थना करने पर टालना सम्भव है। चरण पकड़ कर प्रार्थना करने पर टालना सम्भव नहीं है। वैसे ही यहां पर भी समझना चाहिये। ईश्वर स्वतन्त्र हैं उनके शरण में जाने पर ईश्वर कभी टाल भी सकते हैं। आचार्य ईश्वर परतन्त्र हैं परम दयालु हैं उनके शरण में जाने पर यही समझेंगे कि उनकी उपेक्षा करना श्री भगवान का अभिमत नहीं होगा ऐसा समझ कर दयालु होने से शिष्य का कल्याण अवश्य करेंगे। अतएव शास्त्र में कहा

त्वन्यत् । आचार्यं शरणं गते शिष्ये तावतैवास्य समीहितसिद्धिर्भवति । इयमेवाचार्यनिष्ठा नाम । अतः सतां आचार्यचरणस्य शरणतया वरणं मुख्यकल्पः भगवच्चरणयोः शरणतया वरणमनुकल्प इति सिद्धान्तो निरुक्तयुक्तिभिः प्रतिष्ठितत्वान्नातिवादशङ्कामर्हति । इदं सर्वमभिसन्धायोच्यते 'अनुकल्पभूतमुरभित्पदं सताम्' इति । श्रीभगवानाश्रितविरोधिनो मुरादीन् निरासशस्त्रबलेन श्रीभाष्यकारस्तु बुद्धिबलेनैवकुदृष्टीन्निरासेत्यतिरिच्यते ।

गया है कि "सिद्धिर्भवति वा नेति संशयोऽच्युतसेविनाम् । न संशयोऽस्ति तद्भक्तपरिचर्यारतात्मनाम् ॥" अर्थात् श्रीभगवान के शरण में जाने वालों को कभी कार्य सिद्धि हो सकती है और कभी नहीं भी हो सकती है, अतः उनका कल्याण सन्दिग्ध है । श्रीभगवद्भक्त आचार्यों के शरण में रहकर उनकी परिचर्या करने वालों के विषय में संशय का लवलेश भी नहीं, उनकी कार्य सिद्धि अवश्य होगी । सत्य संकल्प श्री भगवान कभी कभी अपने संकल्प को छोड़ भी देते हैं । महाभारत संग्राम के पूर्व श्रीकृष्ण भगवान ने प्रतिज्ञा की कि मैं संग्राम में शस्त्र न पकड़ूंगा । भीष्माचार्य ने प्रतिज्ञा की कि कल मैं श्रीकृष्ण भगवान से शस्त्र पकड़ाऊंगा । उस दिन के संग्राम में श्रीकृष्ण भगवान ने अपनी प्रतिज्ञा छोड़ दी सुदर्शन चक्र धारण कर श्री भीष्म की प्रतिज्ञा को स्थिर रक्खा । इससे सिद्ध होता है कि श्री भगवान अपनी प्रतिज्ञा को छोड़कर भी भक्तों की प्रतिज्ञा को पूर्ण करते हैं । अतः यह सम्भव है कि श्री भगवान के आश्रय लेने वाले सज्जनों की पुरुषार्थ सिद्धि सन्दिग्ध हो सकती है परन्तु आचार्य के आश्रय में रहने वाले सज्जनों के उद्धार में सन्देह नहीं । इन सब भावों को मन में लेकर श्री देशिक स्वामी जी कहते हैं कि "अनुकल्पभूतमुरभित्पदं सताम् ।" कि आश्रय लेने में श्री भाष्यकार

इदं चरितमत्रानुसन्धेयम् । श्रीभागवतः कश्चित् श्रीनारायणपुरे रात्रौ प्रत्यहं भगवच्छयनसमीपमुपगम्यातिमधुरं गायन्नासीत् । श्रीभगवान् संपत्कुमारोऽपि शयनडोलातोऽवतीर्य तत्समीपमुपेत्य नृत्यन्नासीत्, एवं कुर्वतोस्तयोर्महान्कालो व्यतीयाय । स भागवतः कोऽन्योऽस्ति सदृशोमयेत्यभिमन्यमानस्तत्र विराजमानस्य श्रीभाष्यकारस्य सन्निधिं नेयाय । एकदा श्रीभाष्यकारस्तं भागवतमुपसृत्य भवता भगवत्सन्निधौ किं श्रीभाष्यकारस्य मोक्षो-

---

स्वामी जी के चरण मुख्य हैं, श्री भगवान के चरण गौण हैं ।

यहां पर यह चरित्र मनन करने योग्य है । श्री नारायणपुर में एक भागवत रहते थे, वे प्रतिदिन रात्रि में श्री संपत्कुमार भगवान की शयन डोला के समीप रहकर इतना सुमधुर गीत गाते थे, जिससे मुग्ध होकर श्री भगवान डोला से उतर कर इनके सामने नर्तन करते थे । इस प्रकार बहुत दिन बीत गये । इससे उस भागवत के मन में गर्व होगया कि मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ मेरे समान कोई नहीं । जब श्रीरामानुज स्वामी जी दिग्विजय करते हुये श्री नारायणपुर पहुंच कर श्री भगवान का दर्शन कर श्रीभगवान से सम्मानित हुये और अपने मठ में विराजे थे । वह भागवत गर्व के कारण श्रीरामानुज स्वामी के दर्शन करने के लिये नहीं आये । श्री रामानुज स्वामी जी उस भागवत के प्रभाव को सुनकर उसे देखने के लिये गये । उसे देख कर श्री रामानुज स्वामी जी विचारने लगे कि बड़े दुःख की बात है कि इस भागवत को इतना भाग्य रहते हुये भी सदाचार्य सम्बन्ध न होने के कारण मोक्ष से हाथ धोना पड़ेगा । यह विचार आते ही श्री रामानुज स्वामी जी के मन में दया उमड़ आई । दया से प्रेरित होकर श्रीरामानुज स्वामी जी ने उस भागवत से कहा कि आप आज रात्रि में श्री भगवान

ऽस्तीति पृष्ट्वा श्रीभगवतोच्यमानमुत्तरमहं श्रावयितव्योऽस्मीति निवेदयामास। स भागवतस्तथेत्यभ्युपेत्य गाननर्तनावसाने किं श्रीभाष्यकारस्यमोक्षोऽस्तीति पृच्छन्, श्रीभगवता न केवलं तस्य किंतु स येभ्यो दित्सति तेषामपि मोक्षोऽस्तीत्युत्तरिते संप्रसन्नः प्रातरेत्य श्रीभाष्यकारसन्निधौ श्रीभगवतोक्तमुत्तरं विनिवेदयामास। श्रीभाष्यकारस्तमाह श्वो भगवान् प्रष्टव्यः किं भवतो मोक्षोऽस्तीति। स आह भगवति मम प्रत्यक्षतामुपगते सति कथं नु मोक्षो

से यह पूछिये कि 'आप को मोक्ष होगा या नहीं।' उस भागवत ने कहा कि 'हमें तो अवश्य मोक्ष होगा ही। जब श्री भगवान मेरे अधीन होगये हैं तो मोक्ष प्राप्त होने में क्या सन्देह है।' श्री रामानुज स्वामी जी ने कहा कि 'इसमें कुछ शास्त्र विरोध प्रतीत होता है, अतः मैं प्रश्न करा लेना चाहता हूँ।' जब वह भागवत राजी नहीं हुआ, तब श्री रामानुज स्वामी जी ने कहा कि 'तब तो श्री भगवान से आप यह पूछने की कृपा करें कि श्री रामानुज स्वामी जी और उनके अनुयायियों को मोक्ष होगा या नहीं। जो कुछ उत्तर श्री भगवान देंगे उसे मुझे सुनाने की कृपा करें।' यह उस भागवत ने मान लिया। श्रीभगवान के मन्दिर में जाकर रात्रि में एकान्त में रागयुक्त कण्ठ से मधुर गीत गाया, श्रीभगवान् ने भी नृत्य किया। प्रातःकाल होते ही श्रीभगवान से, पूछा कि श्रीरङ्ग से दिग्विजय यात्रा के प्रसङ्ग में श्रीरामानुज स्वामी जी सपरिवार यहां आये हैं, वे जानना चाहते हैं कि उनका और उनके अनुयायियों को मोक्ष होगा या नहीं। श्रीभगवान ने कहा कि 'मैंने श्रीरङ्ग में ही उनसे कह दिया था कि आप को और आपके अनुयायियों को मोक्ष अवश्य मिलेगा। ऐसी स्थिति में वे शङ्का क्यों करते हैं।' भागवत ने प्रातःकाल श्रीरामानुज स्वामी जी की सन्निधि में आकर कहा कि

विहन्येतेति। श्रीभाष्यकार आह स्थूणानिखननन्यायेन स्थिरीकरणार्थमपि वा श्रीभगवान् प्रष्टव्य इति। तस्मिश्च भगवत्सन्निधिमेत्य गानोत्तरं किं मम मोक्षोऽस्तीति पृच्छति श्रीभगवानाह तव न मोक्षोऽस्ति इति। भागवत आह अहं हि बहुगायमिति। श्रीभगवानाह अहमपि बहुनृत्यम्, प्रतिदिनं त्वद्गानस्य मूल्यं मया नर्तनरूपं दत्तम्, आचार्यसम्बन्धहीनस्य न मोक्षः "आचार्यवान् पुरुषो वेद" इति श्रुतेः। ततः स भागवतो निर्विद्यमानः प्रातः

श्री भगवान ने कहा है कि 'आपको तथा आपके अनुयायियों को मोक्ष अवश्य होगा। श्रीरङ्ग में ही श्री भगवान ने यह बात कह दी, फिर फिर क्यों आप शङ्का करते हो।' श्री रामानुज स्वामी जी ने प्रसन्न मुद्रा में कहा कि 'चित्त समाधान हो गया है, एक शङ्का दूर हुई। मन में दूसरी शङ्का चुभरही है, उसे भी आप दूरकरदें तो बहुत उपकृत होऊंगा। आपको छोड़कर वह शंका दूर होने की नहीं है।' भागवत ने पूछा कि 'वह शङ्का कौन सी है?' श्रीरामानुज स्वामीजी ने कहा कि 'वह शङ्का यही है कि आपको मोक्ष मिलेगा या नहीं। आप इस शङ्का को भले अपने पक्ष से न रक्खें मेरे पक्ष से ही रक्खें। श्री भगवान जो कुछ कहेंगे उसे हमको सुनाने के लिये आप कृपा करें।' भागवत आरम्भ में राजी नहीं हुआ अन्त में समझाने बुझाने पर किसी तरह राजी हो गया। श्री भगवान के मन्दिर में जाकर पूर्ववत् गान को सम्पन्न कर श्री भगवान से पूछा कि 'श्रीरामानुज स्वामीजी को एक और शङ्का सता रही है हमको नहीं। अनेक प्रकारों से समझाने पर भी वे मानते नहीं। उसमें उनको शास्त्र विरोध दीख रहा है। कहे देता हूं कि शङ्का यही है

श्रीभाष्यकारं शिश्राय । श्रीभाष्यकारस्तमाह शास्त्रसिद्धान्तानुसारेण भवतो मोक्षाभावमुत्पश्यन्नहं भवतः कल्याणायैवं सर्वमकरवम्, अथ निश्चिन्तो भव, भवतो मोक्षो ध्रुवभावीतीति । अनेन चरितेन श्रीभाष्यकारमाश्रितानामेव मोक्षः, श्रीभाष्यकारमनाश्रित्य साक्षाद्भगवन्तमाश्रितानामपि मोक्षः संशयति इति । अतएव ह्युच्यते-"सिद्धिर्भवति वानेति संशयोऽच्युतसेविनाम् । न संशयोऽत्र तद्भक्तपरिचर्यारतात्मनाम्" इति । अत आश्रयणविषये कुशकाशावल-

---

हो क्या ऐसा कहना चाहते हो । मेरा निश्चय तो यही है कि आपको मोक्ष नहीं मिलेगा।' तब वह भागवत बहुत विकल होकर रोया, श्रीभगवान से प्रार्थना करने लगा परन्तु श्रीभगवान विचलित नहीं हुये । तब भागवत ने प्रणय कोप में आकर कहा कि 'मैंने निष्काम भाव से इतने दिन जो गीत गाया क्या यह सब व्यर्थ होगया ।' श्रीभगवान ने कहा कि 'यदि तुम निष्काम भाव से गाते हो तो यह फल कामना कैसी ? तुम्हारा गान व्यर्थ नहीं हुआ, मैं प्रतिदिन नर्तन कर उसका मूल्य उसी समय चुका देता था । यदि तुम उस गायन से मोक्ष पाना चाहते हो तो यह भ्रम है। मैं वेद शास्त्र के विरुद्ध कुछ करना नहीं चाहता, मैंने ही "आचार्यवान् पुरुषो वेद" "आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापत्" इत्यादि वेद वचनों से यह आज्ञा दी कि आचार्य सम्बन्ध होने पर शिष्य ब्रह्म को सम्यक्रूप से समझ सकता है। आचार्य से प्राप्त ब्रह्म विद्या ही फल दे सकती है। अतः तुमको आचार्य सम्बन्ध पाये विना मोक्ष नहीं मिलेगा । यह ध्रुवसत्य है। आप शीघ्र श्रीरामानुज स्वामी जी का आश्रय लो, वे सब कुछ जानते हुये ही तुम्हारे कल्याणार्थ इतना प्रयत्न शील हैं।' श्रीभगवान के इस आदेश को पाकर उस भागवत ने शीघ्र कल्याणी सरोवर में स्नान कर उपहार

अनन्यायेन श्रीभाष्यकारचरणावेव मुख्यौ, भगवच्चरणावनुकल्पभूतौ। श्रीभाष्यकारात्प्राक्कालिकाः सन्तः कुशाभावे काशग्रहणन्यायेन श्रीभगवच्चरणावाश्रिताः। श्रीभाष्यकारसमकालिका उत्तरकालिकाश्च श्रीभाष्यकारचरणावेवाश्रित्य सद्गतिं प्रापुः। अनेन श्रीभगवतोऽप्यधिका भगवद्दासा इति न्यायेनाचार्यमहिमा वर्धत इत्येव। अत्रायं निष्कर्षः, अस्मदादिभिरात्मकल्याणायाचार्य एवाश्रयणीयः, तच्चरणयोरेव शरणागतिः कार्या आचार्यस्तु अस्माकं कल्याणाय भगवन्तं प्रार्थयमानः शरणं गच्छति,

---

के साथ श्रीरामानुज स्वामी जी के चरणों में गिरकर प्रार्थना की, 'श्रीचरण को मेरे कल्याणार्थ बहुत कष्ट उठाना पड़ा, मेरी दृष्टि खुल गई, श्रीचरण को छोड़कर मेरी कोई शरण नहीं, श्रीभगवान भी न रह गये। मेरे दुर्व्यवहार पर ध्यान न देकर मेरी दुर्दशा को देखते हुये श्री चरण मेरे उद्धारार्थ कृपा करें।' श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने आश्वासन देकर उसको अपनाया और कहा कि 'आप निश्चिन्त रहें, श्रीभगवान की कृपा से आपको मोक्ष अवश्य होगा।' इस चरित्र से यह सिद्ध हुआ कि श्रीभगवान भी जिन लोगों के लिये शरण नहीं, उन लोगों के लिये श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरण ही शरण हैं। इससे कहा जाता है कि "अनुकल्पभूतमुरभित्पदं सताम्"। इसे ही आचार्य निष्ठा कहते हैं।

तेनास्माकं कल्याणसिद्धिः इयमेवाचार्यनिष्ठा नाम । अतः "तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था अयनाय विद्यते" इत्यादिभिर्न विरोधः। अद्यत्वेकलिमलाविलचेतसां जनानामाचार्यनिष्ठा ह्रसंतीति तद्वृद्ध्यर्थमियदुपापादि न तु भगवन्निष्ठाह्रासायेति वेदितव्यं कृतिभिः।

*"अजहत्त्रिवर्गमपवर्गवैभवम्"। श्रीभाष्यकारस्य श्रीचरण-आश्रितस्त्रिवर्गार्थिनां त्रिवर्गं प्रयच्छति, अपवर्गार्थिनामपवर्गं प्रयच्छति, स्वपरिचर्योत्सुकानां मोक्षानन्दाभ्यधिकमानन्दं स्वयमेव प्रयच्छति।

कि जीवों के लिये सर्व प्रथम आचार्य ही शरण होते हैं अनन्तर आचार्य की प्रार्थना पर श्रीभगवान शरण होते हैं। यह अर्थ भी अनुकल्प शब्द से प्रतीत होता है। आचार्य के चरण प्रथम कल्प हैं, श्रीभगवान के चरण द्वितीय कल्प हैं। आचार्य ही सर्व प्रथम जीवों पर कृपा करते हैं, अनन्तर आचार्य की प्रार्थना से श्रीभगवान जीवों पर कृपा करते हैं।

"अजहत्त्रिवर्गमपवर्गवैभवम्" श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरणों का आश्रय लिया जाय तो वे चरण, धर्म अर्थ और काम इन पुरुषार्थों को उन आश्रितों को देते हैं जो इन्हें चाहते हैं। मोक्ष के इच्छुक आश्रितों को मोक्ष देते हैं। वे श्रीचरण अपनी परिचर्या करने वालों को मोक्षानन्द से अधिक आनन्द देते हैं क्योंकि आचार्य सेवा से भी विलक्षण कोई आनन्द होता है। आन्ध्रपूर्ण स्वामी इत्यादि महानुभाव इस आनन्द का अनुभव करते थे। इस प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामी जी के श्रीचरण सर्व फलप्रद हैं।

चित्तवृत्तेश्चाञ्चल्यं यथौषधं निवर्तयति, तथाऽनुध्यायमानः श्रीचरणोऽपि निवर्तयति ।

*"शरणं यतीन्द्रचरणं वृणीमहे" श्रीभाष्यकारस्य चरणमहं शरणं प्रपद्ये । श्रीभगवान्चरणद्वन्द्वमाश्रितेभ्यो मोक्षं प्रयच्छति । "मत्पदद्वन्द्वमेकं ये प्रपद्यन्ते परायणम् । उद्धरिष्याम्यहं देवि संसारात् स्वयमेव तान् ॥" इति हि तत्सूक्तिः । श्रीभाष्यकारस्तु एकं चरणमाश्रितानामपि मोक्षं प्रयच्छतीति विशेषः ॥२०॥

अथ श्रीयतीन्द्रचरणारविन्दमाश्रितानां वैभवं वदति—

जाती है । ऐसा लोकानुभव है । वैसे ही नाना प्रकार के वादियों के पक्षों को सुनने से और कई कारणों से चित्त में जो चञ्चलता आती है, वह श्रीरामानुज स्वामी जी के चरणों के ध्यान करने पर दूर हो जाती है, क्योंकि उससे चित्त शुद्ध होकर अबाधित अर्थ को समझ लेता है, और "वीतरागविषयं वा चित्तम्" इस योग सूत्र के अनुसार वीतराग अमलात्मा श्रीरामानुज स्वामी जी के चरणों का ध्यान करने से चित्त चञ्चलता छोड़कर स्थिर हो जाता है ।

"शरणं यतीन्द्रचरणं वृणीमहे" । हम श्रीभाष्यकार स्वामीजी के दिव्य चरण को शरण रूप में वरण करते हैं । श्रीभगवान् कहते हैं कि 'हे देवि ! हमारे दोनों चरणों का जो आश्रय लेते हैं उन्हें मैं संसार से उद्धार करता हूँ ।' इससे सिद्ध होता है कि श्रीभगवान् के दोनों चरणों का जो आश्रय लेते हैं एक चरण का नहीं उनका ही उद्धार होगा । यहाँ तो श्रीभाष्यकार स्वामी जी के एक चरण का आश्रय लेने पर भी उद्धार हो जायगा क्योंकि "यतीन्द्रचरणम्" ऐसा एक वचन का निर्देश है ॥२०॥

श्वसितावधूतपरवादिवैभवाः
निगमान्तनीतिजलधेस्तलस्पृशः ।
प्रतिपादयन्ति गतिमापवर्गिकीं
यतिसार्वभौमपदसात्कृताशयाः ॥२१॥

*"यतिसार्वभौमपदसात्कृताशयाः" । यथा सार्वभौमस्य पदयोरुत्तमं वस्तु उपदात्वेन समर्प्यते, तथा यतिसार्वभौमस्य चरणयोः स्वकीयं चित्तं समर्पणीयम् । तथा कृते सार्वभौमकृपया

अब इस श्लोक से श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरणाश्रित श्रीवैष्णवों के प्रभाव का वर्णन करते हैं—

यतिसार्वभौमपदसात्कृताशयाः—जिन लोगों ने यतिराज के चरणों में अपना मन समर्पित कर दिया है, *श्वसितावधूतपरवादिवैभवाः*—वे अपने विश्वास के द्वारा परवादियों के वैभव को दूर हटा देते हैं, *निगमान्तनीतिजलधेस्तलस्पृशः*—वेदान्त के न्यायरूपी समुद्र की गहराई तक पहुँचते हैं और, *आपवर्गिकीं गतिं प्रतिपादयन्ति*—मोक्षपथ का प्रतिपादन करते हैं ।

"यतिसार्वभौमपदसात्कृताशयाः" । हमारे यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी सार्व भौम चक्रवर्ति महाराज के समान हैं । श्रीभाष्यकार स्वामी जी के अन्तरङ्ग ७४ सिंहासनाधिपति शिष्यगण उस सार्वभौम चक्रवर्ती के अन्तरङ्ग सामन्त राजाओं के समान हैं । सामन्तराजा गण अत्युत्तम वस्तु को चक्रवर्ती के चरणों में अर्पित कर चक्रवर्ती के अनुग्रह पात्र बनते हैं । वैसे ही ७४ सिंहासनाधिपति स्वामिगण भी अपने मन को यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरणों के आधीन करके श्रीरामानुज स्वामी जी के कृपापात्र बने हैं । श्रीभगवान के समान श्रीरामानुज

सामन्तानामिव यतिसार्वभौमकृपया आश्रितानां महिमा वर्धेत ।

कथं वर्धेतेत्यत्राह—*"श्वसितावधूतपरवादिवैभवाः" । यथा सार्वभौमानुग्रहसन्धुक्षितप्रभावाः अधिकरणेषु लब्धशिक्षाः सामन्ताः परेषां शत्रूणां सर्वविधं प्रभावमनायासेन क्षपयन्ति तथा यतिसार्वभौमानुग्रहाभिवर्धितप्रभावः श्रीभाष्याधिकरणेषु लब्धशिक्षा अन्तेवासिनः श्वासमात्रेणैव परवादिनां प्रभावं क्षपयन्ति । परवादिवैभवक्षपणे एषां श्वासमात्रमेव वादमात्रमेव पर्याप्तम् अधिकशक्तिप्रयोगस्यावश्यकता न भवति ।

स्वामी जी भी परिपूर्ण हैं। अतः अपने भक्तों के मानस भाव मात्र की अपेक्षा करते हैं, वह भी शिष्यों के उद्धार के लिये। जिस प्रकार सम्राट् के कृपापात्र बनने पर सामन्त राजाओं की महिमा बढ़ती है, उसी प्रकार यतिराज श्रीरामानुज स्वामी जी के कृपापात्र बन जाने से इन ७४ सिंहासनाधिपतियों की भी महिमा बढ़ती है।

"श्वसितावधूतपरवादिवैभवाः"। लोक में यह देखा जाता है कि सम्राट् के कृपापात्र बने हुए सामान्त राजाओं का प्रभाव बढ़ता है वे अधिकरणों में अर्थात् युद्धों में लड़ने की अच्छी शिक्षा प्राप्त करते हैं उससे युद्ध में शत्रुओं के प्रभाव को नष्ट कर देते हैं, वैसे ही यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी के कृपापात्र बने हुए शिष्यगण भी उनसे अधिकरणों की शिक्षा पाते हैं। ब्रह्मसूत्र में चार अध्याय हैं, प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं, प्रत्येक पाद में कई अधिकरण हैं। ये शिष्यगण इन अधिकरणों की शिक्षा श्रीभाष्यकार स्वामीजी से प्राप्त करते हैं। ऐसी सत्-शिक्षा प्राप्त कर शास्त्रार्थ प्रसङ्ग में अपने श्वासमात्र से ही परवादियों के प्रभाव को नष्ट कर देते हैं। परवादियों को परास्त करने के लिये इनका श्वास प्रयोग

*"निगमान्तनीतिजलधेस्तलस्पृशः" । यथा सार्वभौमेन शिक्षिताः सामन्तप्रभृतयः राजनीतिसमुद्रस्य तलं स्पृष्ट्वा सूक्ष्मार्थान् गृह्णन्ति आपातप्रतीतानर्थान् न गृह्णन्ति तथा यतिसार्वभौमेन शिक्षिताः शिष्याः वेदान्तन्यायजलधेस्तलस्पृशोभवन्ति । उत्तरमीमांसायां वेदान्तन्याया एव हि प्रतिपाद्यन्ते । तेषां तलस्पृशो मर्मवेदिनो भवन्ति । आपातप्रतीतेषु वेदान्तार्थेष्वभिनिवेशं न बिभ्रति, किंतु वेदान्तन्यायसमुद्रस्य तलं स्पृष्ट्वा अतिसूक्ष्मार्थरत्नान्युपादायैव विश्राम्यन्ति । अतएवैषामजय्यता ।

ही पर्याप्त है, इससे अधिक शक्ति प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

"निगमान्तनीतिजलधेस्तलस्पृशः" । सम्राट् द्वारा शिक्षित सामन्त राजागण राजनीति शास्त्र में अच्छे निपुण होते हैं । राजनीति शास्त्र समुद्र के समान है । राजनीति शास्त्र रूपी समुद्र में ऊपर ऊपर तैरने वाले तृण के समान हल्के अर्थों को न लेते हुए गहराई में डुबकी लगाकर सूक्ष्मार्थ रूपी दिव्य रत्नों को प्राप्त करते हैं । इसलिये ही ये सामन्त राजागण शत्रुओं के लिये सर्वदा अजेय रहते हैं । इसी प्रकार यति सम्राट् श्रीभाष्यकार स्वामी जी से शिक्षा पाये हुए अन्तरङ्ग शिष्यगण भी वेदान्त न्याय शास्त्र में अच्छे निपुण होते हैं । ब्रह्मसूत्रों को वेदान्त नीति शास्त्र कहा जाता है । वह समुद्र के समान गम्भीर है । उसमें प्रत्येक अधिकरण में एक एक न्याय बतलाया जाता है, उस न्याय के अनुसार उपनिषद्वाक्यों का अर्थ करना पड़ता है । श्रीरामानुज स्वामी जी के चरणाश्रित श्रीवैष्णव समुद्र के समान गंभीर वेदान्त शास्त्र के ऊपर ऊपर प्रतीत होने वाले साधारण अर्थों से सन्तुष्ट न होते हुए अत्यन्त गहराई में उतर कर गंभीर चिन्तन कर अति [illegible] दिव्यार्थरूपी महारत्नों को प्राप्त करते हैं । अतएव शास्त्रार्थ में ये [illegible] हैं ।

*"आपवर्गिकीं गतिं प्रतिपादयन्ति"। यथा सार्वभौमवरिवस्यारताः सामन्ता प्रजानां सुखसमृद्ध्युपायं प्रतिपादयन्ति, तथा यतिसार्वभौमवरिवस्यारताः शिष्या मोक्षसाम्राज्यप्राप्त्युपायं प्रतिपादयन्ति, भगवति अननुकूले न मोक्षसिद्धिः न वा कैङ्कर्यसाम्राज्याभिषेकसिद्धिः भगवांश्च शरणागत्यैव वशो भवति "तस्य च वशीकरणं तच्छरणागतिरेव" इति हि श्रीभाष्यम्। अतः भगवच्छरणागतिं मोक्षोपायं जनानामुपदिशन्ति, जनान् मोक्षोपायमनुष्ठापयन्ति मोक्षसाम्राज्ये प्रतिष्ठापयन्तीत्यहो वाचामगोचरो महिमा यतिसार्वभौमपदसात्कृताशयानाम् ॥२१॥

पूर्वश्लोके श्रीभाष्यकारसम्बन्धं प्राप्तवतां महिमानमुपवर्ण्य

"प्रतिपादयन्ति गतिमापवर्गिकीम्" जिस प्रकार सम्राट् से शिक्षा पाये हुए सामन्त राजागण प्रजाओं में पहुंच कर शान्ति का संदेश सुनाते हैं, अत्युत्तम सुख समृद्धि का उपाय बना लेते हैं, उसी प्रकार यति सम्राट् श्रीरामानुज स्वामी जी से शिक्षा पाये हुए श्री वैष्णव भी संसार के कोने कोने में पहुंच कर जनता को शान्ति का सन्देश सुनाते हैं अत्युत्तम सुख समृद्धि का उपाय बतलाते हैं। निदु:ख नित्य आनन्द श्रीभगवान को प्राप्त करने पर ही मिलेगा। श्रीभगवान शरणागतों के लिये ही आत्म समर्पण करते हैं दूसरों के लिये नहीं। अतः श्रीभगवान को अपने अनुकूल बनाने के लिये शरणागति ही उपाय है। श्रीभाष्य की पंक्ति है—'श्रीभगवान को अपने वश में करने का उपाय भगवच्छरणागति ही है।' इस प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरणाश्रित शिष्यगण, जनता को मोक्षोपाय बतलाते हैं। सार्वभौम चक्रवर्ती के आश्रित सामन्त राजाओं के समान इनका प्रभाव है ॥२१॥

श्री देशिक स्वामी जी ने पूर्व श्लोक में श्री भाष्यकार स्वामी जी के

श्रीदेशिकोऽस्मिन् श्लोके आत्मकल्याणार्थं श्रीभाष्यकारं शरणमुपगच्छति—

मूले निविश्य महतां निगमद्रुमाणां
मुष्णन् प्रतारकभयं धृतनैकदण्डः ।
रङ्गेश—भक्तजन—मानसराजहंसो
रामानुजः शरणमस्तु मुनिः स्वयं नः ॥२२॥

अस्मिन् श्लोके श्रीभाष्यकार राजसदृशो राजहंससदृशश्चेति वर्ण्यते ।

*"मूले निविश्य महतां निगमद्रुमाणां मुष्णन् प्रतारकभयं

श्री चरणाश्रित श्री वैष्णवों की महिमा का वर्णन किया। इस श्लोक में श्रीभाष्यकार स्वामी जी का सम्बन्ध प्राप्त करने के लिये श्री देशिक स्वामी जी उनकी शरण लेते हैं। श्लोक में श्रीभाष्यकार स्वामी जी को सूर्य के समान प्रतापी श्रेष्ठ राजा और राजहंस पक्षी के समान कहा गया है। राजहंस शब्द तीन अर्थों को बतलाता है (१) सूर्य के समान प्रतापी श्रेष्ठ राजा, (२) राजहंस पक्षी, (३) परमहंस परिव्राजकाचार्य। अतः परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीभाष्यकार स्वामी जी का उक्त रूप से वर्णन किया जाता है।

महतां निगमद्रुमाणां मूले निविश्य—महान् वेदवृक्षों के मूल में बैठ कर, *प्रतारकभयं मुष्णन्*—प्रतारकों के भय को दूर करते हुये, *धृतनैकदण्डः*—त्रिदण्डधारी, *रङ्गेश-भक्तजन-मानसराजहंसः*—श्रीरङ्गनाथ भगवान् के भक्तों के मानस सरोवर के राजहंस, *रामानुजः मुनिः*—श्रीरामानुज मुनि, *नः*— हमारी, *स्वयं शरणमस्तु*—स्वयं शरण हों।

धृतनैकदण्डः" । राजहंसः श्रेष्ठो राजा तत्र तत्र प्रतारकेभ्यो जायमानं प्रजानां दुःखं दूरीकर्तुमनेकविधं दण्डं धारयन् तत्र तत्र महतां वृक्षाणामधस्तात् वासं करोति, तत्रागच्छतः प्रतारकांश्च दण्डयति, प्रजानां प्रतारकभयं च मुष्णाति, अयं राजदृष्टान्तः ।

"मूलेनिविश्य महतां निगमद्रुमाणां मुष्णन् प्रतारकभयंधृतनैकदण्डः" राजहंस पद में हंस शब्द सूर्य और श्रेष्ठ को बतलाता है । अतः राजहंस शब्द का अर्थ होता है सूर्य के समान प्रतापी श्रेष्ठ राजा । श्रीभाष्यकार स्वामी जी इस राजा के समान हैं । कैसे ? श्रेष्ठ राजाओं को जब विदित होता है कि प्रजा चोर इत्यादि प्रतारकों से अर्थात् धोखा देने वालों से डर रही है, धोखा देने वाले दुष्ट धोखा देकर प्रजा की सम्पत्ति हर ले जाते हैं तब वे श्रेष्ठ राजा क्या करते हैं ? जिन मार्गों से उन दुष्टों का यातायात होता है, उन मार्गों में बड़े २ वृक्षों के नीचे डेरा डाल कर रहते हैं, समय पर उन दुष्टों को पकड़ कर अनेक प्रकार दण्ड देते हैं प्रजा के भय को नष्ट कर देते हैं जो इन दुष्टों के कारण होता है । इस भय को राजा बड़ी चतुराई से नष्ट करते हैं जिससे प्रजा समझ नहीं पाती कि हमारा भय कैसे दूर हुआ । अतः हम कह सकते हैं श्रेष्ठ राजा प्रजा के उस भय को चोरी करते हैं । यह हुआ राज दृष्टान्त का वर्णन । अब दार्ष्टान्तिक सुनिये । अनादिकाल से वैदिक जनता के समीप उत्तमोत्तम अमूल्य वेदार्थ निहित हैं । जनता इसको अपना समझकर रक्षा करती आरही है । विद्वत्समाज में जब इस प्रकार के कुछ धूर्त विद्वान उत्पन्न हुये जो वेदों का मनगढन्त अर्थ करके उसे यथार्थ वेदार्थ कहकर जनता में प्रचार करने लगे और इन अयथार्थ वेदार्थों को जनता में सौंप कर असली वेदार्थों को उड़ा कर ले जाने लगे । जनता अयथार्थ वेदार्थों को लेकर असली

यथा राजा तत्र तत्र महतां द्रुमाणां मूले पटमण्डपेषु वसति, तथा श्रीभाष्यकारोऽपि महतां निगमद्रुमाणां मूले निविशते। वेदा आनन्त्याद्दुरूहार्थप्रतिपादकत्वाच्च महान्तः तथा नानाशाखावत्वात् शीतलशान्तिच्छायाप्रदत्वात् मधुररसाढ्यफलोपेत-

---

वेदार्थों को खोने लगी। इससे वैदिक जनता में भय बढ़ने लगा। जनता का ही भय नहीं बढ़ा, किन्तु वेदों को भी भय होने लगा। वेद डरने लगे कि ये कलियुगी विद्वान हमारे वास्तव अर्थों को छिपाकर मन गढन्त अर्थों का प्रचार करते हैं, इससे हमारे ऊपर श्रद्धा रखने वाली वैदिक जनता धोखा खा जायेगी, हमारी प्रतिष्ठा भी मिट जायेगी। अतः इन धोखा देने वाले पण्डित मन्यों से वेद और वैदिक जनता त्रस्त थी। उस समय श्रीरामानुज स्वामीजी का अवतार इस भय को दूर करने के लिये हुआ। श्रीरामानुज स्वामी जी पूर्वोक्त राजा के समान कार्य करने लगे। राजा जिस प्रकार प्रजा में व्याप्त उस भय को दूर करना चाहते हैं जो प्रतारकों के कारण उत्पन्न हो गया हो उसी प्रकार श्रीरामानुज स्वामी जी ने भी वेद और वैदिक जनता में व्याप्त भय को दूर करना चाहा जो वेदों को अपार्थ करने वाले प्रतारक पण्डितों के कारण हो गया था। जिस प्रकार वे राजा उस भय को दूर करने के लिये उन मार्गों में बड़े बड़े वृक्षों के नीचे डेरा डालकर रहते हैं उसी प्रकार श्रीरामानुज स्वामी जी भी श्रीमद् वेद मार्ग रूपी रास्ते में बड़े बड़े वेद वृक्षों के नीचे रहे। उसी वेदमार्ग से ही उन धूर्त पण्डितों का यातायात होता था। वेद और वृक्षों में अत्यन्त समता है। वृक्ष अनेक शाखा वाले होते हैं, वेद भी अनेक शाखा वाले हैं, वृक्ष छाया देते हैं, वेद भी जीवों को शान्ति छाया देते हैं, वृक्षों के मस्तक पर मधुर रसमय फल रहते हैं, वेदों के मस्तक वेदान्त में अर्थात्

शिरस्कत्वाच्च वृक्षसंनिभा। वेदवृक्षाणां शाखासु संचारमात्रेण न श्रीभाष्यकारस्तत्वहितपुरुषार्थान्निरणैपीत् किं तु वेदानां मूलपर्यन्तं गत्वातात्पर्यपर्यन्तं गत्वार्थान्निर्णिनाय अथवा वेदवृक्षाणां मूलभूते मूलमन्त्रे निविष्टवान् तत्प्रतिपादितार्थानवलम्ब्य तदानुगुण्येन वेदार्थं निर्णीतवान्। अतएवास्य नोपरिप्लवज्ञानं, किंतु

उपनिषद् में मधुर रसमय श्रीभगवान का निवास होता है, क्योंकि उपनिषदों में ही परब्रह्म का वर्णन है। उपनिषद में कहा गया है कि 'रसो वैसः' वह आनन्दमय परमात्मा रसरूपी है। इस निरूपण से स्पष्ट हो गया है कि वेद और वृक्षों में अत्यन्त समता है। वेद अनन्त हैं, तथा दुरूह सूक्ष्मार्थों को बतलाते हैं, अतः बड़े हैं। इन बड़े बड़े वेद वृक्षों के मूल में श्रीरामानुज स्वामी जी रहते हैं। मूल में निवास करने के दो भाव हैं। (१) श्रीरामानुज स्वामी जी वेदों के ऊपर ऊपर संचार करके अर्थों का निर्णय नहीं करते थे जैसे सामान्य विद्वान करते हैं, किन्तु वेदों के मूल में पहुँचकर वेदार्थों का निर्णय करते थे, अर्थात् वेदों के परमतात्पर्य को समझकर उसके अनुसार अर्थ करते थे। दूसरे विद्वान इस प्रकार वेदों के मूल में अर्थात् जड़ में पहुँचकर वेदों के तात्पर्य को अच्छी तरह समझकर अर्थ नहीं करते थे, किन्तु ऊपरी रूप से कुछ का कुछ समझकर वेदार्थों का प्रचार करते थे जिससे वैदिक जनता धोखा खा जाती थी। इस आपत्ति को दूर करने के लिये श्रीरामानुज स्वामी जी वेदों के मूल में पहुँचकर अर्थ निर्णय करते थे। (२) वेदों का मूल है मूलमन्त्र। श्रीमदष्टाक्षर महामन्त्र को मूलमन्त्र कहते हैं क्योंकि यह वेदों का मूल है अर्थात् जड़ है। जिस प्रकार वृक्ष में जड़ से ही रस संचार शाखा प्रशाखाओं में होता रहता है, वैसे ही मूलमन्त्र प्रतिपादित अर्थों का ही निरूपण वेद शाखाओं से होता है।

तलस्पृक् ज्ञानम् । अतएवायं प्रतारकेभ्यः कुदृष्टिभ्यो न बिभेति, यथा राजा प्रतारकेभ्यो न बिभेति । यथा राजा प्रजानां प्रतारक-भयं नाशयति, तथा श्रीभाष्यकारः "बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति" इत्युक्तं प्रतारकभयं नाशयति । राजा तथा प्रजानां प्रतारकभयं मुष्णाति यथा प्रजापि न जानीयात् अस्माकं कथं प्रतारकभयं नष्टमिति, तथा श्रीभाष्यकारोऽपि वेदपुरुषाणां प्रतारकभयं तथा मुष्णाति यथा वेदा एव न विद्युरस्माकं प्रता-

---

अतः मूलमन्त्र वेदों का मूल है । अतएव शास्त्रों में कहा गया है कि—
ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्वणानि च । सर्वमष्टाक्षरान्तः स्थं यच्चान्यदपि वाङ्मयम् ॥ अर्थात् ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद यह सब अष्टाक्षर के अन्तर्गत है, इतना ही नहीं इतिहास पुराण इत्यादि जो कुछ शब्दराशि है, वह भी अष्टाक्षर अन्तर्गत है । इससे यह सिद्ध हुआ कि अष्टाक्षर महामन्त्र से प्रतिपादित अर्थों को ही चारों वेद और इतिहास पुराण इत्यादि शास्त्र प्रतिपादन करते हैं । अतः श्रीभाष्यकार स्वामीजी वेदों के मूलभूत अष्टाक्षर महामन्त्र से प्रतिपादित अर्थों को अच्छी तरह जानकर उन्हीं अर्थों को ही संपूर्ण वेद में पाकर वेदों का यथार्थ अर्थ करने में समर्थ हुए । इस प्रकार वेदों के मूल तक पहुंच कर वेदों का अर्थ करने वाले श्रीरामानुज स्वामी जी को देख कर कलियुगी पण्डित भयभीत होते थे जो इतनी गहराई में पहुंच कर अर्थ नहीं करते थे, किन्तु ऊपरी रूप से कुछ का कुछ समझ कर मन गढ़न्त अर्थ करते थे । वे लोग मानते थे कि श्रीरामानुज स्वामी जी का ज्ञान सामान्य नहीं है, किन्तु तलस्पर्शी है । जिस प्रकार राजा जनता को धोखा देने वाले दुष्टों से नहीं डरते, वैसे ही श्री रामानुज स्वामी जी भी इन कलियुगी विद्वानों से नहीं

स्कमयं कथं विनष्टमिति । यथा राजा प्रतारकशिक्षणार्थं नैकदण्डान् धारयति तद्दर्शनमात्रेण प्रतारकाः पलायन्ते तथा श्रीभाष्यकारोऽपि तत्त्वत्रयसिद्धान्तसूचकत्रिदण्डं बिभर्ति तद्दर्शनमात्रेण प्रतारकाः कान्दिशीकाः पलायन्ते । वस्तुतो यतीनां त्रिदण्डं कायवाङ्मनोदण्डस्फोरकम्, अथापि एवं योजनमपि न दुष्यति तदेवं राजसादृश्यं निरूढम् ।

डरते थे। जिस प्रकार राजा उन दुष्टों को दण्ड देने के लिये हाथ में अनेक प्रकार की दण्ड शक्ति रखते हैं, उसी प्रकार श्री रामानुज स्वामी जी भी वेदों का मावार्थ करने वाले दुर्वादियों को परास्त करने के लिये हाथ में त्रिदण्ड रखते थे, जो तत्त्वत्रय सिद्धान्त प्रतिष्ठापनाचार्य मानकर उनके अकाट्य तत्त्वत्रय सिद्धान्त रूपी त्रिदण्ड को देखते ही वे प्रतारक विद्वान भाग जाते थे। जिस प्रकार राजा उन दुष्टों को दण्डित कर प्रजाओं के भय को ऐसी चतुराई से दूर कर देते हैं कि प्रजा भी समझ नहीं पाती कि हमारा भय कैसे दूर हो गया वैसे ही श्रीरामानुज स्वामी जी ने भी उन प्रतारक पण्डितों को शास्त्रार्थ में परास्त कर वेद और वैदिक जनता के भय को ऐसी चतुराई से दूर किया जिससे वेद और जनता समझ नहीं पाई कि हमारा भय कैसा दूर हो गया। इस से यहां पर कहा जाता है कि "मुष्णन् प्रतारकभयम्" अर्थात् श्री रामानुज स्वामी जी प्रतारकों से होने वाले भय की चोरी करते हैं। भाव यह है किस प्रकार चोरी के समय स्वामी को पता नहीं लगता, इसी प्रकार भय दूर होते समय भी जनता समझ नहीं पाती थी कि हमारा भय कैसा दूर हुआ। इसका तात्पर्य यह है कि श्री रामानुज स्वामी जी ने बड़ी चतुराई से वेद और वैदिक जनता के भय को दूर किया। अतः कहा जाता है कि यतिराज श्री रामानुज

अथ राजहंससादृश्यं निरूप्यते। राजहंसा वातातपवर्षादि-क्लेशहानाय वृक्षाणां मूलस्कन्धप्रदेशेषु कुलायनिर्माणपूर्वं निवसन्तीति प्रसिद्धिः, अतस्तेषामपि महतां द्रुमाणां मूले निवेशः सिद्धः, प्रतारकैः परैर्ग्रहणं वारयितुं दिवा महावृक्षाणां दण्डेषु

स्वामी जो प्रजारक्षक राजा के समान हैं।

अब यह बात बतलायी जाती है कि श्री रामानुज स्वामी जी राजहंस पक्षी के समान हैं। हंस में वह योग्यता है जिससे वह मिले पानी और दूध को अलग करता है दूध भर को पी लेता है पानी को छोड़ देता है। उसी प्रकार पंच भूत पञ्च तन्मात्रा ग्यारह इन्द्रियाँ अहंकार महत्तत्व और प्रकृति ऐसे चौबीस प्राकृततत्त्व पच्चीसवाँ जीवात्मतत्त्व और छब्बीसवाँ परमात्मतत्त्व इन छब्बीस तत्त्वों से मिश्रित इस देह में चौबीस प्राकृत तत्त्वों को अलग कर जो साधक योगाभ्यास से पच्चीसवें जीव तत्व का साक्षात्कार करते हों तथा जीवात्मगत आनन्द का अनुभव करते हों वे हंस कहलाते हैं। पच्चीसवें जीवात्म तत्व से भी परम सूक्ष्म छब्बीसवें परमात्म तत्व को अलग कर जो साधक उस परमात्म तत्व के अनुभवानन्द में डूबे रहते हों वे परम हंस कहलाते हैं। श्रीभाष्यकार स्वामी जो ऐसे उच्च कोटि के परमहंस साधक थे। अतएव परमहंस परिव्राजकाचार्य कहलाये। अतः सिद्ध हुआ कि जिस प्रकार हंस मिश्रित जल और दूध की विवेचना में निपुण होता है, उसी प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामी जी तत्वों की विवेचना में निपुण थे। राज हंस ताप वायु और वृष्टि से भयभीत होकर वृक्षों के मूल और स्कन्ध इत्यादि नीचे के भाग में नीड (घोसला) बनाकर उसमें निवास करते हैं। ऐसी प्रसिद्धि है। इससे सिद्ध हुआ कि हंस वृक्षों के मूल में निवास करते हैं। वैसे ही

हंसाः संचरन्तीतिधृतनैकदण्डत्वमपि तेषूपपद्यते।

*"रङ्गेशभक्तजनमानसराजहंसः" यथा हंसोमानससरोवरमुल्लासयति यथा च राजहंसो राजोत्तमो भगवद्भक्तानां मानसमुल्लासयति तथा राजहंसः परमहंसपरिव्राजकाचार्यः श्रीभाष्यकारोऽपि रङ्गेशभक्तजनमानसमुल्लासयति। नीरक्षीरविवेचकहंसन्यायेन चतुर्विंशतितत्त्वमयात् प्रधानात् पञ्चविंशं जीवात्मानं विवेचयन्तो हंसाः तस्मादपि षड्विंशं परमात्मानं विवेचयन्तः परमहंसाः। अत्र रङ्गेशभक्तजनशब्देन श्रीमहापूर्णप्रभृतयः श्रीयामुनाचार्यचरणाश्रिताः श्रीवैष्णवा विवक्ष्यन्ते। अत्रेदं चरित्रमनुसन्धेयम्

श्रीरामानुज स्वामी जी भी वेद वृक्षों के मूल में निवास करते हैं। हंस चोरों के भय से दिन में वृक्षों के दण्डों में अर्थात शाखा और प्रशाखाओं में निवास कर चोर भय को दूर कर लेते हैं, वैसे ही श्रीरामानुज स्वामी जी भी वेदार्थ के चोरों के भय को दूर करने के लिये अनेक दण्डों को पकड़े रहते हैं। अतः सिद्ध होता है कि श्रीरामानुज स्वामी जी हंसों के समान हैं।

"रङ्गेशभक्तजनमानस राजहंसः" जिस प्रकार श्रेष्ठ धार्मिक राजा भगवद्भक्तों के मानस को (मन को) प्रफुल्लित करते हैं, जिस प्रकार राजहंस मानस सरोवर को सुशोभित करता है क्योंकि ऐसी प्रसिद्धि है कि वर्षाकाल में हंस पक्षी मानस सरोवर पहुँच जाते हैं। उसी प्रकार श्रीरामानुज स्वामी जी श्रीरङ्गनाथ भगवान् के भक्तजनों के मन को आह्लादित करते हैं। यहाँ पर यह चरित्र मनन करने योग्य है। श्रीरङ्ग में श्रीयामुनाचार्य स्वामी जी के चरणाश्रित तथा श्रीरङ्गनाथ भगवान् के परम भक्त श्रीवैष्णव चाहते थे कि श्रीरामानुज स्वामी जी इस सिद्धान्त के प्रवर्तक हों। उन्होंने श्रीमहापूर्ण स्वामी जी से प्रार्थना

समीचीनज्ञानमुत्पाद्यास्मान् संरक्षन् अस्माकं मनसि नित्यवासं कुर्यादिति प्रार्थये। वेदानां प्रतारकभयं मुष्णाता किं मदीयं पापं चोरयितुं न युक्तम्। स्वरूपापृथग्भूतस्यापि पापस्य विवेचनं किं नीरक्षीरविवेचकहंससदृशस्य श्रीभाष्यकारस्य दुष्करम्। पापे निवर्तिते तेन मानसे नित्यवासः कर्तुं युज्यते। पापानिवृत्तौ हि "न बध्नाति रतिं हंसः कदाचित्कर्दमांभसि" इति न्यायेन पापिष्ठे मनसि निवासो न युज्येत। अतः पापं निवर्त्य मानसे नित्यवासं कर्तुं प्रसीदत्विति प्रार्थयते ॥२२॥

विषयाशारूपी विष चढ़ रहा है, उसे कृपया दूर करें। हमारे अज्ञानान्धकार को दूर करें, हमारे मन में नित्य वास करें। वेद और वैदिक जनता के प्रतारकभय को दूर करने में समर्थ श्रीरामानुज स्वामी जी को हमारे पाप को दूर करने में क्या कठिनाई हो सकती है? यद्यपि हमारे मन में पाप वासना अत्यन्त घनिष्ठ रूप से मिश्रित हो गई है, इसे अलग करना सर्व साधारण के लिये शक्य नहीं हैं परन्तु हम लोगों से अलग करने अशक्य दूध और पानी को अलग करने वाले हंस के समान श्रीरामानुज स्वामी जी के लिये हमारे मन से पाप वासना को अगल करना कोई कठिन कार्य नहीं। पाप को दूर करने पर हमारे मन में निवास करना श्रीरामानुज स्वामी जी को अनुकूल जंचेगा, क्योंकि कहा गया है कि—"न बध्नाति रतिं हंसः कदाचित्कर्दमाम्भसि"। अर्थात् कीचड़ युक्त जल में रहना हंस को पसन्द नहीं। हमारा मन ही जल है, पाप वासना ही कीचड़ है। उसे दूर करने पर हमारे मन में निवास श्रीरामानुज स्वामी जी को भी अभिमत होगा। अतः प्रार्थना है कि पाप वासना को दूर कर हमारे मन में निवास करने के लिये श्रीरामानुज स्वामी जी कृपा करें ॥२२॥

पूर्वश्लोके "रामानुजः शरणमस्तु मुनिः स्वयं नः" इति श्रीभाष्यकारोऽव्याजकृपया स्वयमेवास्माकं शरणं भवतु इति प्रार्थितम्। तादृशप्रार्थनासंप्रसन्न श्रीभाष्यकारः यथाविषवैद्येन सर्पदष्टानां विषं निवार्य तेन तथा सर्वप्राणिसंसारविषनिवर्तकमाकारं प्रदर्श्य विषयप्रावण्यं निवर्तयामासेति अनेन श्लोकेनोच्यते—

सन्मन्त्रवित् क्षिपति संयमिनां नरेन्द्रः
संसारजिह्मगमुखैः समुपस्थितं नः।
विष्वक् ततं विषयलोभविषं निजाभिः
गाढानुराग-गरुडध्वज-भावनाभिः ॥२३॥

पूर्व श्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी ने प्रार्थना की कि श्री भाष्यकार स्वामी जी अपनी अहेतुकी कृपा से हम लोगों के शरण बनें। इस प्रार्थना से प्रसन्न होकर श्री भाष्यकार स्वामी जी ने श्री देशिक स्वामी जी को दर्शन दिया। श्री देशिक स्वामी जी ने प्रत्यक्ष देखा कि जिस प्रकार विष वैद्य विष को दूर करते हैं उसी प्रकार श्री भाष्यकार स्वामी जी संसारी लोगों के विषयासक्ति रूप विष को दूर कर रहे हैं। इस घटना का वर्णन इस श्लोक में श्री देशिक स्वामी जी करते हैं—

सन्मन्त्रवित्—द्वय मन्त्र के ज्ञाता, संयमिनां नरेन्द्रः—यतिराज, संसारजिह्मगमुखैः—सांसारिक के सर्पों के मुख से निकल कर, समुपस्थितं विष्वक्ततं:—उपस्थित और चारों ओर से व्याप्त, विषय लोभविषं—विषय वासना रूपी विष को, निजाभिः—अपने, गाढानुराग गरुडध्वज-भावनाभिः—अत्यधिक प्रभावशाली भगवत्सम्बन्धी भावनाओं द्वारा, क्षिपति—नष्ट करते हैं।

"संयमिनां नरेन्द्रः"—नरेन्द्रशब्दस्य द्वावर्थौ राजाविषवैद्य-श्चेति। अत्र श्रीभाष्यकारो विषवैद्यत्वेन रूप्यते। श्रीभाष्यकारः संयमिनां नरेन्द्रः स्वयं सिद्धिसंपन्नः। विषवैद्ये न स्वयं मन्त्रसिद्धि-संपन्नेन भाव्यं, तदैव तेन विषमवतारयितुं शक्यम्। तथा श्रीभाष्यकारोऽपि सिद्धः।

"सन्मन्त्रवित्"—विषवैद्योऽव्यभिचरितफलप्रदान् समीची-नान् विषहरणमन्त्रान् वेत्ति। तथा श्रीभाष्यकारोऽपि "तद्द्वयम्,

---

"संयमिनां नरेन्द्रः"—संस्कृत भाषा में नरेन्द्र शब्द के दो अर्थ हैं (१) विष वैद्य (२) और राजा। ध्यान धारणा और समाधि इन तीनों के समुदाय को "संयम" कहते हैं, "त्रयमेकत्र संयमः" ऐसा योग सूत्र है। अर्थ यह है कि किसी एक ध्येय वस्तु के विषय में होने वाले ध्यान धारणा और समाधि के समुदाय को संयम कहा जाता है। ऐसे संयम करने वालों में श्री भाष्यकार स्वामी जी राजा हैं। विष को दूर करने वाले विष वैद्य मन्त्र सिद्धि सम्पन्न रहते हैं तथा मन्त्र प्रतिपाद्य देवता के विषय में ध्यान धारणा और समाधि कर उस देवता के अनुग्रह से विष को दूर करने की सिद्धि प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने भी श्री भगवान के विषय में ध्यान धारणा और समाधि कर श्री भगवान के अनुग्रह से संसार विष को दूर करने की सिद्धि प्राप्ति की। यह आप की विशेषता है।

"सन्मन्त्रवित्"—विष वैद्य अवश्य फल देने वाले श्रेष्ठ मन्त्रों को जानते हैं जिनसे विष दूर किया जा सकता है। श्री भाष्यकार स्वामी जी अवश्य मोक्ष रूपी महाफल देने वाले द्वयमन्त्र को अर्थ सहित जानते हैं। द्वयमन्त्र का प्रभाव इस प्रकार शास्त्र में कहा गया है कि 'वह

सङ्कुद्वारः संसारतापक्षेमवर्ती" इत्युक्तत्वादव्यभिचरितफलप्रदं मन्त्ररत्नं द्वयमन्त्रं स्मर्यं वेत्ति । पूर्वश्लोके मूले निविश्येति श्रीभाष्यकारस्य मूलमन्त्रतदर्थज्ञानवत्प्रमाता वर्णितः । अस्मिन् श्लोके द्वयमन्त्रतदर्थज्ञानवत्प्रमाता वर्ण्यते ।

"संसारजिह्मगमुखैः समुपस्थितम्"—विषवैद्यः कुटिलगामिनां सर्पाणां मुखैर्दंशनेन जातं विषं हरति । तथात्र संसार एव कुटिलगामी नागः, नागो यथाऽनेकमुखैर्दंशति, तथा संसारोऽपि सुतदुहितृकलत्राद्यनेकमुखैरस्मान् दशति । तज्जं विषं श्रीभाष्यकारेण ह्रियते ।

"विष्वक् ततं नः विषयलोभविषम्"—यथा सर्पेण चरणे दष्टेऽपि विषं मस्तकमारोहति, सर्वाण्यङ्गानि व्याप्नोति। तथा संसारसर्पेण सुतादिमुखैः कचिद् शेकृतेऽपि विषयाशारूपं विषमस्माकं शरीरे सर्वतो व्याप्तं भवति। इदं विषं श्रीभाष्य-कारेण ह्रियते।

कथमित्यत्राह — "निजाभिगाढानुरागगरुडध्वजभावनाभिः

रूपी सर्प ने हम लोगों को डस रक्खा है, इस लिये अधिक मात्रा में विष हम लोगों में चढ़ गया है। उसे दूर करने की क्षमता श्रीभाष्य-कार स्वामी जी में ही है।

"विश्वक्ततं नः विषयलोभविषम्"—यदि सर्प चरण की उंगली में काट दे तो सहसा विष शिर तक चढ़ जाता है दो चार क्षणों में व्याप लेता है उससे मनुष्य में विकृति आजाती है, प्रज्ञा छूट जाती है, आत्मविस्मृति हो जाती है, कहाँ तक कहा जाय मनुष्य अधमरा हो जाता है। वही बात यहाँ पर भी घटती है। संसार रूपी सर्प अपने स्त्री पुत्र बन्धु इत्यादि मुखों से जब किसी को डस लेता है तो शीघ्र विषयाशारूपी विष मस्तक तक चढ़ जाता है। शरीर इन्द्रिय प्राण मन बुद्धि इत्यादि सभी अङ्गों में व्याप्त जाता है, इससे जीवात्मा में विकृति आजाती है, जीव शरीर ग्रहण करते ही उस प्रतिज्ञा को भूल जाता है जो गर्भ में रहते समय परमात्मा के समक्ष की थी जीव संसार में आते ही स्वरूप और परस्वरूप को भूल जाता है, कहाँ तक कहा जाय, जिन्दा रहता हुआ भी जीव मृतक के समान हो जाता है। इस भयंकर संसार विष को भी श्री रामानुज स्वामी जी उतार देते हैं। कैसे?

क्षिपति" विषहरणगारुडमन्त्रवित् विषवैद्यो मन्त्रमावर्तयन् श्रीभगवद्ध्वजभूतस्य निरतिशयप्रभावशालिनो गरुडस्य ध्यानेन यथा विषं हरति तथा सर्वोत्तमद्वयमन्त्रवित् श्रीभाष्यकारो द्वयमन्त्रमुच्चारयन् निरतिशयप्रभाववन्तं श्रीभगवन्तं प्रार्थयमानः सांसारिक विषयलोभविषं हरति। यथा गरुडमन्त्रावर्तनेन ध्यानेन च संप्रसन्नो गरुडः संकल्पमात्रेण विषं हरति, तथा श्रीभाष्यकारेण "हे श्रीभगवन् अस्य जीवस्य संसारापनोदनार्थं कुतो न प्रवर्तये,

---

"गाढानुरागगरुडध्वजभावनाभिःक्षिपति"—विष को दूर करने में गरुड मन्त्र ही रामबाण है। विष वैद्य उस गरुड मन्त्र को अवश्य जानते हैं। वे सर्प विष से मूर्छित पुरुष के समीप में आकर उस मन्त्र की आवृत्ति करते हैं, श्री भगवान के ध्वज में विराजने वाले अपार शक्ति सम्पन्न श्री गरुड जी का ध्यान कर विष को दूर करने के लिये श्री गरुड जी से प्रार्थना करते हैं, श्री गरुड जी अपने भक्त की उस प्रार्थना से प्रसन्न होकर संकल्प मात्र से उस विष को दूर करते हैं, सहसा मूर्छित मनुष्य जो उठता है मनुष्योचित व्यवहार करने लगता है, बन्धु बान्धव उसे जीवित समझ कर हर्ष मनाते हैं। यही बात प्रकृत में भी घटती है। संसार को दूर करने में मन्त्ररत्न द्वयमन्त्र अद्वितीय क्षमता रखता है, इसका एक बार उच्चारण ही मनुष्य के संसार से पार करा देता है, इस महामन्त्र को श्री रामानुज स्वामी जी ने आचार्य परम्परा से प्राप्त कर रक्खा है। श्री रामानुज स्वामी जी संसार रूपी सर्प से डसे गये मूर्छित पुरुष के सामने उपस्थित होकर उस द्वयमन्त्र का उच्चारण करते हैं, उस मन्त्र से प्रतिपाद्य अचिन्त्यशक्ति संपन्न गरुडध्वज श्री मन्नारायण भगवान का ध्यान कर उनसे प्रार्थना करते हैं कि 'हे श्री भगवन्! इस जीव को संसार रूपी सर्प ने डस लिया, विषयाशारूपी विष से

किमेतद्रक्षणौपयिकः प्रभावस्तव नास्ति ? दृढप्रभावो हि भवान् । आश्रितरक्षणव्रतप्रख्यापनार्थमाश्रितविरोधिनिरसनशीलं गरुडं ध्वजे प्रतिष्ठापयन् गरुडध्वजो हि भवान् अतोऽस्यजीवस्य संसारविषहरणार्थं दयस्वेति द्वयमन्त्रोच्चारणपूर्वं प्रार्थिते सति श्रीभगवानप्यप्रत्याख्येयेनानेनप्रार्थनेन तुष्टः संकल्पमात्रेण जीवस्य संसारं निवर्तयति । एवं विधभगवद्वशीकरणाचणमहाप्रभाववान् श्रीभाष्यकार इति स्तुतं भवति ॥२३॥

प्रार्थितेन संप्रसन्नेन श्रीभाष्यकारेण संसारविषनिवर्तकरूपेण

यह जीव मूर्छित हो गया है । इसके विष को दूर करने के लिये कृपा कीजिये, क्यों विलम्ब कर रहे हो आप अपार शक्ति सम्पन्न हैं, आप में शक्ति की कमी नहीं है । आप परमदयालु हो, तभी तो आप अपने ध्वज में गरुड जी का स्थान देकर दीन दुःखियों को यह आश्वासन दे रहे हो कि किसी दुःखी के पुकार सुनते ही हम गरुडारूढ होकर वहाँ पहुंच जायेंगे, दुःख को दूर करेंगे । अतः आप परम दयालु हो, शीघ्र पधारिये' इस प्रार्थना को सुन कर इस को टालने में असमर्थ होते हुये श्रीभगवान् संकल्प मात्र से उस जीव के विषयाशा रूपी विष को दूर कर देते हैं । वह जीव उज्जीवित हो जाता है, स्वरूपोचित व्यवहार करने लगता है, आत्म बन्धु श्रीवैष्णव गण उसे उज्जीवित देखकर हर्ष मनाते हैं । इस प्रकार श्रीरामानुज स्वामी जी संसार सर्पदष्ट हम लोगों के विषयाशा रूप विष को दूर कर हम लोगों को उज्जीवित करते हैं । ऐसा श्रीरामानुज स्वामी जी का प्रभाव है ॥२३॥

श्रीदेशिक स्वामी जी की प्रार्थना से प्रसन्न होकर श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने संसार निवर्तक रूप का दर्शन कराया । इसी

दर्शने दत्ते तद्रूपं पूर्वश्लोके श्रीदेशिकोऽनुबभूव । अस्मिन् ज्ञानोपदेशार्थज्ञानमुद्राङ्कितकरसुशोभिते रूपे श्रीभाष्यकारेण प्रदर्शिते तदनुभवः स्वेन कृतः प्रकाश्यते श्रीदेशिकेन—

नाथः स एष यमिनां नखरश्मिजालैः
अन्तर्निलीनमपनीय तमो मदीयम् ।
विज्ञानचित्रमनघं लिखतीव चित्ते
व्याख्यानकेलिरसिकेन कराम्बुजेन ॥२४॥

अयं भावः व्याख्यानमुद्राङ्कितकरे श्रीरामानुजस्वामिनः श्रीविग्रहे दृष्टिपथमुपेते एवं प्रतीयते यत् श्रीभाष्यकारः योगीश्वर-

---

का वर्णन श्रीदेशिक स्वामी जी ने पूर्व श्लोक में किया। इस श्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी कह रहे हैं कि अब श्रीभाष्यकार स्वामी जी उपदेश-मुद्राङ्कित करारविन्द से सुशोभित श्रीविग्रह का दर्शन करा रहे हैं। उसे देखने पर हमको विदित होता है कि श्रीभाष्यकार योगीश्वर हैं, वे हमारे मन के अन्दर छिपे हुये तमोगुण को पहचान लेते हैं। अपने नखों के किरणों से उस तमोगुण को दूर कर श्रीभाष्यकार हमारे मन में अपने व्याख्यान मुद्रा युक्त श्रीहस्त से विज्ञान चित्र लिख रहे हैं। इस भाव को श्रीदेशिक स्वामी जी इस श्लोक से व्यक्त करते हैं—

स एष यमिनां नाथः—यह यतिराज, *नखरश्मिजालैः*—नख रूपी रश्मि समूह द्वारा, *अन्तर्निलीन*—अन्तःकरण में स्थित, *मदीयं*—मेरे, *तमो-ऽपनीय*—अज्ञानान्धकार को दूर कर, *व्याख्यानकेलिरसिकेन कराम्बुजेन*—व्याख्यान रसिक करकमल द्वारा, *चित्ते*—चित्त में, *अनघं विज्ञानचित्रं*—पाप रहित विज्ञान मय चित्र, *लिखतीव*—बनाते हैं।

त्वात् चक्षुरगोचरमपि अन्तर्निलीनं मामकं तमोदृष्ट्वा सूर्य-किरणसंनिभैः स्वीयनखरश्मिभिस्तद्विनिवर्त्य निवर्तितमालिन्यायां भित्तौ वर्तिकयासुन्दरचित्रमिव स्वीयकराम्बुजेन मच्चित्ते विज्ञान-चित्रं लिखितीति। एवमस्मिन् श्लोके उत्प्रेक्षमाणोऽनुभवति।

"स एषः"—पूर्वोक्तरीत्या मद्विषये भगवच्चिन्तनं कृतपूर्वी श्रीभाष्यकारः सांप्रतं ज्ञानमुद्राङ्कित कराम्बुजो मम दर्शनं ददाति, मम पुरतो विराजते, अहो दयालुता श्रीभाष्यकारस्य। अतएव स एष इति निर्दिश्यते।

"यमिनां नाथः" श्रीभाष्यकारो योगिश्रेष्ठः अतएव मदन्त-र्लीनमपि तमः साक्षात्कर्तुं प्रभवति। किंच लोकानुभवसिद्धमेतत्

"स एषः"—श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि वे श्रीभाष्यकार स्वामी जी हमारे सामने दिखाई दे रहे हैं, पूर्व श्लोक के अनुसार जो हम लोगों के कल्याणार्थ श्रीभगवान् से प्रार्थना करते थे, वे ही अत्र ज्ञान मुद्रा युक्त श्रीहस्त को लेकर हमको दर्शन दे रहे हैं। ज्ञान मुद्रा उस मुद्रा को कहते हैं जिसमें अंगुष्ठ और तर्जनी के अग्रभाग संयुक्त हों शेष तीनों उंगुलियाँ ऊपर उठी रहें। इसी मुद्रा को ज्ञान मुद्रा उपदेश मुद्रा और व्याख्यान मुद्रा कहते हैं। आचार्य गण इसी मुद्रा से सुशो-भित हाथ से उपदेश देते हैं ऐसा शिष्टाचार है। अतः यहाँ पर श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि इस मुद्रा को हाथ से धारण करते हुये श्रीरामा-नुज स्वामी जी हमको दर्शन दे रहे हैं।

"यमिनां नाथः" श्रीरामानुज स्वामी जी योगियों के स्वामी हैं। योगी गण दूसरों के मन में छिपे हुये भावों को भी पहचान लेते हैं, श्रीरामा-नुज स्वामी जी भी हमारे मन के अन्दर छिपे हुये तमोगुण को पहचानने

यत् प्रत्यक्षायां भित्तौ चित्रं लेखितुं शक्यते, अन्तःस्थचित्ते चित्रं लेखितुमसाध्यमिति । परंतु श्रीभाष्यकारः संयमप्रभाववान्, अतस्तेनान्तः स्थचित्तेऽपि चित्रं लेखितुं युज्यते।

"नखरश्मिजालैरन्तर्निलीनं मदीयं तमोऽपनीय"—चित्रलेखकाः भित्तौ मलिनतां सुधालेपेनापनीय चित्रं लिखन्तीति लोकसिद्धम् । तथात्र मदीयं चित्तमेव भित्तिः तत्स्थं तम एव मालिन्यम्, इदं नान्येषामिवाल्पं तमः, किंतु मदीयं तमः अतिप्रबलं तमः तच्चान्तर्निलीनं नितरां लीनं तमः अनादिकालानुवर्तिगाढलग्नमिदं तमः इदं दुर्निवर्तम्, अथापि अवश्यं निवर्तनीयम्,

---

का सामर्थ्य रखते हैं। किंच, लोक में देखा जाता है कि बाहरी प्रत्यक्ष भित्ति में ही चित्र लिखा जा सकता है, अन्दर रहने वाले चित्त में चित्र लिखना असंभव है। परन्तु योगिराज श्रीरामानुज स्वामी जी के लिये कुछ अशक्य नहीं। वे अन्तस्थ चित्त में भी चित्र लिख सकते हैं।

"नखरश्मिजालैरन्तर्निलीनं मदीयंतमोऽपनीय"—लोक में देखा जाता है कि चित्र लिखने वाले लोग सर्वप्रथम भित्ति में रहने वाली मलिनता को चूना वगैरह लगाकर मिटाते हैं अनन्तर निर्मल भित्ति में चित्र लिखते हैं। प्रकृत में हमारा मन ही वह भित्ति है जिसमें चित्र लिखना है। मन में रहने वाला तमोगुण साधारण तमोगुण नहीं है किन्तु प्रबल है, दूसरों के मन में तमोगुण अल्पमात्रा में हो सकता है, मेरे मन में तो तम अधिक मात्रा में है, इसे मैं अच्छी तरह समझता हूँ क्यों कि यह "मदीयं तमः" मेरा तमोगुण है, इसकी प्रबलता मुझे सुविदित है। यह तमोगुण भीतर छिपा हुआ है, अनादि काल से बना रहता है. अतएव गाढ लग्न है, साधारण लेप से दूर नहीं किया

अन्यथा यथा मलिनायां भित्तौ चित्रं लेखितुं न शक्यते, तथा उद्रिक्ततमस्के मनस्यपि ज्ञानचित्तं लेखितुं न शक्येत, तच्चापनीतं श्रीभाष्यकारेण। कथमपनीतम्, इत्थम्, नखरश्मिजालैरपनीतम्। सूर्यरश्मयो बाह्यं तमो निवर्तयितुं प्रभवन्ति नान्तरं तमः सूर्यरश्मिभ्योऽपि प्रबला एते नखरश्मिसमूहा आन्तरमपि तमोनाशयन्ति, तैर्नखरश्मिजालैः श्रीभाष्यकार आन्तरं तमोऽपनीतवान्।

"अनघं विज्ञानचित्रम्"—भित्तौ मालिन्ये सति लिखितमपि चित्रं वैकल्यमापन्नं न शोभेत, तथा चित्ते तमोगुणे सति

जा सकता। तो भी चित्र लेखक को इसे मिटाना ही होगा, अन्यथा चित्र नहीं लिखा जा सकता। जिस प्रकार मलिन भित्ति में चित्र लिखना अशक्य है, उसी प्रकार तमोगुण वाले मन में ज्ञान चित्र लिखना भी अशक्य है। श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने इस प्रबल तमोगुण को भी दूर किया, कैसे दूर किया ? सो बतलाया जाता है। "नखरश्मिजालैः" अपने नख किरणों के समूह से दूर किया। सूर्य किरण बाहरी अन्धकार भर को दूर कर सकते हैं, अनन्तर अन्धकार को दूर नहीं कर सकते, श्रीभाष्यकार स्वामी जी के नखों के किरणें सूर्य के किरणों से भी प्रबल हैं, अतएव भीतरी तम को दूर कर सके। इस प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने अपने नख किरणों से मेरे मन में छिपे हुए तमोगुण को दूर किया।

"अनघं विज्ञानचित्रम्" श्रीभाष्यकार स्वामी जी तमोगुण को दूर कर मेरे चित्त में निदुष्ट विज्ञान चित्र लिखने लगे। भित्ति में यदि मलिनता रहे तो उस अवस्था में जो चित्र लिखा जायगा, वह सुन्दर न बनेगा। वैसे तमोगुण वाले मन में उत्पन्न ज्ञान भी उत्तम नहीं

उत्पन्नमपि ज्ञानं निर्दोषं न स्यात्, अतस्तमोऽपनीयैव विज्ञान-चित्रं लिख्यते श्रीभाष्यकारेण, अतएवेदमनघं निर्दोषं जातम्। इदं च चित्रं न सामान्यचित्रं, किंतु विज्ञानचित्रम्, विविच्य

होगा। अतएव श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने हमारे मन में चित्र लिखने के पूर्व तमोगुण को दूर चित्र लिखना उचित समझा। अतएव वह चित्र भी मनोहर निकला। यह चित्र कोई सामान्य चित्र नहीं है किन्तु विज्ञान चित्र है। विवेकात्मक ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। श्रीमन्नारायण परतत्व हैं, और सब उनसे निकृष्टतत्व है, इस प्रकार विवेक कर समझना विज्ञान है, इस विज्ञान चित्र को हमारे मन में श्रीभाष्यकार स्वामी जी लिख रहे हैं चित्र से भित्ति की शोभा है, वैसे ही विज्ञान से मन की शोभा है भित्ति का सहारा लिये विना चित्र नहीं लिखा जा सकता, वैसे ही मन को छोड़कर अन्यत्र विज्ञान उत्पन्न किया नहीं जा सकता है। इस प्रकार मन और विज्ञान आपस में शोभा बढ़ा रहे हैं। जिस प्रकार भित्तिस्थ चित्रों को देख कर दर्शनार्थी प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार हमारे मन में रहने वाले तत्वविज्ञान को उपदेश से सुनकर जिज्ञासु शिष्यगण प्रसन्न होते हैं। जिस प्रकार दर्शनार्थी जनता चित्र के सौन्दर्य को देखकर कलाकार की प्रशंसा करती है, उसी प्रकार जिज्ञासु शिष्यगण हमारे उपदेश से श्रीभाष्यकार स्वामी जी के द्वारा सिद्धान्ती तत्वविज्ञान की गरिमा को समझ कर श्रीभाष्यकार स्वामी जी प्रशंसा करते हैं। जिस प्रकार चित्र वारम्बार रंगाने से सुशोभित होता है उसी प्रकार तत्वविज्ञान वारम्बार मनन करने से सुशोभित होता है। जिस प्रकार सुन्दर श्रीभगवान के चित्रों से अलंकृत भित्ति को देखकर आस्तिक जनता प्रणाम करती है उसी प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामी जी से लिखित मनोहर तत्वविज्ञान

ज्ञानरूपं चित्रम्, परावरतत्त्वेषु यथार्थज्ञानरूपं चित्रं श्रीभाष्यकार-श्चित्ते लिखति।

"व्याख्यानकेलिरसिकेन कराम्बुजेन चित्ते लिखतीव"—केन चित्रं लिखति, व्याख्यानलीलारसज्ञेन कराम्बुजेन विज्ञान-चित्रं लिखति। श्रीभाष्यकारस्य व्याख्यानमुद्रोपेतेन करेण शिष्याणां ज्ञानोपदेशो न प्रयाससाध्यः, किंतु केलिमात्रम्, किं च केलिः सन्तोषकार्या, तथा श्रीभाष्यकारस्य शिष्येभ्यो ज्ञान-प्रदानमपि संतोषकार्यम्। "सन्तोषार्थं विमृशति मुहुः सद्भिर-ध्यात्मविद्याम्" इति ह्युच्यते। अतो यथा लोकः प्रयोजनान्तर-

---

चित्र को हृदय में धारण करने वाले हम को देख कर श्री वैष्णव जनता प्रणाम करती है। यह सब श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कृपा का फल है। मेरा मन तो केवल भित्ति ही है।

श्रीभाष्यकार स्वामी जी किस साधन से चित्र लिखते हैं? कहते हैं "व्याख्यानकेलिरसिकेन कराम्बुजेन चित्ते लिखतीव"—श्रीभाष्यकार स्वामी जी व्याख्यान मुद्रा से अलंकृतश्रीहस्त से मेरे चित्त में विज्ञान चित्र लिख रहे हैं। व्याख्यान मुद्रालंकृतश्रीहस्त से शिष्यों के लिये सदुपदेश देना श्रीभाष्यकार स्वामी जी को प्रयास साध्य नहीं, किन्तु केलि है अर्थात् खेल है। किंच, सब तरह से परिपूर्ण तथा चिन्ता रहित भाग्यवान सज्जन ही क्रीडा में भाग ले सकते हैं चिन्ता-क्रान्त जनता भाग नहीं ले सकती। उसी प्रकार इस सदुपदेश रूपी क्रीडा में परिपूर्ण सांसारिक चिन्ता रहित श्रीभाष्यकार स्वामी जी इत्यादि आचार्यों का ही अधिकार है। किंच, क्रीडा केवल सन्तोष पाने के लिये हुआ करती है, उससे दूसरा कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं

परः सन् चित्रं लिखति न तथा भाष्यकारः, किं तु स्वयंप्रयोजनबुद्ध्या लिखतीति फलति। किंच, लोके चित्रलेखनौपयिकी वर्तिका यदि कोमला न स्यात् तीक्ष्णधारा स्यात् तर्हि भित्तिं भिन्दीत, न तथा चित्रं लेखितुं शक्येत, कोमलयैव वर्तिकया चित्रं लेखितुं शक्यते इत्यनुभवसिद्धम्। अतएव एतद्रहस्यवेदी श्रीभाष्यकारः कमलकोमलकरेण विज्ञानचित्रं लिखति। एवं तस्य व्याख्यानमुद्रोपेतकराम्बुजविग्रहदर्शमुत्प्रेक्षामहे इति श्रीनिगमान्तदेशिका वर्णयन्ति।

अत्र लिखतीति लट् प्रयोगेण "एषः" इत्युक्तया च व्याख्यानमुद्रया सह श्रीभाष्यकारः श्रीदेशिकाय दर्शनं ददाविति सिध्यति। अतएवोत्तरश्लोकेऽपि पश्येमेति वक्ष्यते ॥२४॥

हो सकता अतः एक क्रीडा स्वयं प्रयोजन समझी जाती है न किसी प्रयोजन का साधन। श्रीभाष्यकार स्वामी जी भी केवल आत्मसंतोषार्थ शिष्यों को सदुपदेश देते थे दूसरे किसी प्रयोजन को प्राप्त करने के लिये नहीं। अतः उनका यह कार्य स्वयं प्रयोजन लीलामात्र है।

"कराम्बुजेन" श्रीभाष्यकार स्वामी जी श्री हस्त से चित्र लिख रहे हैं। चित्र लेखक के लेखन साधन वर्तिका यदि कोमल न रहे, उसका अग्रभाग तीक्ष्ण रहे तो चित्र अच्छी तरह खींचा न जायगा। वर्तिका कोमल होनी चाहिये। अतएव यहाँ पर श्रीभाष्यकार स्वामी जी कमल के समान कोमल अपने श्रीहस्त से चित्र लिखते हैं। यह श्रीदेशिक स्वामी जी की धारणा है।

यहाँ पर "लिखित" ऐसा लट् लकार प्रयोग और "एषः" ऐसा शब्द प्रयोग से व्यक्त होता है कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने व्याख्यान मुद्रायुक्तरूप में दर्शन दिया ॥२४॥

अनेनश्लोकेन पूर्वोक्तामुपदेशमुद्रामेव प्रकारान्तरेणोत्प्रेक्षमाणोऽनुभवति उद्गृह्णतीमित्यादिना लोके स्वकीयभूमावेवाधोनिगूढं निधिमविजानानां तदुपरिसंचरतामपि प्राप्तुमशक्नुवतां दारिद्र्येण सीदतां जनानां विषयेऽनुकम्पमानाः सिद्धाञ्जनलब्धदृष्टिप्रभावाः महात्मानस्तं निधिं विज्ञाय भूमितो निस्सार्य तेषां जनानां स्वाधीने चोरादिप्रवेशसंभावनारहिते रहस्यस्थले नित्यानुभाव्यतया यथा निक्षिपेयुः तथा स्वाधीनोपनिषत्स्वेव निगूढानर्थानुपलब्धुमपारयता अहरहस्तादृशार्थप्रतिपादकोपनिषदावर्तनपराणामपि तानविजानानामत एव तत्वज्ञानदारिद्र्यात्सीदतामस्माकं विषयेऽनुकम्पमानः श्रीभाष्यकारो भगवद्भक्तिसिद्धाञ्जनयोगलब्धदिव्यदृष्टिप्रभावस्तानुपनिषदर्थानुपलभ्य बहिः प्राकाश्य-

---

इस श्लोक में भी श्रीभाष्यकार स्वामी जी की ज्ञान मुद्रा के विषय में ही अपने अनुभव को श्रीदेशिक स्वामी जी व्यक्त करते हैं। लोक में कभी २ देखा जाता है कि अपने गृह के नीचे ही निधि है, परन्तु गृहस्थ जन उसको नहीं जानते हैं। अतएव दरिद्रता में फंसकर नाना प्रकार के क्लेश पा रहे हैं, उनके ऊपर किसी सिद्ध महात्मा की कृपा दृष्टि पड़ती है, वे महात्मा उस निधि को निकालकर उन गृहस्थों के घर में ही सुरक्षित स्थान में रख देते हैं उसी को समय २ पर उपयोग में लाकर गृहस्थ जन सुखमय जीवन बिताते हैं। उसी प्रकार हमारे उन उपनिषदों में ही अनेक गूढार्थ भरे पड़े हैं। जिन उपनिषदों को हम लोगों ने अध्ययन किया है। किन्तु उन गूढ तत्वार्थों को हम लोग समझ नहीं पाते हैं, अतएव ज्ञान दरिद्र होकर संसार में दुःख भोग रहे हैं, हम लोगों पर श्रीरामानुज स्वामी जी की कृपा दृष्टि पड़ी। वे उस वेदार्थ रूपी निधि को निकालकर हमारे हृदय रूपी सुरक्षित स्थान

मानीयास्मदीये चोरादिप्रवेशप्रसङ्गरहिते मनोरूपे एकान्तस्थाने नित्यानुभाव्यतया निवेशयन्निवोपदेशमुद्राधरश्चकास्तीत्यनुभवति-

उद्गृह्णतीमुपनिषत्सु निगूढमर्थं
चित्ते निवेशयितुमल्पधियां स्वयं नः ।
पश्येम लक्ष्मणमुनेः प्रतिपन्नहस्तां
उन्निद्रपद्मसुभगामुपदेशमुद्राम् ॥२५॥

*"उपनिषत्सुनिगूढमर्थम्"—यथा धनमस्मदीय भूमावेव

में उपदेश मुद्रा से निश्चित मात्रा में भर रहे हैं यही उनकी उपदेश मुद्रा से व्यक्त होना है। हम लोग उस तत्व ज्ञान रूपी निधि को समय समय पर उपयोग में लाकर अपने जीवन को सुखमय बना सकते हैं। श्रीदेशिक स्वामी जी ने इस भाव को इस श्लोक से व्यक्त किया है—

उपनिषत्सु निगूढमर्थं—उपनिषदों में छिपे गूढ अर्थों को, *अल्पधियां नः*—हम अल्पज्ञों के, *चित्ते*—चित्त में, *स्वयं निवेशयितुं उद्गृह्णतीम्*—स्वयं प्रविष्ट कराने के लिये ग्रहण करने वाला, *उन्निद्रपद्मसुभगां*—विकसित पद्म के समान मनोहर, *लक्ष्मणमुनेः प्रतिपन्नहस्ताम्*—श्रीरामानुज मुनि के हाथ में बनी हुई, *उपदेश मुद्रां*—उपदेश मुद्रा का, *पश्येम*—दर्शन करते रहें।

निगूढं वर्तते, तथा स्वाधीतोपनिषत्स्वेव "श्रियःपतिरेव परं तत्वम्, इतरत् वस्तुजातं सर्वमवरं तत्वम्, तयोः शरीरशरीरिभावः सम्बन्धः" इत्यादयः तत्वार्थाः सर्वेऽपि नितरां गूढा वर्तन्ते।

उस निधि से वञ्चित रहते हैं, दारिद्र्य में पड़कर नाना प्रकार के क्लेशों को भोगते रहते हैं ऐसे ही यदि उनका जीवन अन्तपर्यन्त पहुँच जाता तो दुःखमय ही हो जाता, सुख उन्हें भोगने को मिलता नहीं, यह बड़ी विषम समस्या है। वैसे ही प्रकृत में भी समझना चाहिये। हम लोग जिन उपनिषदों की आवृत्ति प्रतिदिन करते रहते हैं, उन उपनिषदों के अन्दर गूढ गूढ बहुमूल्य तत्वार्थ भरे रहते हैं। हम लोग शब्द मात्र को समझते हैं, शब्दों के अन्दर रहने वाले तत्वार्थों को नहीं समझते, क्योंकि हमारी बुद्धि बहुत स्वल्प है, शब्द मात्र को समझ सकती है, उसके अन्दर निहित अर्थों को समझ नहीं पाती क्योंकि व्युपत्ति नहीं। उपनिषदों के अन्दर भरे हुये तत्वार्थ ये हैं कि श्रीभगवान् ही परतत्व है, जड़ और चेतन रूपी सभी तत्व निम्न कोटि के तत्व हैं, श्रीभगवान् परमात्मा हैं, अन्य सभी पदार्थ उनके शरीर हैं, यही इनमें आपसी सम्बन्ध है। श्रीभगवान् स्वामी हैं, जीव उनके दास हैं, परतन्त्र हैं, श्रीभगवान के शरण में जाने से ही जीवों का कल्याण होगा, श्रीभगवान् का सर्व विध कैङ्कर्य करना ही परमपुरुषार्थ है इत्यादि। हम लोग अल्प बुद्धि वाले होने के कारण इन तत्वार्थों को समझ नहीं पाते। अतएव तत्वज्ञान से वञ्चित रहते हैं, तथा ज्ञान दरिद्र होकर संसार में नाना प्रकार के दुःखों को भोग रहे हैं, यदि ऐसी स्थिति मरण पर्यन्त रहे तो हमारा जीवन दुःखमय ही होगा, इसमें सन्देह नहीं। किंच हम लोगों को उपनिषदों के अर्थ समझना अति क्लेश साध्य है। साधारण रीति से देखने पर प्रतीत होता है कि

उपनिषदामनेकत्वात् सर्वासामैककण्ठ्यं संपाद्य वास्तवार्थज्ञानं दुःसंपादं वर्तते ।

*"अल्पधियां नश्चिरते स्वयं निवेशयितुम्"—यथा मन्द-दृष्टयो जनास्तं निधिं न जानन्ति, तथैवाल्पबुद्धयो वयमुपनिषत्सु-निगूढमर्थं न ज्ञातुं प्रभवामः । यथा निध्यलाभात् दारिद्र्योपहता-

---

भिन्न भिन्न उपनिषद परस्पर विरुद्ध अर्थों को बतलाते हैं, ऐसी स्थिति में मीमांसा न्यायों को लगाकर उनके विरोध को शान्त करना होगा, उन उपनिषदों में समरसता लानी होगी, तभी उनके अर्थ यथार्थ रूप से समझे जा सकते हैं । ये सब उपाय हम लोगों के लिये साध्य नहीं है। अतएव हम लोग उपनिषदों के यथार्थ अर्थ को न समझकर संसार में क्लेश भोग रहे हैं । अस्तु ।

निधि वाले गृह में निवास करने वाले निधि को प्राप्त करने में असमर्थ उन दरिद्र गृहस्थों को कभी किसी महात्मा से भेंट हो जाती है । गृहस्थ अपनी दुःख गाथा सुनाकर उस महात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हे भगवन् आप कृपा कर इस दरिद्रता को दूर कीजिये, हम लोगों को संपन्न बनाइये । इस प्रार्थना को सुनकर उस महात्मा के मन में दया उमड़ पड़ती है, वे महात्मा अपने नेत्र में उस सिद्धाञ्जन को लगा लेते हैं जिससे भूमि में निहित निधि देखने में आती है, सिद्धाञ्जन को नेत्र में लगाकर वे महात्मा घर के नीचे जब सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं तब उनको निधि देखने में आती है, महात्मा खोद कर उस निधि को निकालते हैं । निकालकर उन गृहस्थों के यहाँ ऐसे सुरक्षित स्थान में रख देते हैं जहाँ चोरों की पहुँच नहीं । गृहस्थों को आदेश देते हैं कि इस सुरक्षित स्थान में रक्खी हुई निधि को समय २ पर उपयोग में लाकर अपने दुःख को दूर करो अपने जीवन को सुखमय बनालो । इस

स्तेसीदन्ति, तथैव वयमपि औपनिषदार्थज्ञानाभावात् संसरन्तः सीदामः। यथा प्रार्थिताः सिद्धाञ्जनाक्तचक्षुषो महात्मानस्तेषां शरणं भवन्ति, तथैव "रामानुजः शरणमस्तु मुनिः स्वयं नः"— इति सानुबन्धिकैरस्माभिः प्रार्थितः श्रीभाष्यकारः प्रसेदिवान् उपदेशमुद्रांकितकरतलः शरणतां स्वीकृत्य दर्शने वितरति। यथा ते महात्मानः सिद्धाञ्जनाक्तचक्षुःप्रभावेण निधिं विज्ञाय उत्खायोपर्यानीय स्वाधीने एकान्तस्थाने निवेशयितुमीहन्ते, तथैव श्रीभाष्यकारोऽपि 'शुद्धभावं गतो भक्त्या शास्त्राद्वेद्मि जनार्दनम्'—

प्रकार आदेश देकर परोपकार पारायण महात्मा यत्रतत्र चले जाते हैं। गृहस्थ उस निधि को उपयोग में लाकर सुखमय जीवन बिताने लगते हैं। ऐसे ही प्रकृत में भी समझना चाहिये। तथाहि—उपनिषदों की आवृत्ति करते हुये भी औपनिषद् अर्थों के समझने में असमर्थ हम लोगों को भी अपने दुःखमय जीवन में श्रीरामानुज स्वामी जी से भेंट हो जाती है। हम लोग श्रीरामानुज स्वामी जी की सन्निधि में अपनी दुःख गाथा सुनाकर जब गद्गद होकर प्रार्थना करते हैं कि "रामानुजः शरणमस्तु मुनिः स्वयं नः"—अर्थात् श्रीरामानुज स्वामीजी हम लोगों के लिये रक्षक बनें। हमारी दुर्दशा को देखकर श्रीरामनुज स्वामी जी के मन में दया उपड़ पड़ती है, अतएव वे "कृपामात्रप्रसन्नाचार्य" अर्थात् अपनी कृपा मात्र से प्रसन्न होने वाले आचार्य कहलाते हैं। श्रीरामानुज स्वामी जी हमारे उपनिषदों के अन्दर छिपे हुये तत्वार्थ रूपी निधि को देखने के लिये अपने मन रूपी आन्तर नेत्र में सिद्धाञ्जन लगा लेते हैं जिससे अतिसूक्ष्म अर्थ भी अच्छी तरह समझ में आ सकता है। वह सिद्धाञ्जन कौन वस्तु है? भगवद्भक्ति ही वह सिद्धाञ्जन है। भगवद्भक्ति होने पर ही शास्त्रों के यथार्थ अर्थ को मन समझ

इत्युक्तरीत्या श्रीभगवद्भक्तिरूपापन्नदृष्टिप्रभावेण तानुपनिषदर्थ-निधीन् विज्ञाय न्यायसंचारपूर्वकं बहिरानीय अस्माकं चित्तरूपे चोराद्युपप्लवरहिते आभ्यन्तरदेशे निवेशयितुमीहते। अस्वाधीन-स्थले निवेशने कृते दरिद्रा यथाभिमतमुपभोक्तुं न क्षमेरन्, स्वाधीनस्थले निवेशितमेव निधिं यथाभिमतमुपभोक्तुं प्रगल्भेरन्,

---

सकता है। संजय धृतराष्ट्र से कहते हैं कि 'शुद्धभावं गतो भक्त्या शास्त्राद्वेद्मिजनार्दनम्'—अर्थ यह है हे राजन मैं श्रीभगवद्भक्ति से शुद्ध प्रभाव को प्राप्त करता हूँ, तभी शास्त्र से समझ पाता हूं कि श्रीकृष्ण भगवान ही परतत्त्व हैं। इस संजय वचन से सिद्ध होता है कि भगवद्भक्ति होने पर ही शास्त्रों का यथार्थ अर्थ समझ में आ सकता है। श्रीकूरेश स्वामी जी भी वैकुण्ठस्तव में कहते हैं कि—

"ये तु त्वदङ्घ्रिसरसीरुहभक्तिहीना स्तेषाममीभिरपि नैव यथार्थबोधः।

अतएव स्वाधीने एकान्तस्थले एव निवेश्यते स निधिर्महात्मभिः, तथैव "पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु यद्धनम्"—इत्युक्तरीत्या पुस्तकेषु औपनिषदार्थानां निवेशे कृते विस्मृति संभवात् अस्माभिस्तेऽर्थानानुभाव्येरन्, चित्तगतत्वे यथाभिमतमनुभाव्येरन्, अतएव अस्माकं चित्ते निवेशयितुमिष्यते श्रीभाष्यकारेण। तत्रापि उपदेशमुद्राधरेण श्रीभाष्यकारेण स्वयं सुस्थिरतया निवेशयितुमिष्यते। स मन्यते एते पूर्णधियश्चेत् सुखेन विद्युः पश्चान्न

औपनिषद अर्थ रूपी निधि देखने में आया। उन्होंने उत्तर मीमाँसा न्याय रूपी कुदालों से खोद कर उसे निकाला। निकाल कर उन्होंने सोचा कि इसे कहाँ रक्खा जाय, उन्होंने निर्णय किया कि इस औपनिषद अर्थ रूपी निधि को इन जिज्ञासुओं के यहाँ ऐसे सुरक्षित स्थान में रखना चाहिये जहाँ चोरों का प्रवेश न हो, वैसा स्थान तो इनका मन ही है मन में रखने पर ये लोग समय समय में उपयोग में ला सकते हैं, क्यों कि पुस्तकस्थ विद्या समय में काम नहीं आती है अतः पुस्तकों में रखना उचित नहीं, मन में ही रखना चाहिये। मन में भी सुस्थिर रखना चाहिये, अन्यथा ये बिसर जायेंगे, क्यों कि ये अल्प बुद्धि वाले हैं, इनका विस्मरण होना सहज है। अतः इनके मन में औपनिषद अर्थों को कूट कूट कर भरना चाहिये। इनका मन ही वह घड़ा है जिसमें औपनिषद अर्थ रूपी निधि को भरना होगा। मन का मुख है बुद्धि, क्योंकि बुद्धि से समझकर ही मन में अर्थ रक्खे जाते हैं, तभी वे अर्थ कभी भी विस्मृत नहीं होते। इनकी बुद्धि तो अत्यन्त अल्प है अतः संपूर्ण औपनिषद अर्थ रूपी निधि एक काल में भराया नहीं जा सकता। अतः व्यवस्थित मात्रा में भरना चाहिये। लोक में भी बच्चों के मुख में अन्न अल्पाल्प मात्रा में ही रक्खा

विस्मरेयुरपि, परंतु एतेऽल्पधियः पदे पदे विस्मरेयुः अतोऽस्माभिरेव सुस्थिरतया एतेऽर्था मनसि निवेशनीया इति तदर्थमेव सोपदेशमुद्रो दर्शनं वितरति ।

*"लक्ष्मणमुनेः"—श्रीभाष्यकारो मुनिर्मननशीलः, स्वयं मननमन्तरा परोपदेशो ह्यसंभवी, अतः स्वयं मननशीलो वर्तते । अथवा "नापात्रे शास्त्रमुत्सृजेत्" इत्युक्तरीत्या अपात्रे ज्ञानोपदेश-

---

जाता है। वैसे ही करना चाहिये। ऐसा विचार कर श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने उपदेश मुद्रा रूपी चुटकी में औपनिषद अर्थों को ले लेकर एक एक करके हमारे मन में भर रहे हैं। उपदेश मुद्रा को देखने पर ऐसा प्रतीत होता है।

"पश्येम लक्ष्मणमुनेः प्रतिपत्त्रहस्तामुन्निद्रपद्ममुभगामुपदेशमुद्राम्"—श्रीभाष्यकार स्वामी जी हमारे मन में औपनिषद अर्थ रूपी निधि को उपदेश मुद्रा के द्वारा भर सकते हैं क्योंकि वे मुनि हैं, उन्होंने औपनिषद अर्थों को अच्छी तरह से मनन किया है। मनन करने के अनन्तर ही उपदेश दिया जा सकता है। अतः श्रीरामानुज स्वामी जी औपनिषद अर्थों का मनन कर चुके हैं, उपदेश मुद्रा से हमारे मन में भर सकते हैं। किंच श्रीरामानुज स्वामी जी मुनि हैं, पात्र और अपात्र का मनन करने वाले हैं। उपदेश के लिये कौन सुपात्र है, कौन कुपात्र है, ऐसा विचार आप उपदेश देने के पूर्व अवश्य करते हैं। उस विचार में जब श्रीरामानुज स्वामी जी ने हम लोगों को सुपात्र समझा, तभी तो हम लोगों को उपदेश देने में प्रवृत्त हुये, उपदेश मुद्रा से हमारे मन में औपनिषद अर्थों को भर रहे हैं। श्रीरामानुज स्वामी जी की वह उपदेश मुद्रा उनके श्रीहस्त को सुशोभित कर रही है, विकसित कमल

कमलवत् सौभाग्ययुक्ता परमभोग्यतया विराजते, तामिमां ज्ञानोपदेशमुद्रां "पश्येम शरदः शतम्" इत्युक्तरीत्या सानुबन्धिका वयं सर्वदा चक्षुर्भ्यां संसेवमाना वर्तेमहि, इतोऽधिकं भाग्यं नास्तीति श्रीदेशिक उपदेशमुद्राया मङ्गलाशासनं कुरुते ॥२५॥

पूर्वश्लोके उपदेशमुद्राया मङ्गलाशासनं कृत्वाऽस्मिन् श्लोके उपदेशवचसां मङ्गलाशासनं करोति—

आकर्षणानि निगमान्तसरस्वतीना-
मुच्चाटनानि वहिरन्तरुपप्लवानाम् ।
पथ्यानि घोरभवसंज्वरपीडितानां
हृद्यानि भान्ति यतिराजमुनेर्वचांसि ॥२६॥

स्वामी जी की उपदेश मुद्रा के विषय में करना चाहते हैं। अन्त पर्यन्त हम लोग श्रीभाष्यकार स्वामी जी की उपदेश मुद्रा को देखते ही रहें, इस पर कुछ भी बाधा न पड़े, स्तन्य पान करने वाले बच्चे जिस प्रकार माता का मङ्गलाशासन करते हैं उसी प्रकार ज्ञानामृत रस पीने वाले हम लोग उपदेश मुद्रा का मङ्गलाशासन करते हैं कि सर्वदा यह मुद्रा हम लोगों को दर्शन देती ही रहे ॥२५॥

पूर्व श्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी ने श्रीभाष्यकार स्वामी जी की उपदेश मुद्रा का मङ्गलाशासन किया। इस श्लोक में श्रीभाष्यकार स्वामी जी के उपदेश शब्दों का मङ्गलाशासन करते हैं—

यतिराजमुनेर्वचांसि—यतिराज मुनि के वचन, *निगमान्तसरस्वतीनां आकर्षणानि*—वेदान्त वाक्यों को आकृष्ट करने वाले हैं, *वहिरन्तरुपप्लवानाम्*—बाह्य और आन्तरिक उपद्रवों के उच्चाटनानि दूर हटाने वाले हैं,

*"यतिराजमुनेर्वचांसि निगमान्तसरस्वतीनामाकर्षणानि"— श्रीभाष्यकारस्य श्रीभाष्यादिरूपाणि उपदेशवचांसि वेदान्तसरस्वतीनामाकर्षकमन्त्ररूपाणि भवन्ति। "संजगौ वेणुना देवकीनन्दनः" इति श्रीकृष्णेन वेणुगानि कृते "निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः" इति सर्वा गोपस्त्रिय आकृष्टा यथाऽऽधावन्ति स्म, तथा श्रीभाष्यकारेण हृद्ये उपदेशे प्रारभ्यमाणे वेदान्तसरस्वत्यस्तेनाकृष्टा आधावन्ति स्म। वेणुगानेन न या काचिदेका व्रजस्त्री आकृष्टा, किंतु सर्वा एवाकृष्टा बभूवुः। तथाऽत्र

घोरभवसंज्वरपीडितानां—और भयंकर भव रूपी ज्वर से पीडित लोगों को, *पथ्यानि हृद्यानि*—पथ्य एवं मनोहर, *भान्ति*—लगते हैं।

"आकर्षणानि निगमान्तसरस्वतीनाम्"—श्रीभाष्यकार स्वामी जी के उपदेश रूप में जो जो वाणी निकलती हैं वे सब वाणियाँ अनेक कार्य करती हैं, उसमें परस्पर विरुद्ध कार्य भी करती हैं। इतनी उनकी शक्ति है। लोक में देखा जाता है कि प्रत्येक वस्तु की शक्ति व्यवस्थित है कोई भी पदार्थ परस्पर विरुद्ध कार्य नहीं कर सकता। अग्नि गरम कर सकती है ठण्डा नहीं कर सकती, जल शीतल कर सकता गरम नहीं कर सकता। श्रीभाष्यकार स्वामी जी की वाणी तो परस्पर विरुद्ध कार्य करती है, एक ही समय में आकर्षण भी करती है और उच्चाटन भी कैसे? श्रीभाष्यकार स्वामी जी की वाणी उपदेश समय में वेदान्त सरस्वतियों का आकर्षण करती है, उपदेश वाणी सरस्वती है, वेदान्त सरस्वती भी सरस्वती है। सजातीय से सजातीय का आकर्षण अनायास होता है। सरस्वती देवता है, यदि उनका आकर्षण करने वाला कोई मन्त्र हो तो वह मन्त्र श्रीभाष्यकार स्वामी जी की उपदेश वाणी ही है। श्रीकृष्ण भगवान ने वृन्दावन में वेणुगान किया, उससे आकृष्ट होकर

श्रीभाष्यकारोपदेशेन या काचिदेका वेदान्तसरस्वती आकृष्टा भवति, किंतु सर्वा एव वेदान्तसरस्वत्य आकृष्टा बभूवुः। श्रीभाष्यकारेणोपदेशे प्रारब्धे सकलवेदान्तार्था अक्लेशेनाविर्भवन्तीति भावः।

*"बहिरन्तरुपप्लवानामुच्चाटनानि"—बहिरुपद्रवाः कुदृष्टिलल्पनादयः, अन्तरुपद्रवा रागादयः, एषां श्रीभाष्यकारवचांसि रक्षोघ्नमन्त्रा इवोच्चाटनानि। श्रीभाष्यकारे उपदेशप्रवृत्ते दीपे प्रज्वालयमाने तमांसीव कुदृष्टयः स्वयमेव भग्नाः कान्दिशीकाः पलायेरन्, तथा रागद्वेषादयोऽपि नश्येयुरिति भावः।

सभी गोपियाँ उनके समीप दौड़ आयी थीं। उसी प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामी जी जब उपदेश देने लगते हैं तब सभी उपनिषद्वाणी "अहं पूर्वं अहं पूर्वं" करके दौड़ आती हैं। भाव यह है कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी के उपदेश में सभी वेदान्तार्थ अनायास आविर्भूत होते हैं।

"उच्चाटनानिबहिरन्तरुपप्लवानाम्"—श्रीभाष्यकार स्वामी जी की उपदेश वाणी आकर्षण करती है, इतना ही नहीं, किन्तु उच्चाटन भी करती है अर्थात् भगा देती भी है। किनको भगाती है? अन्दर और बाहर के सभी उपद्रवों को भगाती है। परवादियों के द्वारा जनता को बहकाना बाहरी उपद्रव है। काम क्रोध आदि अन्दर के उपद्रव हैं, इन सबको भगाने वाला यदि कोई मन्त्र हो तो वह श्रीभाष्यकार स्वामी जी की उपदेश वाणी ही है। जिस प्रकार रक्षोघ्न मन्त्र का पाठ करने पर राक्षस भाग जाते हैं, उसी प्रकार उपदेश वाणी से परवादिगण भाग जाते हैं। जैसे दीप जलाने पर अन्धकार अपने आप दूर हो जाता है उसी प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामी जी की उपदेश वाणी सुनने पर काम क्रोध आदि आन्तर उपद्रव शान्त हो जाता है।

*"घोरभवसंज्वरपीडितानां पथ्यानि"—अतिघोरसंसार-रूपमहाज्वरपीडितानां श्रीभाष्यकारवचांसि पथ्यानि । यथा पथ्यसेवनेन महाज्वरो नश्यति, तथा श्रीभाष्यकारोपदेशश्रवणेन संसारो विलीयते । "हृद्यानि" ज्वरस्यालवणपथ्यमपि निवर्तकम्, अथापि न तद् हृद्यम्, व्याधिशमनार्थं पथ्यत्वेनोपदिष्टं क्षीरान्नं हृद्यमपि भवेत्, तथा श्रीभाष्यकारस्योपदेशवचांसि संसारनिवर्तक-त्वेन सह हृद्यतामपि बिभ्रति ।

*"यतिराजमुनेर्वचांसिहृद्यानिभान्ति"—यतिश्रेष्ठस्य स्वयं

"घोरभवसंज्वरपीडितानां पथ्यानिहृद्यानि"—यह संसार ही भयंकर ज्वर है, ज्वर में संताप बढ़ता है, संसार में भी तापत्रय बढ़ते हैं, ज्वर में शक्ति क्षीण होती है, संसार में आत्म शक्ति क्षीण होती है, ज्वर अपथ्य सेवन से होता है, संसार श्रीभगवदाज्ञा का उलंघन करने से लगा है, ज्वर में मनुष्य आत्म विस्मृत हो जाता है. संसार में जीव स्वरूप ज्ञान शून्य रहता है, ज्वर में मनुष्य उन्मत्त होकर शरीर वाक् और मन से ऊट पटांग कार्य करता है, संसार में भी जीव त्रिकरणों से निषिद्ध कार्य करता है, ज्वर में मनुष्य मर तक जाता है, संसार में जीव का आत्म-नाश हो जाता है । अतः संसार एक प्रकार का ज्वर ही है, सन्देह नहीं, ज्वर में पथ्य गुणकारी है, संसार में श्रीभाष्यकार स्वामी जी का उपदेश गुणकारी है, पथ्य सेवन से महा ज्वर भी शान्त होता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी के उपदेश सुनने से संसार नष्ट हो जाता है । हाँ, लोक में पथ्य रोगी का अभिमत नहीं रहता है, ज्वर में अलवण भोजन रूपी पथ्य को रोगी पसन्द नहीं करता, किसी तरह से क्लेश से पथ्य लेना पड़ता है । यहाँ तो श्रीभाष्यकार स्वामी जी की उपदेश वाणी संसार के लोगों को अत्यन्त अभिमत रहती है । यह विशेषता है ।

स्वभावेन सुभगानुभवः सर्वेषां मनोज्ञानुभवः शिखावान् चूडावान्। अनेन यतिभिश्चूडाधार्येति सिध्यति। अत्र "पौर्णमास्यां शिखावर्जं मुण्डयेत शिरो यतिः" "कक्षोपस्थशिखावर्जं मुण्डयेत शिरो यतिः" इत्यदीनि लिखितहारीतादि वचनानि प्रमाणान्यनुसन्धेयानि।

❀"दोषावमर्दनियतोन्नतिरोषधीशः"—दोषावमर्दे नियतोन्नतिर्व्यासोदयो रोषो यस्य सः, दोषावमर्दनियतोन्नतिरोषः स चासौ धीशश्चेति विग्रहः। धिय ईशो धीशः प्राज्ञाग्रणीरित्यर्थः। यद्वा दोषावमर्दे नियता नित्या उन्नतिर्यस्याः सा रोषधीर्येषां तेषामीशः स्वामी।

क्रोध नहीं है। अतएव श्रीभाष्यकार स्वामी जी का अनुभव सबके लिये मनोहर होता है। श्रीभाष्यकार शिखाधारी के रूप में सबको दर्शन देते हैं। संन्यासियों को भी शिखाधारण करना चाहिये। इसमें निम्नलिखित वचन प्रमाण हैं। लिखित महर्षि का वचन है कि— "पौर्णमास्यां शिखावर्जं मुण्डयेत शिरोयतिः" अर्थात् संन्यासी पौर्णमासी में शिखा को छोड़कर सिर का मुण्डन करें। हारीत का वचन है कक्षोपस्थशिखावर्जं मुण्डयेत शिरोयतिः" अर्थात् संन्यासी कक्ष, गुह्य स्थान और शिखा को छोड़कर सिर का मुण्डन करे।

"दोषावमर्दनियतोन्नतिरोषधीशः"—श्रीभाष्यकार स्वामी जी शिष्यों के दोषों को मिटाने के लिये ही कृत्रिम रोष (कोप) करने वाले हैं क्योंकि वे धीश हैं अर्थात् विद्वान हैं। जब देख लेते हैं कि बिना कोप किये इनका दोष दूर न ही होगा, तभी वे कृत्रिम कोप करते हैं। अथवा शिष्यों के दोषों को दूर करने के लिये ही कोप करने वाले ७४ पीठस्थ आचार्यों के स्वामी हैं श्रीभाष्यकार स्वामी जी।

*"तापानुबन्धशमनस्तपनः प्रजानाम्"—प्रजानां तापानुबन्धशमनः सांसारिकतापसम्बन्धनिवर्तकः सन् तपनस्तप्तमुद्राधारणविधायक इत्यर्थः।

*"रामानुजो जयति संवलितत्रिधामा"—संवलितः संवद्धः त्रिधामा सर्वेश्वरो यस्मिन् सः। "येऽनन्यमनसः शुद्धा ये दास्यैकपरायणाः। तेषां मे हृदयं स्थानं वैकुण्ठाद् परमं मतम्"। "ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्" इत्युक्तवत्स्वभावात् "सदा परगुणाविष्टः" इत्युक्तवत्स्वभावाच्च सर्वदाऽस्य हृदयसम्बद्धः सर्वेश्वर इत्यर्थः। एवं त्रिधो रामानुजो जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते।

"तापानुबन्धशमनस्तपनः प्रजानाम्"—श्रीभाष्यकार स्वामीजी अनादि काल से अनुवर्तमान तापत्रय को शान्त करने वाले हैं, तदर्थ प्रजाओं को तप्त चक्राङ्कन देते हैं।

अथवा

पूर्वश्लोके श्रीभाष्यकारवचसामाकर्षणत्वोच्चाटनत्वपथ्यत्व-हृद्यत्वरूपपरस्परविरुद्धधर्माक्रान्ततया वैभवे वर्णिते संप्रसेदुषा श्रीभाष्यकारेण लौकिकाग्निचन्द्रसूर्यस्वभावविरुद्धस्वभाववति

है। ऐसी स्थिति में श्रीभाष्यकार स्वामी जी में श्रीभगवान् का निवास करना उचित ही है। इस प्रकार श्रीभगवान् के वासस्थान तथा पूर्वोक्त गुण सम्पन्न श्रीभाष्यकार स्वामी जी की जय हो मंगल हो।

इस श्लोक का दूसरा अर्थ भी होता है, वह इस प्रकार है।

श्रीदेशिक स्वामी जी ने पूर्व श्लोक में कहा कि जिस प्रकार परम शान्त महर्षि के आश्रय में हिंसक प्राणी परस्पर वैर को भूलकर एक साथ रहते हैं उसी प्रकार परम शान्त श्रीभाष्यकार स्वामी जी की उपदेश वाणी में विरुद्ध गुण भी परस्पर विरोध को त्याग कर एक साथ रहते हैं, अतएव उस उपदेश वाणी में आकर्षण करना उच्चाटन करना ये दोनों विरुद्ध गुण, पथ्य बनना मनोहर बनना ये दोनों विरुद्ध गुण एक साथ पाये जाते हैं। इस प्रकार विस्मय के साथ श्रीदेशिक स्वामी जी ने श्रीभाष्यकार स्वामी जी की उपदेश वाणी की स्तुति की इससे प्रसन्न होकर श्रीरामानुज स्वामी जी ने अपने स्वरूप का दर्शन कराया। उस स्वरूप में श्रीदेशिक स्वामी जी ने अग्नि सूर्य और चन्द्र को एक साथ देदीप्यमान देखा। इससे आपको अपार आश्चर्य हुआ। लोक में ये तीनों पदार्थ एक साथ नहीं चमकते। दिन में सूर्य प्रकाशता है, उस समय चन्द्र और अग्नि का प्रकाश नहीं। रात्रि में चन्द्र और अग्नि प्रकाशते हैं, उस समय सूर्य का प्रकाश नहीं। प्रतीत होता है कि ये तीनों परस्पर में विरोध रखते हैं। परस्पर में विरोध रखने वाले तेजस्वी मनुष्यों में सन्धि कराना सहज नहीं। आज गुण सम्पन्न श्रेष्ठ महात्मा

अतएव लौकिकाग्निचन्द्रसूर्यगतदोषविधुरे अग्निचन्द्रसूर्यसमाहारात्मके उपदेशकालिके स्वस्वरूपे दर्शिते तद्वर्णयन्ननुभवति शीतेत्यादिना—

*"शीतस्वभावसुभगानुभवः शिखावान्"—अयं श्रीभाष्यकारोऽग्निचन्द्रसूर्याणां समाहाररूपः। अग्निः शिखावान् ज्वालावान्, श्रीभाष्यकारोऽपि शिखावान् चूडावान्, अतः शिखावत्व-

---

ही इनमें सन्धि करा सकते हैं। उसी प्रकार परस्पर में विरोध रखने वाले इन अग्नि चन्द्र और सूर्य में विरोध को शान्त कर इन्हें एक साथ रखकर प्रकाशित करना भी असाध्य ही है। इस असाध्य कार्य को आत्मगुण सम्पन्न श्रीभाष्यकार स्वामीजी सम्पन्न कर रहे हैं। श्रीभाष्यकार स्वामी जी में ये तीनों एक साथ विराजकर देदीप्यमान हो रहे हैं। श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने इनमें विरोध को शान्त किया, इतनी बात नहीं। किन्तु इनमें अन्यान्य जो दोष रहे उन्हें भी दूर किया। लोक में अग्नि चन्द्र और सूर्य में जो दोष पाये जाते हैं, वे दोष श्रीभाष्यकार रूप से चमकने वाले अग्नि चन्द्र और सूर्य में नहीं पाये जाते। इस प्रकार दोष रहित तीन तेज के रूप में चमकने वाले अनन्त शक्ति सम्पन्न श्रीभाष्यकार स्वामी जी की जय हो इस प्रकार जय जयकार श्रीदेशिक स्वामी जी इस श्लोक से कर रहे हैं।

"शीतस्वभावसुभगानुभवः शिखावान्"—श्रीभाष्यकार स्वामी जी में अग्नि तत्व संमिश्रित है, अतएव अग्नि तत्व के गुण श्रीभाष्यकार स्वामी जी में पाये जाते हैं। अग्नि अन्धकार को दूर करता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी अज्ञानान्धकार को दूर करते हैं। अग्नि इन्धन को जला देता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी आश्रितों के पापों को जला देते हैं। अग्नि इन्धन को जला करके भी अतृप्त रहता है, और जलाने

शुचिरितरेषामशुद्धपदार्थानां शुचित्वापादकः, तथा श्रीभाष्यकारोऽपि, अग्निरन्धकारविनाशकः, तथा श्रीभाष्यकारोऽपि। अग्निजाठराग्निरूपेण देहधारकः, तथा श्रीभाष्यकार आचार्यरूपेणात्मधारकः। अतोऽयं श्रीभाष्यकारोऽग्निरिति सुवचम्, अथापि शीतस्वभावसुभगानुभव इति विशेषः।

*"दोषावमर्दनियतोन्नतिरोषधीशः"—अयं श्रीभाष्यकार ओषधीशश्चन्द्र इति विज्ञायते, चन्द्रोऽन्धकारविनाशकः प्रियदर्शन

रखता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जीवों को वैकुण्ठ पहुँचाने में प्रथम स्थान रखते हैं। अग्नि शब्द का अर्थ है आगे ले जाने वाला। अतः अग्नि अपने उपासकों को आगे ले जाता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी अपने आश्रितों को आगे ले जाते हैं। अग्नि के विना लोगों का जीवन नहीं हो सकता, श्रीभाष्यकार स्वामी जी के विना लोगों का उज्जीवन नहीं हो सकता। संस्कृत में शिखा शब्द के दो अर्थ हैं ज्वाला और चोटी। अग्नि ज्वाला वाला है, अतः शिखावान् है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी चोटी धारण करते हैं अतः शिखावान् है। इस प्रकार अग्नि और श्रीभाष्यकार स्वामी जी में पूर्ण समता है। परन्तु अग्नि में जो दोष है वह श्रीभाष्यकार स्वामी जी में नहीं। अग्नि उष्ण है अतएव किसी को भी पास नहीं आने देता। अग्नि सेवा करने वाले दूर में रहकर ही अग्नि सेवा कर सकते हैं। किन्तु श्रीभाष्यकार स्वामी जी की प्रकृति शीत है, क्योंकि वे दयारस से व्याप्त हैं, अतः उनके पास जाकर सब सेवा कर सकते हैं। यही श्रीभाष्यकार स्वामी जी में विशेषता है। अतः श्रीभाष्यकार स्वामी जी दोष रहित अग्नि के समान प्रकाशते हैं।

"दोषावमर्दनियतोन्नतिरोषधीशः"—श्रीभाष्यकार स्वामी जी विलक्षण चन्द्रमा हैं। चन्द्र अन्धकार को दूर करता है श्रीभाष्यकार स्वामी जी

आह्लादहेतुश्च, तथा श्रीभाष्यकारोऽपि। चन्द्रः "पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः" इत्युक्तरीत्या रसात्मको भूत्वौषधीः पुष्णाति, तथा श्रीभाष्यकारः "रसो वै सः" इत्युक्तरसमयः (भगवन्मयः) सन् संसाररोगनिवर्तकान् श्रीवैष्णवान् पुष्णाति। अतोऽयं चन्द्रसाधर्म्यात् चन्द्र इति वक्तुं शक्यते। परन्तु अयं

अज्ञानान्धकार को दूर करते हैं। चन्द्र का दर्शन सबको प्रिय लगता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी का भी दर्शन सबको प्रिय लगता है। चन्द्र जगत को आह्लादित करता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी भी जगत को आह्लादित करते हैं। चन्द्र अमृत रसमय है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी "रसोवैसः" इस श्रुति से वर्णित रसरूपी श्रीभगवान् के अनुभव रस से परिपूर्ण हैं। चन्द्र अमृतमय किरणों से औषधियों का पोषण करता है। श्रीभाष्यकार स्वामी जी भगवदनुभवमय सदुपदेशों से श्रीवैष्णवों को पुष्ट करते हैं। चन्द्र उन औषधियों के द्वारा रोगों को नष्ट करता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी श्रीवैष्णवों के द्वारा तापत्रय को नष्ट करते हैं। चन्द्रकला निधि है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी कलाओं के अर्थात् विद्याओं के निधि है। चन्द्रमा का उदय होते ही दिशायें प्रसन्न होती हैं, जगत् का ताप दूर होता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी का आविर्भाव होते ही दिशायें प्रसन्न हो गयीं, जगत् का तापत्रय दूर हुआ। श्रीशंकर के शत्रु मन्मथ का चन्द्रमा प्रिय है, मन्मथ के शत्रु श्रीशंकर का भी प्रिय है, अतएव श्रीशंकर जी चन्द्रमा को सिर पर धारण करते हैं, श्रीभाष्यकार स्वामी जी आपस में विरोध रखने वाले सब लोगों के परम प्रिय हैं। चन्द्रमा ग्रहगण तारागणों के साथ आकाश में प्रकाशता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी ७४ पीठस्थ आचार्य गण ७०० संन्यासियों से सुसेवित होकर सबके हृदयाकाश में प्रकाशते हैं। चन्द्रमा समुद्र को उल्लसित करता है,

विशेषः लौकिकचन्द्रो दोषाकरत्वात् दोषोदये रात्रिसमये नियतो-न्नतिर्भवतीति चन्द्रस्य दोषः, श्रीभाष्यकारस्तु दोषावमर्दे दोष-निवारणार्थं नियतोन्नतिर्भवतीति गुणः, अतो लौकिकचन्द्रगत-दोषासंस्पृष्टोऽयं विलक्षणचन्द्र इति सिध्यति।

*"तापानुबन्धशमनस्तपनः प्रजानाम्"—किं च श्रीभाष्य-कारस्तपनः सूर्य इति प्रतीयते, सूर्योऽन्धाकारविनाशकस्तेजस्वी

श्रीभाष्यकार स्वामी जी श्रीवैष्णव समुद्र को उल्लसित करते हैं। चन्द्रमा विष्णु पद अर्थात् आकाश का आश्रय लेकर चमकता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी विष्णुपद अर्थात् श्रीमन्नारायण भगवान् के चरण का आश्रय लेकर प्रकाशते हैं। इस प्रकार विवेचन करने पर विदित होता है कि चन्द्र और श्रीभाष्यकार स्वामी जी में अत्यन्त समता है। अतः श्रीभाष्य-कार स्वामी जी भी एक चन्द्रमा ही हैं। परन्तु एक विशेष है कि लौकिक चन्द्रमा में जो दोष पाया जाता है वह श्रीभाष्यकार स्वामी जी में नहीं। संस्कृत भाषा में दोषा शब्द का रात्रि अर्थ है, चन्द्रमा का उदय दोषा अर्थात् रात्रि को मिटाने के लिये नहीं होता किन्तु उल्लसित करने के लिये होता है। तथाच चन्द्रमा का उदय दोषा (रात्रि को) उल्लसित करने वाला है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी का उदय अर्थात् आविर्भाव तो दोषों को मिटाने वाला है। किंच चन्द्रमा कलङ्क वाला है क्षय वाला है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी तो कलङ्क रहित हैं समस्त कल्याण गुणों से सदा परिपूर्ण हैं। अतः श्रीभाष्यकार स्वामी जी एक दोष रहित चन्द्रमा हैं।

"तापानुबन्धशमनस्तपनः प्रजानाम्"—किंच, श्रीभाष्यकार स्वामी जी एक विलक्षण सूर्य हैं। सूर्य में जो गुण पाये जाते हैं वे सब गुण श्रीभाष्यकार स्वामी जी में भी पाये जाते हैं। सूर्य अन्धकार को दूर

च, तथा श्रीभाष्यकारोऽपि । किंतु लौकिकसूर्यस्तापानुबन्धं वर्धयति, अयं तु तापत्रयानुबन्धं शमयतीति विशेषः । अतो लौकिकसूर्यदोषासंस्पृष्टोऽयं विलक्षणसूर्य इति भावः ।

करता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी अज्ञानान्धकार को दूर करते हैं, सूर्य तेजस्वी है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी भी तेजस्वी हैं। सूर्य सर्वदा एक रूप है चन्द्रमा की तरह घटता बढ़ता नहीं है, वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी भी एक रूप हैं, न सुख में फूलते हैं, न दुःख में खिन्न होते हैं। सूर्य के उदय होने पर चन्द्र तारागण इत्यादि तेजः पिण्ड तेजोहीन हो जाते हैं, श्रीभाष्यकार स्वामी जी के आविर्भाव होने पर मतान्तर वादी तेजोहीन हो गये। सूर्य जल से ऊपर आये हुये कमलों का अपने पाद स्पर्श अर्थात् किरण स्पर्श से विकसित करता है, उसमें श्रीमहालक्ष्मी का निवास होता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी संसार से किंचित् ऊपर आये हुये आश्रितों को अपने पाद स्पर्श से विकसित करते हैं, उनमें श्रीमहालक्ष्मी समेत श्रीनारायण भगवान् का निवास होता है। सूर्य के पाद स्पर्श से अर्थात् किरण स्पर्श से विकसित कमल देवताओं के सिर पर चढ़ते हैं, श्रीभाष्यकार स्वामी जी के पाद स्पर्श से पवित्रित श्रीवैष्णव देवताओं को भी अभिनन्दनीय हो जाते हैं। सूर्य के उदय से ही दिन सुदिन बनता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी के आविर्भाव से ही जीवन उज्जीवन बनता है। सूर्य के किरण ही अग्नि और चन्द्रमा में निवास कर रात्रि के अन्धकार को मिटाते हैं, श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ज्ञान किरण ही शिष्यों में व्याप्त होकर अज्ञानान्धकार को दूर करते हैं। इस प्रकार सूर्य और श्रीभाष्यकार स्वामी जी में अत्यन्त समता है। अतः श्रीभाष्यकार स्वामी जी भी एक सूर्य ही हैं। परन्तु यह विशेषता है कि लौकिक सूर्य में जो दोष हैं वे श्रीभाष्यकार स्वामी जी में नहीं।

*"रामानुजो जयति संवलितत्रिधामा"—अग्निसूर्यचन्द्र-समाहाररूपी अयं श्रीभाष्यकारो जयति । लोके सूर्ये प्रकाशमाने अग्निचन्द्रौ न प्रकाशेते, अग्निचन्द्रयोः प्रकाशकाले सूर्यो न प्रकाशते, एषां त्रयाणां युगपत्प्रकाशः श्रीभाष्यकारे लक्ष्यते, अतोऽयं जयति ।

श्रीभाष्यकार उपदेशकाले शिष्याणामनवधानस्य वारणार्थं स्खालित्ये शासनार्थं च सूर्याग्निवत् क्रौर्यं तदेव कोपेऽपि कान्तं मुखमिति भोग्यतां च बिभर्तीति शीतस्वभावेत्यादिविशेषणैश्चन्द्र-सूर्याग्निदृष्टान्तेन च सूच्यते ॥२७॥

सूर्य उत्तरोत्तर संताप को बढ़ाता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जो तापत्रय परम्परा को नष्ट करते हैं। अतः श्रीभाष्यकार स्वामी जी निर्दुष्ट एक विलक्षण सूर्य हैं।

"रामानुजो जयति संवलितत्रिधामा"—श्रीगीता में श्रीभगवान् ने कहा कि—"यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् । यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥" अर्थात् जो तेज सूर्य चन्द्र और अग्नि में रहकर जगत् को भासित करता है वह तेज मेरा है अर्थात् भगवान् का है। इस गीता वचन से सिद्ध होता है कि श्रीभगवान् अपने तेज को सूर्य चन्द्र और अग्नि में रखकर जगत् को भासित कर रहे हैं। श्रीभगवान् ने देखा कि इन तेजों में भी कुछ कुछ दोष हैं, इनसे बाह्य अन्धकार भले नष्ट हो अन्दर का अन्धकार तो नष्ट नहीं होता, अतः इन तेजों से दोषों को निकालकर इन तीनों तेजों को एक में भरकर उनके द्वारा अज्ञानान्धकार को दूर करना चाहिये। श्रीभगवान् ने अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिये इन तेजों को दोषों से छुड़ाकर जिस एक महानु-भाव में इन तीनों तेजों को भरकर अवतार कराया वह महानुभाव

रपि जननीजठरे शयनम्" इत्युक्तरीत्या यातायातकर्मैः श्रान्तानां तापत्रयक्लान्तानां श्रमपरिहारं कांक्षमाणानां छायादानेनोपकुर्वन् कल्पशाखी । श्रीभाष्यकारे बहुमुखं वृक्षसाधर्म्यं वर्तते । वृक्षोभूमिलीनमूलत्वात् कुलीनः श्रीभाष्यकारोऽपि सत्कुलोत्पन्नत्वात्कुलीनः । शाखिनो दिगन्तविस्तृतशाखावन्तो भवन्ति, श्रीभाष्यकारो दिगन्तव्याप्तसच्छिष्याढ्यो भवति । वृक्षाः पत्रैः पुष्पैः फलैः छायया मूलेन वल्कलैर्दारुभिश्च लोकस्योपकुर्वन्तः परार्थजन्मानो भवन्ति, श्रीभाष्यकारः पञ्चसंस्कारप्रदानविद्याप्रदानात्मगुणवर्धनभगवच्छरणागतिसाधनसदुपदेशप्रदानादिभिर्बहुभिः प्रकारैर्लोकस्योपकुर्वन् परार्थजीवनो वर्तते । वृक्षः स्वयमातपे तिष्ठन् परेषां छायां वितरति,

---

जमा है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी भी कुलीन हैं क्योंकि वे सत्कुल में उत्पन्न हुये हैं। वृक्षों की शाखायें दूर २ तक विस्तृत रहती हैं, श्रीभाष्यकार स्वामी जी शिष्य प्रशिष्य शाखायें जगत् में दूर २ तक विस्तृत हैं। वृक्षों का जन्म केवल परार्थ होता है क्योंकि वे पत्ते, पुष्प, फल, मूल, त्वचा, काष्ठ और छाया से दूसरों का उपकार करते हैं। श्रीभाष्यकार स्वामी जी पञ्चसंस्कार प्रदान, विद्या प्रदान, कालक्षेप प्रवचन, दिव्यदेशों का उद्धार, शिष्यों को श्रीभगवान् के शरण में पहुँचाना और शिष्यों के आत्म गुणों को बढ़ाना इत्यादि नाना प्रकार से जीवों को उपकार करते हैं। अतः श्रीभाष्यकार स्वामी जी का भी जीवन केवल परार्थ ही है। वृक्ष स्वयं आतप को अपने सिर पर लेता हुआ दूसरों को छाया देता है। श्रीभाष्यकार स्वामी जी स्वयं अनेक कष्टों को सहते हुये दूसरों के लिये छाया देते हैं। वृक्ष काटने वालों को भी छाया देकर उपकार करता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी शत्रुओं को भी शरण देकर उपकार करते हैं। वृक्ष मूल में जल देने पर फूलता फलता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी

श्रीभाष्यकारः स्वयं क्लेशान् सहमानो लोकस्याश्रयदानेनोपकरोति। वृक्षः छेत्तुरपि छायां प्रयच्छति, श्रीभाष्यकारो द्रोग्धृणामप्युपकरोति। वृक्षो मूले जलदानेन प्रसीदति श्रीभाष्यकारः श्रीचरणपरिचर्यया प्रसीदति। वृक्षः गतागतश्रान्तानां छायादानेन तापमपहृत्य फलानि दत्वा भोजयति, तथा श्रीभाष्यकार आश्रयदानेन तापत्रयमपाकुर्वन् ब्रह्मानन्दमनुभावयति। कल्पवृक्षः स्वमाश्रितानां यथाभिमतं सर्वविधं मनोरथं पूरयति, तथा श्रीभाष्यकारोऽपि। पर्वताग्रे स्थितस्य वृक्षस्य पर्वताग्रादारभ्य भूतलपर्यन्तं व्याप्तायां छायायां बहवः प्राणिनोऽवस्थाय तापशान्तिसुखमनुभवन्ति, तथैव अत्युन्नतं श्रीभगवन्तमाश्रित्य रूढमूलस्य श्रीभाष्य-

---

श्री चरण परिचर्या से प्रसन्न हो जाते हैं। कल्प वृक्ष आश्रितों के सभी मनोरथों को पूर्ण कर देता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी भी आश्रितों के सभी मनोरथों को पूर्ण करते हैं। मार्ग में वारम्वार यातायात से श्रान्त आतप से संतप्त पथिक जन विश्रान्ति के लिये वृक्ष की शरण में जाते हैं, वृक्ष छाया से उनके संताप को दूर कर फलों से उनकी क्षुधा को शान्त करता है। श्रीभाष्यकार स्वामी जी इस संसार मार्ग में वारम्वार जन्म-मरण रूपी यातायात से श्रान्त तापत्रय से सन्तप्त जीवों को अपने शरण में लेकर उनको अपनी चरण छाया में रखते हैं, उनके तापत्रय को दूर कर ब्रह्मानन्द रूपी महाफल का भोजन कराते हैं। पर्वत के शिखर पर स्थित वृक्ष की छाया पर्वत के अग्रभाग से लेकर भूमि तक फैल जाती है असंख्य प्राणी उस छाया का आश्रय लेकर अपने ताप को दूर करते हैं शान्ति सुख का अनुभव करते हैं। वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कृपा रूपी छाया शिष्यों के अनुबन्धियों तक फैल जाती है, उस कृपा के आश्रय में रहकर असंख्य मनुष्य अपने तापत्रय को दूर करते हैं,

कारस्य सानुबन्धिकपर्यन्तं प्रसरन्त्यां कृपायामवस्थाय बहवस्ता-पत्रयशान्तिसुखमनुभवन्ति । अतः पर्वतोपरिस्थवृक्षसंनिभः श्रीभाष्यकार इत्यत्र न सन्देहः ।

"निखिलकुमतिमायाशर्वरीबालसूर्यः"—श्रीभाष्यकारो न केवलं सकलविद्यावाहिनीनामुत्तुङ्गजन्मशैलः न वा केवलं जनि-पथपरिवृत्तिश्रान्तानां कृते पर्वतोपरिस्थितोऽप्युन्नतः कल्पशाखी, किंतु तस्य वृक्षस्योपरि परिदृश्यमानो बालसूर्योऽपि । सूर्यस्य श्रीभाष्यकारस्य च बहुविधं साधर्म्यं विद्यते । तथाहि—बालसूर्ये उदितमात्र एव शर्वरी स्वयमेवापैति, तथैव श्रीभाष्यकारे उदित मात्रे निखिलकुमतीनां मायायुक्तिजालं स्वयमेव भग्नं भवति ।

तथा शान्ति सुख का अनुभव करते हैं। अतः सिद्ध हुआ कि संसार मार्ग में बारम्बार परिभ्रमण से खिन्न तापत्रय तृप्त मनुष्यों के लिये यदि कोई छाया दाता वृक्ष हो तो वह श्रीभाष्यकार स्वामी जी ही हैं। उनकी जय हो।

"निखिलकुमतिमायाशर्वरीबालसूर्यः"—लोक में पर्वत सबसे उन्नत है, पर्वत के ऊपर रहने वाला वृक्ष उस पर्वत से भी उन्नत दिखाई देता है। उस पर्वत के ऊपर दिखाई देने वाला बालसूर्य सबसे उन्नत दिखाई देता है, उस बालसूर्य के समान श्रीरामानुज स्वामी जी सबसे अत्यन्त उन्नत दिखाई देते हैं। सूर्य और श्रीरामानुज स्वामी जी में नाना प्रकार से समता है। बालसूर्य के उदय होने पर रात्रि अपने आप मिट जाती है, वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी का अवतार होते ही मतान्तरस्थों की कपट युक्तियाँ भी खण्डित हो जाती हैं। पर्वताग्र में सूर्य के उदित होने पर उनका प्रकाश बहुत दूर तक फैल जाता है, जहाँ

सूर्ये पर्वतोपरिस्थवृत्तशिरसि भासमाने तस्यात्युच्चदेशस्थत्वात् तत्प्रकाशप्रसरणस्य बहुदूरदेशपर्यन्तं संभवात् तावति सर्वत्र देशे तमोनिवृत्त्या यथा रात्रिर्नश्यति तथा श्रीभाष्यकारसिद्धान्तप्रकाशस्य प्रसारो यावद्दूरं व्याप्नोति तावति देशेऽज्ञानान्धकारस्य नाशात् कुमतिमाया स्वयमेव नश्यति। सूर्योदयात् पूर्वमुदितेनारुणेनैव नैशतमोनाशः प्रारभ्यते, सूर्येण निःशेषनाशः क्रियते, तथा श्रीभाष्यकारावतारात्प्रागवतीर्णेन श्रीयामुनाचार्येणैव कुमतिमाया-वादनिबन्धनमज्ञानं विनाशयितुमारब्धम् श्रीभाष्यकारेण तन्निःशेषं विनाशितम्। सूर्य उदितः स्वप्नं नाशयति, श्रीभाष्यकार उदित-मात्र एव लोकस्य स्वस्वरूपपरस्वरूपादिविषये विविधानादि-कालानुवृत्तान् भ्रमान् नाशयति। सूर्यस्तमःप्रकाशसंभेदरूपां

तक प्रकाश फैल जाता है, वहाँ सर्वत्र अन्धकार मिट जाता है अतएव रात्रि भी लुप्त हो जाती है। वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी के सिद्धान्त का प्रचार देश में जितने दूर तक होता है, वहाँ तक का अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है, कूट युक्तिवाद भी नष्ट हो जाता है। यद्यपि सूर्योदय के पूर्व अरुणोदय में ही अन्धकारमय रात्रि मिटने लगती है, परन्तु उसका पूरा नाश सूर्योदय होने पर ही होता है, वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी के अवतार के पूर्व श्रीयामुनाचार्य स्वामी जी के अवतार काल में परवादियों का कूट युक्ति जाल मिटने लगा परन्तु श्रीभाष्यकार स्वामी जी के अवतार होने पर ही निःशेष नष्ट हुआ। सूर्य उदित होते ही निद्रा में पड़े हुये मनुष्यों के स्वप्नों को नष्ट करता है। श्रीभाष्यकार स्वामी जी अवतार लेते ही अविद्या रूपी निद्रा में पड़े हुये मनुष्यों के स्वस्वरूप और परस्वरूप इत्यादि के विषय में फैले हुये भ्रमों को नष्ट करते हैं। सूर्य उस चन्द्रिका को भी हटा देता है

चन्द्रिकामपि नाशयति, श्रीभाष्यकारो ज्ञानाज्ञानदशां नाशयति। सूर्योऽतिनिर्मलं प्रकाशं विस्तृणीते, श्रीभाष्यकारोऽतिनिर्मलमात्म-ज्ञानं विस्तृणीते, सूर्यःसुदिनमुत्पादयति, श्रीभाष्यकारः लोकस्यो-ज्जीवनसमयमुत्पादयति, सूर्ये उदिते लोके प्रकाशमयः प्रातःकाल आसीदति, श्रीभाष्यकारे उदिते लोके प्रकाशमयउज्जीवनसमय उपसर्पति, प्रातःकाले आसन्ने पक्षी प्रबुध्य नीडान्निर्गच्छति, उज्जीवनसमये आसन्ने जीवपक्षी आत्मज्ञानरूपं प्रबोधं प्राप्य देहनीडात् ज्ञानकर्मपक्षसाह्येन निर्गच्छति। संकुचितकमलबद्धो भ्रमरः सूर्ये उदिते बन्धान्मुच्यते, संकुचितसूक्ष्मदेहबद्धो जीवः

जिसमें प्रकाश और अन्धकार का सम्मिश्रण रहता है, श्रीरामानुज स्वामी जी मनुष्यों को उस दशा को भी नष्ट कर देते हैं जिसमें ज्ञान और अज्ञान का सम्मिश्रण रहता है। सूर्य अति निर्मल प्रकाश को फैलाता है, श्रीरामानुज स्वामी जी अति निर्मल आत्म ज्ञान को फैलाते हैं। सूर्य सुदिन को लाता है, श्रीरामानुज स्वामी जी उज्जीवन समय को समीप लाते हैं। सूर्य के उदित होते ही लोक में प्रकाशमय प्रातः काल आ जाता है, श्रीरामानुज स्वामी जी का अवतार होते ही लोक में प्रकाशमय उज्जीवन समय आ जाता है। प्रातःकाल होते ही पक्षी जागकर घोसलों से निकलकर अपने पक्ष के बल से आकाश में उड़ने लगते हैं, उज्जीवन समय उपस्थित होते ही जीव रूपी पक्षी आत्म ज्ञान रूपी प्रबोध को प्राप्त कर अपने ज्ञान-कर्म रूपी साधनों से परमात्मा रूपी आकाश में विहार करने लगते हैं। संकुचित कमल में बँधा हुआ भ्रमर सूर्योदय होते ही उस बन्धन से छूट जाता है, सूक्ष्म देह में बँधा हुआ जीव भी श्रीरामानुज स्वामी जी का अवतार होते ही उस बन्धन से छूट जाता है। रात्रि में चक्रवाक पक्षियों के दम्पति एक दूसरे से अलग

श्रीभाष्यकारे उदिते तस्माद्बन्धाद्विमुच्यते। विप्रयुक्तौ चक्रवाकदम्पती वियोगेन दुःखयन्तौ आकाशे उदितस्य सूर्यस्य प्रकाशेन संयुज्य समाहितमनसौ भवतः, संसारनद्यां परस्परवियोगेन अन्धभक्तिरूपतां वाचिकज्ञानरूपतां च प्राप्यावसीदन्त्यौ ज्ञानभक्ती अस्मिन् श्रीभाष्यकारे उदिते तद्दर्शनप्रकाशेन संयोगं प्राप्य सामरस्यमनुभवतः। सूर्ये उदिते चोरो निलीयते, मार्गे जना निर्भयं संचरन्ति, श्रीभाष्यकारे उदिते मिथ्याज्ञानं निलीयते, आत्मकल्याणपथसाधका निर्भयं संचरन्ति। सूर्यस्य किरणस्पर्शे जाते सूर्यकान्तादग्निरुद्भूय कान्तारं दहति, श्रीभाष्यकारीयग्रन्थस्पर्शे जाते शिष्येभ्यस्तत्वज्ञानाग्निरुद्भूय संसारं दहति। सूर्ये

होकर क्लेश पाते हैं, वे सूर्य उदित होते ही आपस में मिलकर चित्त समाधान प्राप्त करते हैं। श्रीभाष्यकार स्वामी जी के अवतार के पूर्व ज्ञान और भक्ति एक दूसरे से अलग होकर वाचिक ज्ञान और अन्ध भक्ति के रूप में परिणत होकर निकम्मे हो गये थे, श्रीभाष्यकार स्वामी जी का अवतार होते ही इनसे प्रसारित प्रकाश से ज्ञान और भक्ति आपस में मिलकर समरसता को प्राप्त करते हैं। सूर्य के उदित होते ही चोर छिप जाते हैं, मनुष्य मार्गों में निर्भय विचरण करने लगते हैं। श्रीभाष्यकार स्वामी जी का आविर्भाव होते ही राग द्वेष इत्यादि चोर छिप जाते हैं जो साधकों के ज्ञान को चुराते थे, साधक निर्भय होकर साधन मार्ग में विचरण करते हैं। सूर्य के किरणों से स्पर्श होने पर सूर्य कान्त मणि से अग्नि प्रकट होता है, जंगल को जला देता है श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थों में परिचय होते ही शिष्यों में ज्ञानाग्नि प्रस्फुटित होता है, वह कर्मरूपी जंगल को भस्म कर देता है। सूर्योदय होने के अनन्तर ही बाजार में हीरा पन्ना मोती इत्यादि बहुमूल्य

उदिते रत्नवाणिज्यं प्रवर्तते, श्रीभाष्यकारे उदिते गुरुशिष्ययो-र्भगवत्कल्याणगुणानुभवस्य आदानप्रदानरूपो व्यापारः प्रवर्तते। अतः श्रीभाष्यकारो निखिलकुमतिमायाशर्वरीबालसूर्य इत्यत्र न सन्देहः।

❀"निगमजलधिवेलापूर्णचन्द्रो यतीन्द्रो जयति"—निगमा वेदा एव जलधयः तेषां वेलाया अम्बुविकारस्य उज्जृम्भणस्य कृते पूर्णचन्द्रः श्रीयतीन्द्रः। समुद्रस्य वेदस्य च साधर्म्यं विद्यते। समुद्रस्यान्तो नास्ति, वेदस्यान्तो नास्ति, अतएव 'अनन्ता वै वेदा' इत्युच्यते। समुद्रे कल्पवृक्षः कामधेनुः ऐरावतउच्चैःश्रवाः कौस्तुभश्चन्द्र अप्सरस इत्यादयोऽनन्ता भोग्यपदार्थाः सन्ति, वेदेऽपि ते ते सर्वेऽपि भोग्यपदार्थाः सन्ति। समुद्रस्थास्ते सर्वेऽपि

वस्तुओं का व्यापार चलता है। श्रीभाष्यकार स्वामी जी अवतार होने के अनन्तर ही गुरु और शिष्यों में श्रीभगवान् के कल्याण गुण रूपी बहुमूल्य वस्तुओं का प्रवचन श्रवण रूपी व्यापर होता है। अतः इस विवेचन से सिद्ध हुआ कि सूर्य और श्रीभाष्यकार स्वामी जी में अत्यन्त समता है। और यह भी सिद्ध होता है कि सभी परवादियों के कूट युक्ति जाल रूपी रात्रि को मिटाने वाला यदि कोई बालसूर्य है वह श्रीभाष्यकार स्वामी जी ही हैं।

"निगमजलधिवेलापूर्णचन्द्रोयतीन्द्रः"—पूर्ण चन्द्र समुद्र को बढ़ाता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी वेदों को हर्षित करते हैं। समुद्र और वेद में अत्यन्त समता है। समुद्र का अन्त नहीं है, वेदों का अन्त नहीं है, तभी तो कहा जाता है कि "अनन्ता वै वेदाः"। समुद्र में कल्पवृक्ष कामधेनु चिन्तामणि ऐरावत हाथी उच्चैःश्रवा घोड़ा कौस्तुभ इत्यादि रत्न चन्द्र और अप्सरा इत्यादि अनन्त भोग्य पदार्थ भरे पड़े हैं, वेदों में सब

मन्थनेनैव सुलभाः वेदस्था एते सर्वेऽपि मीमांसान्यायमन्थनेनैव सुवेदाः। समुद्रेऽमृतं वर्तते यल्लाभेन देवा अमरा जाताः वेदेऽपि ब्रह्मानन्दरसामृतं वर्तते एतत्प्राप्त्या दैवप्रकृतयः साधका मृत्युमतितरन्तोऽन्वर्थामरा भवन्ति। तथाविधं समुद्रं समुद्रजः सकलकलापूर्णः चन्द्रो वर्धयति, तादृशं वेदं वैदिकः सकलकलापरिपूर्णः श्रीभाष्यकारो वर्धयति। अल्पज्ञं दृष्ट्वा वेदा बिभ्यति "मामयं प्रतरिष्यति" इति। यथावस्थितार्थग्राहिपूर्णप्रज्ञाशालिनं श्रीभाष्यकारं दृष्ट्वा वेदा परिपूर्णचन्द्रदर्शी समुद्र इव सहर्षोल्लासं नृत्यन्तीत्यर्थः श्रीभाष्यकारस्य पूर्णचन्द्रसादृश्यं बहुमुखं वर्तते।

तरह के भोग्य फल भरे पड़े हैं। समुद्र में रहने वाले ये सब पदार्थ मन्थन करके ही निकाले जा सकते हैं, वेदों से वर्णित महा फल भी साधनानुष्ठान से ही प्राप्त किये जा सकते हैं। समुद्र में अमृत है, उसे प्राप्त कर देवतागण अमर बन गये हैं, वेद में ब्रह्मानन्द रसामृत है दैवी प्रकृति वाले साधक उसे प्राप्त कर मृत्युमय संसार को जीत कर यथार्थ अमर होते हैं। समुद्र में श्रीभगवान् शयन करते हैं, वेदों में श्रीभगवान् प्रतिपाद्य हैं। समुद्र से उत्पन्न चन्द्रमा ही सकल कलाओं से परिपूर्ण होकर उस समुद्र को उज्जृम्भित करता है परम वैदिक श्रीभाष्यकार स्वामी जी ही सकल विद्याओं से परिपूर्ण होकर वेदों को हर्षित करते हैं। भाव यह है कि अल्पज्ञ विद्वान् को देखकर वेद भयभीत होता है। वेदों के यथार्थ अर्थों को समझने में समर्थ पूर्ण प्रज्ञा से युक्त श्रीभाष्यकार स्वामी जी के व्याख्यानों से प्रभावित होकर वेद ऐसे नाचने लगते हैं जिस प्रकार परिपूर्ण चन्द्र को देखकर समुद्र तरङ्ग रूपी हाथों को उछालता हुआ नाचने लगता है। समुद्र के प्रत्येक तरङ्ग में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब झलकता है, वेदों के प्रत्येक वाक्य में भी

पूर्णचन्द्रः सकलकलापरिपूर्णः तथा श्रीभाष्यकारोऽपि, चन्द्रिका-स्पर्शेन चन्द्रश्चन्द्रकान्त शिला द्रवयुक्ताः करोति, श्रीभाष्यकार उपदेशवाग्भिः शिला प्रायाण्यपि लोकमनांसि द्रवयुक्तानि करोति। पूर्णचन्द्रः सुवृत्तः (सम्यग्वर्तुलाकारः) भवति, श्रीभाष्यकारः सुवृत्तः भवति। पूर्णचन्द्रः शरणागतं मृगमत्यजन् दर्शनं ददाति,

---

श्रीभाष्यकार स्वामी जी का सिद्धान्त झलकता है। कवि (शुक्र) गुरु (बृहस्पति) इत्यादि ग्रह भले आकाश में अत्युच्च स्थान में विराजे अपने किरणों को फैलावें, खूब प्रतिष्ठा पावें तो भी चन्द्र ही समुद्र को उल्लसित कर सकता है, अनेक कवि अनेक गुरु भले जगत् में अत्युच्च स्थान पर विराजें, अपने उपदेश किरणों को फैलावें, बहुत प्रतिष्ठा भी प्राप्त करलें तो भी सकल विद्याओं से परिपूर्ण श्रीभाष्यकार स्वामी जी ही वेदों को उल्लसित कर सकते हैं। अतः सिद्ध हुआ कि वेदरूपी समुद्र को बढ़ाने वाला यदि कोई पूर्ण चन्द्र है तो वह श्रीभाष्यकार स्वामी जी ही हैं। उनकी जय हो।

अर्चिरादि मार्ग में सूर्य के ऊपर चन्द्रमा की गणना है, अतः सिद्ध होता है कि सूर्य के ऊपर रहने वाला चन्द्र सूर्य से भी उच्च स्थान में रहता है उस अत्युच्च चन्द्रमा के समान हैं श्रीभाष्यकार स्वामी जी। श्रीभाष्यकार स्वामी जी और चन्द्रमा में नाना प्रकार से समता है। पूर्ण चन्द्र सकल कलाओं से पूर्ण रहता है, श्रीभाष्य-कार स्वामी जी भी सकल कलाओं से पूर्ण हैं। चन्द्र अपने किरणों से स्पर्श कर चन्द्र कान्त शिला को द्रवित कर देता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी अपने उपदेशों से शिला समान कठिन हृदयों को भी द्रवित कर देते हैं। पूर्ण चन्द्र सुवृत्त अर्थात् गोल आकार रहता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी सुवृत्त अर्थात् सदाचार सम्पन्न रहते हैं।

श्रीभाष्यकारः शरणागतान् मृगप्रायानप्यत्यजन् दर्शनं ददाति। पूर्णचन्द्रः आकाशमध्ये विहरति, श्रीभाष्यकारः सर्वेषां हृदयाकाशे विहरति। अत्युन्नतमाकाशमध्यमधिरूढश्चन्द्रमा अमृतमयैर्मयूखैर्जगत् क्षीरप्लावितं विधत्ते अत्युच्चगोपुरशिखरमधिरूढः श्रीभाष्यकारोऽमृतमयमन्त्रोपदेशेन जगद्ब्रह्मानन्दाप्लुतं विधत्ते। चन्द्रः सर्वज्ञेन शिवेन शिरसा धार्यते, श्रीभाष्यकारः सर्वज्ञैर्जगन्मङ्गलकारिभिः श्रीवैष्णवैः शिरसा धार्यते, तिथ्यन्तरवर्धितकलमपि चन्द्रं पूर्णिमैव पूर्णं करोति, आचार्यान्तरवर्धितज्ञानमपि

वेद में कहा गया है कि चन्द्र ब्राह्मणों का राजा है, अतः द्विज पति कहलाता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी ब्राह्मणों के गुरु हैं, अतः द्विज पति कहलाते हैं। पूर्ण चन्द्र शरणागत मृग को गोद में लिये हुये लोगों को दर्शन देता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी शरणागत मृग प्राय मनुष्यों को भी आश्रय देते हुये लोगों को दर्शन देते हैं। पूर्ण चन्द्र आकाश में विहार करता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी श्रीवैष्णवों के निर्मल हृदयाकाश में विहार करते हैं। पूर्ण चन्द्र अत्युच्च आकाश मध्य में चढ़कर अमृतमय चन्द्रिका से मानो जगत् को दुग्धधारा से आप्लावित कर देता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी अत्युच्च गोपुर शिखर में चढ़कर अमृतमय मन्त्रार्थ के उपदेश से श्रीवैष्णवों को ब्रह्मानन्द से आप्लावित कर देते हैं। चन्द्रमा की कला को सर्वज्ञ श्री शिवजी सिर से धारण कर अभिनन्दन करते हैं, सर्वज्ञ तथा जगत् के मङ्गलकारी श्रीवैष्णव श्रीभाष्यकार स्वामी जी की चरण पादुका को सिर से धारण कर आनन्दित होते हैं। यद्यपि अन्यान्य तिथियों से भी चन्द्रमा की कला बढ़ती है, तथा चन्द्रमा को सर्वकला पूर्ण बनाने का श्रेय पूर्णिमा को ही है, यद्यपि अन्यान्य गुरुओं से श्रीभाष्यकार स्वामी जी में विद्या पढ़ी है,

श्रीभाष्यकारं श्रीमहापूर्ण एव पूर्णं करोति। चन्द्रः द्विजपतिः श्रीभाष्यकारोऽपि द्विजपतिः। प्राप्तोदयेषु इतरेषु नक्षत्रेषु सत्स्वपि चन्द्रमसैव नैशं तमो नश्यति बुभुक्षितचकोराणामुदरपूर्तिर्लोकस्य तापापनोदश्च भवति, प्राप्तोदयेषु मतान्तरस्थाचार्येषु सत्स्वपि श्रीभाष्यकारेणैव सांसारिकोऽज्ञानान्धकारो नश्यति, जिज्ञासूनां जनानामिच्छापूर्तिर्भवति, लोकस्य तापापनोदश्च भवति, शुक्राद्या-ग्रहाः काममुच्चस्थानेषु तिष्ठन्तु, प्रभामप्युद्गिरन्तु वितथांश्रौढिं च दधताम् परंतु चन्द्र एव समुद्रं वर्धयितुमलम् तथा मतान्तर-स्थाचार्याः काममत्युच्चस्थानेषु तिष्ठन्तु उपदेशमुद्गिरन्तु, प्रौढिं च भजन्तां, किंतु श्रीभाष्यकार एव वेदानुल्लासयितुमलम्। तारागणमध्ये नायकायमानश्चन्द्रो विहरति, गुरुपरम्परामध्ये नायकायमानः श्रीभाष्यकारो विभ्राजते। अतो दुरपन्हवं बहुमुखं

तथा श्रीभाष्यकार स्वामी जी को सर्व कलाओं से परिपूर्ण बनाने का श्रेय श्रीमहापूर्ण स्वामी जी को ही है, क्योंकि पूर्णिमा ही चन्द्र को पूर्ण कर सकती है, महापूर्ण स्वामी जी ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी को पूर्ण कर सकते हैं। भले अनन्त नक्षत्र उदय को प्राप्त करें तो भी रात्रि का अन्धकार चन्द्रमा से ही दूर होता है, चन्द्रमा से ही बुभुक्षित चकोर पक्षियों की उदर पूर्ति होती है, चन्द्रमा से ही संसार का ताप शान्त होता है। भले अन्यान्य मतान्तरस्थ आचार्य आविर्भूत हों, तो भी श्रीभाष्यकार स्वामी जी से ही जगत् का अज्ञानान्धकार दूर होता है, जिज्ञासु जनता की जिज्ञासा पूर्ति होती है, संसार का ताप शान्त होता है। तारागण के मध्य में नायक रत्न की तरह चन्द्रमा चमकता है, गुरु परम्परा में नायक मणि की तरह श्रीभाष्यकार स्वामी जी चमकते हैं।

चन्द्रसाधर्म्यमस्तीति निगमजलधिवेलापूर्णचन्द्रः यतीन्द्रः। अर्चिरादिमार्गे सूर्यादुपरिस्थो यश्चन्द्रःसोऽपि श्रीभाष्यकार एव।

*"यतीन्द्रः" अर्चिरादिमार्गेचन्द्रादप्युच्चत्वेन य इन्द्रो गण्यते सोऽपि श्रीभाष्यकार एव यतोऽयं यतीन्द्रः। श्रीभाष्यकारे बहुविधमिन्द्रसाधर्म्यं वर्तते। इन्द्रो देवाधिपः श्रीभाष्यकारो भूदेवाधिपः इन्द्रो दृष्टिसहस्रेणैकैकमर्थं दृष्ट्वा निर्णयति, तथा श्रीभाष्यकारः। इन्द्रः एकेन गुरुणा एकेन कविना एकेन कलाधरेण च सेव्यते श्रीभाष्यकारस्तु बहुभिः गुरुकविकलाधरैः सेव्यत इति विशिष्यते। इन्द्रं वसवो रुद्रा आदित्या मरुतोऽन्यान्यदेवाश्चोपासते, श्रीभाष्यकारं चतुस्सप्ततिपीठस्थाचार्याः सप्तशतसंख्याका यतयः द्वादशसहस्र संख्याकाः श्रीवैष्णवाश्चोपासते। इन्द्रः कुलिशेन पर्वतानां पक्षच्छेदकः श्रीभाष्यकारो वादायुधेन

"यतीन्द्रः"—अर्चिरादि मार्ग में चन्द्रमा के ऊपर इन्द्र की गणना है। अतः सिद्ध होता है कि चन्द्रमा से भी इन्द्र उच्च स्थान में है। उस अत्युच्च इन्द्र के समान हैं श्रीभाष्यकार स्वामी जी। श्रीभाष्यकार स्वामी जी और इन्द्र में भी समता है। इन्द्र देवेन्द्र कहलाते हैं, श्रीभाष्यकार स्वामी जी यतीन्द्र कहलाते हैं इन्द्र देवों के अधिपति हैं, श्रीभाष्यकार स्वामी जी भूदेवों के अधिपति हैं। इन्द्र सहस्र दृष्टियों से प्रत्येक वस्तु को देखते हैं, श्रीभाष्यकार स्वामी जी सहस्र दृष्टियों से प्रत्येक पदार्थ को परीक्षा कर निर्णय करते हैं। वसु रुद्र आदित्य मरुत और अन्यान्य देव गण इन्द्र की सेवा करते हैं, ७४ पीठस्थ आचार्य ७०० संन्यासी १२००० श्रीवैष्णव गण अन्यान्य जनता भी श्रीभाष्यकार स्वामी जी की सेवा करते हैं। इन्द्र वज्रायुध से पर्वतों के पक्षों को काट देते हैं

परमतपक्षच्छेत्ता अतो बहुविधसाधर्म्यसत्त्वाद् देवराजोऽपि अयं यतीन्द्र एव।

भुवि सर्वोत्तुङ्गः पर्वतः ततोऽप्युत्तुङ्गस्तच्छिरस्थो वृक्षः ततोऽप्युत्तुङ्गस्तन्मस्तके विराजमानो बालसूर्यस्ततोप्युच्चश्चन्द्रमास्ततोऽप्युच्चासनस्थ इन्द्रश्चेत्येते सर्वेऽपि नन्वयं सर्वोत्तुङ्गः श्रीभाष्यकार एव। तदेवं सर्वोत्तुङ्गो यतीन्द्रो जयत्विति मङ्गलमाशास्महे ॥२८॥

श्रीभाष्यकार स्वामी जी शास्त्रार्थ रूपी आयुध से परवादियों के पक्षों को काट देते हैं, इस प्रकार इन्द्र और श्रीभाष्यकार स्वामी जी में समता है, इन्द्र के आस्थान में अन्तर इतना ही है कि इन्द्र के आस्थान में एक कवि (शुक्राचार्य) एक गुरु (बृहस्पति) एक कलाधर (चन्द्र) रहते हैं, श्रीभाष्यकार स्वामी जी के आस्थान में विराजने वाले सभी कवि गुरु और कलाधर हैं। अतः अल्प अन्तर होने पर भी इन्द्र और श्रीभाष्यकार स्वामी जी में अत्यन्त समता है। अतः यतियों में कोई इन्द्र हो तो वह हमारे श्रीभाष्यकार स्वामी जी ही हैं।

पूर्वश्लोके जयमुद्घोष्य अनेन श्लोकेन श्रीभाष्यकारस्य श्रीभाष्यादि श्रीसूक्तिरस्माकं विषये प्रसादं करोत्विति प्रार्थयते। तच्चेत्थं प्रार्थयते यथा कस्यचित् सार्वभौमस्य पुत्री केनचित् भाग्याधिकेन लब्धपरिचया सती पुत्रं प्रसूते, तथा यतिसार्वभौमस्य सूक्तिरस्माभिः परिचिता सती प्रसादं करोत्विति। अत एव श्रीमन्निगमान्तदेशिकेन "निर्विष्टं यतिसार्वभौमवचसामावृत्तिभिर्यौवनम्" इत्यन्यत्रोच्यते। अत्र यौवनपदप्रयोगेन आवृत्तिभिरिति स्त्रीलिंगशब्दप्रयोगेण चायमर्थो ध्वन्यते। अत्रापि तथा सूक्तिरिति स्त्रीलिङ्गशब्दप्रयोगः परिचितशब्दप्रयोगः प्रसादमिति शब्दप्रयोगः प्रस्नुवीतेति धातुप्रयोगश्चेममर्थं व्यञ्जयति।

मुनिबहुमतसारा मुक्तिनिश्रेणिकेयं
सहृदयहृदयानां शाश्वती दिष्टसिद्धिः।
शमितविमतखेदा* संयमीन्द्रस्य सूक्तिः
परिचितगहना नः प्रस्नुवीत प्रसादम् ॥२६॥

पूर्वश्लोकों में श्रीदेशिक स्वामी जी ने श्रीभाष्यकार स्वामी जी के विषय में जयजयकार मनाया। इस श्लोक में श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीभाष्यादि श्रीसूक्ति से प्रार्थना करते हैं कि हमारे विषय में प्रसन्न हो, हमारे ऊपर अनुग्रह करें।

मुनिबहुमतसारा—मुनियों के बहुमत का सार, *मुक्तिनिश्रेणिका*—मुक्ति की सीढ़ी, *सहृदयहृदयानां शाश्वतीदिष्टसिद्धिः*—सहृदय लोगों के हृदय को शाश्वत फल प्रदान करने वाली, *शमितविमतखेदा*—मतान्तर जनित खेद

---

*शमितदुरितगन्धा

*"मुनिबहुमतसारा" शठकोपमुनिनाथमुनियामुनमुनि-प्रभृतिभिरस्याः सारार्थाः सर्वेऽपि बहुमताः सन्ति। श्रीभाष्यकार-सूक्तौ श्रीमन्नाथमुनिप्रभृतिभिर्निर्णीता एवार्थाः परिपूर्णाः सन्ति, अथवा "वैशम्पायनशौनकप्रभृतयः श्रेष्ठाः शिरः कम्पिनः" इत्युक्तरीत्या श्रीभाष्यादिसारार्थान् वैशम्पायनबोधायनप्रभृतयो बहुमन्यन्ते इत्यर्थः। अत्र यतिसार्वभौमस्य श्रीसूक्तिः सार्वभौम-पुत्रीत्येन रूप्यते। सार्वभौमपुत्र्यपि मुनिबहुमतसारगुणवती भवति। अतएव हि "अथपीजरया वृद्धस्तपसा च जरां गतः। वेपमान इवोवाच रामं भूतदयापरम्। कुतः कल्याणसत्वायाः कल्याणाभिरतेः सदा। चलनं तात वैदेह्यास्तपस्विषु विशेषतः।"

को शान्त करने वाली, परिचितगहना—गहराई का परिचय देने वाली, इयं—यह, संयमीन्द्रस्यसूक्तिः—यतिराज की सूक्ति, नः—हम पर, प्रसाद प्रस्तुवीत—अनुग्रह करे।

"मुनिबहुमतसारा"—श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति की यह महिमा है कि इस श्रीसूक्ति से प्रतिपादित सारतम अर्थों को श्रीशठकोप मुनि श्रीनाथ मुनि श्रीयामुन मुनि इत्यादि मुनि गण अभिनन्दन करते हैं। क्योंकि इन मुनियों से प्रतिपादित अर्थों को ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति प्रतिपादन करती है। अथवा श्रीभाष्यादि श्रीसूक्ति में प्रतिपादित सारतम अर्थों को वैशम्पायन बोधायन शौनक श्रीशुक ब्रह्मर्षि इत्यादि महर्षिगण शिरः कम्पन पूर्वक अभिनन्दन करते हैं। किंच, श्रीभाष्य इत्यादि श्रीसूक्ति बाहर से भी मनोहर है, अन्दर से भी मनोहर है। यह सूक्ति अनायास अपने अर्थों को स्फुट रूप में उपस्थापित करती है इसे ही आलंकारिक लोग द्राक्षापाक कहते हैं। श्रीभाष्य आदि में द्राक्षापाक है, अतएव इसका अर्थ अनायास सर्व साधारण को समझ

इति श्रीजानकीगुणा महर्षिभिरभिनन्द्यन्ते। राजपुत्री श्रीजानकीवत् स्पृहणीयचरिता भवति। उत्तमा राजपुत्री यथा बाह्यसौन्दर्य-लावण्यादिगुणसौष्ठवेन शमाद्यान्तरगुणसौष्ठवेन च पूर्णा भवति, तथा श्रीभाष्यकारस्य श्रीसूक्तिर्द्राक्षापाकमयी सती बहिः सुभगा गम्भीरार्थत्वादन्तः सुभगा च भवति।

❀"मुक्तिनिश्रेणिका" श्रीभाष्यकारस्य श्रीसूक्तिर्मोक्षसौधारोहणार्थं सोपानायते, सोपाने बहूनि पर्वाणि भवन्ति श्रीसूक्तावपि तत्वज्ञानोत्पादनमुपायनिष्पादनं भगवद्रुचिवर्धनमित्यादीनि बहूनि पर्वाणि सन्ति। उत्तम स्त्री अपि धर्मानुष्ठाने सहधर्म-चारिणी भूत्वा मुक्तेः परम्परया कारणं भवति।

❀"सहृदयहृदयानां शाश्वती दिष्टसिद्धिः" स्निग्धहृदया-

में आता है। अतः सिद्ध होता है कि श्रीभाष्य आदि श्रीसूक्ति बाहर से देखने पर भी मनोहर लगती है। तथा यह सूक्ति अन्दर भी मनोहर है, क्योंकि इसके अन्दर अनेक सूक्ष्मार्थ भरे रहते हैं जिन्हें विद्वान ही समझ सकते हैं। यह सूक्ति बाहर और अन्दर भी मनोहर रहती है। अतएव मुनिगण इसका बहुमान करते हैं।

"मुक्तिनिश्रेणिका"—मोक्षरूपी प्रासाद पर चढ़ने के लिये यदि कोई सोपान हो तो वह श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति ही है। सोपान में अनेक पर्व होते हैं, उन्हें पार कर मनुष्य प्रासाद पर पहुँचता है। इस श्रीसूक्ति में भी अनेक पर्व हैं, वे ये हैं (१) तत्वज्ञान को उत्पन्न करना, (२) साधनानुष्ठान सम्पन्न कराना (३) श्रीभगवान् में रुचि बढ़ाना इत्यादि। इन पर्वों को पार करके ही साधक मोक्ष पद पर पहुँच सकता है।

नामत्तया दैवादागता भाग्यसिद्धिरिव वर्तते इयं यतिसार्वभौमस्य सूक्तिः। यथाऽनायासेन दैवात् सहृदयैः प्राप्ता योगसिद्धिर्यथा तेषां हृदये आनन्दं वर्धयति, तथा श्रीभाष्यकारस्य श्रीसूक्तिरपि अनायासेन दैवात् सहृदयैर्लब्धा तेषां हृदयस्यानन्दवर्धिका भवति। अणिमाद्यष्टैश्वर्यादिसिद्धिवत् नेयमशाश्वती, किंतु शाश्वतीसिद्धिः। सूक्तेर्मोक्षप्रदत्वात् शाश्वतसिद्धित्वम्। सहृदयतया आत्मानं सेवमानानामेवेयमानन्दं वर्धयति, अहृदयतया सेवमानानां कुदृष्टिप्रभृतीनां यथावदर्थप्रकाशाभावान्नानन्दावहा भवति। उत्तमस्त्री च सहृदयतया पालयितुः सहृदयस्य सिद्धिवत् सर्वफलप्रदा भवति। तथा विधोत्तमस्त्री पुरुषेण दैवादेव

"सहृदयहृदयानां शाश्वतीदिव्यसिद्धिः"—जो सहृदय हैं अच्छे हृदय वाले हैं, उनके हृदयों के लिये यदि कोई भाग्योदय हो तो वह श्रीभाष्यादि श्रीसूक्ति का परिचय ही है। यदि किसी मनुष्य को अनायास ही योग सिद्धि प्राप्त हो जाय तो उससे उसके हृदय में आनन्द ही आनन्द होता है। वैसे यदि सहृदय महानुभावों को श्रीभाष्य आदि सूक्ति सुनने को मिले तो उनके हृदय में भी आनन्द ही आनन्द होता है। अणिमा इत्यादि सिद्धियाँ शाश्वत नहीं होती हैं किन्तु यह श्रीसूक्ति रूपी दिव्य सिद्धि शाश्वत रहती है। क्योंकि यह सूक्ति रूपी सिद्धि मोक्ष सिद्धि तक पहुँचा देती है। अतः शाश्वत सिद्धि है। श्रीसूक्ति रूपी महा सिद्धि उन लोगों को ही आनन्द देती है जो सहृदय होकर अर्थात श्रद्धा भक्ति सम्पन्न होकर इसका सेवन करें। जो परवादि गण अहृदय होकर अर्थात् श्रद्धा भक्ति रहित होकर इसका सेवन करते हैं अर्थात् पढ़ते हैं, उन लोगों के लिये यह सूक्ति न अपने अर्थों को अच्छी तरह प्रकाशित करती है, न आनन्द ही देती है। अतः सब लोगों को

लभ्यते । अतएव ह्युच्यते "पञ्चलकारां भार्यां पुरुषः पुण्याधिको लभते। अनुकूलां विमलाङ्गीं कुशलां कुलजां सुशीलसंपन्नाम् ।"

*"शमितदुरितगन्धा" श्रीभाष्यादिश्रीसूक्तिः सकृदपिसेविता सकलपापानि नाशयति, उत्तमस्त्री च पातिव्रत्यादिभिर्भर्त्रादीनां पापं नाशयति । "शमितविमतखेदा" इति केषुचित् कोशेषु पाठः । तदा विमतापादितं खेदं शमयतीत्यर्थः । अस्मत्सिद्धान्ते इतरमतस्थैरापादितानां दूषणानां समाधाने सामर्थ्याभावात् खेदमावहतां निखिलमपि खेदं परमतेषु अनेकदोषोद्भावनपूर्वं स्वसिद्धान्ते सकलश्रुत्यविरोधस्य समीचीनयुक्तियोगस्य प्रतिपादनेन श्रीभाष्यादिश्रीसूक्तिः परिहरतीत्यर्थः । श्रीभाष्याद्यभ्यासिनः

चाहिये कि श्रद्धा भक्ति सम्पन्न होकर श्रीभाष्यादि का अध्ययन करें। तभी यह उनके लिये सिद्धि बनेगी।

"शमितदुरितगन्धा"—श्रीभाष्य इत्यादि श्रीसूक्ति का यदि कोई एक बार भी सेवन करे तो उसके सब पाप नष्ट हो जायेंगे। अनेक बार सेवन करने पर क्या ही कहना है। "शमितविमतखेदा" ऐसा कहीं कहीं पर पाठ है। उसका अर्थ यह है कि परवादियों के कारण उत्पन्न खेद को श्रीसूक्ति शान्त करती है। परमतस्थ वादिगण हमारे सिद्धान्त के ऊपर जब नाना प्रकार के दूषणों को आरोपित करते हैं, तब समाधान करने में अशक्त श्रीवैष्णवों को खेद होता है, उस खेद को यह सूक्ति नष्ट कर देती है। क्योंकि यह सूक्ति हमारे सिद्धान्त में आरोपित दूषणों का खण्डन प्रस्तुत करती है, परमत में जो जो दोष रहते हैं, उन्हें प्रकाश में लाती है, श्रीवैष्णव सिद्धान्त को परम वैदिक सिद्ध करती है, समीचीन तर्कों से इस सिद्धान्त का समर्थन करती है अतः इस श्रीसूक्ति

वादाहवे परमतानि तूलवत् क्षिपेयुरिति भावः। उत्तमश्ची च सुबुद्धि-मत्त्वात् स्वभर्तु रितरैरापादितानां खेदानां परिहारोपायमेकान्ते-विज्ञापयतीति भावः।

*"परिचितगहना" परिचितं गहनं यस्यां सा ब्रह्मस्वरूप-रूपगुणविभूतीनां विशदं प्रकाशिकेत्यर्थः। अथवा परिचित-गहना असकृत् परिचिता सत्यपि गहनार्था। अथवा परिचये सति गहना। उत्तमश्ची च अनवरतपरिचये सत्येव प्रतीयते रासिक्यमाधुर्यचातुर्यादिनिरवधिगुणसंभृतेति।

*"संयमीन्द्रस्यसूक्तिर्नः प्रसादं प्रस्नुवीत" संयमिसार्व-भौमस्य यतिराजस्य सूक्तिः अस्माकं विषये प्रसादमुत्पादयतु।

का अध्ययन से वे सब खेद दूर हो जाते हैं जो परमतस्थों के द्वारा उत्पन्न किये गये हैं। किंच, श्रीभाष्यादि ग्रन्थों का अभ्यास करने वाले विद्वान् अनायास स्वमत का समर्थन तथा परमत का खण्डन कर सकते हैं।

अत्र सार्वभौमस्य पुत्री पुत्रमस्माकं प्रसुवीतेत्यर्थान्तरं ध्वन्यते। इत्थं श्रीसूक्तिमहिमाऽन्वभावि ॥२६॥

लोगों को अनुगृहीत करे। इस प्रकार श्रीदेशिक स्वामी जी श्रीसूक्ति से प्रार्थना करते हैं। इसी प्रकार श्रीश्रुत प्रकाशिकाचार्य ने भी प्रार्थना की। उनका यह प्रार्थना श्लोक है "अविस्तृताः सुगम्भीरा रामानुजमुनेर्गिरः। दर्शयन्तु प्रसादेन स्वभावमखिलं दृढम्॥" अर्थात् श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ विस्तृत नहीं हैं, तथा गम्भीर भी हैं, वे सूक्तियाँ प्रसन्न होकर अपने प्रसाद गुण के कारण अपने सभी भावों को अच्छी तरह से हमको दर्शावें जिससे वे सब भाव हमारे मन में दृढता से निवास कर सकें। शब्दों की सरलता को प्रसाद गुण कहते हैं जिससे अनायास अर्थ समझ में आते हैं। श्रीदेशिक स्वामी जी की यह प्रार्थना भी वैसी ही है। परन्तु विशेषता यह है कि श्रीदेशिक स्वामी जी महाकवि होने के कारण इनके श्लोक में अर्थान्तर भी ध्वनित होता है। इस श्लोक में "संयमीन्द्रस्यसूक्तिः" ऐसा श्रीभाष्यकार स्वामी जी का राजा के रूप में वर्णन है, उनकी सूक्ति का स्त्रीलिंग में वर्णन है, "प्रसादम्" ऐसा प्रसाद का पुंल्लिङ्ग में वर्णन है, "प्रस्नुवीत" का अर्थ होता है उत्पन्न करे। इन निर्देशों से यह कामना ध्वनित होती है कि राजपुत्री हम लोगों के लिये एक सुपुत्र उत्पन्न करदे। यह पूरा श्लोक इस अर्थ में भी अच्छी तरह से अन्वय पाता है। श्रीदेशिक स्वामी जी ने श्रीमद्रहस्य त्रयसार के अन्त में कहा है कि—"निर्विष्टं यतिसार्वभौम-वचसामावृत्तिभिर्यौवनम्" अर्थात् श्रीयतिसार्वभौम की वाणियों की आवृत्तियों से ही हमारी युवावस्था अनुभूत हुई। यहाँ आवृत्ति ऐसे स्त्रीलिङ्ग निर्देश और यौवन शब्द के प्रयोग से श्रीदेशिक स्वामी जी इस अर्थ को सूचित करते हैं कि लोक में साधारणतः पुरुषों की

युवावस्था स्त्रियों द्वारा अनुभुत होती है; मेरी युवावस्था तो श्रीभाष्य ग्रन्थों की आवृत्ति रूपी स्त्रियों द्वारा अनुभूत हुई। उसी प्रकार यहाँ पर दोनों प्रार्थनाओं को एक ही श्लोक में गूंथ कर रक्खे हैं। श्रीदेशिक स्वामी जी यहाँ पर कहते हैं कि यदि कोई राजकुमार राजकुमारी से प्रार्थना करे कि वह मेरे साथ विवाह सम्बन्ध जोड़ कर एक सुपुत्र को उत्पन्न करदे, उसी प्रकार मैं श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति से प्रार्थना करता हूँ कि वह मेरे परिचय में आकर मेरे ऊपर अनुग्रह को उत्पन्न करती रहे। इस श्लोक में कहे गये सभी विशेषण राजकुमारी में भी समन्वित होते हैं।

"मुनिबहुमतसारा"—महर्षियों द्वारा प्रशंसा किये जाने योग्य सारभूत उत्तम गुण राजकुमारी में विद्यमान हैं। वाल्मीकिरामायण की कथा है—श्रीभरत जी के चित्रकूट से लौट जाने के अनन्तर महर्षियों के व्यवहार में अन्तर देखकर श्रीरामचन्द्र जी ने महर्षियों से पूछा कि क्या मैंने कुछ अपराध किया या श्रीजनकनन्दिनी ने कुछ अपराध किया। महर्षियों ने उत्तर में कहा कि कल्याण गुण सम्पन्न तथा कल्याणकारी सदाचरण में रत रहने वाली राजकुमारी श्रीजनकनन्दिनी से क्यों

"सहृदयहृदयानां शाश्वतीदिष्टसिद्धिः"—यदि राजकुमारी किसी राजकुमार की उत्तम स्त्री बन जाय तो यदि वह भी सहृदय होकर पालन करे तो उसके लिये सिद्धि बन जायेगी, सर्व फल प्रदा हो जायेगी। यह सिद्धि भी दिष्ट अर्थात् भाग्य से ही प्राप्त हो सकती है। तभी किसी महा कवि ने कहा कि ऐसी पञ्चलकार वाली स्त्री भाग्य से ही प्राप्त होती है जो अनुकूल हो निर्मल अंग वाली हो, कुशल हो, सत्कुल में उत्पन्न हुई हो, सुशील सम्पन्न हो।

"शमितदुरितगन्धा"—वह राजकुमारी किसी राजकुमार की स्त्री बनकर अपने पातिव्रत्य धर्म के प्रभाव से पति के पापों को नष्ट करती है। "शमितविमतखेदा" इस पाठ में यह अर्थ है कि वह राजकुमारी अपने पति के मन में शत्रुओं के द्वारा उत्पन्न खेद को अच्छे उपायों को बतलाकर दूर करती है।

श्रीभाष्यकारस्य श्रीसूक्तिः "मुनिबहुमतसारा" इत्युक्तरीत्या सारगुणवती चेत् अस्माभिः कुतस्तथा नानुभूयते इति परवादिनामाक्षेपमाशङ्क्य स्फीतपानीयामहासिन्धुस्तप्तानामेवभोग्यास्यान्नतु शीतपीडितानाम्, क्षीरं पित्तरहितानामेव भोग्यं स्यान्नतु पित्तोपहतानाम्, तथा श्रीसूक्तिरपि संसारतापतप्तानां नदीवभोग्या निष्पापानां क्षीरवद्भोग्या च प्रतीयेत न तु अशेषपापवासनादूषिताशेषशेमुषीकाणां युष्माकमिति समाधानमभिप्रेत्य श्रीसूक्तिगुणाननुभवति—

पूर्वश्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी ने "मुनिबहुमतसारा" कहकर यह बतलाया कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति में ये उत्तम गुण विद्यमान हैं जिनका अभिनन्दन मुनिगण करते हैं। यह सुनकर परवादियों ने शङ्का की कि यदि इस प्रकार उत्तम गुण श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति में विद्यमान हों तो हम लोगों को क्यों नहीं प्रतीत होते, हम लोगों को श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति में क्यों रुचि नहीं होती है ? इसका उत्तर यह है कि मधुर जल से परिपूर्ण महानदी गर्मी से संतप्त लोगों को ही अच्छी लगेगी, शीत से पीड़ित मनुष्यों को अच्छी नहीं लगेगी, पित्त रोग रहित मनुष्यों को दूध स्वादिष्ट नहीं प्रतीत होगा। वैसे ही यह श्रीसूक्ति भी संसार ताप से संतप्त लोगों को ही महा नदी के समान भोग्य प्रतीत होगी। पाप रहित मनुष्यों को ही दुग्ध के समान भोग्य प्रतीत होगी। अतएव हम लोगों को परम भोग्य प्रतीत होती है, आप लोगों की बुद्धि अनादि पाप वासना से दूषित हो गई है, अतएव आप लोगों को भोग्य प्रतीत नहीं होती है इस शङ्का और समाधान को व्यक्त करते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति के गुणों का वर्णन

भवमरुपरिखिन्नस्फीतपानीयसिन्धुः
दुरितरहितजिह्वादुग्धकुल्या सकुल्या ।
श्रुतिनयनसनाभिः शोभते लक्ष्मणोक्तिः
नरकमथनसेवास्वादनाडिंधमा नः ॥३०॥

*"भवमरुपरिखिन्नस्फीतपानीयसिन्धुः" संसार एव मरुभूमिः मरुकान्तारे न खाद्यं न वापेयं लभ्यते, संसारेऽपि वस्तुतः सुखप्रदं किमपि न लभ्यते, मरुकान्तारे मृगतृष्णिकैव जलरूपेण भासमाना मनः कर्षति, संसारे दुःखमेव सुखात्मनाभासमानं

इस श्लोक में करते हैं—

भवमरुपरिखिन्नस्फीतपानीयसिन्धुः—संसाररूपी मरुस्थल के थके हुये लोगों के लिये मधुर महा नदी, *दुरितरहितजिह्वादुग्धकुल्यासकुल्या*—पाप रहित जिह्वा के लिये दूध की नदी, *श्रुतिनयनसनाभिः*—वैदिकों की भगिनी एवं, *नरकमथनसेवास्वाद नाडिन्धमा*—भगवान् के कैंकर्य का रस अनुभव करने वालों के आनन्द को बढ़ाने वाली, *लक्ष्मणोक्तिः*—यतिराज की श्रीसूक्ति, *नः शोभते*—हमें शोभा देती है ।

मनः कर्षति, मृगतृष्णासक्तानां मृगाणामन्ततोमरणमेवोपनमति, सांसारिकसुखासक्तानामप्यन्तत आत्मनाश एवोपनमति । मरुकान्तारे सर्वतः संपात एव व्यथयति पान्थम्, संसारे तापत्रयमेव व्यथयति सांसारिकयात्रानिरतम्, मरौ जलं नास्त्येव यदि कृच्छ्राल्लभ्येत, कटु उष्णं स्तोकमेव लभ्यते, तत् वितृष्णतां नोत्पादयति, संसारे सुखं नास्त्येव यदि महता प्रयासेन किंचित् सुखं लभ्येत, तदल्पमस्थिरं दुःखमिश्रं दुःखोदर्कमेव लभ्यते, तत् पुरुषस्य सुखतृष्णा न शमयति, मरुकान्तारे यदि कश्चित् छायाप्रदं फलभार-

---

सुख नहीं मिलता, यदि अधिक परिश्रम करने पर कहीं मिल भी जाय तो भी वह अल्प अस्थिर दुःख मिश्रित ही मिल सकता है। उससे सुख तृष्णा नहीं बुझती, मरुभूमि में चलने वाले सूर्य के ताप से संतप्त हो जाते हैं। संसार में घूमने वाले जीव भी तापत्रय से संतप्त हो जाते हैं। मरुभूमि में मृगमरीचिका ही जल रूप में दिखाई देती है, मन को आकृष्ट करती है, संसार में दुःख ही सुख रूप में भासता है, मन को आकृष्ट करता है। मृगतृष्णा के प्रति दौड़ने वाले मृगों को अन्त में मरना पड़ता है, सांसारिक सुख के लिये दौड़ने वाले जीवों का अन्त में आत्म नाश ही होता है। मरुभूमि में यदि कोई पुरुष छाया तथा फल देने वाले वृक्ष को ढूंढे तो वह मूर्ख ही समझा जायेगा, संसार में भी यदि कोई मनुष्य शान्ति छाया देने वाले अक्षय

नम्रं पादपं मृगयेत स मूर्ख इत्येव प्रत्येतव्यः, संसारे शान्ति-
छायाप्रदं अक्षय्यसुखफलदं किमपि वस्तु यदि कश्चिदन्वेषयेत्
सोऽपि मूर्ख इत्येव प्रत्येतव्यः, अतो बहुविधस्साम्यसत्वात्
संसार एव मरुः, मरौ यातायातैः खिन्नानां धर्मसंतप्तानां महानदी-
दर्शने एव यथाऽऽनन्दःसमुन्मिषति, तथा संसारेपरिभ्रमणेन
श्रान्तानां तापत्रयतप्तानां श्रीभाष्यकारश्रीसूक्तिश्रवणमात्रेणापि
महानानन्द उन्मिषति, नद्यामवगाहनेन शीतमधुरनिर्मलजलस्य
पानेन च तापशान्तिर्भवति, तथा श्रीभाष्यकारश्रीसूक्त्यवगाहनेन
तत्र प्रतिपाद्यानां निर्मलमधुरभगवत्कल्याणगुणानामनुभवेन च

आतप से संतप्त हैं वैसे ही इस संसार में घूमने वाले जीव भी तापत्रय
से संतप्त हो जाते हैं। मरुभूमि में चलने वाले संतप्त पथिक को महा
नदी मिलने पर अपार आनन्द होता है। वैसे ही इस संसार में घूमने
वाले तापत्रय तप्त जीवों को श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति मिलने
पर अपार आनन्द होता है। महा नदी और श्रीसूक्ति में अत्यन्त
समता है। नदी में शीत सुगन्धि मधुर निर्मल जल भरा रहता है
श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति में माधुर्य गांभीर्य आदि कल्याण

तापत्रयशान्तिर्भवति। नदीस्नानेन मनुष्य निरस्तधूलीपटलो-निर्मलो भवति, संसारपदवीयातायातारूढवासनारेणुगुणितस्वरूपो जीवः श्रीसूक्तयवगाहनेन निरस्तदुर्वासनाधूलिपटलो निर्मलो भवति, तापतप्तानां नदीजिहासा नोदेति, संसारतापतप्तानां श्रीभाष्यादिश्रीसूक्तिजिहासा नोदेति । अतो भवमरुपरिखिन्नानां यदि काचित् स्फीतपानीया महानदी स्यात् सा श्रीभाष्यकारस्य श्रीसूक्तिरेव ।

*"दुरितरहितजिह्वादुग्धकुल्यासकुल्या" दुरितरहितानां निष्पापानां जिह्वाया रसनाया दुग्धकुल्यायाः क्षीरकुल्यायाः सकुल्या समानकुलप्रसूता सदृशी सूक्तिरित्यर्थः । समुद्रगामिन्यां

शरीर निर्मल हो जाता है। श्रीसूक्ति में अवगाहन करने से मोह रूपी भ्रम दूर हो जाता है नयी स्फूर्तियां होने लगती हैं, वह मलिनता भी दूर हो जाती है जो संसार में परिभ्रमण के कारण उत्पन्न हो गयी है। संसार में परिभ्रमण करते समय चढ़ी हुई वासना रूपी धूल भी धुल जाती है, आत्मा निर्मल हो जाती है। मरु भूमि में ताप तप्त मनुष्यों को नदी को छोड़ने की इच्छा ही नहीं होती है, संसार में ताप त्रय तप्त सज्जनों को श्री सूक्ति को छोड़ने की इच्छा ही नहीं होती। अतः सिद्ध होता है कि संसार रूपी मरु भूमि में यात्रा के कारण खिन्न मनुष्यों के लिये तापनाशक सुखदायक कोई महानदी है तो वह श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति ही है।

महानद्यामेव यथोपभोगार्थं कुल्या निःसार्य प्रवाह्यते, तथा श्रीभाष्यकारस्य भगवत्परेषु वाग्विसर्गेषु उत्तरकालिकानां कल्याणार्थं ग्रन्थरूपाः काश्चिद्वाचः निस्सार्य जगति प्रचार्यन्ते, इमा ग्रन्थरूपा वाचो दुग्धकुल्यायाः सदृश्यः, यथा पित्तोपहतेभ्यः क्षीरं न स्वदते, तथा पापवासनया दुर्मतेषु प्रविष्टेभ्यः श्रीभाष्यकारश्रीसूक्तिर्न स्वदेत, क्षीरं पित्तोपहतिशून्यानां यथाभोग्यं भवति, तथा श्रीसूक्तिरपि निष्पापानामतिभोग्या भवति।

*"श्रुतिनयनसनाभिः" श्रीभाष्यकारस्य श्रीसूक्तिः श्रुतीनां नयनसदृशी, यथानयनं शरीरस्य रक्षकम्, तथा श्रीसूक्तिरपि

हैं जो दूर दूर में रहने वालों के काम में आती हैं। वैसे ही श्री भगवान् तक तात्पर्य रखने वाली श्रीभाष्यकार स्वामी जी की वाणियों से ही श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ रूप से कुछ वाणियाँ निकाली गयी हैं जो उत्तरोत्तर दूर काल में जन्म लेने वाले अस्मदादियों के उपयोग में आती हैं। ये ग्रन्थ दूध की नहर के समान हैं। जिस प्रकार पित्त रोग से जिनकी जिह्वा दूषित हो गयी हो, उन लोगों के लिये दुग्ध रुचिकर नहीं होता है, पित्त रोग से शून्य मनुष्यों के लिये दुग्ध रुचिकर होता है, उसी प्रकार प्रबल जन्मान्तरीय पाप के कारण जो मनुष्य परमतों में प्रविष्ट हो गये हों उनके लिये श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ अच्छे नहीं लगते, पापशून्य मनुष्यों के लिये श्रीभाष्य आदि श्रीसूक्ति रुचिकर होती है।

श्रुतिनयनसनाभिः"—श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति वेदों के लिये नेत्र के समान है, जिस प्रकार नेत्र शरीर की रक्षा करता है उसी प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति वेदों की रक्षा करती

श्रुतीनां रक्षिका। यद्वा श्रुतिनयनानां श्रुतिरूपनेत्रवतां वैदिकानां सनाभिः समानोदरजाता भगिनी। श्रुत्याऽर्थनिर्धारणं कुर्वाणानां वैदिकानामियं श्रीसूक्तिर्भगिनीवदुपकरोति।

*"नरकमथनसेवास्वादनाडिन्धमा नः" नरकमथनस्य नरकासुरहन्तुः अथवा स्वभक्तानां नरकं नाशयतः श्रीभगवतः सेवास्वादस्य सेवारसानन्दानुभवस्य नाडिन्धमा वर्धिका एवं भूता

है। अथवा "श्रुतिनयनसनाभिः" वेद वैदिकों के लिये नेत्र के समान हैं, जैसे मनुष्य नेत्र से स्थूल से स्थूल पदार्थों को देखते हैं, वैसे ही वैदिक लोग वेद से सूक्ष्म पदार्थों को समझते हैं, जिस प्रकार नेत्र से देखने पर मनुष्य को उस वस्तु के विषय में संशय नहीं रहता, मनुष्य अपने ज्ञान में विश्वास करते हैं, उसी प्रकार वेद से ईश्वर और परलोक इत्यादि सूक्ष्म पदार्थों को समझ लेने के बाद वैदिकों को इन सूक्ष्म पदार्थों के विषय में संशय नहीं रहता, वैदिक उन पदार्थों को सत्य मानकर उन पर पूर्ण विश्वास करते हैं। अतः सिद्ध हुआ कि वैदिकों के लिये वेद ही नेत्र हैं। वेद रूपी नेत्र वाले वैदिकों के लिये श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्ति बहिन की तरह सहायता करती है। बहिन भाई की सहायता करती है यह लोक प्रसिद्ध है। वैदिक वेदों से जब किसी सूक्ष्मार्थ का निर्णय करते हैं, उस समय श्री रामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्ति बहुत सहायता करती है। अतः यह श्रीसूक्ति वैदिकों के लिये वेदों के समान है।

लक्ष्मणोक्तिर्नः शोभते, अनादिपापवासनादूषिताशेषशेमुषीकाणां तथाऽप्रतीतावपि आत्रेयरामानुजार्यकृपाकटाक्षनिर्धूतदुरितगन्धानामस्माकमेवं प्रतीयते इति भावः ॥३०॥

अथ श्रीभाष्यकारस्य प्रबन्धान् स्तौति—

श्रीनरक मथन भगवान की सेवा करने पर प्रपन्नों को अपार आनन्दानुभव होता है। श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्ति श्री भगवान के सेवा रस के आनन्दानुभव को बढ़ाती है। इस प्रकार महिम सम्पन्न होने के कारण श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति सुशोभित होती है। यह बात हम लोगों को ही अनुभव में आती है परमतस्थों का ऐसा अनुभव नहीं हो सकता, क्योंकि सदाचार्य के अनुग्रह से हम लोगों का पाप नष्ट हुआ है। अतः हम लोगों को ऐसा अनुभव होता है ॥३०॥

पूर्व श्लोकों में श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति की महिमा बतलाई गई। यहाँ पर यह शंका होती है कि श्रीमद्रामायण इत्यादि ग्रन्थों में यह विशेषता है कि उनके अन्दर अनेक भाव भरे रहते हैं, अतएव कथा कहने वाले विद्वज्जन अपने बुद्धि कौशल से अनेक रस भाव और अर्थों को श्रीरामायण आदि ग्रन्थों से निकालकर सभा में सबके सामने रखते हैं जिनको सुनकर जनता आनन्द परवश हो जाती है। क्या इस प्रकार की विशेषता श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थों में है? क्या ऐसी विशेषता मतान्तरस्थ ग्रन्थों में नहीं है? इस शंका का उत्तर यह है कि श्रीभाष्य आदि श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थों में भी वह विशेषता है जो रामायण इत्यादि महर्षियों के ग्रन्थों में पाई जाती है। श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थों में भी अनेक अर्थ भरे पड़े हैं, प्रत्येक वाक्य में से अनेक अर्थ निकाले जा सकते हैं।

हरिपदमकरन्दस्यन्दिनः संश्रितानां
अनुगतबहुशाखास्तापमुन्मूलयन्ति ।
शमितदुरितगन्धाः संयमीन्द्रप्रबन्धाः
कथकजनमनीषाकल्पनाकल्पवृक्षाः ॥३१॥

अपने बुद्धि कौशल के अनुसार शास्त्रार्थ करने वाले विद्वज्जन श्रीभाष्यादि ग्रन्थों से अनेक भाव निकालते हैं। विद्वद्गण अपनी अति सूक्ष्म बुद्धि से जिन २ सूक्ष्म अर्थों की कल्पना करते हैं वे सब अर्थ श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों में छिपे रहते हैं। श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ वे कल्पवृक्ष हैं जो विद्वानों के लिये अनेक प्रकार के पदार्थों को उपस्थापित करते हैं। श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ और कल्पवृक्षों में अत्यन्त समता है, यह समता इस श्लोक से व्यक्त की जायेगी। मतान्तरस्थ ग्रन्थ उन वृक्षों के समान हैं जिनमें अधिक शाखा न होने से जो छाया नहीं दे सकते, जो पुष्पफल आदि से रहित हैं, जिनके पास जाने से ताप दूर नहीं हो सकता, प्रत्युत पाप बढ़ेगा। श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ उन कल्पवृक्षों के समान हैं जिनसे दिव्य मधु बहता हो, जो अनेक शाखा वाले हों, सभी तापों को दूर कर सकते हों, पापों को नष्ट कर सकते हों, इस प्रकार शंका और समाधान को मन में लेकर श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं—

संयमीन्द्रस्य श्रीभाष्यकारस्य प्रबन्धाः कल्पवृक्षा इति वेदनीयम्। कल्पवृक्षेषु ये विशेषास्सन्ति, तेसर्वेऽपि श्रीभाष्यकारस्य प्रबन्धेषु पुष्कलाः। तथाहि—

"संश्रितानां हरिपदमकरन्दस्यन्दिनः" कल्पवृक्षपक्षे हरिरिन्द्रः, तस्य पदं स्थानं स्वर्गलोकः तत्र मकरन्दं स्यन्दयन्ति कल्पवृक्षाः। प्रबन्धपक्षे हरिपदमेव भगवच्चरण एव मकरन्दम्। अतिभोग्यत्वाद्धरिचरणे मकरन्दत्वोक्तिः। तादृशमकरन्दं स्यन्दयन्ति स्रावयन्ति श्रीभाष्यकारप्रबन्धाः। केषां स्यन्दयन्ति इत्यत्राह संश्रितानां स्वस्मिन् परिशीलनवतां कृते। संश्रितानामित्यस्य

संश्रितानां—भक्तजनों के, *तापान् उन्मूलयन्ति*—तापों को नष्ट करते हैं।

"हरिपदमकरन्दस्यन्दिनः संश्रितानाम्"—श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ कल्पवृक्ष के समान हैं। कैसे? "हरिपदमकरन्दस्यन्दिनः" संस्कृत भाषा में हरि शब्द के अनेक अर्थ हैं। यहाँ पर दो अर्थ विवक्षित हैं (१) श्रीभगवान् (२) और इन्द्र। पदशब्द के भी अनेक अर्थ हैं। यहाँ पर उनमें से दो अर्थ विवक्षित हैं (१) चरण (२) और स्थान। इन्द्र का निवास स्थान जो स्वर्गलोक है, वह हरिपद कहलाता है, क्योंकि स्वर्गलोक "हरि" इन्द्र का "पद" स्थान है। उस हरिपद अर्थात स्वर्ग लोक में कल्पवृक्ष मकरन्द अर्थात् मधु को बहा रहे हैं। श्रीरामानुज स्वामी जी के ग्रन्थ भी हरिपद अर्थात् श्रीभगवच्चरण रूपी परम भोग्य मधु को बहाने वाले हैं। भाव यह है कि श्रीभगवान् के श्रीचरण भी भक्तों के लिये मधु के समान परम भोग्य हैं श्रीरामानुज स्वामी जी के ग्रन्थ श्रीभगवच्चरण का वर्णन करते हैं। अतः वे श्रीभगवच्चरण रूपी मधु को बहाने वाले बतलाये जाते हैं। अतः कल्पवृक्ष और

तापमुन्मूलयन्तीत्यत्राप्यन्वयः। स्वर्गलोकस्थाः कल्पवृक्षाः स्वर्ग एव मकरन्दं स्यन्दयन्ति। संयमीन्द्रप्रबन्धास्तु दिवि भुवि च संसारदशायां मुक्तिदशायां च हरिपदरूपमकरन्दमनुभावयन्ति। मतान्तरप्रबन्धा न केवलं निःसाराः, किंतु निम्बफलकल्पा अपीति भावः।

*"अनुगतबहुशाखाः" कल्पवृक्षा विस्तृतनानाशाखा भवन्ति, प्रबन्धा अपि नानावेदशाखानुगमनवन्तो भवन्ति। श्रीभाष्यकार-

---

श्रीरामानुज स्वामी जी के ग्रन्थों में समता हो जाती है क्योंकि कल्प वृक्ष हरिपद अर्थात इन्द्र लोक में मधु को बहाने वाले होते हैं, श्रीरामानुज स्वामी जी के ग्रन्थ हरिपद अर्थात् श्रीभगवच्चरण रूपी मधु को बहाने वाले अर्थात् वर्णन करने वाले होते हैं। हाँ, विशेषता यह है कि कल्पवृक्ष स्वर्गलोक में ही मधु को बहाते हैं भूलोक में नहीं। श्रीरामानुज स्वामी जी के ग्रन्थ तो भूलोक और स्वर्ग आदि लोकों में सर्वत्र श्रीभगवच्चरण रूपी मधु को बहाते हैं। जैसे कल्पवृक्ष आश्रितों के लिये मधु को बहाते हैं वैसे ही ये ग्रन्थ भी अपने आश्रितों के लिये श्रीभगवच्चरण रूपी मधु को बहाते हैं। इन ग्रन्थों को परिशीलन करने वाले विद्वद्गण इन ग्रन्थों के आश्रित हैं। मतान्तरस्थ ग्रन्थ श्रीभगवच्चरण रूपी मधु को नहीं बहाते हैं नहीं वर्णन करते हैं वे तो निःसार हैं, निम्बवृक्ष के समान हैं। श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थ कल्प वृक्षों के समान हैं।

तापमुन्मूलयन्तीत्यत्राप्यन्वयः। स्वर्गलोकस्थाः कल्पवृक्षाः स्वर्गे एव मकरन्दं स्यन्दयन्ति। संयमीन्द्रप्रबन्धास्तु दिवि भुवि च संसारदशायां मुक्तिदशायां च हरिपदरूपमकरन्दमनुभावयन्ति। मतान्तरप्रबन्धा न केवलं निःसाराः, किंतु निम्बफलकल्पा अपीति भावः।

*"अनुगतबहुशाखाः" कल्पवृक्षा विस्तृतनानाशाखा भवन्ति, प्रबन्धा अपि नानावेदशाखानुगमनवन्तो भवन्ति। श्रीभाष्यकार-

---

श्रीरामानुज स्वामी जी के ग्रन्थों में समता हो जाती है क्योंकि कल्प वृक्ष हरिपद अर्थात इन्द्र लोक में मधु को बहाने वाले होते हैं, श्रीरामानुज स्वामी जी के ग्रन्थ हरिपद अर्थात् श्रीभगवच्चरण रूपी मधु को बहाने वाले अर्थात् वर्णन करने वाले होते हैं। हाँ, विशेषता यह है कि कल्पवृक्ष स्वर्गलोक में ही मधु को बहाते हैं भूलोक में नहीं। श्रीरामानुज स्वामी जी के ग्रन्थ तो भूलोक और स्वर्ग आदि लोकों में सर्वत्र श्रीभगवच्चरण रूपी मधु को बहाते हैं। जैसे कल्पवृक्ष आश्रितों के लिये मधु को बहाते हैं वैसे ही ये ग्रन्थ भी अपने आश्रितों के लिये श्रीभगवच्चरण रूपी मधु को बहाते हैं। इन ग्रन्थों को परिशीलन करने वाले विद्वद्गण इन ग्रन्थों के आश्रित हैं। मतान्तरस्थ ग्रन्थ श्रीभगवच्चरण रूपी मधु को नहीं बहाते हैं नहीं वर्णन करते हैं वे तो निःसार हैं, निम्बवृक्ष के समान हैं। श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थ कल्प वृक्षों के समान हैं।

हरन्ति, किंतु सांसारिकतापत्रयमपि निःशेषं नाशयन्ति। कल्पवृक्षा इन्द्रस्य स्वभूताः। एते प्रबन्धाः संयमीन्द्रस्य स्वभूताः।

पूर्वश्लोकयोः सूक्तिरुक्तिरिति स्त्रीलिङ्गनिर्देशादुत्तमस्त्रीगुणाः सर्वेऽपि सूक्तौ सन्तीत्युक्तं भवति। अत्र प्रबन्धा इति पुंलिङ्ग-निर्देशात् उत्तमपुरुषगुणाः सर्वेऽपि प्रबन्धेषु सन्तीत्युक्तं भवति। उत्तमपुरुषाः कल्पवृक्षवत् उदारा निष्पापा नानाशाखाध्ययन-सम्पन्ना भगवत्कथामृतं परेषु वर्षन्तस्तापनिवर्तकाश्च भवन्ति। तथैवैतेऽपि प्रबन्धा इति सौसादृश्यमुत्तमपुरुषप्रबन्धयोरिति भावः ॥३१॥

है, कल्पवृक्ष एक सुर्य ताप को दूर करते हैं, श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थ तो तापत्रय को दूर करते हैं।

पूर्व श्लोकों में "सूक्ति" "उक्ति" स्त्रीलिंग शब्द से निर्देश कर श्रीदेशिक स्वामी जी ने यह सूचित किया कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति में वे सब गुण पाये जाते हैं जो गुण उत्तम स्त्रियों में पाये जाते हैं। यहाँ पर श्रीदेशिक स्वामी जी पुलिङ्ग प्रबन्ध शब्द से निर्देश कर यह सूचित करते हैं कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थों में वे सब गुण विद्यमान हैं जो उत्तम पुरुषों में पाये जाते हैं। उत्तम पुरुष उदार होते हैं, अतएव अनेक पदार्थों को देते हैं, उत्तम

अत्र इतरसिद्धान्ता अपसिद्धान्तत्वाच्छ्रीभाष्यकारेण खण्डिता इति यदुक्तं तत्कथं संगच्छेत ? सर्वेश्वर एव हि बुद्धाद्यवतारान् गृहीत्वा बौद्धादिमतानि स्थापयामास अतस्तेषां सिद्धान्तानामपसिद्धान्तत्वं कथं वक्तुं युज्यते ? श्रीभाष्यकारेण तेषां खण्डनं च कथं युज्यते ? इति प्राप्तायाः शंकायाः सर्वेश्वरो यागादि कर्माणि न कार्याणि, अहिंसापरमो धर्मः इत्यादि परिहासोक्तिभिर्लीलां चिकीर्षन् तदर्थं युगान्तरत्वे वयस्यानां दुर्लभत्वात् सर्व-

---

शाखाओं से सम्बन्ध रखते हैं, तथा श्रीभगवद्गुणों को दूसरों पर बरसाते हैं ॥३१॥

पूर्व श्लोकों में श्रीदेशिक स्वामी जी ने यह बतलाया कि इतर सिद्धान्त अपसिद्धान्त हैं अर्थात् अप्रामाणिक सिद्धान्त हैं, अतः श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने उनका खण्डन किया। यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि इतर सिद्धान्तों को अपसिद्धान्त कैसे कहा जाय, क्योंकि उन सिद्धान्तों को भी सर्वेश्वर श्रीभगवान् ने ही तो चलाया। यह अर्थ पुराणों में वर्णित है कि श्रीभगवान् ने बुद्ध आदि के रूप में अवतार लेकर बौद्ध आदि मतों को चलाया। ऐसी स्थिति में श्रीभगवान् से प्रवर्तित उन सिद्धान्तों को अपसिद्धान्त कहना कैसे संगत होगा। श्रीभाष्यकार स्वामी जी के द्वारा उनका खण्डन भी कैसे उचित होगा ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि श्रीभगवान् के मन में इच्छा हुई कि हम लीला विभूति में परिहास की बातें कहकर जीवों के साथ क्रीड़ा करें। तदर्थ श्रीभगवान् उपयुक्त समय देखते रहे। कलियुग का प्रारम्भ हुआ। श्रीभगवान् उपयुक्त समय समझ कर कलियुग में बुद्ध इत्यादि के रूप में अवतार लेकर अहिंसा ही परमधर्म है, अतः यज्ञयाग नहीं करना चाहिये इत्यादि परिहास की बातें कहकर जीवों के साथ क्रीड़ा

कर्मत्यकरं कलियुगं प्रवर्त्य तैर्बौद्धाद्यपसिद्धान्तैः क्रीडितुमारेभे । राज्ञि निरंकुशस्वातन्त्र्यात् क्रीडायामत्यादरेण स्वस्य विहितं कर्मानादृत्य अन्त्यवर्णे शूद्रे इव स्वैराचाररते प्रजानां हिताहित-चिन्तां हित्वा क्रीडति सति मन्त्रिप्रभृतयो राजनिवारणेऽनौचित्यं पश्यन्तः प्रजाः प्रति इदानीं राजा स्वाच्छन्द्याद्यथाभिमतमा-चरति, तत्र भवद्भिर्नान्वेतव्यम्, अन्वयेऽवद्यं स्यादित्युक्त्वा यथा दण्डेन निवारयेयुः, तथा श्रीविष्वक्सेनः सर्वेश्वरस्य निवारण-

---

करने लगे, श्रीभगवान् ने इन बातों को केवल परिहासार्थ कहा हृदय से नहीं, क्योंकि ये बातें अनादि वेद शास्त्र के विरुद्ध हैं। परन्तु राजस और तामस मनुष्य इस मर्म को न समझ कर इन्हीं बातों को यथार्थ मानकर उन वेद विरुद्ध मतों में प्रविष्ट होने लगे। यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि राजा पूर्ण स्वतन्त्र रहते हैं, यदि कोई राजा क्रीड़ा में प्रवृत्त हो जाता है तो उसकी क्रीड़ा में प्रतिदिन रुचि बढ़ती है, क्रीड़ा में वह रत रहता है अपने विहित कर्मों को भी त्याग देता है, धीरे २ शूद्र के समान उसका आचरण हो जाता है, प्रजाओं के हिताहित को ख्याल न करके वह प्रजाओं के साथ क्रीड़ा करता रहता है। उस समय मन्त्रिगण असमञ्जस में पड़ जाते हैं क्योंकि वे राजा को रोक नहीं सकते, मन्त्रिगण के पास एक ही उपाय रह जाता है कि वे प्रजा को समझाकर इस क्रीड़ा से दूर रक्खें, अतः उस समय मन्त्रिगण प्रजाओं को एकान्त में समझते हैं कि इस समय राजा स्वच्छन्द होने के कारण मनमानी सोचते हैं बोलते हैं और करते भी हैं, प्रजा को उसमें नहीं फँसना चाहिये, फँसने पर अनर्थ होगा। इस प्रकार समझा कर मन्त्रिगण प्रजाओं को लाठी से रोकते हैं। वैसे ही प्रकृत में भी समझना चाहिये। श्रीभगवान् उपर्युक्त समय

मनुचितमुत्पश्यन् प्रजासु अनुग्रहातिरेकात् युष्माभिस्तेष्वप-सिद्धान्तेषु न प्रवेष्टव्यमिति निवारणार्थं वेत्रदण्डं त्रिदण्डरूपेण धारयन् श्रीभाष्यकाररूपेणावततार इत्थं सर्वेश्वरेणेतरसमयानर्म-क्रीडार्थं परिगृहीतत्वादपसिद्धान्ता इति सुवचम्, तेषां खण्डनं च युक्तमित्युत्तरमभिप्रयन्नाह—

नानाभूतैर्जगति समयैर्नर्मलीलां विधित्सोः
अन्त्यं वर्णं प्रथयति विभोरादिमव्यूहभेदे ।

कलि को आया हुआ देखकर बुद्धादि के रूप में अवतार लेकर परिहास वचनों से वेद विरुद्ध मतों को प्रचार करते हुये लीला विभूति में जब जीवों के साथ क्रीड़ा करने लगे, उस समय कलियुगी मनुष्य उन मतों में प्रविष्ट होकर अधोगति प्राप्तकर रहे थे, जीवों की इस दुर्दशा को देखकर श्रीविष्वक्सेन सूरि जी के मन में दया उमड़ पड़ी। किन्तु वे क्या करें, सर्वं स्वतन्त्र सर्वेश्वर को तो रोक नहीं सकते, अतः उन्होंने प्रजा को समझाना चाहा कि ये सब सिद्धान्त अपसिद्धान्त हैं क्योंकि ये वेद विरुद्ध हैं, वेद ही अपौरुषेय होने से स्वयं भू प्रमाण हैं। श्रीभगवान् ने इन सिद्धान्तों को हृदय से नहीं कहा है केवल ऊपर से कहा है, क्योंकि ये सब वचन श्रीभगवान् के परिहास वचन हैं, इनको यथार्थ मानकर इनमें न फँसना चाहिये, फँसने पर अनर्थ ही होगा। इस प्रकार प्रजाओं को समझा कर वेद मार्ग में प्रतिष्ठित करने के लिये श्रीविष्वक्सेन सूरि जी ने श्रीयतिराज भाष्यकार स्वामी जी के रूप में अवतार लिया, उनके हाथ में रहने वाला वेत्रदण्ड ने (बेंत) त्रिदण्ड के रूप में अवतार लिया। इस उत्तर को व्यक्त करते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं —

विश्वं त्रातुं विषयनियतं व्यञ्जितानुग्रहः सन्
विष्वक्सेनो यतिपतिरभूद् वेत्रसारस्त्रिदण्डः ॥३२॥

*"जगति नानाभूतैः समयैर्नर्मलीलां विधित्सोर्विभोः" जगति नानाभूतैः परस्परविजातीयैः सिद्धान्तैर्विभुः सर्वेश्वरो नर्मलीलां परिहासलीलां विधातुमैच्छत् । एकैकोऽपि सिद्धान्तो नानाप्रकारोभवति, बौद्धमते वैभाषिकसौत्रान्तिकयोगाचारमाध्यमिकभेदेन चत्वारो भेदाः सन्ति । पाशुपतमते कापालकालामुखपाशु-

---

जगति—जगत् में, *नानाभूतैः समयैः*—अनेक सिद्धान्तों द्वारा, *नर्मलीलां विधित्सोः विभोः*—भगवान के लीला करने की इच्छा करने पर, और इसके लिये, *आदिमव्यूहभेदैः अन्त्यं वर्णं प्रथयति सति*—व्यूह भेद से अन्तिम रूप ग्रहण करने पर, *विषयनियतं*—विषयों में अनुरक्त, *विश्वम् त्रातुम*—विश्व की रक्षा करने के निमित्त, *व्यञ्जितानुग्रहः सन्*—अपने अनुग्रह को दिखाते हुये, *विष्वक्सेनः*—विष्वक्सेन, *यतिपतिः अभूत*—यतिराज हुये और, *वेत्रसारः त्रिदण्डः*—उनका दण्ड त्रिदण्ड ।

पतशैवभेदेन चातुर्विध्यमस्ति, अद्वैतमते जीवाज्ञानवादिब्रह्माज्ञान-वादिजरन्मायावादिभेदेन बहुविधो भेदो वर्तते। इत्थं सर्वेष्वपि मतेषु विविधोऽवान्तरभेदोऽस्ति। लीलोपकरणानामेकजातीयत्वे लीलारसो न निष्पद्येत। अत एभिर्नानाभूतैः समयैः श्रीभगवान् नर्मलीलां कर्तुमियेष। "निष्किञ्चना वयं शश्वन्निष्किञ्चनजन-प्रियाः। वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिश्श्लाघिता मुधा। अथात्म-नोऽनुरूपं वै भजस्व क्षत्रियर्षभम्।" इति यथा श्रीरुक्मिणीं प्रति श्रीकृष्णः परिहासवचांसि जगाद, तथा श्रीभगवान् बुद्धादिरूपेणा-

---

भेद हैं (१) माध्यमिक सिद्धान्त (२) योगाचार सिद्धान्त (३) सौत्रान्तिक सिद्धान्त (४) और वैभाषिक सिद्धान्त पाशुपत मत में भी चार अवान्तर भेद हैं (१) कापाल सिद्धान्त (२) कालामुख सिद्धान्त (३) पाशुपत सिद्धान्त (४) शैव सिद्धान्त। अद्वैत सिद्धान्त में भी अवान्तर भेद अनेक हैं (१) जीवाज्ञानवाद (२). ब्रह्माज्ञानवाद (३) जरन्मायावाद इत्यादि। इस प्रकार अनेक विध सिद्धान्तों को लेकर श्रीभगवान् परिहासार्थ क्रीड़ा करने लगे। यह क्रीड़ा जीवों के साथ श्रीभगवान् की एक प्रकार से हँसी है। श्रीभगवान् ने श्रीकृष्णावतार में भी एक समय श्रीरुक्मिणी जी से हास्य किया। उस प्रसंग में श्रीभगवान् ने कहा कि 'हे प्रिये! हम अकिञ्चन हैं, अकिञ्चन लोग हम पर प्रेम करते हैं, हम अकिञ्चनों पर प्रेम करते हैं, हम गुण हीन हैं, भिक्षु गण ने आपके समीप जाकर व्यर्थ मेरी स्तुति की। इसलिये आपने भ्रम में पड़कर मुझे वरण किया। यदि इस समय भी आप अपने अनुरूप श्रेष्ठ क्षत्रिय को वरण करतीं तो अच्छा होता।' इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् ने श्रीरुक्मिणी का अभिप्राय जानने के लिये परिहास किया। वैसे ही श्रीभगवान् ने बुद्ध रूप में जीवों के साथ

वतीर्य अहिंसापरमोधर्म इत्यादि उक्त्वा यागादिषु श्रद्धां ह्रसयामास। कांश्चित् जीवाननुप्रविश्य "शिव एव परं तत्वम्" "सर्वं मिथ्या" इत्यादिरीत्या कांश्चित्परिहासोक्तीर्जगाद। एवमुक्त्वा स क्रीडितुमियेष। एवं क्रीडितुमियेष विभुः प्रभुः, स निरंकुशस्वतन्त्रत्वात्केनापि निवारयितुं न शक्यते।

इत्थं परिहासोक्तीः शृण्वन्तो जना यदि विद्युरिमाः परिहासोक्तयः न तु यथार्था इति, तर्हि लीलारसो न निष्पद्येत, युगान्तरस्था जनाः "अहिंसा परमो धर्मः" अतो यज्ञादिकर्म

न कार्यमिति वादान् परिहासजल्पितान्येव मन्येरन् न तु यथार्थत्वेन, अतो न तदुक्त्यनुसारेण प्रवर्तेरन् परं तु सांप्रतं तथाविधं युगान्तरं न प्रवर्तते किं तु दुरितलतिकोपघ्नायितात्मा करालः कलिःप्रवर्तते इत्याह—

*"आदिमव्यूहभेदेऽन्त्यं वर्णं प्रथयति सति" कलियुगस्य तामसराजसप्रचुरत्वात् मोहकरी वार्ता यथार्थत्वेन बुध्येरन्नेतद्युगस्था जनाः अतस्तस्यापि लीलारसो निष्पद्येत। कलियुगप्रवृत्तिः कथं ज्ञायते इति चेत् त्रिमोभगवत आदिमव्यूहभेदे वासुदेवव्यूहभेदेऽन्त्यं वर्णं कृष्णवर्णं प्रथयति प्रकटयति सति कलियुगप्रवृतिः

और द्वापरयुग में कही होती तो उस युग की जनता अवश्य इन वाक्यों को परिहास वचन समझ जाती, उनमें न फँसती, किन्तु श्रीभगवान् ने इन बातों को कलियुग में कहा, अतः युग भी श्रीभगवान के अनुकूल हो गया। यह कहते हैं कि—

"आदिमव्यूहभेदेऽन्त्यं वर्णं प्रथयति" कलियुग में राजस और तामस मनुष्य ही अधिक मात्रा में उत्पन्न होते हैं, सात्विक मनुष्य कम मात्रा में उत्पन्न होते हैं। राजस और तामस मनुष्य भ्रम उत्पन्न करने वाले श्रीभगवान के इन परिहास वचनों को यथार्थ मानकर इनमें फंस जाते हैं, तब श्री भगवान् को लीलारस प्राप्त होता है। यह कैसे विदित होता है कि कलियुग आरम्भ होगया? कहते हैं कि कलियुगारम्भ के चिन्ह प्रगट होने लगे। उस चिन्ह का अब वर्णन किया जाता है। श्रीभगवान के पाँच रूप हैं (१) पर (२) व्यूह (३) विभव (४) अर्चा (५)अन्तर्यामी। उनमें व्यूहरूप के चार भेद होते हैं (१) वासुदेव (२) संकर्षण (३) प्रद्युम्न (४) अनिरुद्ध। व्यूह में प्रथम रूप जो वासुदेव

ज्ञातुं शक्यते। अयं भावः व्यूहवासुदेवस्य कृतयुगे श्वेतरूपं त्रेतायुगे रक्तरूपं द्वापरयुगे पीतरूपं कलियुगे कृष्णरूपमिति युगभेदेन रूपभेदः सात्त्वतसंहिता लक्ष्मीतन्त्रादौ वर्ण्यते। अतो व्यूहवासुदेवो यदा कृष्णरूपं बिभर्ति, तदा कलियुगस्यप्रवृत्तिरिति सुज्ञानम्। राजापि क्रीडनकाले कर्मलोपमप्यजानन् चतुर्थवद्वर्ते-तेति सूच्यते। "भगवानपि तारात्रीःशारदोत्फुल्लमल्लिकाः। वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥ तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्याविलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः। स चर्षणीनामुदगाच्छुचोमृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः॥ इति श्रीकृष्णे रासक्रीडां कांक्षमाणे यथा शरत्कालश्चन्द्रिका च साह्यार्थमाजग्मतुः, तथा भगवति नर्मलीलां चिकीर्षति कलिरपि साह्यार्थमुपतस्थे।

इत्थं सर्वेश्वरे नर्मक्रीडोद्युक्ते युगस्वभावाज्जनेषु परिहासो-क्तितामबुद्ध्वा यथार्थोक्तितां बुद्ध्वा मतान्तरेषु प्रविश्य नश्यत्सु

सत्सु तद्दर्शी श्रीविष्वक्सेनो जगद्रक्षणार्थं श्रीभाष्यकाररूपेणा-वततारेत्याह—

*"विष्वक्सेनो विषयनियतं विश्वं त्रातुं व्यञ्जितानुग्रहः सन् यतिपतिरभूदिति" विष्वक्सेनो विश्वं त्रातुमैच्छत्। कुतः? विषयनियतम् अयं सर्वोऽपिजीवराशिः स्वकीये विषये राज्ये एव नैयत्येन वसति अतोऽवश्यं त्रातव्यः "ते वयं भवता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः" इत्युक्तन्यायात्। किं च विष्वक्सेनो विश्वं विषयनियतं यथा तथा त्रातुं व्यञ्जितानुग्रहो बभूव। तत्तद्विषया-

---

में प्रविष्ट हुई तथा अधोगति को प्राप्त होने लगी। जनता की इस दुर्दशा को देखकर उसे बचाने के लिये दयालु श्रीविष्वक्सेन सूरि ने श्रीभाष्यकार स्वामी जी के रूप में अवतार लिया। इसी बात को कहते हैं कि—

"विष्वक्सेनो विश्वं विषयनियतं त्रातुं व्यञ्जितानुग्रहःसन् यतिपतिरभूत्" इस कलियुगी जनता की रक्षा करने के लिये श्रीविष्वक्सेन सूरि के हृदय में दया उमड़ी। उन्होंने सोचा कि इस कलियुगी जनता को किसी तरह से बचाना चाहिये। क्योंकि यह जनता विषय नियत है अर्थात् हमारे राज्य में ही रहती है राज्य के बाहर नहीं। दण्डकारण्यवासी महर्षियों ने श्रीरामचन्द्र जी से यही तो प्रार्थना की कि "ते वयं भवता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः" अर्थात् आप हम लोगों को अवश्य रक्षा करें क्योंकि हम लोग आपके राज्य में निवास करते हैं। दण्डकारण्यवासी महर्षियों को जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी ने रक्षा की, उसी प्रकार इस कलियुगी जनता की भी रक्षा करनी चाहिये। ऐसा विचार कर श्रीविष्वक्सेन सूरि ने संकल्प किया कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी के

नुगुणं त्रातुमैच्छत् परमतस्थानां वादेनोज्जीवनं स्वमतस्थाना-मुपदेशेनोज्जीवनमिति तत्तद्विषयानुरोधेन रक्षणार्थमनुग्रहं चकार। यद्वा विषयनियतं कृत्वा त्रातुं व्यञ्जितानुग्रहो बभूव। विश्वं स्वविषये नियतं कृत्वा रक्ष्यं जगत् स्वाज्ञापालकं विधाय त्रातुमैच्छत्। रक्ष्यवस्तुनः स्वाधीनत्वाभावे रक्षणमशक्यम्, मतान्तरे प्रविष्टानां तत्र प्रावण्यं विनिवर्त्य सदुपदेशादिभिः स्वमतेऽभिरुचिमुत्पाद्य रक्षितुमिच्छन् यतिपतिरभूत्, सेनापतेर्यतिपतित्वमेव हि शोभा-वहम्, अतो यतिपतिरभूत्।

रूप में अवतार लेकर अनेक प्रकार के उपायों से इस जनता की रक्षा करनी चाहिये। परमतस्थ विद्वानों को शास्त्रार्थ में हराकर अपने संप्रदाय में दीक्षित कर रक्षा करना चाहिये, अपने संप्रदायस्थ जनता को सदुपदेश देकर रक्षा करनी चाहिये। इस प्रकार उन २ मनुष्यों के लिये जो जो उचित उपाय हैं उन उपायों को काम में लाकर इस जनता की रक्षा करनी चाहिये। तथा इस जनता को सर्व प्रथम ऐसा अपने अधीन कर लेना चाहिये कि अपनी आज्ञा को अक्षरशः पालन कर सके, इस प्रकार इस जनता को अपनी आज्ञा पालक बनाकर रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि जब तक रक्ष्यवस्तु अपने आधीन नहीं होती तब तक उसकी रक्षा कैसे की जा सकती है। इस प्रकार विचार कर श्रीविष्वक्सेन सूरि जी ने मतान्तर में फंसी जनता को उन मतान्तरों से निकाल कर सदुपदेश से अपने संप्रदाय में रुचि उत्पन्न करा कर रक्षा करने के लिये श्रीरामानुज स्वामी जी के रूप में अवतार लिया। श्रीविष्वक्सेन सूरि जी श्रीभगवान के सेनापति हैं, सेनापति अवतार दशा में भी पति हो बनकर रहे, क्योंकि श्रीरामानुज स्वामी जी यतिपति हैं। अधिपति कोई भी कहीं भी अधिपति के रूप में रहे

*"वेत्रसारस्त्रिदण्डः" श्रीविष्वक्सेनस्य करस्थो वेत्रदण्डो यतिपत्यवतारे त्रिदण्डोऽभूत् । त्र्यवयवो दण्डस्त्रिदण्ड इति विग्रहः । अयं भावः व्यूहवासुदेवं कृष्णीभवन्तमालोक्य श्रीविष्वक्सेने हा हन्त सर्वेश्वरोऽपि कृष्णालंकारं बिभर्ति, भुवि कलिः प्रवृत्त इति विज्ञायते, सर्वेश्वरोऽपिनर्मलीलां कर्तुमारेभे, अयमस्माभिर्निरोद्धुं न शक्यते, भुवि साधवो दुर्मतेषु प्रविश्य नश्येयुः, किं करवाणि इति विचिन्त्य सत्वरं विस्मृतवेत्रे गजेन्द्ररक्षोद्यत-

---

तो उनसे सुचारु रूप से कार्य किया जा सकता है। यदि स्वामी को कहीं भृत्य बनकर रहना पड़े, भृत्य को कहीं स्वामी बनकर रहना पड़े तो दोनों भी सुचारु रूप से कार्य नहीं कर सकते। अतः सेनापति यतिपति बने तो अच्छा ही हुआ, यतिपति के रूप में वे सुचारु रूप से ही अपने कर्तव्य को सम्भालेंगे।

"वेत्रसारस्त्रिदण्डः" श्रीविष्वक्सेन सूरि जी सर्वदा वेत्र (वेंत) दण्ड को धारण करते हैं। उनका वह वेत्र दण्ड श्रीभाष्यकारावतार में त्रिदण्डरूप से अवतार लेकर श्रीरामानुज स्वामी जी के श्रीहस्त को सुशोभित करने लगा। श्रीविष्वक्सेन सूरि जी ने श्रीवैकुण्ठ में देखा कि श्रीव्यूह वासुदेव भगवान श्याम हो रहे हैं, अतः प्रतीत होता है कि भूलोक में कलि आगया है, तब श्रीविष्वक्सेन सूरि जी ने नीचे मुख करके जब देखा तो उन्हें विदित हुआ कि श्रीभगवान बुद्धावतार लेकर वेद विरुद्ध सिद्धान्तों को अपने परिहास वचनों से प्रचार कर रहे हैं, जनता उनके परिहास वचनों को यथार्थ वचन मान कर उन वेद विरुद्ध सिद्धान्तों में फंसकर नष्ट हो रही है। श्रीभगवान को रोकना अपने स्वरूपानुरूप नहीं है। जनता को समझाकर बचाना चाहिये। ऐसा सोचते हुए श्रीविष्वक्सेन सूरि जी अपने वेत्रदण्ड को

हरिवदाधाव्य भुवि श्रीभाष्यकाररूपेणावतीर्णे तदीयो वेत्रसारोऽपि मां विहाय किल ययौ मया विना किमपि कार्यं न सिध्येत्किलेति विचिन्त्य त्रिदण्डरूपेण पश्चादवतीर्य यतिपतिहस्तमाससाद। अयमर्थो वाक्यभेदेन फलति ॥३२॥

पूर्वश्लोके श्रीविष्वक्सेनसूरिः श्रीभाष्यकाररूपेणावततारेत्युक्तम्। अत्र श्रीभाष्यकारस्य श्रीविष्वक्सेनावतारत्वेऽपि विशिष्टग्रन्थनिर्माणं विना आचार्यकं न शोभेत, अपूर्वः प्रथमतो बुद्धया-

---

भी न लेते हुये उतने वेग से भूलोक के संमुख दौड़ पड़े जितने वेग से श्रीभगवान श्रीगजेन्द्र की रक्षा के लिये दौड़े थे। श्रीविष्वक्सेन सूरि जी ने अतिशीघ्र भूलोक में आकर श्रीरामानुज स्वामी जी के रूप में अवतार लिया। वेत्रदण्ड श्रीवैकुण्ठ में ही रह गया। वह भी एक नित्य सूरि ही है। उन्होंने सोचा कि क्या करें श्रीविष्वक्सेन सूरि जी भूल से हम को यहीं छोड़कर चले गये। मुझे विना लिये वे कुछ भी नहीं कर सकते, क्या किया जाय। उन्होंने निर्णय किया कि श्रीविष्वक्सेन सूरि जी ने श्रीरामानुज स्वामी जी के रूप में अवतार लिया है अब मुझे त्रिदण्ड रूप में अवतार लेकर उनके हाथ को सुशोभित करना चाहिये। ऐसा निर्णय कर वेत्रदण्ड ने त्रिदण्ड रूप का धारण किया। इससे सिद्ध होता है कि श्रीरामानुज स्वामी जी श्रीविष्वक्सेन सूरि जी के अवतार हैं ॥३२॥

कर्षकस्तत उच्चारणयोग्यस्ततोऽनुभाव्यस्ततोऽनुभवपरीवाहात्मना प्रवचनयोग्यस्ततः श्रोतॄणां भोग्यः पापहरः श्रेष्ठतमानि सुग्रह-दुर्ग्रहाणि तात्पर्याणि गर्भीकुर्वन् ग्रन्थ एवाचार्यकं शोभयेत्, किमेतदीयो ग्रन्थस्तथाविध इति शंकायां प्राप्तायां स्वच्छसमुद्राय-माने श्रीभाष्यकारप्रबन्धे एते सर्वेऽपि गुणाः सन्तीति समाधान-मभिप्रेत्याह—

लक्ष्यं बुद्धे रसिकरसनालास्यलीलानिदानं
शुद्धास्वादं किमपि जगति श्रोत्रदिव्यौषधं नः ।

के निर्माण से ही सुशोभित होगा। वे ग्रन्थ ऐसे होने चाहिये कि वे सर्वप्रथम बुद्धि को आकर्षण करने वाले हों अनन्तर उच्चारण के योग्य हों, इसके अनन्तर अभ्यास रूपी अनुभव के योग्य हों, अनन्तर अनुभव के परीवाह रूप में प्रवचन करने के लिये भी योग्य हों, अनन्तर श्रोता लोगों के लिये भोग्य हों, श्रोताओं के पाप को मिटाने वाले हों, तथा सुलभ श्रेष्ठ तात्पर्यों से भरे हों। इस प्रकार के उत्तम ग्रन्थों से आचार्यत्व की शोभा बढ़ती है क्या श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने इस प्रकार के उत्तम ग्रन्थों का निर्माण किया? इस शंका का समाधान यह है कि हाँ, श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने ऐसे उत्तम ग्रन्थों का अवश्य निर्माण किया। उन ग्रन्थों में ये सब गुण विद्यमान हैं। वे ग्रन्थ समुद्र के समान हैं, इनमें अनेक तात्पर्य रूपी रत्न भरे हुये हैं। इस शंका और समाधान को मन में लेकर श्रीदेशिक स्वामीजी यह श्लोक कहते हैं—

लक्ष्यालक्ष्यैः सितजलधिवद्भाति तात्पर्यरत्नैः
लक्ष्मीकान्तस्फटिकमुकुरो लक्ष्मणार्योपदेशः ॥२३॥

*"बुद्धेर्लक्ष्यम्" स्वच्छं जलं दर्शनकाल एव बुद्धिमाकर्षति, बुद्धेर्लक्ष्यंभवति, पंकिलं तु बुद्धिं नाकर्षति। अतएवाकर्दमं रमणीयं तमसाजलं पश्यन् श्रीवाल्मीकिः "अकर्दममिदं तीर्थं भरद्वाज निशामय। रमणीयं प्रसन्नाम्बु सन्मनुष्यमनो यथा॥"

इति शिष्यं प्रति निशामयेति वदन् ततः "न्यस्यतां कलशस्तात दीयतां वल्कलं मम। इदमेवावगाहिष्ये तमसातीर्थमुत्तमम् ॥" इत्याह। आम्रफलमित्युक्तमात्र एव तत्र यथा बुद्धिः प्रवर्तते, तथा श्रीभाष्यादिग्रन्थ इत्युक्तमात्र एव तत्र बुद्धिः प्रवर्तते अतः स तदैव बुद्धेर्लक्ष्यो भवति। "स्मृतिर्व्यतीतविषया मतिरागामिनी मता। बुद्धिस्तात्कालिकीप्रोक्ता प्रज्ञा त्रैकाल्यवर्तिनी ॥" इति तात्कालिकज्ञानं बुद्धिरित्युच्यते इति तात्कालिकबुद्ध्याकर्षकत्वाद् बुद्धेर्लक्ष्यमित्युक्तम्। वस्तुविषयकप्राथमिकज्ञानस्य प्रियत्वं वस्तुगुणाधीनमिति श्रीभाष्यादिग्रन्थस्यगुणपरिपूर्णत्वं फलति। यद्वा यावान् प्रज्ञातिशयोऽस्ति तावतो विषयम् तमित्यर्थः।

पिपासोः स्वच्छजले तात्कालिके प्रीतिरूपापन्ने ज्ञाने

का मन भी पाप शून्य रमणीय और प्रसन्न रहता है। यहीं कलश को रख दो, मुझे वल्कल दो, मैं तमसा नदी के इस उत्तम जल में ही स्नान करूंगा।" इस कथन से यह सिद्ध होता है कि दीखते ही तमसा नदी के स्वच्छ जल ने महर्षि के मन का आकर्षण किया। लोक में भी देखा जाता है कि किसी उत्तम भोग्य पदार्थ का नाम सुनते ही मन आकृष्ट हो जाता है। वैसे ही श्रीभाष्य इत्यादि ग्रन्थों के नाम सुनते ही उधर बुद्धि आकृष्ट होकर केन्द्रित हो जाती है। किसी वस्तु में उत्तम गुण होने पर ही उस वस्तु को देखते ही मन उधर आकृष्ट हो सकता है। श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों में उत्तम गुण परिपूर्ण हैं, अतएव उनके नाम सुनते ही मन उधर आकृष्ट होता है। मतान्तर के ग्रन्थों में मन के आकर्षण करने की शक्ति नहीं है।

पिपासु मनुष्य यदि कहीं स्वच्छ जल को देखले तो उसका मन

उदिते पश्चात्पानेच्छया यथा रसना नृत्येत् तथा श्रीभाष्यादि-ग्रन्थो प्रथमतः प्रीतिरूपापन्ने ज्ञाने उदिते पठित्वाऽनुभवनीय-मिति उत्पद्यमाना या इच्छाया ग्रन्थ एव मूलकारणमित्याह—

४३"रसिकरसनालास्यलीलानिदानम्" रसिकानां जिह्वाया नर्त-नस्य कारणमित्यर्थः। स्वच्छजलमपि कमलस्य धत्तूरपुष्पस्य च भेदमजानतामिव गङ्गाजलस्य पत्रसंकरकषायजीर्णकूपजलस्य च भेदमजानतामरसिकानां रसनालास्यलीलाया निदानं न स्यात्। तथैव श्रीमद्रामायणस्य कुकविप्रबन्धस्य च तारतम्य-मजानतामरसिकानां रसनां प्रति श्रीभाष्यादिग्रन्थानामनभिरु-

चितत्वेऽपि न दोष इति भावः। नर्तनकर्त्री स्त्री अपि रसिक-सम्बन्धं प्राप्य तेषां गृहेऽभिवृद्धा चेत् तस्या नर्तनमत्यद्भुतं स्यात्। रसनेति स्त्रीलिङ्गस्वारस्येन नर्तकत्वमुक्तं भवति। रसिक-रसनेतिनिर्देशेन रसिकसम्बन्धं प्राप्तवतीति सूच्यते। रसिका च सा रसनेति कर्मधारयो वा। पिपासोः स्वच्छजलदर्शने पातुं यथा जिह्वा नृत्येत् तथा श्रीभाष्यादिग्रन्थे दृष्टमात्रे एव पठनार्थं जिह्वा-नृत्यतीतिभावः।

ततोऽनुभवयोग्योऽपि भवतीत्याह—*"शुद्धास्वादम्" इति। विशुद्धस्यानुभवस्य विषयो भवति। अनुभवस्य विशुद्धत्व-मानन्दपुरस्सरत्वम्। ज्वरनिरासार्थं क्रियमाणं कषायपानमानन्द-

---

में भेद न समझने वाले अरसिकों की जिह्वा को यदि श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ नहीं नचा सकें तो इन ग्रन्थों में कोई दोष नहीं होगा। नाचने वाली स्त्री यदि रसिक के घर में ही उत्पन्न हुई हो तो उसका नर्तन अत्यन्त अद्भुत होगा। यहाँ रसना शब्द स्त्रीलिङ्ग है। इससे सिद्ध होता है कि जिह्वा भी एक स्त्री है, वह रसिकों के मुख में रहती है, वहीं उत्पन्न हुई वहीं बढ़ी है, अतः उसका नर्तन अवश्य अद्भुत होगा। भाव यह है कि जिस प्रकार प्यासे मनुष्य को स्वच्छ जल दीखने पर पीने की इच्छा से जिह्वा तड़पती है, उसी प्रकार श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों को देखने पर पढ़ने के लिये जिह्वा तड़पती है।

पुरःसरं न भवति। स्वच्छजलं यथाऽऽनन्दपुरस्सरमास्वाद्यते, तथा श्रीभाष्यादिग्रन्था आनन्दपुरःसरं पठनादिमुखेनानुभाव्या भवन्तीत्यर्थः। इतरग्रन्थाः द्रष्टमप्यनभिरुचिता रसनायां निधातुमयोग्या इति तेषामास्वादनमसंभवि। इत्थमाचार्यैः स्वयं पठित्वाऽभ्यस्यानन्दमनुभूयानन्दपरीवाहतया प्रवचने क्रियमाणे अस्माकं कर्णश्राव्यं पापव्याधेरौषधं च भवतीत्याह—

*"किमपि जगति श्रोत्रदिव्यौषधं नः" जगति किमपि नः श्रोत्रदिव्यौषधमित्यन्वयः। अस्माकं कर्णयोर्लोके विलक्षणं दिव्यौषधं वर्तते। श्रोत्राभ्यां सेव्यमौषधं वर्तते इति यावत्। लोके औषधं मुखेन भुक्तं व्याधिं निवर्तयतीति प्रसिद्धम्।

उसका आनन्द नहीं होता। श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों का अध्ययन वैसा नहीं है। किन्तु अमृत पान के समान है। मतान्तर के ग्रन्थ तो न देखने के योग्य है, न जिह्वा में रखने के योग्य हैं, उनका अभ्यास और अनुभव तो असंभव है।

"किमपि जगति श्रोत्रदिव्यौषधं नः"—आचार्यगण श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों का अध्ययन कर उससे अपार आनन्द का अनुभव करते हैं, जब वह आनन्दानुभव उनके हृदय में नहीं समाता, तब प्रवचन के रूप में बाहर निकल पड़ता है तब हम लोगों को सुनने का भाग्य मिलता है। श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ हम लोगों को सुनने में ही मनोहर लगते हैं, हमारे पाप रूपी व्याधि को मिटा देते हैं। अतः वे अत्युत्तम औषधियों के समान हैं। क्योंकि जिस प्रकार लोक में औषधियाँ व्याधि को दूर करती है। वैसे ही श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ संसार रूपी व्याधि को दूर करते हैं। अतः ये ग्रन्थ भी एक प्रकार से उत्तम औषधि ही हैं।

इदं दिव्यौषधं तु कर्णाभ्यां श्रुतमेव संसारव्याधिं निवर्तयति, श्रवणकाले सुखावहं च भवति। अतएव किमपीत्युच्यते। क्षुत्पीडितस्य दिव्यमिष्टान्नवितरणस्थाने अन्नक्षेत्रे श्रुते एव यथाऽऽनन्दो भवति, तथा पिपासोः स्वच्छदिव्यतीर्थे श्रुते एवानन्दो भवेत् किल। जगति इतरग्रन्थाः श्रोत्राभ्यां श्रुता संसारव्याधिनिवर्तकौषधभावं न भजन्ते, श्रुताः पापमेव वर्धयेयुः।

*लक्ष्मीकान्तस्फटिकमुकुरः" क्षीराम्भोनिधावनन्तशयनमध्यासीनयोर्दिव्यदम्पत्योर्मुखसौन्दर्यादिदिदृक्षायामुदितायामन्य-

---

हाँ, लौकिक औषधियों से श्रीभाष्य आदि औषधियों में बहुत अन्तर है। लोक में औषधियों को मुख में डालकर यदि खाया जाय तभी वे व्याधि को दूर कर सकती हैं, ये श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ तो कान से सुनने मात्र से ही पाप रूपी व्याधि को दूर करते हैं। सुनते समय भी ये सुख देते हैं। इसलिये श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ विलक्षण दिव्यौषधियाँ हैं, इसमें सन्देह नहीं। क्षुधा से पीडित मनुष्य यदि सुनलें कि अमुक स्थान में मिष्टान्न वितरित होता है तो उसको सुनने मात्र से उन्हें आनन्द होता है प्यास से विह्वल मनुष्य को स्वच्छ जल का स्थान सुनते ही आनन्द होता है, वैसे ही संसार पीडित हम लोगों को श्रीभाष्य के सुनने से अपार आनन्द होता है। इतर ग्रन्थ सुनने मात्र से संसार व्याधि को नष्ट नहीं कर सकते, उलटे पाप को बढ़ा सकते हैं।

स्य दर्पणस्यापेक्षा नास्ति, स्वच्छक्षीरसमुद्र एव स्फुटिकदर्पणी-भवन्नुपकुर्यात्। तथैव श्रीदिव्यदम्पत्योर्गुणादिदिदृक्षायामुदितायां श्रीभाष्यादिग्रन्थाः स्फटिकदर्पणवदुपकुर्वन्ति, श्रीभाष्यादौ दृष्टे स्वकीया गुणा ईदृशा इति ताभ्यां स्फुटं विज्ञायते। इतरग्रन्था-स्तथा श्रीभगवद्गुणान् विशदं न प्रकाशयेयुः। श्रुतिरपिनिर्गुण-वाक्यघटितत्वान्न्यायैर्विशोधनमन्तरा न विशदं प्रकाशयेत्। लक्ष्मीकान्तं विशदं दिदृक्षमाणानामस्माकमपि स्फटिकदर्पणवदुप-

करोति। "दृष्ट्वा मनौ मणिदर्पणे" "व्यापकादर्शदृष्टे" इति ह्युच्यते। श्रियःपतिरेव परा देवता, स एव ब्रह्मशब्दवाच्य, स एव जगत्कारणम्, स एव सर्वफलप्रदः मुमुक्षूपास्यो मुक्तिदो मुक्तभोग्यः सर्ववेदान्तप्रतिपाद्य इति श्रीभाष्ये प्रथमश्लोक एव प्रदर्शयति किल।

*"लक्ष्मणार्योपदेशः" श्रीभाष्यकारस्योपदेशरूपाग्रन्था इत्यर्थः।

सिद्ध हुआ कि श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ दिव्य दम्पति के लिये स्फटिक दर्पण की तरह काम देते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु हम लोगों को भी यदि श्रीभगवान् के गुणों को समझने की इच्छा हो तो श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ बहुत उपकार करते हैं क्योंकि ये ग्रन्थ स्फटिक दर्पण की तरह श्रीभगवान् के गुणों को विशद रूप में हम लोगों के सम्मुख रखते हैं। लौकिक दर्पण से श्रीभाष्य आदि दर्पण में बहुत अन्तर है क्योंकि लौकिक दर्पण देखने वाले के मुखादि अवयव उनमें रहने वाले सौन्दर्य आदि गुणों को दिखा सकते हैं, दूसरे मनुष्य के मुख आदि को दिखा नहीं सकते, उसमें दूसरे मनुष्य के आत्म गुणों को सर्वथा नहीं दिखा सकते। यहाँ तो श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों को हम लोग देखते हैं, ये ग्रन्थ श्रीभगवान् के स्वरूप रूप विभूति और आत्मगुणों को स्पष्ट दिखाते हैं। क्योंकि श्रीभाष्य के प्रथम श्लोक में ही इन श्रीभगवद् गुणों को विशद बतलाता है, कि श्रीभगवान् ही पर देवता हैं, वे ही परब्रह्म हैं, वे ही सकल जगत के कारण हैं सर्वफलों को देने वाले हैं मुमुक्षुओं के उपास्य हैं, मुक्ति के दाता हैं मुक्तों के भोग्य हैं, सर्व वेदान्तों से प्रतिपाद्य हैं इत्यादि। अतः इसमें सन्देह नहीं कि श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ स्फटिक दर्पण के समान हैं।

*"लक्ष्यालक्ष्यैस्तात्पर्यरत्नैः सितजलधिवद्भाति" स्वच्छ-जलधिरामः श्रीभाष्यकारग्रन्थः । तयोर्बहुमुखं साम्यं वर्तते। उदधिरपारमहिमवान् यस्मिन् सर्वाणि भुवनानि कुक्षौ कुर्वन् हरिः शेते । श्रीभाष्यादिग्रन्थोऽप्यपारमहिमवान् यस्मिन् अतिविस्मय-नीयस्वरूपरूपगुणविभवैश्वर्यशीलादिनिधिर्हरिः प्रतिपाद्यः सन्नि-वसति । समुद्रस्य महिमाऽपारो यतस्तस्य पुत्रकोटिनिविष्टाः कल्प-वृक्षकामधेनुचिन्तामणयोऽर्थिनां मनोरथान् पूरयन्ति । श्रीभाष्य-कारीयग्रन्थानां महिमाप्यपार एव, यतः श्रीभाष्यकारशिष्य-प्रशिष्यादिभिः प्रणीता श्रीभाष्यादिसिद्धान्तप्रतिपादनपरा ग्रन्था जिज्ञासूनां वाञ्छाः पूरयन्ति । रत्नाकरस्यायं महिमा यदीयं

कौस्तुभरत्नं जिघृक्षुर्याचमानः पुरुषोत्तमो हस्तं प्रसारयामास। श्रीभाष्यकारोपदेशराशेरयं महिमा यदीयं शरणागतिगद्यं श्रोतुं श्रीरङ्गनाथः श्रोत्रे विस्तारयामास। समुद्रस्य स्वरूपमतिविस्तृतं सर्वभारसहं च यतस्समुद्रे एकतो हरिः शेते, अन्यतो हरेः शत्रवोऽसुराश्च निवसन्ति, अपरत्र पक्षवन्तः पर्वताः शरणार्थिनः स्थिताः एकत्रवडवानलोऽन्यत्रप्रलयमेघाश्च निवसन्ति। श्रीभाष्य-कारीयग्रन्थानामपि स्वरूपमतिविस्तृतं सर्वभारसहं च, यतोऽस्मिन्

से ही यदि जिज्ञासुओं की इच्छायें पूर्ण होती हैं तो श्रीभाष्यकार स्वामी जी के साक्षात् उपदेश रूपी ग्रन्थों की महिमा के विषय में क्या कहना है? (३) समुद्र की महिमा अपार है क्योंकि समुद्र से उत्पन्न श्रीकौस्तुभमणि को प्राप्त करने के लिये पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीभगवान् को भी भिक्षुक की तरह हाथ पसारने में संकोच नहीं हुआ। श्रीभाष्यकार स्वामी जी के जो उपदेश रूपी ग्रन्थों की राशि है, उसमें अन्तर्गत शरणागति गद्य को सुनने के लिये श्रीरंगनाथ भगवान् को अपने श्रोत्र को विस्तृत करने में अणुमात्र भी संकोच न हुआ। अतः श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थों की महिमा अपार सिद्ध होती है। (४) समुद्र का स्वरूप अत्यन्त विस्तृत है अतएव सबको समुचित स्थान देता है क्योंकि समुद्र के एक भाग में शेषशायी भगवान आदि शेष पर शयन कर रहे हैं, दूसरे भाग में श्रीभगवान के जन्म वैरी असुरगण निवास करते हैं, तीसरे भाग में अपने २ पक्षों (पाँखों) के साथ असंख्य पर्वत इन्द्र से भयभीत होकर शरणार्थी बनकर भरे पड़े हैं, चौथे भाग में एक दिशा में वडवाग्नि दूसरी दिशा में प्रलयकाल के मेघ भरे रहते हैं। वैसे ही भाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थों के स्वरूप भी अत्यन्त विस्तृत हैं, अतएव सभी अर्थ इसमें समुचित रूप

विभूतिनिरूपणेन तत्त्वहितपुरुषार्थनिरूपणेन च तांस्तान् जिज्ञासून् कृतार्थयामास । समुद्रो यद्यपि स्वच्छत्वात् अन्तर्निहितानि रत्नानि दर्शयति, तथापि जानुदघ्नोऽयमिति मन्तुं न युज्यते गभीरत्वात् । तथैव श्रीभाष्यादिग्रन्थः प्रसादगुणयोगादन्तर्निहितानपि सूक्ष्मार्थान् स्फुटं दर्शयति तथापि सुग्रहोऽयमिति मन्तुं न युज्यते गभीरशयत्वात् । समुद्रस्य महिमैवायम् यत्तीरे महारत्नानि शेरते, श्रीभाष्यादिग्रन्थस्यायं महिमा यत्र प्रतिपंक्ति अनर्घानि तात्पर्यरत्नानि शेरते । तदिदमुच्यते *लक्ष्यालक्ष्यैः सितजलधिवद्भाति तात्पर्यरत्नैरिति । अयं भावः स्वच्छसमुद्रे

जिज्ञासुओं को श्रीभगवान के स्वरूप रूप गुण और विभूति का निरूपण कर अन्यान्य जिज्ञासु सज्जनों को तत्व हित और पुरुषार्थ का निरूपण कर इतर जिज्ञासु महानुभावों को पूर्ण काम बनाया। (६) समुद्र यद्यपि अत्यन्त स्वच्छ रहते समय अत्यन्त गहरे जल के अन्दर छिपे हुये रत्नों को भी अच्छी तरह से दिखाता है, तो भी यह समझना नहीं चाहिये कि वह समुद्र एक हाथ गहरा होगा। वैसे ही श्रीभाष्य इत्यादि ग्रन्थ भी प्रसाद गुण के कारण सूक्ष्म अर्थों को भी सुगम करा देते हैं तो भी यह समझना अनुचित होगा कि श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों के सभी मर्म विदित होगये, क्योंकि श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ अत्यन्त गम्भीर हैं। (७) यही समुद्र का महत्त्व है कि इसके तीर पर अनमोल रत्न बिखरे पड़े रहते हैं, वैसे ही श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों का यही महत्व है कि इसके प्रत्येक वाक्य में अमूल्य तात्पर्य रत्न भरे रहते हैं। इसी बात को लेकर श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि "लक्ष्यालक्ष्यैः सितजलधिवद्भाति" भाव यह है कि यद्यपि स्वच्छ समुद्र में रत्न दिखाई देते हैं, तो भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि

रत्नानि दृश्यानि अदृश्यानि च भान्ति, प्रथमतो दृष्टिपथमुपयातान्यपि तत्वतोऽज्ञातान्येव भवन्ति रत्नतत्वस्य परीक्षणमन्तरा दुर्बोधत्वात्। हस्ते गृहीत्वा परीक्षणे कृते एव तत्वतो विदितानि भवन्ति, तथा श्रीभाष्यादितात्पर्याण्यपि प्रथमत आपाततोविदितान्यपि तत्वतो विदितानि न भवन्ति तेषां मर्मणो दुर्वेदत्वात्। चिरपरिचये कृते एव तेषां मर्म ज्ञातुं शक्यते श्रीभाष्यतात्पर्याण्यपि रत्नवत् श्रेष्ठानि भवन्ति, श्रीभाष्यतात्पर्यं श्रीरामायणवत् तात्पर्य आपातप्रतीतावपि ज्ञातुं शक्यते, चिरपरिचये कृते सति समर्मकं विदितं भवति। श्रीभाष्यादिः श्रीलक्ष्मणार्योपदेश एवंविधमहिमवान् भाति, अद्यापि तथैव भाति, न कालभेदेनापि तद्बाधः, किंतु त्रिकालाबाधितमिदं पारमार्थिकं सत्यम् ॥२३॥

उनका तात्विक स्वरूप विदित हो गया क्योंकि उनको हाथ में लेकर अधिक समय तक परीक्षा करने पर ही उनका तात्विक स्वरूप समझ में आ सकता है। वैसे ही श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों के तात्पर्य समझ में आने पर भी नहीं कहा जा सकता कि अच्छी तरह से समझ में आगया क्योंकि चिरकाल परिचय करने पर ही उसका मर्म समझ में आ सकता है। यह तात्पर्य भी विद्वानों की दृष्टि में रत्न के समान अमूल्य वस्तु है। श्रीमद्रामायण के श्लोकों का तात्पर्य यद्यपि पाठ करते समय ही विदित होजाता है तो भी चिरपरिचय करने पर ही उसका मर्म विदित हो पाता है, वैसे ही श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों के तात्पर्य भी प्रथम श्रवण में भी विदित होते हैं तो भी उनका मर्म चिरपरिचय करने पर ही विदित हो पाता है। श्रीभाष्यकार स्वामी जी के दिव्य उपदेशमय श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ स्वच्छ समुद्र की तरह महिम शाली हैं, आज भी वैसे ही हैं, आगे भी ऐसे ही रहेंगे। यह त्रैकालिक सत्य है ॥२३॥

पूर्वश्लोके श्रीलक्ष्मणार्योपदेशस्य प्रभावमुपवर्ण्यानेन श्लोकेन तादृशमुपदेशं प्राप्तवतां श्रीवैष्णवानामगजान्तैश्वर्येऽप्युपेक्षां वर्णयति—

स्थितिमवधीरयन्त्यतिमनोरथसिद्धिमतीं
यतिपतिसम्प्रदायनिरपायधनोपचिताः ।
मधुकरमौलिदघ्नमददन्तुरदन्तिघटा
करटकटाहवाहिघनशीकरशीभरिताम् ॥३४॥

*"यतिपतिसम्प्रदायनिरपायधनोपचिताः" यतिपति-सम्प्रदायरूपं यन्निरपायधनं तेनोपचिताः सम्पन्नाः इत्यर्थः ।

पूर्व श्लोक में श्रीरामानुज स्वामी जी के उपदेशमय ग्रन्थों का महत्व बतलाया गया। इस श्लोक में यह बतलाया जाता है कि श्रीरामानुज स्वामी जी से सत्संप्रदायार्थ रूपी महाधन को प्राप्त कर जो महानुभाव संपन्न हो गये हैं वे अपार ऐश्वर्य को भी तुच्छ समझते हैं क्योंकि ये श्रीरामानुज स्वामी जी से प्राप्त श्रीसंप्रदायार्थ रूपी महाधन से अत्यन्त तृप्त रहते हैं क्षुद्र लौकिक ऐश्वर्य को नगण्य समझते हैं—

सकाशात् प्राप्तं यत् सम्प्रदायार्थज्ञानरूपं निरपायं धनं तेन उपचिताः सम्पन्ना एतत्सम्प्रदायस्थाः श्रीवैष्णवाः इति ।

❀"मधुकरमौलिदघ्नमददन्तुरदन्तिघटाकरटकटाहवाहिघनशीकरशीभरिताम् अतिमनोरथसिद्धिमतीं स्थितिमवधीरयन्ति"—एते श्रीवैष्णवाः पूर्वोक्तरीत्या निरपायधनेन अत्यन्तं सम्पन्नत्वाद्धेतोरतिशयितमपि लौकिकमैश्वर्यमवधीरयन्ति तिरस्कुर्वन्ति । गजान्तमैश्वर्यमिति लोके गजान्ततया ऐश्वर्यस्य प्रसिद्धिः । तादृशं गजान्तैश्वर्यमपि तिरस्कुर्वन्ति । ऐश्वर्यस्य गजान्ततां वर्णयति—❀मधुकरेत्यादिना । मधुकराणां भ्रमराणां मौलिदघ्नेन शिरः

खुल जाने पर यह श्रीसंप्रदायार्थ रूपी महाधन उपयोग में आता है तथा बढ़ता जाता है। लौकिक धन से इह लोक परलोक और जन्मान्तर में भी प्रतिष्ठा बढ़ती है। श्रीरामानुज स्वामी जी से इस महाधन को प्राप्त कर श्रीवैष्णवगण अत्यन्त सम्पन्न हो जाते हैं, अतएव ये श्रीवैष्णव गण महान् ऐश्वर्य को भी तुच्छ समझते हैं। इस बात को कहते हैं कि—

"मधुकरमौलिदघ्नमददन्तुरदन्तिघटाकरटकटाहवाहिघनशीकरशीभरितामतिमनोरथसिद्धिमतीं स्थितिमवधीरयन्ति"—धन धान्य गृह क्षेत्र आराम पशुधन इत्यादि ऐश्वर्य में अन्तर्गत हैं, लौकिक ऐश्वर्य की सीमा है हाथी को पालना। इसलिये ही "गजान्तमैश्वर्यम्" ऐसा संस्कृत में कहा जाता है। श्रीस्वामी जी कहते हैं कि उत्तम ऐश्वर्य यही है कि मदजल बहाने वाले हाथी हों सामान्य हाथी को मदजल होता ही नहीं है। उत्तम हाथी का ही मदजल होता है, वह मदजल भी अल्प मात्रा में न बहे, किंतु इतनी अधिक मात्रा में बहे कि उस मदजल के गन्ध से आकृष्ट होकर पीने के लिये आये हुए भ्रमरगण डूब जायें।

रङ्गस्थान्नर्तयन् दिगन्तेषु प्रसरति, तथा निगमविमर्शलीलारसिकैः श्रीभाष्यकारस्य गुणप्रकाशनरूपे यशसि गुणपूर्णश्रीसूक्तिभिरभिनन्द्यमाने सति एतच्छ्रोतृषु श्रीरङ्गस्थेषु रसिकेषु नृत्योद्यतेषु स उद्घोषो दिगन्तान् व्याप्नोति, अतः श्रीभाष्यकारस्योत्कर्षः सर्वलोकविदितो भवतीति समाधानमभिप्रयन्नाह—

निरुपधिरङ्गवृत्तिरसिकानभिताण्डवयन्
निगमविमर्शकेलि (निरतैः) रसिकैर्निभृतैर्विधृतः ।
गुणपरिणद्धसूक्तिदृढकोणविघट्टनया
रटति दिशामुखेषु यतिराजयशः पटहः ॥३५॥

विषयीकृते शतगुणितार्थसिद्धिर्हि अतिमनोरथसिद्धिः । तादृश-सिद्धियुक्तामपि ऐश्वर्यस्थितिं तिरस्कुर्वन्ति, निरपायधनतुसत्वा-दितिभावः । अतएव ह्युच्यते "तृणीकृतविरिञ्चादिनिरंकुशविभूतयः । रामानुजपदाम्भोजसमाश्रयणशालिनः ॥" इति ॥३४॥

श्रीभाष्यादिग्रन्थान् प्रणीतवता श्रीरङ्गमधितिष्ठता श्रीभाष्य-कारेण सर्वलोकविदितेन किल भाव्यम्, तथात्वे एव हि उत्कर्षः सिद्ध्येत्, एतत्प्रतिपादितेष्वर्थेषु प्रामाणिकत्वबुद्धिश्च लोकस्यो-दियादिति शङ्कायाम् यथा नर्तनस्थले कोलिरसज्ञेन समर्थपुरुषेण पटहवाद्यं करे गृहीत्वा दृढदण्डेन वाद्यमाने तदुत्थः शब्दो

समझते हैं क्योंकि वे श्रीरामानुज स्वामी जी से प्राप्त संप्रदायार्थ रूपी महाधन से तृप्त रहते हैं अन्यान्य धन उसके सामने अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होते हैं इसलिये ही कहा गया है कि श्रीरामानुज स्वामी जी के चरणाश्रित श्री वैष्णव ब्रह्मा जी इत्यादि देवताओं के अपार ऐश्वर्य को भी तृण के समान समझते हैं ॥३४॥

यहाँ पर यह शंका होती है कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी भले श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों का निर्माण कर श्रीरङ्ग में चिरकाल तक विराजमान रहे हों, इतने में उनका उत्कर्ष पूर्ण मात्रा में सिद्ध नहीं होगा। यदि वे सर्वलोक में विदित हुये होते और यदि उनकी कीर्ति देश देशान्तर में फैल गई होती तो उनका उत्कर्ष अवश्य सिद्ध होगा, उनके सिद्धान्त को भी संसार प्रामाणिक मानेगा, क्या श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कीर्ति दिगन्त तक फैली हुई है ? इस शङ्का का समाधान इस प्रकार है कि नर्तन स्थल में रसिक गण पटह वाद्य को हाथ में लेकर दृढ़ दण्ड से ताड़न करें तो उस वाद्य से निकलने वाला शब्द

रङ्गस्थान्नर्तयन् दिगन्तेषु प्रसरति, तथा निगमविमर्शलीलारसिकैः श्रीभाष्यकारस्य गुणप्रकाशनरूपे यशसि गुणपूर्णश्रीसूक्तिभिरभिनन्द्यमाने सति एतच्छ्राविषु श्रीरङ्गस्थेषु रसिकेषु नृत्योद्यतेषु स उद्घोषो दिगन्तान् व्याप्नोति, अतः श्रीभाष्यकारस्योत्कर्षः सर्वलोकविदितो भवतीति समाधानमभिप्रयन्नाह—

निरुपधिरङ्गवृत्तिरसिकानभिताण्डवयन्
निगमविमर्शकेलि (निरतैः) रसिकैर्निभृतैर्विधृतः ।
गुणपरिणद्धसूक्तिदृढकोणविघट्टनया
रटति दिशामुखेषु यतिराजयशः पटहः ॥३५॥

*"निभृतैर्निगमविमर्शकेलिरसिकैर्विधृतोयतिराजयशः पटहः" पटहवाद्ये वाद्यमाने तदुत्थः शब्दो दिङ्मुखानि व्याप्नोति । तच्च पटहवाद्यं राज्ञां भवति । यतिराजस्य यश एव तत्पटहवाद्यम्, यतिराजस्य यशो गीयमानं दिगन्तान् व्याप्नोति । पटहो निगम-विमर्शकेलिरसिकैर्भरतशास्त्रज्ञैर्धृतो वर्तते । तथा नर्तनलीलारसिकैर्धृतो वर्तते, नर्तनरासिक्याभावे पटहं करेण ग्रहीतुमपि न ज्ञायेत किमुत वादयितुम्, तथा इदं श्रीयतिराजस्य गुणप्रथारूपं यशोऽपि रसिकैर्धृतं वर्तते, रसिकाः श्रीयतिराजस्य गुणप्रकाशनं कुर्वन्तीति

को आनन्दित कर नचाता हुआ, *दिशामुखेषु*—दिशाओं को, *रटति*—प्रतिध्वनित करता है ।

"निभृतैर्निगमविमर्शकेलिरसिकैर्विधृतः यतिराजयशः पटहः"—पटह एक वाद्य है, वह प्रायशः राजा के पास रहता है, भरत नाट्य शास्त्र के विचार में दक्ष नर्तन लीला रस के अनुभवी महानुभाव ही उस पटह वाद्य को बजाते हैं, नर्तन लीला को अच्छी तरह से समझने में असमर्थ पुरुष उस पटह बाजे को हाथ से छू ही नहीं सकते हैं, बजाना तो दूर । लोक में नर्तन लीला रस के रसिक भरत नाट्य शास्त्र के विद्वानों से वह पटह वाद्य बजाया जाता है । वैसे ही प्रकृत में भी समझना चाहिये । यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी का यश ही वह पटह वाद्य है । श्रीभाष्यकार स्वामी जी का जो गुण गान है, वही उनका यश है । पटह वाद्य राजा का होता है, यह यश यतिराज का है । दृष्टान्त में भरत नाट्य शास्त्र के पारंगत तथा नर्तन लीला रस के रसिक महानुभाव उस पटह वाद्य को बजाते हैं । वैसे ही प्रकृत में वेदान्त शास्त्र विचार में दक्ष तथा शास्त्रार्थ लीला रसिक महानुभाव श्रीभाष्यकार स्वामी जी के यश रूपी पटह वाद्य को बजाते हैं, अर्थात्

भावः । इमे च रसिका न सामान्यरसिकाः किंतु निगमविमर्श-केलिरसिकाः । भेदाभेदश्रुतयः सगुणनिर्गुणश्रुतयश्च परस्परं विरुद्धार्थाः किल सन्ति, एताः कथमुपपद्येरन्निति ऊहापोहकेलौ रसज्ञा इत्यर्थः । एते एव श्रुतीनामैककण्ठ्यं कृतवन्तं श्रीभाष्य-कारं प्रशंसेयुः । पटहवाद्यवादका बुद्धेर्विषयान्तरप्रावण्यं हित्वा निश्चलाः सन्तो नर्तनमनुसृत्य वाद्यं वादयेयुः । परस्परविरुद्धार्थ-तया भासमानानां श्रुतीनामैककण्ठ्यकारिणं श्रीभाष्यकारं प्रशंसितुं प्रवृत्ता अपि बुद्धेर्विषयान्तरप्रावण्यं निराकृत्य निश्चलाः सन्तः प्रशंसन्ति ।

पूर्वोक्त विद्वद्गण श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कीर्ति का वर्णन करते हैं। वेदार्थ विचार में दक्ष विद्वद्गण ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी के यश का वर्णन कर सकते हैं दूसरे नहीं। कारण यह है वेदों में नाना प्रकार के वचन हैं, कई सगुण वाक्य हैं, ये परब्रह्म को सगुण बतलाते हैं। कई निर्गुण वाक्य हैं, ये परब्रह्म को निर्गुण बतलाते हैं। ये दोनों वाक्य परस्पर विरुद्ध अर्थ को बतलाने वाले प्रतीत होते हैं। विद्वानों की जिज्ञासा होती है कि इनका समन्वय कैसा किया जाय ? वैसे ही वेदों में भेद श्रुतियाँ हैं जो जीव और ब्रह्म में भेद बतलाती हैं। वेद में अभेद श्रुतियाँ भी हैं जो जीव और ब्रह्म का अभेद बतलाती हैं। ये दोनों प्रकार की श्रुतियाँ परस्पर विरुद्धार्थ को बतलाने वाली प्रतीत होती हैं इनके विषय में विद्वानों की जिज्ञासा होती है कि इनका समन्वय कैसे किया जाय। श्रीरामानुज स्वामी जी ने श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों में इन श्रुतियों को अच्छी तरह से समन्वय कर व्याख्या की, इस मनोहर व्याख्या को सुनने पर ही उन विद्वानों की जिज्ञासा शान्त होती है, वे विद्वद्गण आनन्द पर वश होकर

*"गुणपरिणद्धसूक्तिदृढकोणविघट्टनया" पटहवादनार्थो दण्डो रज्जुभिर्बद्धो दृढो वर्तते, अतएव दृढताडनेऽपि न भज्यते, तेन दण्डेन पटहवाद्ये वादिते ततो निःसृतः शब्दो बहुदूरं याति। तथा प्रकृते श्रीभाष्यादिश्रीसूक्तय एव कोणदण्डस्थानीयाः। श्रीभाष्यादिश्रीसूक्तयः शब्दगुणैरर्थगुणैर्विशेषयुक्ति-

---

श्रीभाष्यकार स्वामी जी के यश का गान करने लगते हैं।

पटह वाद्य को बजाने वाले लोग अपनी बुद्धि को इधर उधर न दौड़ाते हुये एकाग्र होकर निश्चल भाव से बाजा बजाते हैं, वैसे ही सभी श्रुतियों का समन्वय करने वाले श्रीभाष्यकार स्वामी जी की प्रशंसा में प्रवृत्त विद्वद्गण भी अपने बुद्धि को इधर उधर न दौड़ाते हुये एकाग्र होकर निश्चल भाव से श्रीभाष्यकार स्वामी जी का गुणगान करते हैं।

"गुणपरिणद्धसूक्तिदृढकोणविघट्टनया"—संस्कृत भाषा में गुण शब्द के दो अर्थ हैं (१) रस्सी (२) और अच्छे गुण। पटह वाद्य को बजाने वाले दण्ड से बजाते हैं वह दण्ड रस्सियों से बँधा हुआ रहता है, अतएव वह दृढ़ रहता है, अन्यथा जोर से बजाने पर टूटने का भय रहता है, इस प्रकार रस्सी से बँधे हुये दृढ़ दण्ड के जोर से प्रहार करने पर उस वाद्य से निकलने वाला शब्द अधिक दूर तक पहुँचता है। वैसे ही प्रकृत में भी समझना चाहिये। प्रकृत में श्रीभाष्यकार स्वामी जी का यश ही वह पटह वाद्य है, वेदान्त विचार में दक्ष तथा शास्त्रार्थ लीला में रसिक विद्वद्गण ही बजाने वाले लोग हैं। बजाने का दण्ड कौन है? श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीभाष्य आदि सूक्तियाँ ही वे दण्ड हैं जिनसे वाद्य बजाया जाता है। जिस प्रकार वह दण्ड गुण अर्थात् रस्सी से बँधा हुआ अतएव दृढ़ रहता है, वैसे ही श्रीभाष्य

गुणैश्च पुष्कला अतिकोमलपदघटिताः "पाठ्ये गेये च मधुरम्" इत्युक्तरीत्याऽतिमधुरशब्दसौष्ठवेन श्रीभगवद्गुणप्रतिपादकत्वादर्थ-सौष्ठवेन च पूर्णा वर्तन्ते। प्रवचनकाले पूर्वपक्षयुक्तिभिर्न खण्ड-येरन् तथा दृढतरयुक्त्यादिभिरुपोद्बलिता वर्तन्ते। वैदिकैरानन्दा-तिशयेन साट्टहासं श्रीभाष्यादिप्रवचने क्रियमाणे स घोषो दिङ्मुखानि मुखरयति।

❀"निरुपधिरङ्गवृत्तिरसिकानभिताण्डवयन् दिशां मुखेषु रटति" पटहे वादिते रङ्गे नर्तनस्थले वर्तमाना नटा नट्यश्च

आदि सूक्तियाँ भी गुणों से परिपूर्ण अतएव दृढ़ रहती हैं, इन सूक्तियों में शब्द गुण और अर्थ गुण परिपूर्ण रहते हैं, समीचीन युक्ति रूपी गुण भी पूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं। इन सूक्तियों में अति कोमल शब्दों का विन्यास है। अतएव शब्द सौष्ठव झलकता है। इन सूक्तियों से श्रीभगवान् के कल्याण गुणों का प्रतिपादन होता है, अतएव अर्थ सौष्ठव भी झलकता है। अतः सिद्ध होता है कि ये सूक्तियाँ सब गुणों से परिपूर्ण हैं। प्रबल युक्तियों से ओतप्रोत होने के कारण ये सूक्तियाँ प्रवचनकाल में पूर्व पक्ष की युक्तियों से खण्डित नहीं हो सकती हैं, अतएव सुदृढ़ हैं। वैदिक विद्वद्गण आनन्द से प्रेरित होकर अट्टहास के साथ इन सूक्तियों का प्रवचन करते हुये जब श्रीभाष्यकार स्वामी जी के यश का उच्च स्वर से गान करते हैं, तब वह ध्वनि दिशाओं के कोण कोण तक पहुँचकर प्रतिध्वनित करता है।

नृत्येयुः, ते प्रयोजनान्तरपराश्चेत् प्रयोजनान्तराभावनिश्चये अति-मात्रं पटहे वादितेऽपि न नृत्येयुः, निरुपधिरसिकाश्चेत् पटहवाद्ये-यथाशास्त्रं वादिते स्वयमेवानन्दातिशयेन नृत्येयुः। तथात्र श्रीरङ्गे प्रयोजनान्तरपरतां विना केवलं भगवत्सेवार्थं नित्यनिवासं कुर्वन्तः "रसो वै सः" इति रसशब्दवाच्यं परंब्रह्मानुभवन्तः श्रीवैष्णवा-निरुपधिरङ्गवृत्तिरसिकाः। तानभितो नर्तयत्ययं वाद्यमानो यति-राजयशः पटहः। वैदिकैः श्रीरङ्गे क्रियमाणं श्रीभाष्यकालक्षेपं

रसिक नर्तक गण नाचने लगते हैं, यदि ये नर्तक गण दूसरे किसी प्रयोजन में इच्छा रखते हों तो उस प्रयोजन का अभाव विदित होने पर नहीं नाचेंगे, भले ही पटह वाद्य बजता रहे। यदि ये नर्तक गण दूसरे किसी प्रयोजन में भी इच्छा न रखने वाले विशुद्ध रसिक हों तो शास्त्रोक्त रीति से पटह वाद्य बजते ही आनन्द से मस्त होकर नाचने लगते हैं। इस प्रकार रङ्गस्थल में रहने वाले रसिकों को नचाता हुआ यह पटह ध्वनि दिशाओं को प्रति ध्वनित करता है। वैसे ही प्रकृत में भी समझना चाहिये। रङ्गस्थल अर्थात् नर्तन स्थल के समान है श्रीरङ्ग क्षेत्र। नर्तन स्थल में रहने वाले रसिकों के समान हैं श्रीरङ्ग में नित्यवास करने वाले रसिक श्रीवैष्णव गण। ये श्रीवैष्णव गण दूसरे किसी प्रयोजन को नचाहते हुये केवल श्रीभगवत सेवा के लिये ही श्रीरङ्ग में निवास करते हैं। श्रुति में "रसो वै सः" ऐसा रस रूप में वर्णित श्रीभगवान् का अनुभव करने वाले ये श्रीवैष्णव परम रसिक हैं।

शृण्वन्तस्तत्रत्या भगवत्परा आनन्दातिरेकेण नृत्यन्ति । यथा रङ्गस्थान् नटान् नर्तयन् वादितः पटहो दिशांमुखेषु प्रतिध्वनति, तथा श्रीवैष्णवैः श्रीभाष्यादिप्रवचनेन विस्तार्यमाणं यतिराजयशोऽपि दिशां मुखेषु प्रतिध्वनति, यतस्तत्रत्यैरप्याम्रेड्यते ॥३५॥

इत्थं पूर्वश्लोकैः परमतानि श्रीभाष्यकारेण खण्डितानि विशिष्टाद्वैतमतं दिगन्तविश्रान्तं कारितमिति यदुक्तं तत्कथं संगच्छेत, इदं नूतनं श्रीविशिष्टाद्वैतमतमपि श्रीभाष्यकारादधिक-

---

श्रीवैष्णव आनन्द से नाचने लगते हैं। इन श्रीवैष्णवों को नचाता हुआ यह यश गान नाना दिशाओं के कोण कोण में प्रति ध्वनित हो रहा है क्योंकि वहाँ के लोगों के मुख से भी श्रीभाष्यकार स्वामी जी के यश गान ही बारम्बार निकलता है। श्रीबदरीनाथ से लेकर कन्या कुमारी तक द्वारका से लेकर श्रीजगन्नाथपुरी तक सर्वत्र श्रीभगवान् की आरती (नीराजन) होने पर सभी श्रीवैष्णवों के मुख से यही तो निकलता है कि "सर्वदेशदशाकालेष्वव्याहतपराक्रमा । रामानुजार्यदिव्याज्ञा-वर्धतामभिवर्धताम् । रामानुजदिव्याज्ञा प्रतिवासरमुज्वला । दिगन्तव्यापिनीभूयात् सा हि लोकहितैषिणी ॥" यह श्रीभाष्ययार स्वामीजी के गुण गान के प्रति ध्वनि नहीं तो और क्या है ? अतः सिद्ध होता है कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी का यश सभी दिशाओं में पहुँचा हुआ है । अतएव श्रीभाष्य-कार स्वामी जी का उत्कर्ष सर्व समान है ॥३५॥

पूर्वश्लोकों में श्रीदेशिक स्वामी जी ने कहा कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने परमतों का खण्डन कर श्रीविशिष्टाद्वैत मत को देश देशान्तर में प्रचारित किया । इस पर यह शङ्का होती है कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी से प्रचारित श्रीविशिष्टाद्वैत मत भी एक नूतन मत ही है, यह भी उत्तरकाल में किसी दिन धुरन्धर विद्वानों से खण्डित हो सकता है।

बुद्धिभिः पश्चात्तनैर्विद्वद्भिः किं न खण्ड्येत ? इत्यत्र वेदबाह्यानि मतान्येव नूतनानि, अनादिनिधना विच्छिन्नसंप्रदायापौरुषेय-वेदानुसारि श्रीरामानुजदर्शनं न नूतनम्, इदानीतनमतान्तरस्थ-कुमतिवत् अनेकेषां कुमतीनामुत्तरकाले संभवेऽपि तेषामपि मूलोत्सादने समर्था किल वर्तते श्रीयतीन्द्रसूक्तिरित्युत्तरमभिप्रयन्नाह—

इस शङ्का का समाधान यह है कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी से प्रवर्तित श्रीविशिष्टाद्वैत मत नूतन मत नहीं है, यह मत वेदों पर आधारित है; वेद अपौरुषेय हैं, उनमें कोई दोष नहीं है, वेद अनादि काल से संसार में प्रचार में आये हैं, वेदों पर आधारित होने से श्रीविशिष्टाद्वैत मत परम प्राचीन है, श्रीरामानुज स्वामी जी ने उसका प्रचार मात्र किया, न कि किसी नूतन मत की सृष्टि की। वेद विरुद्ध जितने मत हैं वे ही नूतन हैं, वे प्रबल प्रमाणभित्ति पर प्रतिष्ठित नहीं हैं, अतएव 'परम वैदिक सुदृढ़ प्रमाणभित्ति पर प्रतिष्ठित श्रीविशिष्टाद्वैत मत से वे खण्डित हो जाते हैं। वेद विरुद्ध मत दो प्रकार के हैं (१) बाह्यमत (२) और कुदृष्टि मत। बौद्ध जैन और चार्वाक इत्यादि वादिगण वेदों को प्रमाण न मानते हुये जिन मतों की स्थापना की वे वेद बाह्य मत कहलाते है। वेदों को प्रमाण मानते हुये भी मतान्तरस्थ आचार्य गण वेदों का अयथार्थ अर्थ करके जिन मतों का प्रचारित किया वे मत कुदृष्टि मत कहलाते हैं। श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ इन सब मतों का खण्डन करती है, इतना ही नहीं, उत्तरकाल में भी जो वेद विरुद्ध नूतन मत प्रगट होंगे, वे मत भी श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियों से खण्डित हो जाते हैं, श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्ति का इतना प्रभाव है। इस शङ्का और समाधान को मन में लेकर श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं—

इदं प्रथमसंभवत्कुमतिजालकूलङ्कषा
मृषामतविषानलज्वलितजीवजीवातवः ।
क्षरन्त्यमृतमक्षरं यतिपुरन्दरस्योक्तयः
चिरन्तनसरस्वतीचिकुरबन्धसैरन्ध्रिकाः ॥३६॥

*"इदं प्रथमसंभवत्कुमतिजालकूलङ्कषाः" यतिपुरन्दरस्य यतीन्द्रस्योक्तय इदं प्रथमतया संभवतां कुमतिजालानामान्तरबाह्यभेदभिन्नानां कूलङ्कषाः समूलोन्मूलनकारिण्यः। यथोद्वेलप्रवहणशीला महानद्यः कूलंकषा भवन्ति, तथा श्रीभाष्यकारस्य श्रीसूक्तय

इदं प्रथमसंभवत्कुमतिजालकूलङ्कषाः—उत्पन्न हुये कुमति जाल को नष्ट करने वालीं, *मृषामतविषानलज्वलितजीवजीवातवः*—माया वाद की विषाग्नि से जलते हुये जीवों को जीवनौषधि प्रदान करने वालीं, *चिरन्तनसरस्वतीचिकुरबन्धसैरन्ध्रिकाः*—सनातन वेद वाणी को सजाने वालीं, *यतिपुरन्दरस्योक्तयः*—यतिराज की सूक्तियाँ, *अक्षरं*—नाश रहित, *अमृतं*—अमृत को, *क्षरन्ति*—बरसाती हैं।

"इदं प्रथमसंभवत्कुमतिजालकूलङ्कषाः"—जिस प्रकार महा नदी का प्रवाह तीर को काट २ कर गिराता है तीरस्थ वृक्षों को बहा कर ले जाता है; उस प्रवाह के वेग के सामने तीर और तीरस्थ वृक्ष कुछ नहीं कर सकते, उन्हें कटकर गिरना ही पड़ता है, उसी प्रकार ही बाह्यमत और कुदृष्टि मत इत्यादि वेद विरुद्ध मतों को काटकर गिराती हुई श्रीरामानुज स्वामी जी को श्रीसूक्तियाँ जगत में प्रवाहित हो रही हैं। इन सूक्तियों के प्रमाण तर्क वेग के सामने वे मतान्तर टिक नहीं सकते, उन्हें खण्डित होना ही पड़ेगा। वर्तमान मत ही नहीं किन्तु उत्तरकाल में होने वाले नूतन, नूतन प्रबल मत भी इन सूक्तियों से खण्डित हो जाते

आधुनिकानामिवपश्चात्तनानामपि आन्तराणां बाह्यानां च कुमति-जालानां समूलोन्मूलने समर्था भवन्ति, बुद्धेः सत्यपक्षपाति-त्वेन तत्त्वालोकस्य नानाविधमिथ्यासिद्धान्तनिराकरणसमर्थत्वात्। तदुच्यते "आचापोद्धापतः स्युः कतिकतिकविधीचित्रवत् तत्तदर्थे-ष्वानन्त्यादस्तिनास्त्योरनवधिकुहनायुक्तिकान्ताः कृतान्ताः । तत्त्वालोकस्तु लोप्तुं प्रभवति सहसा निःसमस्तान् समस्तान्

हैं। क्योंकि यह श्रीभगवान् की कृपा है जो उन्होंने बुद्धि का यह स्वभाव बना दिया है कि बुद्धि सर्वदा सत्य में पक्षपात करती है अर्थात् सत्य के प्रति ही झुक जाती है। बुद्धि तब तक असत्य अर्थों में भटकती रहती है जब तक सत्य का परिचय नहीं पाती, सत्य का परिचय होते ही असत्य अर्थों का परित्याग कर सत्य में रम जाती है। उदाहरण रस्सी पड़ी है, प्रकाश मन्द है, ठीक नहीं प्रतीत हो रहा है, कोई उस रस्सी को सर्प समझता है, कुछ समय के बाद उसे जल की धारा समझता है, अनन्तर उसे देखकर समझता है कि भूमि फट गई है, ये तीनों असत्य अर्थ हैं, इन असत्य अर्थों में बुद्धि तब तक फँसी रहती है, जब तक सत्य रस्सी को नहीं पहचानती है, रज्जु का भान होते ही बुद्धि उन अनेक असत्य अर्थों को सर्वथा परित्याग कर सत्य रज्जु का ही ग्रहण करती है। वैसे ही प्रकृत में भी समझना चाहिये। वेद बाह्यमत और कुदृष्टि मत इत्यादि असत्य मतों में तब तक ही बुद्धि फँसी रहती है, जब तक सुदृढ़ प्रमाणों में प्रतिष्ठित परम वैदिक सत्यनिष्ठ श्रीविशिष्टाद्वैत मत को पहचान नहीं लेती, पहचानते ही उन मिथ्या मतों को छोड़कर इस सत्य मत में आसक्त हो जाती है। अतः सिद्ध हुआ कि वेदों पर आधारित सत्यार्थ को बतलाने वाली श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ भूत, भविष्य और वर्तमान

पुस्त्वे तत्वेन दृष्टे पुनरपि न खलु प्राणिता स्थाणुतादिः ।" इति ।

अथापि वैदिकमृषावादिमतप्रविष्टानां का हानिरित्यत्र तेऽपि विषाग्निदग्धा इव जाताः, तानपि श्रीभाष्यकारश्रीसूक्तय उज्जीवयन्तीत्याह—*"मृषामतविषानलज्वलितजीवजीवातवः" इति । मृषामतमेवब्रह्मव्यतिरिक्तं सर्वं मिथ्येति मतमेव विषानलोविषाग्निः,

---

मिथ्या मतों को काटने की क्षमता रखती है। उत्तरकाल में होने वाले नव, नव मतों का जाल अवश्य कट जायेंगे । इतना इन सूक्तियों का प्रभाव है ।

यहाँ पर यह शङ्का होती है कि अद्वैति वेदान्तियों का मत भी तो वैदिक है, वे वेद के आधार पर ही अपने मत का प्रतिपादन करते हैं, उस मत में प्रविष्ट होकर आत्मकल्याण प्राप्त करने में क्या आपत्ति है ? इस शङ्का का उत्तर यह है कि अद्वैती वादिगण सभी वेद वाक्यों का समन्वय कर अपने मत का प्रतिपादन नहीं करते हैं, एकाध अपने मत के अनुकूल वेद वाक्यों को ही लेकर अपने मत का प्रतिपादन करते हैं, अपने मत के प्रतिकूल वेद वाक्यों को गौण प्रमाण मानते हैं, अपने मन गढ़न्त अर्थों को वेदों पर आरोपित कर अपने मत को वैदिक कहते हैं, वेद विरुद्ध बौद्ध सिद्धान्त को अपना कर उसी को वैदिक रूप देते हैं, वस्तुतः बौद्ध मत के अनुयायी होने से उनका मत अवैदिक ही है। उनके मत का आश्रय लेने वालों को आत्म कल्याण नहीं हो सकता श्रीरामानुज सिद्धान्त का आश्रय लेने पर ही उनका आत्म कल्याण होगा इस बात को कहते हैं कि—"मृषामतविषानलज्वलितजीवजीवातवः"—अद्वैतियों का जो मत है वह मृषामत अर्थात् मिथ्या मत कहलाता है क्योंकि वे ब्रह्म को छोड़कर समस्त प्रपञ्च को मिथ्या कहते हैं। इस मिथ्यावाद को उन लोगों ने बौद्धों से भिक्षा

जनिमृतिमोहनापादिविषमूर्च्छितस्य जीवस्य उत्तारके सौशील्य-वात्सल्यक्षमादयादिकल्याणगुणशेवधौ परस्मिन् ब्रह्मणि रक्षा-पेक्षाप्रतीक्षकेऽवतिष्ठमाने सति अद्वैतविद्यानिष्ठेन जीवेन ब्रह्मा-विद्योपहतिं वर्णयन्तः परं ब्रह्म बंभ्रमीति संसारी तदुत्तारयतीति विपरीतं भाषन्ते। एवं विधं दुर्मतमाश्रितान् विषाग्निवद्दहेदित्यत्र न सन्देहः—"अस्तिब्रह्मेतिचेद्वेद सन्तमेनं ततो विदुः" इति

करता है। सौशील्य वात्सल्य क्षमा और दया इत्यादि कल्याण गुणों से युक्त श्रीभगवान् जीवों का उद्धार करने के लिये तत्पर रहते हुये इतना ही अपेक्षा करते हैं कि जीवात्मा समाश्रित होकर रक्षा करने के लिये प्रार्थना करें, यह जीवात्मा अपने सुकृत के परिपाक के अनुसार श्रीभगवान् का आश्रय लेकर साधनानुष्ठान करता हुआ जब रक्षा करने के लिये श्रीभगवान् से प्रार्थना करता है तब श्रीभगवान् जीव को संसार से उद्धार करते हैं। यही वेदों का सिद्धान्त है। अद्वैतिगण कहते हैं कि परब्रह्म की कोई विभूति नहीं है, लीला विभूति और भोग विभूति सब कुछ झूठी है, परब्रह्म निर्गुण है, उनमें कोई गुण नहीं है, परब्रह्म अविद्या दोष से आक्रान्त है, जगत्स्वप्न को देखता है, परब्रह्म नाना प्रकार की यातनाओं को भोगता है, अद्वैत साक्षात्कार करने वाला जीव उस ब्रह्म की अविद्या को नष्ट करता है ब्रह्म को अविद्या से बचाता है, जीव ब्रह्म का अविद्या से उद्धार करता है इत्यादि। ये सब अद्वैतियों का कथन वेद के सर्वथा विरुद्ध हैं। इस प्रकार वेद

यथावस्थितब्रह्मज्ञानेन हि आत्मसत्ता श्रूयते । एवं विधमृषामत-विषानलदग्धान् जीवान् ब्रह्मणः सत्यविभूतिद्वययोगं निरस्त-निखिलदोषत्वं कल्याणगुणाकरत्वं जीवोद्धारकत्वं च समर्थयन्त्यो यतिपुरन्दरस्योक्तय उज्जीवयन्ति ।

ननुमृषावादिभिरपि श्रुत्यवलम्बनेन हि स्वमतमुपवर्ण्यते, अतस्तदसंगतं कथं भवितुमर्हतीत्यत्र तैः श्रुतिशकलावलम्बनेन स्वमतं वर्ण्यते न सर्वश्रुत्यवलम्बनेन अतस्तन्मतमसंगतम्,

---

ब्रह्म ज्ञान से आत्मनाश ही होगा। इस प्रकार अद्वैत मत रूपी विषाग्नि से जो जीव दग्ध हो गये हैं उनका उज्जीवन श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियों से होता है। श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियों से यह उपदेश मिलता है कि परब्रह्म परमात्मा श्रीभगवान् लीला विभूति और भोग विभूति के स्वामी हैं ? जीवात्मा परमात्मा का परतन्त्र दास है। परमात्मा नित्य निर्दोष तथा कल्याण गुणों के निधि हैं। जीवात्मा कर्म अविद्या आदि दोषों से ग्रस्त है। यदि जीव परमात्मा का आश्रय लेकर साधनानुष्ठान करे तो परमात्मा प्रसन्न होकर जीव को संसार से उद्धार करते हैं। इस प्रकार सदुपदेश देकर श्रीरामानुज स्वामी जी की सूक्तियाँ जीवों को उज्जीवित करती हैं।

यहाँ पर यह शङ्का होती है कि अद्वैतियों ने भी वेदों के आधार पर ही अपने मत की स्थापना की, ऐसी स्थिति में उस मत का खण्डन करना कैसे उचित होगा ? इस शङ्का का समाधान यह है कि अद्वैतियों ने सभी वेद वाक्यों का समन्वय कर अपने मत की स्थापना नहीं की, किन्तु कतिपय वेद वाक्यों के आधार पर ही अपने मत की स्थापना की। श्रीरामानुज स्वामी जी ने सभी वेद वाक्यों को परम प्रमाण

सर्वश्रुतीनामैककण्ठ्यमापाद्य मीमांसान्यायानुसारेण श्रुत्यर्थान् व्याचक्षाणाभिर्यतिपुरन्दरस्योक्तिभिस्तन्निराकरणं जीवोज्जीवनं च युक्तमित्याह—*"चिरन्तनसरस्वतीचिकुरबन्धसैरन्ध्रिकाः" इति। चिरन्तनसरस्वती वेदवाणी तस्याश्चिकुराः शिरोरुहा वेदान्ताः, तेषां बन्धस्य सैरन्ध्रिका यतिपुरन्दरस्योक्तय इत्यर्थः। राजमहिष्याः परिचारिकाः सैरन्ध्रयो भवन्ति, ताः मालिन्येन जटीभूतानतएवाविविक्ततया स्थितान् केशान् स्नेहयुक्तांगुलीभिर्विवेचयन्ति, तथा राजाधिराजस्य श्रीभगवतः प्रतिपादनेऽत्यन्तं

मानकर उनके परस्पर विरोध को मीमांसान्याय के अनुसार शान्त कर सभी वेद वाक्यों को एक ही अर्थ में तात्पर्य बनाते हुये अपने मत की स्थापना की। अतः सिद्ध होता है कि अद्वैत वाद का खण्डन करना युक्त ही है, श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियों से ही जीवों का उद्धार होगा, इस बात को श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि— "चिरन्तनसरस्वतीचिकुरबन्धसैरन्ध्रिकाः" महाराजा की पट्ट महिषी की कई परिचारिकायें होती हैं। उनमें सैरन्ध्री एक है। केशों का अलङ्कार करना उसका कार्य है। राजमहिषी के केश मलिन हो जाने से जटा बन जाते हैं, एक दूसरे में मिल जाने से उनमें ग्रन्थि पड़ जाती हैं, केश अलग नहीं रहते हैं, सैरन्ध्री परिचारिका उन केशों को न तोड़ती मरोड़ती हुई स्नेह युक्त अर्थात् सुगन्धित तेल से युक्त अंगुलियों से उन केशों को धीरे २ अलग २ करती है, तथा बिखरे हुये केशों को संवार कर वेणी बनाकर बाँधती है तथा पुष्पों से अलंकृत करती है। इसी सैरन्ध्री के कार्य को ही श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ करती हैं। पुरुषोत्तम श्रीभगवान् ही इस विश्व के लिये राजाधिराज सम्राट हैं। "एष ब्रह्मलोकः सम्राडिति होवाच" यह श्रुति श्रीभगवान् को सम्राट्

प्रवर्षायाश्चिरन्तनसरस्वत्या अनादिनिधना विच्छिन्नसम्प्रदाया या प्रदोषदवीयस्याः श्रुतिवध्वाः शिरोभागरूढान् वेदान्तान् परापादितमालिन्येनाविविक्ततयास्थितान् यतिपुरन्दरस्योक्तयो भेदाभेदघटकश्रुतिरूपेण तत्त्वहितपुरुषार्थप्रतिपादकरूपेण स्वरूपरूपगुणविभूतिप्रतिपादकरूपेण च विवेचयन्ति। किंच, सैरन्ध्रिकाविप्रकीर्णान् केशानेकीकृत्य बध्नन्ति, प्रसूनैः प्रसाधयन्ति च, तथा यतिपुरन्दरस्योक्तयोऽप्यापाततो विरुद्धतया प्रतीयमानानि वेदान्तवाक्यानि एकीकृत्य ब्रह्मणि बध्नन्ति, ब्रह्मगुणैश्चभूषयन्ति। अतः

बताती है। श्रुति (वेद) अत्यन्त आदर के साथ श्रीभगवान् का प्रतिपादन करती है, अतः श्रुति को राजमहिषी समझना चाहिये। श्रुति का मस्तक है उपनिषद्। उपनिषद् वाक्य ही श्रुति के केश हैं। पर वादिगण इन उपनिषद् वाक्यों को खींचातानी करके अपने २ अभिमत अर्थ में लगाते हैं, अतः ये वाक्य मलिन हो गये, तथा दुरूह हो गये, मानों जटा रूप को धारण कर लिये। इन वाक्यों का विवेचन करना कठिन हो जाता है, श्रीरामानुज स्वामी जी श्रीसूक्तियाँ ही सैरन्ध्री हैं, वे भगवद्भक्ति रूपी स्नेह से युक्त मीमांसा न्यायरूपी अंगुलियों से इन उपनिषद् वाक्यों की ग्रन्थियों को सुलझाकर विवेचना करती हैं। यह वाक्य भेद को बताता है यह वाक्य अभेद को बताता है, ये वाक्य तत्त्वहित और पुरुषार्थ को बताते हैं, ये वाक्य ब्रह्म के स्वरूप रूपगुण और विभूति को बताते हैं ऐसी विवेचना करती हैं। किंच, ऊपरी रूप से देखने पर जो वेद वाक्य परस्पर विरुद्ध अर्थों का प्रतिपादन करने वाले प्रतीत होते हैं, उन वेद वाक्यों के विरोध को शान्त कर, समरस बनाकर श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ उन वेद वाक्यों को ब्रह्म में बाँधती हैं, परमात्मा के कल्याण गुणों से उन वाक्यों को

सर्वश्रुतिसमन्वयस्याकरणान्मृषामतं श्रुतिशकलावलम्बनेन प्रवृत्त-मपि न लोककल्याणं प्रसाधयितुमलम्, प्रत्युततन्मतप्रविष्टाना-मात्मनाशएवोपनमति, सर्वश्रुत्यैककण्ठ्यसम्पादनपूर्वकं चिरन्तन-वेदार्थनिरूपणप्रवृत्तमत एव परमप्राचीनबोधायनादिमहर्षिदृष्ट-सिद्धान्तप्रचारणपरं श्रीभगवद्रामानुजमतं मृषामतविषानलज्वलित-जीवानां जीवातुभूतमिति सिध्यति।

श्रीभाष्यकारस्य श्रीसूक्तयः मृषामतविषानलज्वलितजीवानां न केवलमुज्जीवयित्र्यः, किंतु तेषामुपरि तापशामकममृतं वर्षन्ती-त्याह—*"यतिपुरन्दरस्योक्तयोऽन्तरममृतं चरन्ति" यथा इन्द्रेण सुरक्षितमपि अमृतं तत्पुत्र्यो वाल्लभ्याद्गृहीत्वा वर्षेयुः तथा

अलंकृत करती हैं। अतः यह सिद्ध होता है कि अद्वैतमत सभी श्रुति वाक्यों का समन्वय नहीं करता है, किन्तु कतिपय वेद वाक्यों के आधार पर टिका हुआ है, अतः उससे आत्म कल्याण होना असंभव है। श्रीरामानुज स्वामी जी की सूक्तियाँ सभी वेद वाक्यों का समन्वय कर सिद्धान्त का निरूपण करती हैं, परम प्राचीन श्रीबोधायन इत्यादि महर्षियों से निर्णीत सिद्धान्त का प्रचार करती हैं अतः अद्वैतमत रूपी विषाग्नि मे दग्ध जीवों को उज्जीवित करती हैं। इसमें सन्देह नहीं।

यतिपुरन्दरस्य यतीन्द्रस्योक्तयः प्रबन्धा अपि अक्षरममृतं अविनाशिपीयूषं क्षरन्ति, अक्षरममृतमपुनरावृत्तिहेतुर्मोक्षः, अथवा नित्यं ब्रह्म, तदपि यथा तदक्षरमधिगम्यत इति अक्षरशब्देन निर्दिश्यते। श्रीभाष्यादिश्रीसूक्तिकालक्षेपपरस्य मुक्तिः करस्था परं ब्रह्म च विधेयं भवतीति भावः ॥३६॥

श्रीलक्ष्मणमुनिः परमतनिरासार्थमपि मौलिकगर्भशुक्तिसंनिभा श्रीभगवद्गुणगर्भाः श्रीसूक्तीः प्रयुञ्जानः परमतनिरासेन सह श्रीभगवद्गुणानपि प्रकाशयन् अस्माकं हर्षं वर्धयतीति तं स्तौति–

तो इन्द्र मना नहीं कर सकते हैं, इन्द्र की कन्याओं से ही दूसरे अमृत को प्राप्त कर सकते हैं। इन्द्रलोक में रहने वाला अमृत भी नश्वर ही है, महाप्रलय में उसे नष्ट होना ही होगा, उस अमृत को पीने वाले देवताओं को भी महाप्रलय में नष्ट होना ही होगा। अविनाशी अमृत तो परब्रह्म ही है, अथवा मोक्ष पद है क्योंकि मोक्ष पद में पहुँचने पर फिर इस संसार में आना नहीं पड़ता है, यतीन्द्र श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ रूपी कन्यायें इस अविनाशी अमृत को अस्मदादिकों पर बरसाती हैं जिससे तापत्रय शान्त हो जाता है। भाव यह है कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीभाष्य इत्यादि दिव्य श्रीसूक्तियों का अभ्यास करने वालों को मोक्ष हस्तगत हो जाता है, परब्रह्म वश हो जाता है। ऐसी इन सूक्तियों की महिमा है ॥३६॥

सुधाशनसुदुर्ग्रहश्रुतिसमष्टिमुष्टिन्धयः
कथाहवमसौगतान् कपटसौगतान् खण्डयन् ।
मुनिर्मनसि लक्ष्मणो मुदमुदञ्चयत्यञ्जसा
मुकुन्दगुणमौक्तिकप्रकरशुक्तिभिः सूक्तिभिः ॥३७॥

*'सुधाशनसुदुर्ग्रहश्रुतिसमष्टिमुष्टिन्धयोऽसौलक्ष्मणो मुनिः' अनवरतभावनया श्रीभाष्यकारं पुरतः स्थितमिव साक्षात्कुर्वन् श्रीदेशिकस्तमसावित्याह । श्रीभाष्यकारस्य लक्ष्मणमुनिरिति नाम,

---

के कल्याण गुणों को भी प्रकाशित करते हुये श्रीरामानुज स्वामी जी हम लोगों के हर्ष को बढ़ा रहे हैं। इस अर्थ का इस श्लोक से श्रीदेशिक स्वामी जी वर्णन करते हैं—

सुधाशनसुदुर्ग्रहश्रुतिसमष्टिमुष्टिन्धयः—देवताओं के द्वारा भी पूर्णतया ग्रहण न किये जा सकने वाले वेदों को मुट्ठी में रहने वाले पदार्थ के समान देखने वाले, *असौ लक्ष्मणमुनिः कथाहवंगतान्*—यह यतिराज शास्त्रार्थ करने के लिये उपस्थित, *कपटसौगतान्*—प्रच्छन्न बौद्धों को, *मुकुन्दगुणमौक्तिकप्रकरशुक्तिभिः सूक्तिभिः*—मोतियों से युक्त शुक्तियों (सीपों) के समान भगवद्गुणों से युक्त सूक्तियों के द्वारा खण्डयन् खण्डन करते हुये, *अञ्जसा मनसि मुदमुदञ्चयति*—मन को आनन्दित करते हैं।

"सुधाशनसुदुर्ग्रहश्रुतिसमष्टिमुष्टिन्धयोऽसौलक्ष्मणमुनिः"—श्रीरामानुज स्वामी जी हम लोगों के हर्ष को बढ़ा रहे हैं। अनवरत ध्यान करते रहने के कारण सर्वदा श्रीदेशिक स्वामी जी को श्रीरामानुज स्वामी जी का साक्षात्कार होता रहता है। अतएव श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं

श्रीसौमित्रेरपि लक्ष्मण इति नाम । नामैक्येऽयं हेतुः यत् सौमित्रिणा यत् कृतं तदेव श्री श्रीभाष्यकारोऽपि चकारेति। तथाहि—सौमित्रिः सुधाशनैर्देवैरपि सुदुर्ग्रहं श्रुतिसमष्टि धनुर्वेदादिं मुष्टिन्धयं करतलामलकमकरोत्, अतएव हि देवैरपि दुर्जयान् राक्षसान् जिगाय । श्रीरामानुजमुनिः सर्वैरितरैर्दुर्लभममृतं सुखेन गृहीत्वा भुञ्जानैरतएव सात्विकाहारसेवया विशुद्धसत्वैर्देवैरपि सुदुर्ग्रहं श्रुतिसमूहं करतलामलकवन्मुष्टौ गृहीत-

---

कि ये श्रीरामानुज स्वामी जी हर्ष बढ़ा रहे हैं। दशरथ के पुत्र सुमित्रानन्दन का नाम श्रीलक्ष्मण है, श्रीरामानुज स्वामी जी का नाम लक्ष्मण मुनि है। दोनों का नाम एक है। इसमें कारण यही है कि श्रीलक्ष्मण जी ने जैसा कार्य किया वैसे ही श्रीरामानुज स्वामी जी ने भी किया। अतः दोनों का एक ही नाम पड़ा। श्रीलक्ष्मण जी ने क्या किया? श्रीलक्ष्मण जी ने अमृत पीने वाले बड़े २ देवगणों से भी अज्ञात धनुर्वेद के सूक्ष्म २ रहस्यों को हस्तगत किया। अतएव इन्द्र इत्यादि देवताओं से अजेय मेघनाद इत्यादि राक्षसों को श्रीलक्ष्मण जी ने परास्त किया। श्रीरामानुज स्वामी जी ने भी ऐसा ही कार्य किया। दूसरों के लिये सुदुर्लभ अमृत को देवता गण पीते हैं, अमृत से बढ़कर संसार में सात्विक आहार नहीं। सात्विक आहार से अन्तःकरण शुद्ध होता है। अमृत पीने से देवताओं का अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध रहता है। शुद्ध अन्तःकरण वाले देवता गण भी श्रुत्यर्थों के मर्म को समझ नहीं पाते। इस लिये तो वे नाना प्रकार के भोगों में आसक्त होकर अपने जीवन को व्यर्थ गंवा रहे हैं। श्रीरामानुज स्वामी जी इन देवताओं से जानने में अशक्य अनेक श्रुति समूहों को स्पष्ट रूप से जानते थे, श्रुत्यर्थ के मर्म को भी जानते थे। इनका ज्ञान इतना विशाल था

वान् । यद्वा "पाराशर्यवचः सुधाम्"' 'सुमनसो भौमाः पिबन्त्वहम्" इत्युक्तरीत्या व्याससूत्रसुधापानं कुर्वाणैः सुमनोभिरपि दुर्ग्रहं सुबालोपनिषत्प्रभृतिकं श्रुतिसमूहं मुष्टियितयापाद्य तेषां भौमसुमनसां कृते श्रीभाष्यादिग्रन्थान् निर्ममे इति भावः ।

*"कथाहवं गतान् कपटसौगतान् मुकुन्दगुणमौक्तिकप्रकरशुक्तिभिः सूक्तिभिः खण्डयन्" अत्र मुकुन्दगुणमौक्तिकप्रकरशुक्तिभिः सूक्तिभिरित्यस्य खण्डयन्नित्यत्र मुदमुदश्चयतीत्यत्रचान्वयः । श्रीसौमित्रिः "अदृश्यमानः शरजालमग्नं ववर्ष नीला-

---

कि वे श्रुति समूह को अपनी मुष्टि के अन्दर रखते थे। मुष्टि में रहने वाला कोई भी पदार्थ स्पष्ट दिखाई देता है, वैसे ही श्रीरामानुज स्वामी जी को सम्पूर्ण श्रुति समूह स्पष्ट दिखाई देता था। किंच श्रीभाष्यस्थ "पाराशर्यवचः सुधाम्" इस श्लोक से यह प्रतीत होता है कि विद्वद्गण श्रीव्यास सूत्र रूपी अमृत का पान करते हैं, उन विद्वानों के लिये व्यास सूत्रों को ठीक २ समझने के लिये सुबालोपनिषद् इत्यादि उपनिषदों का ज्ञान आवश्यक है। किन्तु वे विद्वान उन उपनिषदों को नहीं जानते थे, क्योंकि उनके लिये वे अलभ्य थे। श्रीरामानुज स्वामी जी ने उन उपनिषदों का भी अच्छी तरह हस्तगत कर श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों का निर्माण किया। इससे व्यास सूत्रार्थ के जिज्ञासु विद्वानों का अपार उपकार हुआ।

म्बुधरोयथाम्बु'' इत्युक्तरीत्या कूटयोधिनो मेघनादप्रभृतीन् बला-द्रणाङ्गणमेत्य प्रहरतो राक्षसान् "धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि। पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वः शरैनं जहि रावणिम्" इति श्रीभगवद्गुणसूक्त्यभिमन्त्रितेन शरेण जघान। तथा श्रीलक्ष्मण-मुनिरपि श्रीभाष्ये स्वेन कर्मविचारानन्तरं तत एव हेतो ब्रह्म-विचारः कर्तव्य इति अथातोब्रह्मजिज्ञासेति प्रथमसूत्रस्यार्थे उपवर्ण्यमाने कर्मविचारस्य पूर्ववृत्तत्वं न युक्तं किंतु साधन-चतुष्टयस्यैव पूर्ववृत्तत्वं युक्तमिति स्वयमेवैत्य बलाद्वादं कुर्वाणान्

को बरसाता था जैसे काला मेघ जल बरसाता है। इन दुर्दान्त मेघनाद इत्यादि राक्षसों को भी श्रीलक्ष्मण जी ने संहार किया, बाण प्रयोग करते समय श्रीलक्ष्मण जी ने शपथ पूर्वक कहा कि यदि दशरथ नन्दन श्रीरामचन्द्र जी धर्मात्मा सत्यप्रतिज्ञ तथा पौरुष में अद्वितीय हों तो हे बाण! तुम रावण के पुत्र मेघनाद को नष्ट करो। इस प्रकार श्रीभगवान् के गुणों को प्रतिपादन करने वाली श्रीसूक्ति से बाण को अभिमन्त्रित कर उस बाण से श्रीलक्ष्मण जी ने मेघनाद का वध किया। वैसे ही श्रीरामानुज स्वामी जी ने भी किया। श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने श्रीभाष्य में "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इस व्यास सूत्र की व्याख्या करते हुये कहा कि कर्म विचार करके उसी कारण से ही ब्रह्म विचार करना चाहिये क्योंकि कर्म विचार करने से विदित होता है कि कर्म अनित्य फल ही देते हैं, ब्रह्मज्ञान ही शायद स्थायी फल दे सकता है, ऐसा समझकर वैदिक साधक ब्रह्म विचार में प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार श्रीरामानुज स्वामी जी ने प्रथम सूत्र का अर्थ किया। इसे सुनते ही अद्वैतवादी लोग शास्त्रार्थ करने लगे कि कर्म विचार के अनन्तर ब्रह्म विचार करना चाहिये यह अर्थ ठीक नहीं किन्तु यह अर्थ करना चाहिये

वेदवादप्रच्छन्नबौद्धानद्वैतिनः सदा श्रीमगवद्गुणानुभवैदम्पर्येण प्रतिपदं श्रीभगवतोभुक्तिमुक्तिदानुमुकुन्दस्यगुणान् गर्भे धारयन्तीभिः मौक्तिकगर्भशुक्तितुल्याभिः सूक्तिभिः खण्डयामासेत्यहो परमतनिरासावसरेऽपि श्रीभगवद्गुणानुभवव्यसनिता श्रीलक्ष्मणमुनेः ।

कि साधन चतुष्टय के अनन्तर ब्रह्म विचार करना चाहिये। इस प्रकार कहते हुये जब अद्वैतवादी श्रीभाष्यकार स्वामी जी के सिद्धान्त का खण्डन करने लगे, तब श्रीभाष्यकार स्वामी जी को दूसरा उपाय न होने से उनसे शास्त्रार्थ करना पड़ा। श्रीभाष्यकार स्वामी जी को सर्वदा श्रीभगवान् के गुणों का अनुभव करने में ही रुचि रहती थी। अतः श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने अद्वैतवादियों का खण्डन करते समय ऐसी ही श्रीसूक्तियों का प्रयोग किया कि जो श्रीभगवान् के गुणों को अपने अन्दर रखती थीं, अतएव उन शुक्तियों के समान सुशोभित होती थी जो अपने अन्दर बहुमूल्य मोतियों को धारण करती हैं। श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने परमत का खण्डन करते समय भी श्रीभगवान् के गुणों को प्रतिपादन करने वाली श्रीसूक्तियों का प्रयोग इसलिये किया कि उस प्रसङ्ग में भी श्रीभगवद्गुणानुभव छूटने नहीं पावे। श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने अद्वैतवादियों के खण्डन को इस लिये आवश्यक समझा कि वे पूर्णतया वैदिक नहीं हैं। किन्तु छिपे हुए बौद्ध हैं, साक्षाद् बौद्ध वेद को प्रमाण नहीं मानते हुए अपने सिद्धान्त का प्रचार करते थे। अद्वैतवादी उसी बौद्ध सिद्धान्त को ही वैदिक कहकर प्रचार करते हैं, अतः इनके द्वारा प्रचारित बौद्ध सिद्धान्त को वैदिक समझ कर भिज्ञ जनता उसमें फंस जाती है, ये अद्वैतवादी ऊपर से वैदिक प्रतीत होते हैं, वस्तुतः अन्दर से बौद्ध हैं, वेद को ओढ़े हुये ये बौद्ध गाय के खाल

※"मुकुन्दगुणमौक्तिकप्रकरशुक्तिभिः सुक्तिभिरञ्जसा मनसि मुदमुदश्चयति" यथा श्रीलक्ष्मणोभगवद्गुणगर्भश्रीसूक्तिबलेन मेघनादादीन् जित्वा विभीषणहनूमज्जाम्बवत्प्रभृतीनां वानरवीराणां देवानां च हर्षं वर्धयामास। अतएव ह्युच्यते "विभीषणो हनूमांश्चजाम्बवांश्चर्त्तयूथपः । विजयेनाभिनन्दन्तस्तुष्टुवुश्चापि लक्ष्मणम् ॥" "परममुपलभन् मनः प्रहर्षं विनिहतमिन्द्ररिपुं निशम्य देवाः" इति। तथा श्रीलक्ष्मणमुनिरपि मुकुन्दगुणमौक्तिकप्रकरशुक्तिभिः सूक्तिरस्माकमञ्जसा मुदं हर्षमुदश्चयति वर्धयति। यथा कश्चिन्महाराजः स्वकीयाः कन्यकाः सच्छिक्षया-शौर्यवीर्यपराक्रमादिभगवद्गुणयुक्ता आपाद्य ताभिराहवं प्राप्तान्

को ओढ़े हुये व्याघ्र के समान हैं। अतः इनको परास्त करना श्रीभाष्य-कार स्वामी जी के लिये आवश्यक होगया। अतः उन्होंने श्रीभगवद्-नुभव में रसिक होने के कारण श्रीभगवद्गुणों का प्रतिपादन करने वाली श्री सूक्तियों से इनको परास्त किया।

'मुकुन्दगुणमौक्तिकप्रकरशुक्तिभिः सूक्तिभिरन्जसा मनसि मुदमुदञ्चयति'—श्रीरामायण में कहा गया है कि श्रीलक्ष्मण जी ने श्रीभगवद् गुण प्रतिपादक श्रीसूक्तियों को कहते हुये बाण से मेघनाद इत्यादि राक्षसों का वध कर विभीषण जाम्बवान् हनूमान इत्यादि वानर वीरों को हर्षित किया, देवताओं को भी हर्षित किया। वैसे ही श्रीरामानुज स्वामी जी श्रीभगवद् गुण प्रतिपादक श्रीसूक्तियों द्वारा अनन्तर क्षण में ही हमारे मन में अपार हर्ष को बढ़ा रहे हैं।

यहाँ पर यह अर्थ ध्वनित होता है कि चक्रवर्ती सम्राट अपनी कन्याओं को अच्छी शिक्षा देकर उनको शौर्य वीर्य और पराक्रम इत्यादि

प्रत्यर्थिनः खण्डयन् यशस्विनीस्ताः कन्यास्सुयोग्येभ्यः शास्त्रविद्याप्रवीणेभ्यो वरेभ्यः प्रदाय ताभिस्तेषां मुदं वर्धयेत्, तथा श्रीभाष्यकारो मुकुन्दगुणमौक्तिकप्रकरशुक्तीः सूक्तीर्निर्माय ताभिः कथाहवं गतान् कपटसौगतान् खण्डयन् यशस्विनीस्ताः सूक्तीर्नानाशास्त्रविद्याप्रवीणेभ्योऽस्मभ्यं प्रदाय ताभिरस्माकं मुदं वर्धयति। अयमर्थः सूक्तिभिरिति स्त्रीलिङ्गनिर्देशात् सूच्यते। अतएव हि "निर्विष्टं यतिसार्वभौमवचसामावृत्तिभिर्यौवनम्" इत्यन्यत्राचार्यैरुच्यते ॥३७॥

यथादुरतिक्रमं कर्दमं वागुरां यन्त्रं च कथंचिदतिक्रम्य महाबिले निपत्योपर्यारोढुमपारयन्तं विषीदन्तं कंचित्पान्थं

गुणों से सम्पन्न करावे तथा रणाङ्गण में आये हुये शत्रुओं को उन कन्याओं से परास्त कर उन कन्याओं को शास्त्र विद्या प्रवीण सुयोग्य वरों को प्रदान कर उनसे उनके हर्ष को बढ़ावें, वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी मुक्ता गर्भ शुक्ति के समान श्रीभगवद् गुण गर्भ श्रीसूक्तियों से परवादियों को परास्त कर उन सूक्तियों को शास्त्र विद्या प्रवीण अस्मदादि सच्छिष्यों को प्रदान कर उन सूक्तियों द्वारा हम लोगों के हर्ष को बढ़ा रहे हैं। यह अर्थ 'सूक्ति' ऐसा स्त्रीलिङ्ग निर्देश से सूचित होता है ॥३७॥

समर्थो महानुभावः करं गृहीत्वोत्थापयेत्, तथा पङ्कायमानं शैवमतं वागुरायमाणं कपिलमतं यन्त्रायमानं चतुर्मुखमतं च कथंचिदतिक्रम्य मायावादिनां वञ्चनारूपे बिलमुखे निपतितं उपर्यारोढुमशक्तं परंब्रह्म श्रीरामानुजमुनिः करं गृहीत्वोद्दधारेत्याह—

चलता हुआ जाल में फंस जाता है, सौभाग्यवश उससे भी निकल कर जाता हुआ वह एक यन्त्र के उदर में चला जाता है, सौभाग्य से उससे भी निकल कर जाता हुआ अन्धकूप में गिर जाता है, वहाँ ऊपर आने के लिये बहुत प्रयत्न करता है, सब प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है चिल्लाकर प्रार्थना करता है कि कोई कृपया उसका उद्धार करे। उसकी प्रार्थना ध्वनि को सुन कर दयालु समर्थ महानुभाव वहाँ पहुँच कर उसका हाथ पकड़ कर उद्धार करते हैं। वैसे ही यहाँ पर भी समझना चाहिये। परब्रह्म परमात्मा प्रथमतः शैवमत रूपी पङ्क में फंस गया था, किसी तरह उससे निकल पर कपिल सिद्धान्त रूपी जाल में फंस गया। सौभाग्यवश उससे भी निकल कर हिरण्यगर्भ के योगशास्त्र रूपी यन्त्र में फंस गया। भाग्य विशेष से उससे निकला तो मायावादियों के कपट सिद्धान्त रूपी महाबिल में गिर गया, ऊपर नहीं निकल सका, तब दयालु श्रीरामानुज स्वामी जी ने हाथ पकड़ कर उसे ऊपर उठाया यह बात इस श्लोक में बतलायी जाती है। भाव यह है कि यद्यपि परब्रह्म परमात्मा श्री भगवान् को आपत्ति स्पर्श नहीं कर सकती है। वे सर्व समर्थ हैं, उनको कोई कष्ट नहीं दे सकता। मतान्तरस्थ लोग कुछ भी बकें, उससे उनकी कोई क्षति नहीं पहुंचती, अनेक प्रकार से बकने वाले वादिगण ही दुर्गति को प्राप्त होंगे, इसमें सन्देह नहीं। तथापि जब श्रीभगवान् के स्वरूप रूप गुण विभूति और ऐश्वर्य को परवादिगण खण्डन करते हैं, कई मतान्तरस्थ वादिगण ऊटपटाँग

ग्रहार्थं तत्तदाश्रमपदान्येयाय, तथा परं ब्रह्मापि सर्वाननुग्रहीतु तत्र तत्र गच्छत् कदाचित् शैवमतस्य समीपमेयाय, तद्दुरितक्रमं महाकर्दममिवासीत्, यतस्तस्मिन् मते कपालभोजनं शवभस्म-स्नानं तत्प्राशनं सुराकुम्भस्थापनं तत्स्थदेवतापूजनं भगासन-स्थात्मध्यानमित्यादयोऽत्यन्तजुगुप्स्या एवार्थाः प्रतिपाद्यन्ते। कर्दमे प्रवेशे कृते पुनरुत्थानं दुःशकम्, तथा तस्मिन् मते प्रवेशे कृते पुनस्ततोनिर्गमनमपि दुःशकम्। परं ब्रह्म तस्मिन्नप्रविश्यैव

कथंचित् तदतिचक्राम। किंच, यदि तन्मतस्थाः सान्त्ववादपूर्वं परं ब्रह्म निमन्त्रयेयुः तदा जातु तत्र प्रविशेदपि, परन्तु ते वेदवेद्यं सत्त्वोत्तरं श्रीमन्नारायणं परब्रह्मत्वेनानभ्युपयन्तः शैवागमसिद्धं तमोगुणभूयिष्ठं कपर्दिनमेव परदेवतात्वेन स्वीकुर्वन्तोऽनुजिघृक्षयोपस्थितं श्रीमन्नारायणं सान्त्वं वदन्तो न निमन्त्रयांचक्रिरे। अतोऽपि परब्रह्मणस्तन्मतातिक्रमणं सुकरं संपेदे।

*"दुरत्ययां कपिलकल्पनावागुरामतीत्य" कपर्दिमतकर्दमान्निष्क्रान्तं परं ब्रह्म पाशयितुं कपिलः कल्पनारूपां स्वकपोलकल्पितसांख्यमतरूपां वागुरां प्रसारयामास। शैवः पाशुपता-

---

निकलना कठिन ही है। यदि शैव लोग अपने समीप आये हुये परब्रह्म परमात्मा श्रीमन्नारायण भगवान् को मधुर वचन सुनाकर अपने यहाँ स्थान देते तो श्रीभगवान् कण्ठ पर्यन्त उस शैवमत रूपी पङ्क में फंस जाते। परन्तु शैवों ने ऐसा नहीं किया। क्योंकि वे वेद वेद्य सत्वगुणनिधि श्रीमन्नारायण भगवान् को परब्रह्म मानकर आदर करने के लिये तैयार नहीं थे। वे तो शैवागम में वर्णित तमोगुण के अधिष्ठाता श्रीशंकर जी को ही परदेवता मानते हैं। अतः वहाँ आदर न मिलने से श्रीभगवान् के लिये अच्छा ही हुआ, क्योंकि श्रीभगवान् शैवमत रूपी पङ्क में फंस नहीं पाये। उसमें चरण रखते ही घबराकर उससे हटकर आगे बढ़ने लगे। आगे बढ़ने पर श्रीभगवान पर क्या बीती, सो आगे बतलाया जाता है।

गमानुसारेण स्वमतं प्रसारयामास, कपिलस्तु अनुमानैः सांख्य-मतं कल्पयामास, यथा व्याधः सुदृढतन्तुभिर्वागुरां निर्मिमीते। कर्दमे प्रवेशे जाते कदाचिन्महताश्रमेण निर्गम्येतापि, वागुरायां गात्रेषु पाशितेषु ततो निर्गमोऽत्यन्तं दुःशकः। शैवो निमित्त-कारणतयापि पशुपत्यभिधानमीश्वरमभ्युपेयाय। सांख्यस्तु-निरीश्वरवादित्वात् ईश्वरं नाभ्युपेयाय। अतः सांख्यमतकपिल-कल्पितं वागुरावदतिभयंकरम्। इमां दुरत्ययां कपिलकल्पना-वागुरामपि परं ब्रह्म कथं चिदतीयाय।

*"दुरत्ययं द्रुहिणतन्त्रयन्त्रोदरमतीत्य" कपिलकल्पनावागुरातो निःसृतं ब्रह्म द्रुहिणतन्त्रं चतुर्मुखप्रोक्तं योगशास्त्रं दृष्ट्वा सर्ववेदप्रवर्तनाधिकृतेन चतुर्मुखेन प्रणीतमिदं तन्त्रम्, इदं च सांख्यादिवैधर्म्येणेश्वराभ्युपगमेन प्रवर्तते अस्मिन् वेदान्तविहितयोगएवसाङ्गोपाङ्ग निरूप्यते इति आपाततः सौष्ठवं विज्ञाय तस्मिन् प्रवेष्टुमियेष, परं तु दीर्घालोचलोचनं कृत्वा विजज्ञौ यत् इदं द्रुहिणतन्त्रमेकं यन्त्रमेव, यथा इक्षुनिष्पीडकयन्त्रे समर्पितेनेक्षुदण्डेन सारभूतं सर्वं रसं हित्वा असारपदार्थरूपेणैव निर्गन्तव्यमापद्यते, तथा द्रुहिंणतन्त्रे प्रविष्टस्यापि परब्रह्मणः

"दुरत्ययं द्रुहिणतन्त्रोदरमतीत्य" सांख्यमत रूपी जाल से निकल कर परब्रह्म परमात्मा श्री ब्रह्मा जी से प्रचारित योगमत में फंस गये। आरम्भ में परमात्मा ने सोचा कि यह योगमत अच्छा ही होगा क्योंकि यह मत सर्व विद्याओं के प्रवर्तक ब्रह्मा जी के द्वारा प्रवर्तित है यह ईश्वर को मान्यता देता है, सांख्य की तरह ईश्वर का खण्डन नहीं करता है, इसमें उपनिषदों से प्रतिपाद्य योग का सांगोपाङ्ग विस्तृत वर्णन है। अतः यह मत उत्तम मत है, इसमें प्रवेश करना चाहिये। ऐसा विचार कर परब्रह्म परमात्मा योगमत में प्रविष्ट हो गये। गंभीरता से विचारने पर उन्हें प्रतीत हुआ कि यह योगमत तो एक बड़ा भारी यन्त्र है, इसके उदर में मैं फंस गया, क्या करूँ। जिस प्रकार इक्षु दण्ड को निचोड़ने वाले यन्त्र में फंसे इक्षु दण्ड को अपना सम्पूर्ण सार खोकर निःसार भाग को लेकर ही बाहर आना पड़ता है, वैसे इस योगमत में फंसे हुये हम को भी सब सार गुणों को खोकर निस्सार होकर ही बाहर आना होगा। यह मत हमारे सब सार को निकाल रहा है। मैं जगत का सर्वविध

सैव दशा भवित्री। यत इदं तन्त्रं प्रकृतिंस्वतन्त्रां साधयत् ईश्वरस्य प्रकृत्याध्यक्ष्यं खण्डयति, ईश्वरस्यप्रतिफलनकल्पमैश्वर्यं साधयत् सहजैश्वर्यं निराकरोति, ईश्वरस्य सर्वविधं जगत्कारणत्वमनभ्युपयत् केवलनिमित्तकारणत्वं स्वीकरोति। सर्वान् कल्याणगुणान् ईश्वरोपाधिभूतान्तः करणगतान् प्रसाधयत् ईश्वरचैतन्यं वस्तुतो निर्गुणमातिष्ठते, इत्थं ध्येयस्येश्वरस्यायथानिरूपणेन ध्येयैकनिरूपणीयं ध्यानमपि विभ्रममयमुपदिशत् न जगत्कल्याणाय कल्पते इति सम्यग्विचार्य आपतत आकर्षकं योगतन्त्रमपि अतिचक्राम परं ब्रह्म।

*"कुदृष्टिकुहनामुखे निपततः परब्रह्मणः करग्रहविचक्षणोऽयं

कारण हूँ, यह मत हमको निमित्त कारण मात्र कहता है, हमारा ऐश्वर्य स्वतः सिद्ध है, यह मत कहता है कि ईश्वर का ऐश्वर्य स्वतः सिद्ध नहीं अन्तःकरण में रहने वाला ऐश्वर्य ईश्वर चैतन्य में केवल प्रतिबिम्बित होता है जिस प्रकार जपा पुष्प की लालिमा स्फटिक मणि में प्रतिबिम्बित होता है। कल्याण गुण हमारे स्वाभाविक हैं। यह योगमत कल्याण गुणों को औपाधिक कहता है। इस मत में फंस जाने से हमारा सार निकल रहा है, क्या करूँ। इस प्रकार योगमत से होने वाली अपनी दुर्दशा को चिन्तन कर विषाद को प्राप्त होने वाले परब्रह्म को श्रीव्यास जी ने योगमत का खण्डन कर बचाया। इस प्रकार श्रीव्यास जी ने शैव सांख्य और योगमत का खण्डन कर उनमें फंसे हुये परब्रह्म को बाहर निकालकर यथावस्थित रूप में प्रकाश में रक्खा। इतना होने पर भी व्यास जी से सुरक्षित परब्रह्म आगे भयङ्कर आपत्ति में फंस गया। श्रीरामानुज स्वामी जी ने उसे उस आपत्ति से बचाया। यह बात आगे कही जाती है।

लक्ष्मणो मुनिर्जयति" हिरण्यगर्भकर्तृका योगस्मृतिरपि वेदविरुद्धत्वान्न वेदमूला, किं तु रजस्तमोमूला, तदुक्तयोगोऽपि न वेदान्तोदितो योग इति विनिश्चित्य द्रुहिणतन्त्रयन्त्रोदरान्निर्गतं ब्रह्म "वयं वेदान् तन्मूलस्मृत्यादिकं च प्रमाणतमत्वेन स्वीकुर्मः वेदविरुद्धाः सांख्यादिस्मृतीर्जहिमः इति मायावादिनां कुहनावादै-

---

"कुदृष्टिकुहनामुखे निपततः परब्रह्मणः करग्रहविचक्षणोऽस्य लक्ष्मणो मुनिर्जयति"—परब्रह्म योगमत रूपी यन्त्र में आरम्भ में फंस गया था। श्रीव्यास जी ने जब ब्रह्म सूत्रों में योगमत का इस प्रकार खण्डन किया कि ब्रह्मा जी से प्रवर्तित योग स्मृति भी प्रमाण नहीं है क्योंकि वह वेद के आधार पर बनी नहीं है, वह वेद से विरोध रखती है, रज और तमगुण ही उस स्मृति का मूल है रज और तमगुण से आक्रान्त ब्रह्मा जी ने उसे बनाया। अतः योगमत अप्रमाण है, योगमत में जिस योग का वर्णन होता है वह भी वेद प्रतिपादित योग नहीं है। इस प्रकार श्रीव्यास जी ने योगमत का खण्डन किया। तब परब्रह्म उस योगमत रूपी यन्त्र से निकल कर आगे बढ़ने लगा। अनन्तर मायावादी अद्वैतियों के चिकनी चुपड़ी बातों को सही मानकर उनके मत में फंस गया। अद्वैतियों ने यों कहा कि हम लोग वेद और वेदानुसारी स्मृति इतिहास और पुराणों को प्रमाण मानते हुये वेद विरुद्ध सांख्य आदि शास्त्रों के अप्रमाण मानते हुये वेद के आधार पर अपने मत का प्रचार करते हैं। यह अद्वैतियों का कथन था। वस्तुतः यह कथन धोखा देने के लिये ही था क्योंकि अद्वैतियों के मत में ब्रह्म से भिन्न होने के कारण वेद आदि शास्त्र भी मिथ्या ही है, स्वप्न में यदि कोई अनेक प्रकारों से प्रलाप करे उसका जितना मूल्य है उतना ही वेद आदि शास्त्रों का अद्वैतमत में मूल्य है क्योंकि वेद आदि

स्तन्मतं समीचीनमभिसन्धाय तस्मिन् मते प्रविवेश। धूर्ता यथा वञ्चनया कञ्चित् श्रीमन्तं गृहमानीय तं मुण्डयित्वा कज्जलेनानुलिप्य सर्वस्वमपहृत्य तस्य शारीरवैरूप्यं कुर्वन्ति तथा एते मायावादिनः परंब्रह्म श्रीमन्तं नारायणं स्वकीये कुहनामते प्रवेश्य तस्य मुण्डनकल्पं नैर्गुण्यं प्रख्याप्य कज्जलानुलेपनकल्पमविद्यादोषलेपं कल्पयित्वा सर्वस्वापहारकल्पं तद्विभूतीनां मिथ्यात्वेनापलापं कुर्वाणाः शरीरवैरूप्यापादनकल्पं तद्विग्रहापलापं प्रकट-

---

शास्त्र भी ब्रह्म के स्वप्न में ही दिखाई देते हैं, अद्वैतिगण वेद आदि शास्त्रों को पारमार्थिक सत्ता मानने के लिये तैयार नहीं हैं। ऐसी स्थिति में उनका यह कहना कि हम लोग वेद आदि शास्त्रों को प्रमाण मानते हैं केवल बञ्चनार्थ ही है। परब्रह्म इस मर्म को समझ नहीं पाया, उनके मत में प्रविष्ट हुआ, उनको बहुत दुर्दशा हुई। लोक में देखा जाता है कि धूर्त लोग मीठी २ बातें करके किसी श्रीमान् को अपने घर में बुला लेते हैं। घर में आने के बाद उनकी ऐसी दुर्दशा करते हैं कि (१) उनका मुण्डन करते हैं (२) उनके मुख में कालिख पोतते हैं (३) उनके सर्वस्व का अपहरण करते हैं (४) उनके शरीर में भी क्षति पहुंचाते हैं। वैसे ही मायावादी अद्वैतियों ने भी परब्रह्म को अपने मत में प्रवेश कराकर दुर्दशा कराई (१) अद्वैतियों ने परब्रह्म को निर्गुण कहकर उनका मुण्डन किया (२) परब्रह्म अविद्या में फंसा हुआ है ऐसा कहकर उनमें अविद्या रूपी कालिख पोत दी (३) परब्रह्म की लीलाविभूति और भोगविभूति इन दोनों विभूतियों को मिथ्या कहकर सर्वस्व का अपहरण किया, परब्रह्म परमात्मा श्रीभगवान् के श्रीविग्रह को मिथ्या कहकर उनकी शरीर में भी क्षति पहुँचाई। इस प्रकार परब्रह्म मायावादियों के चंगुल में फंसकर बहुत

यन्तस्तत् कदर्थयामासुः। इत्थं कुदृष्टिकुहनामुखे निपत्य बहिर्निर्गन्तुमपारयत् किं कश्चिदुद्धारकः स्यादिति चिन्तार्द्रं परं ब्रह्म करग्रहणपूर्वकं विचक्षणो लक्ष्मणमुनिरुद्धार करग्राही असमर्थः परं नोद्धर्तुमलम्, किं तु स्वयमपि निपतेत, विचक्षण एव परमुद्धर्तुमलम्। तथाविधोविचक्षणः श्रीलक्ष्मणमुनिः। यथा जीर्ण-

---

कष्टों को भोगा, उनके वञ्चनामय मायावाद रूपी जीर्ण कूप में पड़कर निकल नहीं सका। उद्धार करने वाला कौन आवेगा इस चिन्ता में मग्न था, सौभाग्यवश श्रीरामानुज स्वामी जी पहुँचे उन्होंने मायावाद का खण्डन कर परब्रह्म के हाथ पकड़कर उस मायावाद रूपी जीर्ण कूप से उद्धार किया। हाँ जीर्ण कूप में पड़े हुये किसी का उद्धार करने वाला यदि असमर्थ हो तो वह भी उस कूप में गिर जायेगा, दूसरे का उद्धार करना तो दूर, समर्थ ही उद्धार कर सकते हैं, श्रीरामानुज स्वामी जी समर्थ हैं आपने जबसे यादव प्रकाश से अद्वैत सिद्धान्त का श्रवण किया तबसे उसकी धज्जियाँ उड़ाते थे, अद्वैतमत में नहीं फंसते थे, अतः समर्थ होने के कारण श्रीरामानुज स्वामी जी ने परब्रह्म का उस मायावाद रूपी जीर्ण कूप से उद्धार किया। जीर्ण कूप में यदि कोई मनुष्य असावधानी से गिर जाता है उसके मस्तक पर्यन्त अङ्ग यदि डूब भी जायें, ऊपर हाथ भर उठा हुआ दिखाई दें तभी उस हाथ को पकड़ कर उसे ऊपर उठाया जा सकता है, अन्यथा नहीं। प्रकृत में भी अद्वैतमत रूपी जीर्ण कूप में जब परब्रह्म गिर पड़ा, तब उसके सारे अङ्ग डूब गये क्योंकि अद्वैतियों ने परब्रह्म के रूपगुण विभूति और ऐश्वर्य का मिथ्या कहकर खण्डन कर दिया। हाथ के समान ब्रह्म के स्वल्प अंश को ही रहने दिया। क्योंकि अद्वैतियों का यह कथन है कि सब कुछ मिथ्या होने पर भी अधिष्ठान ब्रह्म को

कूपे पतितस्य सर्वावयवेषु मग्नेष्वपि करमात्रेऽक्षुण्णतया ईषद्बहिर्दृश्यमाने सति सन्निहितस्समर्थस्तं करं गृहीत्वोत्थाप्यतस्य सर्वावयवान् परित्रायेत तथा मायावादिषु ब्रह्मणः सर्वांशानपलप्याधिष्ठानापारमार्थ्ये भ्रमादर्शनादधिष्ठानांशस्य परं पारमार्थ्यमभ्युपेतवत्सु श्रीभाष्यकारस्तद्दृष्टान्तीकृत्य दोषदोषाश्रयत्वा-

---

सत्य मानना चाहिये, लोक में देखा जाता है कि भूमि में पड़ी रस्सी को कोई सर्प समझता है, दूसरा जल की धारा समझता है, तीसरा बाँस समझता है, चौथा फटी हुई भूमि समझता है, यहाँ पर सर्प, जल, धारा, बाँस और फटी हुई भूमि मिथ्या हो सकते हैं, अधिष्ठान रस्सी तो अवश्य सत्य होगी। रस्सी भी यदि मिथ्या हो तो दूसरे किसी में रस्सी का भ्रम मानना होगा, वैसी दूसरी वस्तु तो वहाँ है नहीं, अतः अधिष्ठान रस्सी को सत्य मानना ही पड़ेगा। उक्त प्रकार से ही सारा जगत ब्रह्म में आरोपित होने से भले मिथ्या हो तो भी अधिष्ठान रूप में ब्रह्म को मानना होगा उसे सत्य भी मानना पड़ेगा। ऐसा कहकर अद्वैतियों ने सम्पूर्ण जगत को मिथ्या और अधिष्ठान ब्रह्म को सत्य ठहराया। अद्वैतमत रूपी जीर्ण कूप में डूबे हुये परब्रह्म का अधिष्ठान अंश रूपी हाथ भर ऊपर दिखाई देता था। उसे पकड़ कर ब्रह्म का उद्धार करते हुये श्रीरामानुज स्वामी जी ने परब्रह्म के स्वरूप रूप गुण विभूति ऐश्वर्य रूपी अन्यान्य अङ्गों को भी उद्धार कर उनकी रक्षा की। श्रीरामानुज स्वामी जी ने अद्वैतियों को यों समझाया कि लोक में जहाँ भ्रम होता है वहाँ ज्ञाता पुरुष, दोष, अधिष्ठान इतने पदार्थों को सत्य मानना पड़ेगा, आरोपित वस्तु को भी अन्यत्र सत्य मानना होगा। इतने वस्तुओं को सत्य नहीं माने तो भ्रम की उपपत्ति नहीं लगाई जा सकती। उदाहरण के लिये रज्जु भ्रम को ही

रोप्यमाणार्थानामपारमार्थ्येऽपि भ्रमादर्शनादेषामपि पारमार्थ्य-मभ्युपेयमितिप्रसाध्य ब्रह्मणः स्वरूपरूपगुणविभूतीः परित्रातवान्। तदेवं श्रीभाष्यकारो मायावादिनो वादाहवेषु विजित्य परं ब्रह्म निरस्तनिखिलदोषं निखिलकल्याणशेवधिमुभयविभूति-नायकं महिषीपरिजनपरिच्छदपरिवृतं जगद्व्यापारलीलं मुमुक्षू-

---

लिया जाय। जहाँ भूमि में पड़ी रस्सी को चार मनुष्य चार प्रकार से समझते हैं कि कोई उसे सर्प समझता है दूसरा उसे जल धारा समझता है, तीसरा उसे बाँस समझता है, चौथा उसे फटी हुई भूमि समझता है, यहाँ पर जानने वाले ये चारों मनुष्य सत्य हैं, तभी उनको ये भ्रम हो सकते हैं, रज्जु, सर्प, जल धारा, बाँस और फटी हुई भूमि इन पदार्थों में सादृश्य है, यह सादृश्य ही दोष है, इस दोष के कारण ही वहाँ चार प्रकार के भ्रम होते हैं, यह सादृश्य दोष भी सत्य है, यदि यह सादृश्य दोष नहीं रहा होता तो वहाँ भ्रम नहीं हो सकता है। सर्प, जल धारा, बाँस, और फटी हुई भूमि ये चारों पदार्थ रस्सी में आरोपित हैं, ये पदार्थ भले रज्जु में मिथ्या हों तो भी अन्यत्र ये पदार्थ तो सत्य हैं अन्यत्र भी ये पदार्थ नहीं हों तो भ्रम कैसे हो सकता है, क्योंकि अन्यत्र इन पदार्थों को यथार्थ रूप में जिन मनुष्यों ने देखा होगा वे ही तो रस्सी में इन पदार्थों को समझ सकते हैं अतः सिद्ध हुआ कि जानकार पुरुष, अधिष्ठान, दोष और आरोपित वस्तु सत्य हों तभी लोक में भ्रम होता है, हाँ, जानने वाला पुरुष अधिष्ठान और दोष भ्रमस्थल में ही सत्य रहते हैं, आरोपित वस्तु दूसरी जगह सत्य रहता है, ऐसी स्थिति में ब्रह्म में यदि जगत का आरोप कहा जाय तो ब्रह्म अधिष्ठान हुआ, जगत आरोपित हुआ, भ्रम स्थल में समझने वाला मनुष्य अधिष्ठान से भिन्न रहता है। यहाँ परब्रह्म में जगत को

पास्यं मुक्तिप्रदं मुक्तभोग्यं च प्रसाध्य तस्य वाङ्मनसागोचरं महिमानं प्रतिष्ठापयामास । "तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसार-सागरात् । भवामि नचिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥" इति मृत्युसंसारसागराद्भक्तानामुद्धरणे विचक्षणं श्रीभगवन्तमपि कुमति-मतपातालकुहराच्छ्रीभाष्यकार उद्धरतीत्यहो विचक्षणता लक्ष्मण-

---

देखने वाले ज्ञाता पुरुष को सत्य होना चाहिये, दोष को भी सत्य होना चाहिये, आरोपित जगत को भी अन्यत्र सत्य होना पड़ेगा तभी भ्रम हो सकता है, यदि तड़ाग में सत्य सर्प नहीं रहा होता तो रस्सी में उसका भ्रम नहीं हो सकता। अतः सिद्ध हुआ कि यदि ब्रह्म में जगत का भ्रम मानना है तो इन चार पदार्थों को भी सत्य मानना होगा, मानने पर अद्वैत सिद्ध नहीं होगा क्योंकि चार पदार्थों को सत्य मानना पड़ता है, यदि चार पदार्थों को न मानना हो तो ब्रह्म में जगद् भ्रम की उपपत्ति नहीं लगाई जा सकती। इस प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने मायावाद का खण्डन कर परब्रह्म के स्वरूप रूपगुण विभूति और ऐश्वर्य की रक्षा की। आपने वाद युद्ध में अद्वैतियों को परास्त कर इस सिद्धान्त की स्थापना की कि परब्रह्म परमात्मा नित्य निर्दोष हैं कल्याण गुणों के निधि हैं, दोनों विभूतियों के स्वामी हैं, पट्टमहिषी परिजन और परिवार से परिवृत हैं, जगद्व्या-पार रूपी लीला करने वाले हैं, मुमुक्षुओं के उपास्य हैं, मुक्ति देने वाले हैं, मुक्तों के भोग्य हैं, अति सुन्दर दिव्य विग्रह वाले हैं। इस सिद्धान्त की स्थापना कर श्रीरामानुज स्वामी जी ने श्रीभगवान की कीर्ति को जगत में अबाधित रूप में चलाया श्रीभगवान् ने गीता में बारहवें अध्याय में कहा कि मैं भक्तों को संसार समुद्र से उद्धार करता हूँ। इस प्रकार दूसरों के उद्धार करने वाले श्रीभगवान् को भी

विद्यमाने सति तस्य निमित्तकारणत्वमेवाभ्युपयन्ति। सर्वेश्वरे अनन्तकल्याणगुणमहोदधौ देदीप्यमाने तस्य संख्या परिमाणं पृथक्त्वं संयोगो विभागो बुद्धिरिच्छाप्रयत्न इत्यष्टावेवगुणान् स्वीकुर्वन्ति। ईश्वरप्रीतिकोपयोर्धर्माधर्मयोर्जीवात्मगुणत्वं प्रसाधयन्ति। उपनिषद्भिरव्याकृतेप्रधाने जगत्कारणत्वेन प्रख्याप्यमाने परमाणून् जगत्कारणत्वेनाभिदधति। उपादानकारणे एवावस्थान्तरप्राप्त्या कार्यत्वेन व्यपदिश्यमानेऽतिरिक्तावयविप्रसाधने

नासत्कार्यवादं श्रुतिविरुद्धमातिष्ठन्ते, आहंकारिकाणां कर्मेन्द्रियाणामपन्हवं कुर्वन्त आहंकारिकाणां ज्ञानेन्द्रियाणां भौतिकत्वमहंकारजन्यस्य मनसः शब्दतन्मात्रजन्यस्याकाशस्य च नित्यत्वं दुर्युक्तिभिः प्रसाधयन्ति। नीलं नभ इति प्रत्यक्षस्याकाशस्याप्रत्यक्षत्वं घनविरलभावेन प्रत्यक्षतः प्रतीयमानस्य तमसस्तेजोऽभावरूपत्वं च हेत्वाभासैस्साधयन्ति। देहान्तवर्तित्वेन प्रतीय-

---

ही सत्कार्यवाद माना जाता है। इस प्रामाणिकवाद का अनादर कर ये लोग अवयवी नामक नूतन द्रव्य की उत्पत्ति बताते हुये असत्कार्यवाद का समर्थन करते हैं।

वेद आदि शास्त्रों में बतलाया गया है कि पाँच कर्मेन्द्रियां पांच ज्ञानेन्द्रियां और मन ये ग्यारह इन्द्रियां अहंकार से उत्पन्न होती हैं। ये लोग वेद आदि शास्त्रों के विरुद्ध यह कहते हैं कि कर्मेन्द्रियां हैं ही नहीं, ज्ञानेन्द्रियां अहंकार से उत्पन्न नहीं होतीं किंतु भूतों से उत्पन्न होतीं हैं, मन अहंकार से उत्पन्न नहीं होता है किन्तु नित्य है।

आकाश सब लोगों का प्रत्यक्ष है क्योंकि सब चक्षु से देखकर कहते हैं कि यह नील आकाश है यहाँ पर पक्षी उड़ता है, यहाँ पर मेघ है इत्यादि। किंतु ये लोग कहते हैं कि आकाश प्रत्यक्ष नहीं है। किंच शब्द तन्मात्र से उत्पन्न आकाश को ये लोग नित्य कहते हैं। किंच सब लोग प्रत्यक्ष जानते हैं कि यहाँ पर घन अन्धकार है यहाँ पर विरल अन्धकार है इत्यादि। भाव पदार्थ ही घन और विरल हो सकता है जैसे प्रकाश घन और विरल होता है। परन्तु ये लोग अन्धकार को भाव पदार्थ नहीं मानते किंतु अभाव पदार्थ मानते हैं क्योंकि ये लोग कहते हैं कि तेज का अभाव ही अन्धकार है।

मानानामणुत्वेनोपनिषत्सिद्धानां जीवानां विभुत्वमातिष्ठमानाः परब्रह्मसायुज्यलक्षणां मुक्तिमवधूय अखिलवैशेषिकगुणोच्छेदलक्षणं पाषाणकल्पं मोक्षं कल्पयन्ति। ज्ञानानां स्वतः प्रामाण्ये परतोऽप्रामाण्ये च सिध्यति सति प्रामाण्यमप्रामाण्यं च परतः संगिरन्ते। अप्रामाणिकान् चित्ररूपगुरुत्वसंख्यापरिमाणपृथक्त्व-

---

कविभिर्यथाकल्पनया नाटकं प्रणीयते तथाऽनेन आनुमानिककल्पनामाश्रित्य वैदिकच्छायानुकारेण सांख्यदर्शनं निरमायि। हिरण्यगर्भप्रवर्तितं योगदर्शनं पतञ्जलिना सूत्रप्रणयनेन प्राचारि। तदिदं दर्शनद्वयमप्यदूरविप्रकृष्टम्। कपिलशब्दो हिरण्यगर्भस्याप्युपलक्षकः। एभिः कपिलहिरण्यगर्भकल्पनानाटकैरपि जगत्

"कपिलकल्पनानाटकैः"—कपिल महर्षि सांख्य दर्शन के निर्माता हैं, हिरण्यगर्भ ब्रह्मा जी योग दर्शन के प्रथम प्रवक्ता हैं हिरण्यगर्भ प्रणीत योग दर्शन को ही उत्तरकाल में पतञ्जलि महर्षि ने योग सूत्रों में संगृहीत किया। जिस प्रकार कवि लोग प्राचीन चरित्र का चित्रण करते हुए कल्पना से नयी २ बातों का भी समावेश कर नाटकों का निर्माण करते हैं वैसे ही कपिल हिरण्यगर्भ पतञ्जलि और उनके अनुयायियों ने वेद वर्णित तत्वों का निरूपण करते हुये अपनी कल्पना से नयी २ बातों का समावेश कर नाटक के समान सांख्य दर्शन और योग दर्शन का निर्माण और प्रचार किया। ये दोनों दर्शन परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। इन लोगों के मनगढ़न्त प्रचार से भी सर्व साधारण को बहुत वंचित होना पड़ा। उसका विवरण इस प्रकार है।

प्रतारितं बभूव । कपिलः कपिलाश्चचेतनाधिष्ठितस्यैवाचेतनस्य कार्यकरत्वे दृश्यमाने सत्यपि सर्वेश्वरानधिष्ठतामेव प्रकृतिं जगत् कार्यकरीमाचक्षते । योगदर्शनस्थाः प्रकृत्यधिष्ठातारमीश्वरमभ्युपयन्तोऽपि तस्य प्रतिफलनकल्पमैश्वर्यं भणन्ति न तु स्वाभाविकम् । उभयेऽप्यणूनां पुरुषाणां जीवानां विभुत्वमाहुः । दुःखत्रयाभिघातान्यथानुपपत्त्या पुरुषाणां संसारे तदर्थं कर्तृत्वे

मर्म को न समझ कर सब ज्ञान को प्रमाण और अप्रमाण कहते हैं।

किंच, लोक में देखा जाता है कि एक ही कारण द्रव्य नई नई अवस्था को प्राप्त करने पर नया २ कार्य बन जाता है। उदाहरण मृत्तिका को लिया जाय। मृत्तिका जब जल मिलाकर रौंदी जाती है तब पिण्ड बन जाती है, पिण्डत्वावस्था को छोड़कर जब मृत्तिका विलक्षणावस्था को प्राप्त होती है, तब घट बन जाती है, जब घट फूट जाता है तब वही मृत्तिका कपाल बन जाती है, जब कपाल भी चूर चूर हो जाता है, तब वही मृत्तिका धूल बन जाती है। इससे सिद्ध होता है कि एक ही मृत्तिका द्रव्य नई २ अवस्था को प्राप्त होने पर नये २ कार्य के रूप में बन जाती है। इसमें मृत्तिका द्रव्य पहले से रहता है, अवस्थायें केवल उत्पन्न होती और मिटती हैं। सांख्य और योगी कहते हैं कि अवस्थायें भी पहले से ही रहती हैं। इनका कथन यदि सत्य माना जाय तब तो कार्य कारण भाव ही खण्डित हो जायेगा क्योंकि इनके मत में नूतन कोई वस्तु तो उत्पन्न होने का नहीं है। इस मर्म को न समझ कर ये लोग प्रचार करते हैं कि अवस्थायें भी पूर्व सिद्ध हैं।

किंच, लोक में यह भी देखा जाता है कि जड़ पदार्थ चेतन से प्रेरित होने पर ही कार्य करता है स्वयं कुछ भी नहीं करता। उदाहरण

भोक्तृत्वे चाभ्युपगन्तव्ये सति पुरुषाणां नित्यमुक्ति कर्तृत्व-भोक्तृत्वाभावं च प्रतिपादयन्ति। परब्रह्मणा सह परमसाम्यरूपे सायुज्ये परममोक्षत्वेनास्थातव्ये सति तद्भिन्नापुरुषस्य नित्यसिद्ध-चिन्मात्ररूपेणावस्थानं मोक्षमामनन्ति। कारणद्रव्यस्यैवावस्थान्तर-प्राप्त्या कार्यत्वेन सत्कार्यवादे उपपद्यमाने अवस्थानामपि पूर्व-सत्त्वं साधयन्तः कार्यकारणभावमेव निघ्नन्ति। स्वतः प्रामाण्ये परतोऽप्रामाण्ये च साधनीये सति उभयोः स्वतस्त्वं वदन्तः

बढ़ई से प्रेरित होने पर ही उनका हथियार वृक्ष को चीरता है। कुलाल से प्रेरित होने पर ही चक्र घट को उत्पन्न करता है। ऐसी परिस्थिति में यही मानना उचित है कि जड़ प्रकृति भी ईश्वर से प्रेरित होने पर ही सृष्टि कर सकती है। परन्तु सांख्य लोग कहते हैं कि प्रकृति के प्रेरक ईश्वर की आवश्यकता नहीं, प्रकृति जड़ होने पर भी स्वयं ही जगत् की सृष्टि करती है। योगी लोग प्रकृति को प्रेरित करने के लिये ईश्वर को मानते हुये भी कहते हैं कि ईश्वर में ऐश्वर्य स्वाभाविक नहीं है, विशुद्ध सत्त्वरूपी अन्तःकरण में रहने वाला ऐश्वर्य ईश्वर चैतन्य में केवल प्रतिबिम्बित होता है जिस प्रकार जपा पुष्प में रहने वाली लालिमा स्फटिक में प्रतिबिम्बित होती है।

प्रामाणाप्रमाणविभागमेव विलुम्पन्ति । इत्थं कपिलहिरण्यगर्भ-कल्पनानाटकैः प्रतारितं जगत् श्रीयतीन्द्रे खेमनिकल्पनानाटकानि सम्यक् खण्डयित्वा यथावस्थितवेदार्थनिरूपणविचक्षणाभिः सूक्तिभिस्त्रातमभूत् ।

*"कुमारिलकुभाषितैर्गुरुनिबन्धनग्रन्थिभिः" कुमारिलभट्टः गुरुः प्रभाकरश्च पूर्वमीमांसादर्शनस्य प्रवक्तारौ । कुमारिलेन बहूनि कुभाषितानि जगति प्रचारितानि, गुरुणा प्रभाकरेण बहवो ग्रन्थ-रूपा ग्रन्थयो ग्रथिताः । कुमारिलकुभाषितैर्गुरुनिबन्धनग्रन्थिभिश्च

जगत् प्रतारितं बभूव । कुमारिलगुरू तदनुयायिनश्च वेदप्रामाण्य-रक्षणप्रवृत्तमात्मानं ख्यापयन्तः वेदानां परमतात्पर्यविषयभूत-मीश्वरमपलपन्ति, जगन्नित्यमातिष्ठमानाः स्रष्टुरनावश्यकतामा-तिष्ठन्ते । सकामकर्मानधिकृतैर्विकलाङ्गैर्निष्कामकर्मणामनुष्ठेयता-मभिदधति । "विग्रहो हविरादानं युगपत्कर्मसंनिधिः । प्रीतिः फलप्रदानं च देवतानां न युज्यते ॥" इति देवतानां विग्रहादि-

---

वेद में "दर्शपूर्ण मासाभ्यां स्वर्गकामोयजेत" इत्यादि वाक्य विधान करते हैं कि स्वर्ग चाहने वाला पुरुष दर्श पूर्ण मासयाग करें इत्यादि। यहाँ पर विधान करने के लिये लिङ्लकार आया है। यहाँ पर यह विचार उपस्थित होता है कि लिङ्लकार का क्या अर्थ होना चाहिये। पूर्व मीमाँसा में लोक वेदाधिकरण में निर्णय किया गया है कि शब्द का लोक में जो अर्थ होता है वही अर्थ वेद में भी होना चाहिये। लोक में यदि कोई किसी को आदेश दे कि यह काम करो, वहां लिङ् का प्रयोग होता है। वहाँ प्रेरित करने वाले पुरुष का अभिप्राय ही लिङ् का अर्थ होता है। वेद ईश्वर की आज्ञा है। सर्व प्रेरक ईश्वर का अभिप्राय ही वैदिक लिङ्लकार का अर्थ है। इस सिद्धान्त की उपेक्षा कर कुमारिल कहते हैं कि ईश्वर और उसका अभिप्राय ऐसा कोई पदार्थ है ही नहीं। मनुष्यों को प्रेरित करने की शक्ति लिङ्लकार में निहित है, उसे शब्द भावना कहते हैं, वही लिङ् का अर्थ है। इन दोनों का यह कथन सर्वथा मन गढ़न्त है।

पञ्चकमपलपन्ति । मन्त्रार्थमूलेतिहासपुराणानां स्वार्थे तात्पर्यं नेच्छन्ति । विहितनिषिद्धकर्मजन्माभ्यां धर्माधर्मरूपाभ्यामीश्वरप्रीतिकोपाभ्यां यथाशास्त्रं फले सिध्यति सति अप्रामाणिकमपूर्वं कल्पयन्ति । यथालोकं वक्तुरीश्वरस्याभिप्राये लिङर्थतयाऽभ्युपेतव्ये सति शब्दभावनां वाच्यापूर्वं वा मुधा लिङ्वाच्यमातिष्ठन्ते । इत्थमेते बहुविधान् वेदविरुद्धानर्थान्व्याचक्षाणाजगत्प्रतारयन्ति । एभिः प्रतारितं जगत् श्रीयतीन्द्रोक्तिभिरेतन्मतखण्डनपूर्वकं प्रकृष्टगुणवदकारि ।

*"तथागतकथाशतैः" तथागतो बुद्धः। अनेनैतदनुयायिनश्चतुर्विधा बौद्धा अपि गृह्यन्ते, अत्र जैना अप्युपलक्ष्यन्ते। एतेषां कथाशतैर्जगत् प्रतारितं बभूव। जैनाबौद्धाश्चापौरुषेयमनादिनिधनं वेदं प्रमाणमनिच्छन्तोऽवैदिकानर्थानाचक्षते। तत्र माध्यमिकः प्रत्यक्षादिप्रमाणैर्जगति सत्यत्वेन प्रतीयमाने सत्येव सर्वं शून्यमिति साधकप्रमाणेऽसत्येवाह। योगाचारः ज्ञातृज्ञेयज्ञानेषु त्रिषु अबाधिततया प्रमीयमाणेषु सत्स्वेवज्ञानमेकं

इस प्रकार इन लोगों के दुष्ट प्रचार से सर्व साधारण भ्रम में फंस गया। श्रीरामानुज स्वामी जी ने इनके दुष्ट सिद्धान्तों का देवताधिकरण इत्यादि स्थलों पर खण्डन कर अपनी श्रीसूक्तियों से जगत को उज्जीवित किया।

सत्यं ज्ञातृज्ञेये मिथ्येत्याह। जगति प्रत्यक्षेण स्फुटतरं चकासति सति सौत्रान्तिको ज्ञानाकारानुमेयमाह। वैभाषिकः प्रत्यक्षसिद्धं पदार्थंस्वीकुर्वन्नपितं क्षणिकमाह। जैना जगदनेकान्तमातिष्ठमाना विरुद्धधर्माक्रान्तमाहुः। इत्थमेषामप्रामाणिककथाशतैः प्रतारितं जगत् श्रीयतीन्द्रेण जैनबौद्धमतनिरासपूर्वकं वैदिकपथे आरोप्यारक्ष्यत।

*"तदनुसारिजल्पैरपि प्रतारितमिदं जगद्यतीन्द्रोक्तिभिः प्रगुणितम्" बौद्धानुसारिणो मायावादिनः, जैनानुसारिणो भास्करादयः। एषां जल्पैरपि व्यर्थभाषणैरपि जगत् प्रतारितं

आकार देकर जगत् मिट जाता है, ज्ञान में चढ़े हुये आकार को देख कर जगत् का अनुमान किया जाता है जिस प्रकार चित्र देखकर मृत मनुष्य का अनुमान किया जाता है। वैभाषिक कहता है कि जगत् प्रत्यक्ष है किन्तु क्षणिक है अर्थात् क्षण मात्र ही रहता है दूसरे क्षण में वैसे ही दूसरा जगत् उत्पन्न होता है इत्यादि। ये बौद्ध गण आत्म नाश को ही मोक्ष कहते हैं। जैन लोग जगत् को भेद अभेद इत्यादि विरुद्ध धर्मों से आक्रान्त मानते हैं इनके प्रचार से जगत् ऐसे भ्रम में फंस गया कि उससे निकल आना ही असंभव हो गया। ऐसी स्थिति में करुणा मूर्ति श्रीरामानुज स्वामी जी ने श्रीभाष्य में तर्क पाद में तीन अधिकरणों द्वारा बौद्ध सिद्धान्त का खण्डन कर जैनाधिकरण में जैन सिद्धान्त का खण्डन कर सर्व साधारण की दृष्टि खोली।

बभूव । योगाचारबौद्धमनुसरन्तो मायावादिनोऽद्वैतिनः ब्रह्म सत्यं तदितरन्मिथ्येत्यातिष्ठमाना वेदादीनि प्रमाणानि वर्णा आश्रमा धर्माधर्मा एतल्लोकपरलोकौ च ब्रह्मव्यतिरिक्तत्वात्परमार्थतो न सन्ति । एषु विश्वासमाश्राय तदनुगयं प्रवर्तमाना वस्तुतो भ्रान्ता एवेत्याचक्षते । ब्रह्मनिर्गुणम्, तच्चाविद्यया संभ्रमीति, अद्वैतविद्यानिष्ठो जीवस्तद् अविद्यातो मोचयतीति वेदशास्त्रविप्रतीपं भणन्ति । जैनानुसारिणो भास्करादयो जीवब्रह्मणोर्भेदाभेदमा-

---

भास्कराचार्य इत्यादियों ने अपने भेदाभेद सिद्धान्त का प्रचार किया। इनके सब कथन वास्तव में केवल जल्प अर्थात् गप हैं। इनके प्रचार से सर्व साधारण गहरे भ्रम में फंस गया। मायावादि गण योगाचार बौद्ध का अनुकरण कर इस प्रकार अपने सिद्धान्त का प्रचार करने लगा कि ज्ञानरूपी परब्रह्म ही सत्य है यह सम्पूर्ण प्रपञ्च झूठा है स्वप्न में दीखने वाले सब पदार्थ जैसे मिथ्या हैं, वैसे ही अविद्या दोष के कारण ब्रह्म में यह प्रपञ्च दिखाई देता है, अतएव मिथ्या है। वेद, वर्ण, आश्रम धर्माधर्म, इह, परलोक, ये सब मिथ्या हैं क्योंकि ये ब्रह्म के स्वप्न में दिखाई देते हैं। इन मिथ्या पदार्थों में विश्वास कर फंसे रहने से आत्मा का कल्याण नहीं होगा। इनमें फंसे रहने वाले लोग वस्तुतः भ्रान्त हैं। शीघ्रातिशीघ्र इन सबका परित्याग कर यहाँ तक इनकी वासना तक को परित्याग कर "अहं ब्रह्मास्मि" इस अनुसन्धान में प्रत्येक को तल्लीन होना चाहिये। ऐसे "अहं ब्रह्मास्मि" समझने वाला साधक अविद्या में फंसे हुये ब्रह्म का उद्धार कर देगा। इनके इस प्रचार से जनता भ्रम में फंसकर यह मानने लगी कि वेद, वर्ण, आश्रम, धर्माधर्म, और इह परलोक, में विश्वास करना मानो अपने भ्रमों को पकड़े रहना है। इन सब जंजालों को छोड़ो जितना शीघ्रातिशीघ्र

चक्षाणा जीवगतान् दोषान् ब्रह्मणि आरोपयन्ति। इत्थं जैन-बौद्धानुसारिजल्पैः प्रतारितं जगत् श्रीरामानुजमुनिः सतर्कप्रमाण-परिकर्मिताभिः सूक्तिभिः प्रतारकमतविधूननपूर्वकं बद्धमुक्तनित्य-भेदेन त्रिविधाश्चेतनाः प्रकृतिकालशुद्धसत्त्वभेदेन त्रिविधमचेतन-मेतेषां धारकोनियन्ताशेषीनिरस्तनिखिलदोषः कल्याणगुणनिधिः जगद्व्यापारलीलः परमात्मा तन्निश्वासभूतावेदास्तदाज्ञासिद्धा

इनकी भावना तक का नाश होना भी कल्याण होगा। संसार के इन सब झंझटों से छुटकारा पाकर "अहंब्रह्मास्मि" इस वाक्यार्थ को समझना चाहिये। ऐसा सोच कर लोगों ने वेदों से अपनी श्रद्धा हटायी, वर्णाश्रम धर्मों का परित्याग किया, इह परलोक को कुछ न समझा परलोक से भय जाता रहा। केवल "अहंब्रह्मास्मि" इस वाक्यार्थ को गुरु से सीखकर उसकी आवृत्ति करने लगे। समझने लगे कि हम ही ब्रह्म हैं हमसे बढ़ कर इस संसार में कोई नहीं। इस प्रकार जनता में अनर्थकारी अहंकार बढ़ने लगा। जैनों के अनुसरण करने वाले भास्कराचार्य इत्यादि वादिगण जीव और ब्रह्म में भेदाभेद का समर्थन करते थे इससे जीवगत संपूर्ण दोष ब्रह्म में चढ़ने लगा क्योंकि उनके मत में जीव और ब्रह्म एक हैं।

इस प्रकार इन लोगों के दुष्ट सिद्धान्तों के प्रचार से भ्रम में फंसी हुई जनता के अनर्थ को देख कर श्रीरामानुज स्वामी जी ने जगत के कल्याणार्थ इनके सिद्धान्तों को जिज्ञासाधिकरण समन्वयाधिकरण और आरम्भणाधिकरण में परास्त कर जगत्कल्याणकारी श्री वैदिक सिद्धान्त का यों प्रतिपादन किया कि तत्व तीन हैं (१) चित् (२) अचित् (३) और ईश्वर। चेतन प्रपञ्च चित् कहलाता है, जड प्रपञ्च अचित कहलाता है। इन दोनों प्रपञ्चों का आधार नियामक और स्वामी सर्वेश्वर हैं

धर्माधर्मास्तत्फलभूताविहपरलोकौ तादृशधर्मानुष्ठानार्थमीश्वरेण सृष्टा वर्णाश्रमाश्च त्रिकालाबाधिताः परमार्थसत्याः, ईश्वराज्ञानुपालनेन जीवानामुन्नतिरीश्वराज्ञावहेलनोधोगतिःकर्मज्ञानभक्तिप्रपत्तिभिर्यथाधिकारमीश्वरे प्रसादिते तत्प्रसादेन संसारबन्धविनिर्मोकपूर्वं परमपदेऽधिरूढे आनन्दमयसविभूतिकपरब्रह्मानुभवपरीवाहायमाणकैङ्कर्यसाम्राज्याभिषेकप्राप्त्यैव जीवानां कृतार्थतेति वेदसारभूतान् परमार्थानुपदिश्य लोकमुपायपूर्त्या कृतकृत्यं पुरुषार्थपूर्त्या कृतार्थं चापादयामासेत्यहो जगत्कल्याणसाधनव्यसनिता श्रीभाष्यकारस्येतिभावः ॥३९॥

सर्वेश्वर इन प्रपञ्चों में अन्तर्यामी रूप से व्याप्त रहते हैं, ईश्वर नित्य निर्दोष तथा समस्त कल्याणगुणनिधि हैं। ये तीनों तत्व सत्य हैं। ईश्वर ने लोक कल्याणार्थ पूर्व कल्पस्थ वेदों का इस कल्प में ब्रह्मा जी को उपदेश दिया। अपनी वेदाज्ञा से लोगों को धर्माधर्म का ज्ञान कराया। उन धर्माधर्मों के फल को भोगने के लिये इह लोक और परलोक की सृष्टि की। ये सभी पदार्थ तथा यह संपूर्ण जगत सत्य है ईश्वर की विभूति है। ईश्वर के वेद आदि आज्ञा के अनुसार धर्माचरण करने पर जीवों की सद्गति होती है। ईश्वराज्ञा का तिरस्कार कर अधर्माचरण करने से जीवों की अधोगति होती है। जीवों को चाहिये कि वे अपने अधिकार के अनुसार कर्म, ज्ञान, भक्ति और शरणागति से अपने स्वामी सर्वेश्वर को प्रसन्न करें। प्रसन्न ईश्वर जीवों को संसार बन्ध से छुड़ाकर परमपद ले जाकर वहाँ अपने परिपूर्णानुभव को प्रदान करेंगे। परिपूर्ण ब्रह्मानुभव से आनन्दित होकर वहाँ जीव उस अनुभव के परीवाह रूप में सर्व देश सर्वकाल सर्वावस्थोचित सर्वविध कैङ्कर्य करते हुये कृतार्थ होंगे। श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने वेद सारभूत सिद्धान्तों

अत्र *"जगत्प्रगुणितं यतीन्द्रोक्तिभिः" इति कथमुच्यते ? आसेतुहिमाचलं जगति दुर्मतग्रस्ते सति एकेन यतीन्द्रेण सर्वत्र गत्वा परवादिनो विजित्य श्रीवैदिकसिद्धान्तं प्रचार्य जगदुज्जीवनं कथं कर्तुं शक्येत ? इत्याशङ्कायां श्रीयतीन्द्रचरणचिरवरिवस्याधिगतबुद्धिविद्यासंपदो दुराग्रहपिशाचाविष्टपरवादिभिरहमहमिकया प्रवर्त्यमानस्याश्रान्तकल्लोलायमानकोटिनिकुरुम्बकरम्बितस्य वाद-समुद्रस्याचूषणे अगस्त्यातिशयितप्रभावा दिग्विजयिनः श्रीभाष्य-श्रीसूक्तिप्रचारणेन जगदुज्जीवनव्यसनिनः श्रीकूरेशकुरुकेशप्रणता-

---

का प्रचार कर सर्वसाधारण से उपायानुष्ठान कराकर उनको कृतकृत्य बनाया। परम पुरुषार्थ दिलाकर सर्वसाधारण को कृतार्थ बनाया। इस प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने अपनी जगत्कल्याणकारी सदिच्छा को सफल बनाया ॥३६॥

पूर्व श्लोक में श्री देशिक स्वामी जी ने कहा कि यह जगत श्री भाष्यकार स्वामी जी की श्री सूक्तियों से उज्जीवित हुआ। यहाँ पर यह शङ्का होती है कि सेतु से लेकर हिमालय पर्यन्त संपूर्ण भारत में परमतों का अधिक प्रचार है, अकेले श्रीभाष्यकार स्वामी जी सर्वत्र जाकर परमतों को परास्त कर वैदिक धर्म का प्रचार कैसे कर सकते हैं, अपनी श्री सूक्तियों को सुनाकर सर्वसाधारण जन को कैसे उज्जीवित कर सकते हैं। इस शंका का उत्तर यह है कि वंश परम्परा से विद्वान् अनेक श्रीवैष्णव श्री भाष्यकार स्वामी जी की चरण सेवा से परिपक्वप्रज्ञा और वाक्शक्ति को प्राप्त कर श्री भाष्यकार स्वामी जी की आज्ञा से ७४ पीठों पर विराजमान रहते हैं। ये आचार्यगण श्रीभाष्यकार स्वामी जी की आज्ञा से निकल कर देश व विदेशों में दिग्विजय के लिये पधार कर वहाँ शास्त्रार्थ में परवादियों को परास्त कर श्री भाष्यकार स्वामी जी

तिहरश्रीपराशरभट्टार्यप्रभृतयः परः शता अन्तेवासिनस्तत्र तत्र विजयश्रीसमुल्लसिता विराजन्ते इति समाधानमभिप्रेत्याह—

कथाकलहकौतुकग्रहगृहीतकौतस्कुत-
प्रथाजलधिसंप्लवग्रसनकुम्भसम्भूतयः ।
जयन्ति सुधियो यतिक्षितिभृदन्तिकोपासन-
प्रभावपरिपक्त्रिमप्रमितिभारतीसंपदः ॥४०॥

*"कथाकलहकौतुकग्रहगृहीतकौतस्कुतप्रथाजलधिसंप्लव - ग्रसनकुम्भसंभूतयः" परवादिनां कथाकलहे वादयुद्धेऽदम्य

की श्री सूक्तियों के अनुसार सत्य सनातन वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए सर्वसाधारण को उज्जीवित करते हैं। इस उत्तर को सूचित करते हुए श्रीदेशिक स्वामी जो यह कहते हैं। इसके पूर्वार्ध में श्रीवैष्णव आचार्यों के प्रभाव का वर्णन है उत्तरार्ध में उस प्रभाव के हेतु का वर्णन है।

कथाकलहकौतुकग्रहगृहीतकौतस्कुतप्रथाजलधिसंप्लवग्रसनकुम्भसंभूतयः— वाद विवाद से प्रसन्न होने वाले तथा उसी में संलग्न रहकर उसके लिये जहाँ तहाँ पहुँचने वाले मतान्तर वादियों की प्रसिद्धि के समुद्र को सोख जाने के लिये जो अगस्त्य के समान हैं, *यतिक्षितिभृदन्तिकोपासन-प्रभावपरिपक्त्रिमप्रमितिभारतीसंपदो*—यतिराज को अन्तरंग उपासना के फलस्वरूप प्रमाण वाणी की पूर्ण सम्पत्ति जिनको प्राप्त हुई है ऐसे, *सुधियः जयन्ति*—बुद्धिमानों की जय हो।

उत्साहो वर्तते। अयमुत्साह एव कश्चिद्ग्रहः पिशाचः तेन ते गृहीताः सन्तः "इदं कुतः तत् कुतः" इति हेतुवादं कुर्वाणाः शास्त्रार्थयुद्धेषु इहेमे जितास्तत्र ते जिता इति प्रथमानाः समुद्रः कल्लोलानिव वादयुद्धे कोटीरुज्जृम्भयन्ति। परवादिनां समुद्रस्य च बहुधा साम्यं संजाघटीति। तथाहि—(१) अविवेकी जलधिर्महार्घाणि रत्नानि अधः करोति, अतितुच्छानि तृणानि शिरसा

पूर्ण सामर्थ्य रखते हैं। प्रतिवादिगण भी शास्त्रार्थ युद्ध में पूर्ण उत्साह दिखाते हैं। यह उत्साहरूपी पिशाच जब उन पर पूरा आवेश कर जाता है, तब वे लोग बहुत असम्बद्ध प्रलाप करते हैं, वे लोग अपनी कीर्ति गाते हुए गर्जते हैं कि उस स्थान में हमने उन लोगों को जीता, इस स्थान में हमने इन लोगों को जीता इत्यादि। समुद्र की गर्जना और इनकी गर्जना में कोई अन्तर नहीं। शास्त्रार्थ में चिढ़ने पर अपनी वाणी का बौछार करते हुए कहते हैं कि ऐसा क्यों? वैसा क्यों? इत्यादि। इस प्रकार क्यों २ ऐसा पूछने के कारण इन को संसार कौतस्कुत कहता है। ये प्रतिवादी शास्त्रार्थ में ऐसे एक के बाद एक करके अपनी कोटियों को उपस्थापित करते हुये जीतना चाहते हैं जिस प्रकार समुद्र एक के बाद एक कल्लोल को भेज कर भूमि को डुबाना चाहता है। समुद्र और इन प्रतिवादियों में अनेक प्रकार से समता है। (१) समुद्र जल का निधि है, संस्कृत में "ल और ड" इन अक्षरों में अभेद समझा जाता है, अतः समुद्र जड का निधि कहा जा सकता है, समुद्र जड निधि होने से अत्यन्त अविवेकी है, तब तो वह बहुमूल्य रत्नों को नीचे कर देता है, अति तुच्छ तृणों को ऊपर धारण करता है, मानो शिर से धारण करता है, इससे बढ़कर समुद्र का अविवेक क्या हो सकता है, समुद्र के तीर में पहुँचने पर सब देख सकते हैं कि

बिभर्ति, तथैते परवादिनो महार्घानात्मकल्याणावहान् सदर्थानधः कुर्वन्ति उपेक्षन्ते तृणकल्पान् क्षुद्रार्थान् शिरसाश्लाघन्ते। (२) समुद्रो रत्नानि कल्लोलैः शिलासु परुषं प्रहृत्य चूर्णयति, तथैते वादिनो वादाहवेषूपस्थितान् सदर्थान् दुस्तर्कप्रस्तरेषु प्रहृत्य चूर्णयन्ति। (३) अयं रत्नाकरोऽभ्रायितं वपुर्बिभर्ति, कल्लोलैर्गगनं चुम्बति रत्नैः पातालमूलमुद्दीपति जलेन धरित्री- माप्लावयितुं क्षमते इति श्रुतिमधुरमहिमसंपन्नोऽपि समुद्रः

समुद्र के ऊपर २ तृण तैरते रहते हैं, रत्न नीचे पानी में डूबे रहते हैं। यही बात इन प्रतिवादियों में भी घटती है क्योंकि ये लोग रत्न के समान आत्म कल्याणकारी आध्यात्मिक ग्रन्थों को नीचे कर देते हैं अर्थात् उनकी उपेक्षा करते हैं, तृण के समान नव्यन्याय ग्रन्थ इत्यादि क्षुद्र ग्रन्थों को शिर से धारण करते हैं शिरः कम्पन पूर्वक उन ग्रन्थों का अभिनन्दन करते हैं, उनको रटते २ अपनी जीवन लीला समाप्त कर देते हैं। यह बहुत शोचनीय विषय है। (२) यदि कभी कोई बहुमूल्य रत्न समुद्र के कल्लोल में फंस जायें तो समुद्र उन रत्नों को कल्लोलों से पत्थरों में मार २ कर चूर कर देता है। यही बात इन प्रतिवादियों में भी देखने में आती है। यदि कहीं शास्त्रार्थ में कोई उत्तम प्रसङ्ग छिड़ जाय तो ये प्रतिवादिगण उसका समुचित आदर न करते हुये दुस्तर्कों से उसका खण्डन करना चाहते हैं। बड़े २ कवि इस प्रकार समुद्र की महिमा का वर्णन करते हैं कि समुद्र का श्यामल स्वरूप जगत् को आह्लावित करने वाले बड़े २ मेघों से भी अत्यन्त विशाल है। वह लहरों से आकाश को छूता है, रत्नों से पाताल लोक को देदीप्य मानकर रहा है, सम्पूर्ण पृथ्वी को एक क्षण में डुबा सकता है इत्यादि। इसमें सन्देह नहीं कि समुद्र की महिमा ऐसी ही है।

स्वमाश्रितानां मुखानि क्षारजलेनैव पूरयति, समुद्राश्रितैः सांयात्रिकैः कूपादित एव मधुरपानीयं गृहीत्वा तृषा शमनीया भवति। तद्वदेते वादिनो निकामकमनीयं विद्वद्वेषं बिभ्रति, शास्त्रार्थ-घोषैर्गगनतलं प्रतिध्वनयन्ति, शास्त्रप्रवचनैः शिष्यहृदयगुहा उद्दीपयन्ति, दिग्विजयेन धरित्रीतलमाक्रामन्तीति श्रुतिमधुरमहिमसंपन्ना अपि आत्मोद्धारकामनया स्वमाश्रितानां कर्णकुहराणि त्रैवर्गिकार्थैरेव पूरयन्ति, इमानाश्रितैरात्मकल्याणकामिभिः श्रीवैष्णवानां महात्मनां सकाशादेव सिंहीस्तन्यवद्द्विजातीयैरना-

---

यह महिमा सुनने में सबको अच्छी लगती है। किन्तु यह बात भी ध्रुव सत्य है कि जो लोग तृषा से व्याकुल होकर आश्रय लेते हैं उनको पीने के लिये यह समुद्र खारा पानी ही देता है, सर्वदा समुद्र की सेवा में ही अपने जीवन को व्यतीत करने वाले मल्लाहों को भी कूप इत्यादि से ही मीठा पानी लेकर अपनी तृषा को शान्त करना पड़ता है। यह बात भी इन प्रतिवादियों में घटती है। ये लोग विद्वानों कासा उज्ज्वल वेद को धारण करते हैं, इनके शास्त्रार्थ घोषों से आकाश गूंज उठता है, ये लोग शास्त्र प्रवचनों से शिष्यों के हृदय गुहा को प्रकाश सम्पन्न करते हैं, दिग्विजय कर भूतल पर अधिकार जमाना चाहते हैं। इस प्रकार इनकी महिमा अपार है, इसमें कोई सन्देह नहीं, परन्तु जो सज्जन यह चाहते हुये इनका आश्रय लेते हैं कि हम संसार से छूट जायें, आत्मकल्याण हो, उन समाश्रित सज्जनों के कर्णों में ये प्रतिवादिगण उपदेश देते हुये सांसारिक बातों को ही भरते हैं आत्म-कल्याण की बातों को नहीं सुनाते हैं। अन्त में निराश होकर उन सज्जनों को श्रीवैष्णवाचार्यों के शरण में आकर आत्मकल्याणकारी अर्थ पञ्चक इत्यादि उत्तम अर्थों को सुनकर अपनी जिज्ञासा को शान्त

स्वादितरसान् रहस्यार्थानुपश्रुत्य जिज्ञासा शमनीया भवति। (४) जलनिधिः सरितां मुखेभ्यो गृहीतं सुमधुरं तृषाशमन-विचक्षणं पानीयं क्षारीकरोति, वडवाग्नौ जुहोतिपातालकुक्षौ विनिवेशयति च। तथैवैते प्रतिवादिनः श्रुतिस्मृतीतिहास-पुराणेभ्यो गृहीतान् तापत्रयोपशमनान् हृद्यान् सदर्थान् लवण-कल्पस्वकपोलकल्पनामिश्रणेन क्षारीकुर्वन्ति, अनधिकारिभ्य उपदिशन्ति, अथवा कार्पण्यवशंवदा यावन्मरणं स्वहृदयगुहास्वेव स्थापयन्ति, न तु जगत्कल्याणार्थं योग्याधिकारिभ्यः प्रयच्छन्ति। (५) मधुरपानीयवर्षी पयोदो गर्जनेन स्वस्य समये आगमनं

करना पड़ता है। ये श्रीवैष्णवाचार्य भी उसी प्रकार प्रेम से बहुमूल्य अर्थों को सुनाते हैं जिस प्रकार गौ नवजात बछड़े को बड़े प्रेम से दूध पिलाती है। इनके द्वारा प्राप्त हुये अर्थ सिंहिनी के स्तन्य के समान हैं, सिंहिनी के स्तन्य के रस को दूसरे प्राणी चख नहीं सकते, सिंहिनी के बच्चा ही उस रस का स्वाद ले सकता है। वैसे ही श्रीसम्प्रदाय के उपदेश में आने वाले रहस्यार्थों का स्वाद परमतस्थों को विदित नहीं। इसी सम्प्रदाय के आचार्यों के शिष्य ही इसका स्वाद जानते हैं। ऐसे उत्तमार्थों को श्रीवैष्णवाचार्यों से प्राप्त कर जिज्ञासु सज्जन तृप्त होते हैं। (४) समुद्र नदियों से तृष्णा को शमन करने वाला मधुर जल को लेकर उसे क्षार बना देता है, उसे वडवाग्नि में हवन करता है, अथवा पाताल में बन्द कर रखता है। वैसे ही ये प्रतिवादि-गण श्रुति स्मृति इतिहास और पुराणों से प्राप्त तापत्रय को दूर करने वाले श्रेष्ठ अर्थों के लवण के समान गर्हित अपनी कपोल कल्पना से मिलाकर अनुपयोगी बना देते हैं। अनधिकारियों को उपदेश देते हैं, अथवा अत्यन्त कृपण बनकर किसी को भी नहीं बताते हैं अपनी

श्रावयन् लोकमाह्लादयतीति युज्यते कल्लोलहस्तोत्क्षेपं नृत्यन् गर्जन् अयं क्षारजलधिः पिपासार्दितैरुपेक्षितमात्मानं नावैति, नापि जिह्रेति, यदीश्वरोऽस्यजलं मधुरं व्यधास्यत् तर्हि न विद्मः कानि कानिदुश्चेष्टितान्यकरिष्यत्। तथैव सुमधुरभगवत्कल्याण-गुणवर्षिणः सात्त्विका विद्वांसो "दासोऽहंकोसलेन्द्रस्य रामस्या-क्लिष्टकर्मणः। हनूमान् शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः। न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्॥" इत्यञ्जनानन्दन इव

हृदय रूपी गुहा में ही बन्दकर रखते हैं। (५) मधुर जल को बरसने वाला मेघ अपने आगमन को सूचित करता हुआ यदि गरजे वह उचित नहीं है क्योंकि उससे संसार आह्लादित होता है, परन्तु समुद्र अपने लहर रूपी हाथों को उछालता हुआ नाचता है तथा गर्जता है, यह समझकर लज्जित नहीं होता कि मुझमें क्षार जल ही भरा रहता है, तृषार्त मनुष्य हमको तुच्छ समझता है। लज्जित होने योग्य स्थिति में रहता हुआ भी समुद्र नाचता है तथा गर्जता है। यदि ईश्वर ने समुद्र के जल को मधुर बनाया होता तो यह मदोन्मत्त समुद्र और भी अधिक उछल कूद अवश्य मचाता। वैसे ही अपने सदुपदेशों में श्रीभगवान् के मधुर कल्याण गुणों को बरसने वाले सात्त्विक विद्वद् गण श्रीहनुमान जी की तरह अपनी महिमा का वर्णन करें तो सह्य भी हो सकता है। श्रीहनुमान जी सुन्दरकाण्ड में लङ्का में अपनी प्रशंसा करते हुये कहते हैं कि—'अनायास कठिन से कठिन काय को भी करने वाले कोसलेन्द्र श्रीरामचन्द्र जी का मैं दास हूँ। मेरा नाम हनूमान है, मैं शत्रु सैन्यों को मारने वाला हूँ मैं वायु का पुत्र हूँ। हजारों पत्थरों और वृक्षों से मारने वाले मेरे सामने हजारों रावण भी टिक नहीं सकते। श्रीहनुमान की तरह यदि लोक कल्याणकारी

स्वमहिमानमुद्घोषयन्तो यल्लोकमानन्दयन्ति तद्युज्यते; परंतु शास्त्रार्थेषु मुधा गर्जन्तः क्षारजलकल्पैरश्रवणीयैर्दुरर्थैर्भरिता एते प्रतिवावदूका आत्मकल्याणजिज्ञासुभिरात्मानमुपेक्षितं नावयन्ति, न वा जिह्रियति इति शोचनीयमेतत्। यदि भगवानेभ्यो लोककल्याणकारितलस्पर्शिवैदुष्यमदास्यत् तर्हि न विद्म एते कानि कानिदुश्चेष्टितान्यकरिष्यन् इत्येषां व्यवहारे दृश्यमाने वक्तव्यं भवति। तदेवं समुद्रसदृशैः प्रतिवावदूकैर्विसृष्टानां सामुद्रप्रवाहसन्निभानां वादकोटीनां प्रसङ्गे श्रीरामानुजपदाम्भोजसमाश्रयणशालिनो धन्याः श्रीवैष्णवविद्वांसोऽगस्त्यायन्ते। यथाऽगस्त्यो-

---

विद्वान् अपनी प्रशंसा करे तो वह कुछ सीमा तक क्षम्य हो सकता है। परन्तु क्षार जल के समान अनुपयोगी अर्थों से पूर्ण ये प्रतिवादिगण शास्त्रार्थों में वृथा गरजते हैं यह समझकर लज्जित नहीं होते हैं कि आत्मकल्याण चाहने वाले सज्जन हम लोगों को उपेक्षित समझते हैं, ऐसी दयनीय स्थिति में भी इनका कोलाहल कम नहीं होता, यदि ईश्वर ने इनको उत्तम लोक कल्याणकारी विद्वत्ता दी होती तो ये लोग अधिक उत्पात मचाते। इनकी गति विधि को देखकर ऐसा कहना पड़ता है। इन निरूपणों से सिद्ध होता है कि समुद्र और इन प्रतिवादियों में अत्यन्त समता है।

ह्रस्वः सन्नपि ब्राह्मतेजः प्रभावेण महामहिमशालिनमपि जलनिधिं चुलुकीकृत्य पपौ, तथैवैते श्रीवैष्णवविद्वांसोऽतिप्रबलानपि परवादिनो ब्रह्मविद्याप्रभावेण वादाहवेषु विजित्य स्वाधीनी कुर्वन्ति, समुद्रस्य यथा कल्लोलविजृम्भणं तीरे विश्राम्यति, तथैव प्रतिवावदूकानां समग्रं वादौत्सुक्यमेषां सन्निधौ विश्राम्यति। यथाऽगस्त्यपीतोत्सृष्टो जलनिधिः कुल्यावद्धनुमतालङ्घितः केदारवद्वानरैर्बद्धश्चबभूव, तथैवैते प्रतिवादिनः श्रीवैष्णवविद्वद्भिर्जितोसृष्टाः सामान्यविद्वद्भिरपि सुजय्या भवन्ति। स्वल्पजलग्राहिकुम्भसंभवस्याप्यगस्त्यस्य यथा विशालसमुद्रपानालंकर्मीणं ब्राह्मं तेजः तथैषामकृत्स्नवेदिवंशजनुषामपि परवादिपरासन-

विचक्षणा ब्रह्मविद्या विद्योतते। यथा पिशाचगृहीतो बह्वसंबद्धं प्रलपन्नपि पिशाचोच्चाटनोत्तरं यदि पृच्छ्येत, पिशाचावेशकाले इदमिदमवोचथाः अथात्मसाक्षिकं ब्रूहि किं ते मनसि वर्तत इति, तर्हि स प्रतिब्रूयात् पिशाचावेशकाले यद्यदवोचम्, तन्नजाने, वास्तवार्थस्त्वयमेवेति। तद्वत्तेऽपि वादाहवमहोत्साहपिशाचगृहीताः परवादिनः वादयुद्धेषु बह्वसंबद्धं प्रलपन्तोऽपि पराजयेनोत्साहे भग्ने दर्पे विध्वंसिते तत्त्वार्थमाचढ्वमितिपृष्टाः प्रतिब्रुवन्ति न

विद्वान् धुरन्धर प्रतिवादियों को भी हराने में सामर्थ्य रखते हैं क्योंकि इनके यहाँ अपार ब्रह्म विद्या विद्यमान है।

श्लोकार्थ के आरम्भ में कहा गया है कि प्रतिवादियों को शास्त्रार्थ करने में अधिक उत्साह है, यह उत्साह ही एक पिशाच है, प्रतिवादि गण उस पिशाच से आविष्ट हो गये हैं, पिशाच से आविष्ट मनुष्य असंबद्ध प्रलाप करते हैं, वैसे ही ये प्रतिवादि विद्वान् भी शास्त्रार्थ में असंबद्ध प्रलाप बहुत करते हैं, यदि पिशाच को भगाकर उन मनुष्यों से पूछा जाय कि आपने पिशाच के आवेश के समय ऐसी २ बातें कहीं, अब तो पिशाच उतर गया, कहिये अब आप के मन में क्या बातें हैं? ऐसे पूछने पर वे लोग यही कहेंगे कि अब हमको ज्ञात नहीं हो रहा है कि हमने पिशाच के आवेश के समय क्या २ बका, अब तो हम उन्हीं बातों को ही यथार्थ समझते हैं जिन्हें आप लोग यथार्थ समझते हैं। वही बात यहाँ पर भी संगत होती है। उत्साह रूपी पिशाच से आविष्ट होकर अनेक प्रकार असंबद्ध प्रलाप करने वाले प्रतिवादियों को हराकर इनके उत्साह रूपी पिशाच को भगाकर यदि इनसे पूछा जाय कि आप लोग शास्त्रार्थ में उत्साह रूपी पिशाच से आविष्ट होने के कारण शास्त्रार्थ में इन बातों को कहते थे, आप लोग

जाने वादयुद्धेषु किं किमुक्तमिति परमार्थस्त्वयमेवेति ।

*"सुधियो यतिक्षितिभृदन्तिकोपासनप्रभावपरिपक्त्रिमप्रमितिभारतीसंपदोजयन्ति" यथा आनुवंशिकक्षात्रतेजोयुक्ताः क्षत्रिया जयशीलं सम्राजमुपास्य तत्प्रभावेनास्त्रशस्त्रबलसंभृताभूत्वाऽऽहवेषु शत्रून् जयन्तः सर्वोत्कर्षेण विभ्राजन्ते, तथैव वंशपरम्परया सुधिय एते श्रीवैष्णवविद्वांसो यतिराजस्य समीपे चिरपरिचर्यां कृत्वा समुचिताध्ययनविरहेऽपि चिरपरिचर्यासमुत्थनिरवग्रहयतिराजानुग्रहेण प्रज्ञासरस्वतीसंपत्परिपाकं प्राप्य वादाहवेषु परवादिनो विजित्य सर्वोत्कर्षेण विभ्राजन्ते । एवं

कहिये अब किन अर्थों को यथार्थ मानते हैं ? ऐसे पूछे जाने पर ये प्रतिवादिगण यही कहेंगे कि अब हम लोगों को ज्ञात नहीं हो रहा है कि शास्त्रार्थ में हम लोगों ने क्या २ कहा, अब हम लोग उन्हीं अर्थों को ही यथार्थ मानते हैं जिन्हें आप लोग यथार्थ मानते हैं। इस प्रकार शास्त्रार्थ में हारने के अनन्तर प्रतिवादिगण श्रीसम्प्रदाय को हृदय से यथार्थ मानने लगते हैं ।

श्रीयतिराजेन सुशिक्षिताश्चतुस्सप्ततिसंख्याकाः पीठाधिपतय आचार्या श्रीयतिराजाज्ञानुसारेणासेतुहिमाचलं दिग्विजयार्थं प्रस्थिताः परवादिनो विजित्य यतीन्द्रोक्तीः संश्राव्य जनतामुज्जीवयन्तीति सत्यमुक्तमिदं जगत् प्रगुणितं यतीन्द्रोक्तिभिरिति ॥४०॥

अथापीदानीं श्रीकूरेशश्रीकुरुकेशश्रीप्रणतार्तिहराचार्यप्रभृतयो महान्तः परमपदमलंकुर्वन्ति, श्रीवादिहंसाम्बुवाहप्रभृतयो वयोऽधिकाजाताः। श्रीभाष्यकारेण खण्डितानि मतान्यातिष्ठमानाः

को प्राप्त करते हैं, शास्त्रार्थ में प्रतिवादियों को जीतते हैं, तथा सर्वोत्कृष्ट पद पर विराजमान रहते हैं, उनकी जय हो।

इस प्रकार यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी से सुशिक्षित ७४ पीठास्थ आचार्य गण श्रीभाष्यकार स्वामी जी की आज्ञा से सेतु से लेकर हिमालय पर्यन्त दिग्विजय यात्रा करते हुये वहाँ के परवादियों को जीतते हैं, तथा श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियों को सुनाकर सर्व साधारण जन को उज्जीवित कर रहे हैं॥४०॥

पूर्वश्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी ने कहा कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी के शिष्यों ने शास्त्रार्थ में परवादियों को परास्त करते हुये श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्तियों का प्रचार कर सर्व साधारण जन को उज्जीवित किया। यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वर्तमान में श्रीकूरेश स्वामी श्रीकुरुकेश स्वामी जी श्रीप्रणतार्तिहर स्वामी जी और श्रीपराशर भट्टार्य स्वामी जी इत्यादि आचार्यगण श्रीवैकुण्ठ पहुँचकर श्रीवैकुण्ठनाथ भगवान् की सेवा कर रहे हैं। श्रीवादिहंसाम्बुवाह इत्यादि आचार्यगण अत्यन्त वृद्ध हो गये हैं। इस अवसर

जाने वादयुद्धेषु किं किमुक्तमिति परमार्थस्त्वयमेवेति ।

*"सुधियो यतिक्षितिभृदन्तिकोपासनप्रभावपरिपक्त्रिम-प्रमितिभारतीसंपदोजयन्ति" यथा आनुवंशिकक्षात्रतेजोयुक्ताः क्षत्रिया जयशीलं सम्राजमुपास्य तत्प्रभावेनास्त्रशस्त्रबलसंभृता-भूत्वाऽऽहवेषु शत्रून् जयन्तः सर्वोत्कर्षेण विभ्राजन्ते, तथैव वंशपरम्परया सुधिय एते श्रीवैष्णवविद्वांसो यतिराजस्य समीपे चिरपरिचर्यां कृत्वा समुचिताध्ययनविरहेऽपि चिरपरिचर्या-समुत्थनिरवग्रहयतिराजानुग्रहेण प्रज्ञासरस्वतीसंपत्परिपाकं प्राप्य वादाहवेषु परवादिनो विजित्य सर्वोत्कर्षेण विभ्राजन्ते । एवं

श्रीयतिराजेन सुशिक्षिताश्चतुस्सप्ततिसंख्याकाः पीठाधिपतय आचार्या श्रीयतिराजाज्ञानुसारेणासेतुहिमाचलं दिग्विजयार्थं प्रस्थिताः परवादिनो विजित्य यतीन्द्रोक्तीः संश्राव्य जनता-मुज्जीवयन्तीति सत्यमुक्तमिदं जगत् प्रगुणितं यतीन्द्रोक्ति-भिरिति ॥४०॥

अथापीदानीं श्रीकूरेशश्रीकुरुकेशश्रीप्रणतार्तिहराचार्यप्रभृतयो महान्तः परमपदमलंकुर्वन्ति, श्रीवादिहंसाम्बुवाहप्रभृतयो वयो-ऽधिकाजाताः। श्रीभाष्यकारेण खण्डितानि मतान्यातिष्ठमानाः

को प्राप्त करते हैं, शास्त्रार्थ में प्रतिवादियों को जीतते हैं, तथा सर्वोत्कृष्ट पद पर विराजमान रहते हैं, उनकी जय हो।

इस प्रकार यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी से सुशिक्षित ७४ पीठस्थ आचार्य गण श्रीभाष्यकार स्वामी जी की आज्ञा से सेतु से लेकर हिमालय पर्यन्त दिग्विजय यात्रा करते हुये वहाँ के परवादियों को जीतते हैं, तथा श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियों को सुनाकर सर्व साधारण जन को उज्जीवित कर रहे हैं ॥४०॥

पूर्वश्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी ने कहा कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी के शिष्यों ने शास्त्रार्थ में परवादियों को परास्त करते हुये श्रीभाष्य-कार स्वामी जी की श्रीसूक्तियों का प्रचार कर सर्व साधारण जन को उज्जीवित किया। यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वर्तमान में श्रीकूरेश स्वामी श्रीकुरुकेश स्वामी जी श्रीप्रणतार्तिहर स्वामी जी और श्रीपराशर भट्टार्य स्वामी जी इत्यादि आचार्यगण श्रीवैकुण्ठ पहुँचकर श्रीवैकुण्ठनाथ भगवान् की सेवा कर रहे हैं। श्रीवादिहं साम्बुवाह इत्यादि आचार्यगण अत्यन्त वृद्ध हो गये हैं। इस अवसर

सर्वेऽपिप्रतिवादिनः पूर्ववैरमनुस्मरन्तः श्वावराहकलहक्रमेण सङ्घी-भूयैत्यविवदन्ते, एतद्दर्शं सर्वेऽपि साधुजनाः किंकर्तव्यतामूढाः विषीदन्ति, किंकरवामेति शङ्कायामहं सहदेवप्रहतमार्गेण करिष्यामि, महाभारतेऽग्रपूजाप्रसङ्गे विवादे उपस्थिते सहदेवेन पादप्रदर्शनपूर्वं विरुद्धवादिनां वधे प्रतिज्ञाते "मानिनां बलिनां मध्ये तेन वै दर्शिते पदे । ततोऽपतत्पुष्पवृष्टिः सहदेवस्य मूर्धनि । अदृश्यरूपा वाचश्चाप्यब्रुवन् साधुसाध्विति ॥" इति वर्ण्यते, तथा "अहमेकोऽपि पर्याप्तः" इति न्यायेन जगतीतलस्थसर्वदुर्वादिगर्वनिर्वापण-

---

को देखकर प्रतिवादिगण पूर्व वैर को याद करते हुये संघ बनाकर शास्त्रार्थ के लिये आह्वान कर रहे हैं। यद्यपि इन लोगों में परस्पर मतभेद और खण्डन मण्डन चलता रहता है, परन्तु हम लोगों के सामने एक होकर शास्त्रार्थ के लिये उद्यत हो रहे हैं। जिस प्रकार श्वान आपस में लड़ते हुये भी हिरन को देखने पर अपने झगड़े को छोड़कर हिरन के पीछे पड़ जाते हैं वैसे ही ये लोग अपने परस्पर विवाद को छोड़कर हम लोगों के पीछे पड़े हैं। इस दुरवस्था को देखकर साधुजन भयभीत हो रहे हैं तथा समझ नहीं पा रहे हैं कि इस समय क्या करना चाहिये। इस प्रकार प्रश्न उपस्थित होने पर आदेशिक स्वामी जी इस श्लोक से यह उत्तर देते हैं कि आप लोग भयभीत न हों, मैं सहदेव के मार्ग को अनुसरण करता हुआ इन लोगों को ठीक करूंगा। महाभारत सभा पर्व की कथा है कि राजसूय यज्ञ में अग्रपूजा के विषय में विवाद उपस्थित होने पर सहदेव ने अपना चरण उठाकर प्रतिज्ञा की कि विरुद्ध अभिप्राय रखने वालों का वध किया जायेगा। ऐसी प्रतिज्ञा करते ही सहदेव के मस्तक पर पुष्प वर्षा हुई अशरीरी वाणी ने धन्यवाद दिया। वैसे ही भूतल पर

विचक्षणोऽहं पश्यत तेषां शिरःसु वामपादं निदधामि इत्थं वीरवादस्य हेतुः श्रीभाष्यकारप्रणीतश्रीभाष्यादिग्रन्थपरिशीलनवतां महाप्राज्ञानां श्रीवादिहंसाम्बुवाहप्रभृतीनां महतां चरणाम्बुजस्य प्रणतेन शिरसाधारणमेव मे परं बलम् युष्माभिर्न चिन्ता कार्ये-त्युत्तरमभिप्रेत्याह—

यतीश्वरसरस्वतीसुरभिताशयानां सतां
वहामि चरणाम्बुजं प्रणतिशालिना मौलिना ।
तदन्यमतदुर्मदज्वलितचेतसां वादिनां
शिरःसु निहितं मया पदमदक्षिणं लक्ष्यताम् ॥४१॥

रहने वाले सभी दुर्वादियों के गर्व को मिटाने में समर्थ मैं उन दुर्वादियों के शिर पर अपना बायां चरण रखता हूँ, आप लोग देखियेगा, इस प्रकार मैं जो वीरावेश में कह रहा हूँ उसका कारण यही है कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी द्वारा प्रणीत श्रीभाष्य इत्यादि ग्रन्थों का परिशीलन करने वाले महाप्राज्ञ श्रीवादिहंसाम्बुवाह इत्यादि आचार्यों के चरणारविन्द को मैं प्रणाम करता हुआ शिर से धारण करता हूँ यही मेरा बल है, आप लोग चिन्ता छोड़ दें। इस उत्तर को व्यक्त करते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं—

*"यतीश्वरसरस्वतीसुरभिताशयानां सतां चरणाम्बुजं प्रणतिशालिना मौलिना वहामि" श्रीभाष्यकारस्य यतीश्वरस्य सरस्वती श्रीभाष्यादयो नवग्रन्थाः। सदाचार्यान् समाश्रित्य तेषां कालक्षेपं कुर्वाणानामाशयः प्रभासौरभं बिभर्ति। तेषाम् "अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततो विदुः" इत्युक्तरीत्या ब्रह्मज्ञानेन सत्तापि सिध्यति। इत्थं सुरभिताशयत्वादिगुणाढ्यानां श्रीवादिहंसाम्बुवाहप्रभृतीनां महतामम्बुजवत् स्पृहणीयं श्रीचरणं कमलवत् शिरोभूषणतया शिरसा वहामि, मदीयं शिरः प्रणति-

---

मया अदक्षिणं पदं निहितम्—उनके सिर पर मेरा बायां पैर है। *पश्यताम्*—देखो।

"यतीश्वरसरस्वतीसुरभिताशयानां सतां चरणाम्बुजं प्रणतिशालिना मौलिना वहामि"—यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी के श्रीमुखारविन्द से निकली सरस्वती श्रीभाष्य इत्यादि नौ ग्रन्थों के रूप में विराजमान होकर आजकल भी जगत् को उज्जीवित कर रही है। सदाचार्यों की शुश्रूषा कर जो महानुभाव उन ग्रन्थों का कालक्षेप करते हैं, उनका मन यथार्थ ज्ञान रूपी सुगन्ध से सुगन्धित होता है। सदाचार्यों की सन्निधि में कालक्षेप न करने वालों के मन में यथार्थ ज्ञान रूपी सुगन्धि नहीं उत्पन्न हो सकती है। सदाचार्य से इन ग्रन्थों का कालक्षेप करने वाले ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करते हैं, उससे उनकी सत्ता टिकती है, श्रुति में कहा गया है कि "अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततो विदुः" अर्थात् जो ब्रह्म जो जानते हैं वे ही सन्त माने जायेंगे उनको ही सत्ता मानी जायगी। इस प्रकार सत्ता को प्राप्त हुये तथा श्री भाष्यादि ग्रन्थों के कालक्षेप से सुगन्धित हृदय वाले श्रीवादिहंसाम्बुवाह इत्यादि महाचार्यों के चरणारविन्द को मैं शिर से धारण करता हूं। उनका श्री चरण

शालित्वात्स्वारोहं वर्तते। श्रीचरणधारणमेव मे परं बलम्।

*"तदन्यमतदुर्मदज्वलितचेतसां वादिनां शिरःसु अदक्षिणं पदं मया निहितं लक्ष्यताम्" श्रीभाष्यकारमतापेक्षया-ऽन्यानि यानि मतानि, तेषु अभिनिवेशातिशयादेषां वादिनां दुर्मदो वर्तते, तेन दुर्मदेनाग्निनेवैषां हृदयं जाज्वलीति, अत-एवैते दुर्वादं कुर्वते, एवं भूतानां दुर्वादिनां सर्वेषां शिरःसु मया

कमल के समान हैं, मनुष्य कमल को भूषण रूप में शिर में धारण करते हैं, वैसे ही मैं इन आचार्यों के चरणारविन्द को भूषण के रूप में धारण करता हूं, मैं प्रणाम करता हुआ नम्र शिर से उसे धारण करता हूं, इस नम्र शिर में आचार्यों के श्रीचरण को विराजने में कोई आयास नहीं। प्रणाम कर नम्र होने से मेरा मस्तक भी शोभा को प्राप्त कर रहा है, उस शिर में विराज कर श्रीचरण शोभा बढ़ा रहे हैं। मेरे मन में अणुमात्र भी अहंकार नहीं, इससे हमको आचार्यों के श्रीचरण को शिर में धारण करना प्रिय लगता है।

कल्याणकारिता ब्रह्मविच्चरणनिधानस्य । दुर्वादिनां बहुत्वेऽपि तेषां शिरस्सु चरणनिधानपूर्वं तान् सत्पथगान् कर्तुमहमेक एव पर्याप्तः यतोऽहं यतीश्वरसरस्वतीसुरभिताशयानां बहूनां सतां चरणाम्बुजस्य शिरसा धारणादप्रमेयं प्रभावं बिभर्मि । ज्वलित-चेतस एते शुष्ककरीषवत् सुनिरसा इति न मे भ्रमः । श्रीभगवन् नामप्रभावेण यमस्य शिरसि पादं निधाय संचराम इति वदन् श्रीभक्ताङ्घ्रिरेणुसूरिरिवाहमपि सच्चरणवहनलब्धबलोदुर्वादिनां शिरस्सुपादं निदधामि । "न विगृह्य कथां कुर्यात्" इति निषेधे सत्येव "यथाशक्ति निगृह्णीयाद्देवतागुरुनिन्दकान्" इति यथा-शक्ति निग्रहस्याभ्यनुज्ञातत्वान्नायं वीरवादोऽपचारः । पञ्चानृत-

धारणादहमपि तापत्रयरहितः "एष ब्रह्म प्रविष्टोऽस्मि ग्रीष्मे शीतमिव ह्रदम्। शाम्यामि परिनिर्वामि सुखमासे च सर्वदा ॥" इत्युक्तरीत्या निरवग्रहसदाचार्यानुग्रहसमेधितश्रीभगवदनुभवशीतलश्रसंपन्नोऽस्मि, एते दुर्वादिनश्चान्यमतदुर्मदज्वलितचेतसोऽग्निना दह्यमानस्य काष्ठस्य साधर्म्यं बिभ्रति, अत एषां तापशमनार्थं ज्वरज्वलितस्य शिरसि करकाबन्धनमिवैषां शिरः सुवामपादन्यासं करोमि, अन्यमतदुर्मदज्वलितचेतस एते न दक्षिणपादन्यासमर्हन्ति, वामपादन्यासस्यैवाधिकारिण एते। मद्वामपादन्यासेनापि एषां दुर्मदाग्निः शाम्येत् ततो निर्वापिततापे हृदि सदुपदेशकर्षणेन भगवद्भक्तिबीजे उप्ते मोक्षफलमेभिः सुप्रापमिति अहो-

---

धारण करने के कारण मैं भी तापत्रय से शून्य होगया हूँ, इनके अनुग्रह से मुझे भी भगवदनुभव होने लगा है, मुझे ऐसा भान हो रहा है कि तापार्त मैं, ब्रह्मरूपी तड़ाग में डूब गया हूँ, शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ, हमारा संपूर्ण ताप बुझ गया है, मैंने सर्वदा के लिये सुख को प्राप्त कर लिया है। इस श्रीभगवदनुभवरूपी प्रवाह मे मैं अत्यन्त शीतल हो गया हूं। ये दुर्वादिगण दुर्मदरूपी अग्नि से ऐसे जल रहे हैं जैसे कोई मनुष्य ज्वर के ताप से जल रहा हो। ज्वरार्त के मस्तक पर अति शीतल बर्फ को बाँधने पर जिस प्रकार ज्वर उतर जाता है, उसी प्रकार इन दुर्वादियों के शिर पर मेरे सुशीतल चरण को रखने पर इनका दुर्मदरूपी अग्नि भी शान्त हो जायगा। इनका ताप भी दूर हो जायगा। जिस प्रकार वर्षा से भूमि के ताप के शान्त होने पर हल चला कर भूमि में बीज बोये जाते हैं, धान्यरूपी फल प्राप्त किया जाता है, उसी प्रकार इनके दुर्मदरूपी अग्नि के बुझने पर इनके हृदयरूपी भूमि में सदुपदेशरूपी हल चला कर श्रीभगवद्भक्तिरूपी बीज बोया जायगा,

कल्याणकारिता ब्रह्मविच्चरणनिधानस्य । दुर्वादिनां बहुत्वेऽपि तेषां शिरस्सु चरणनिधानपूर्वं तान् सत्पथगान् कर्तुमहमेक एव पर्याप्तः यतोऽहं यतीश्वरसरस्वतीसुरभिताशयानां बहूनां सतां चरणाम्बुजस्य शिरसा धारणादप्रमेयं प्रभावं बिभर्मि । ज्वलित-चेतस एते शुष्ककरीषवत् सुनिरसा इति न मे श्रमः । श्रीभगवन् नामप्रभावेण यमस्य शिरसि पादं निधाय संचराम इति वदन् श्रीभक्ताङ्घ्रिरेणुसूरिरिवाहमपि सच्चरणवहनलब्धबलोदुर्वादिनां शिरस्सुपादं निदधामि । "न विगृह्य कथां कुर्यात्" इति निषेधे सत्येव "यथाशक्ति निगृह्णीयाद्देवतागुरुनिन्दकान्" इति यथा-शक्ति निग्रहस्याभ्यनुज्ञातत्वान्नायं वीरवादोऽपचारः । पश्चानृत-

---

इससे इनको मोक्षरूपी महाफल प्राप्त होगा । इस प्रकार इनका कल्याण ही होगा । ये दुर्वादिगण भले अनेक हों तो भी इनके शिर पर चरण रख कर इनको सत्पथ के अनुयायी बनाने के लिये मैं ही पर्याप्त हूँ । यद्यपि मैं एक हूँ, तथापि हमारे शिर पर अनेक पूर्वाचार्यों के श्रीचरण विराजमान हैं, उनके प्रभाव से मैं ऐसा कर सकता हूँ । इनका हृदय दुर्मद से जल रहा है, अतः ये सूखे गोबर के समान हैं, इनको परास्त करने में हमको अणुमात्र भी क्लेश नहीं । श्रीभक्ताङ्घ्रिरेणु सूरि जी ने अपनी गाथा में कहा कि हम लोग श्री भगवन्नाम के प्रभाव से यमराज के शिर पर चरण रख कर चल रहे हैं, वैसे ही मैं भी कह रहा हूँ कि मैं भी पूर्वाचार्यों के चरणारविन्द को शिर से धारण करता हुआ उसके प्रभाव से प्रतिवादियों के शिर पर चरण रख कर चलूँगा । यद्यपि शास्त्र में कहा गया है कि "न विगृह्य कथां कुर्यात्" अर्थात् विरोध बढ़ा कर शास्त्रार्थ न करना चाहिये । तथापि शास्त्र में ही अन्यत्र कहा गया है कि "यथाशक्ति निगृह्णीयाद्देवतागुरुनिन्दकान्" अर्थात् देवता और

भजस्व यतिभूपतेरनिदमादिदुर्वासना-
कदध्वपरिवर्तनश्रमनिवर्तिनीं वर्तनीम् ।
लभस्व हृदय स्वयं रथपदायुधानुग्रह-
द्रुतप्रहृतिनिस्त्रुटद्दुरितदुर्वृतिं निर्वृतिम् ॥४२॥

*"हे हृदययतिभूपतेरनिदमादिदुर्वासनाकदध्वपरिवर्तनश्रम-निवर्तिनीं वर्तनीं भजस्व" हे हृदय! तव हितं कथयामि, हे हृदयस्य प्रिया अन्तरङ्गाः। युष्माकं हितं वच्मि, अवहिताः शृणुत। सदा पुष्पफलाढ्यश्छायाप्रदः कश्चिदारामो वर्तते, एका लघ्वी वर्तनी तं प्रापयति, मार्गस्यारामस्य च मध्ये दुर्वृतिः

हृदय—हे हृदय, *यतिभूपतेरनिदमादिदुर्वासनाकदध्वपरिवर्तनश्रमनिवर्तिनीं वर्तनीं*—चिरकालीन दुर्वासना रूपी कुमार्ग से चलते रहने के दुख को दूर करने वाले यतिराज के मार्ग को, *भजस्व*—ग्रहण करो। *रथपदायुधानुग्रहद्रुतप्रहृतिनिस्त्रुटद्दुरितदुर्वृतिं*—चक्रधारी भगवान् के अनुग्रह रूप तीव्र आघात के द्वारा पापों का छेदन कर, *निर्वृतिं*—मोक्ष को, *लभस्व*—प्राप्त करो।

"हे हृदय यतिभूपतेरनिदमादिदुर्वासनाकदध्वपरिवर्तनश्रमनिवर्तिनीं वर्तनीं भजस्व"—श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि हे मन! मनके समान अन्तरङ्ग सज्जनों! मैं आप लोगों को हित बताता हूँ, सावधान होकर सुनिये। प्रथमतः दृष्टान्त बताता हूँ। एक सुन्दर आराम (बगीचा) है उसमें पुष्प और फल भरे हैं, वहाँ सब को छाया मिल सकती है। एक पगडंडी के रास्ते से ही वहाँ पहुँचना होगा, परन्तु दुष्टों ने बीच में कण्टकमय जाल लगा दिया, इससे वह पगडंडी बन्द होगयी, उसमें

प्रतिबन्धिका कैश्चिन्निर्मिता वर्तते, अतस्तेन मार्गेण स आरामः प्राप्तुं न शक्यते। लोकः कदध्वना संचरन् परिभ्राम्यन् तमाराममप्राप्य क्लिश्यते। अस्मिन्नवसरे सम्राजोऽन्तरङ्गः कश्चिद्राजा तेन मार्गेण तमारामं प्रेप्सन् तस्मिन् पथि कण्टकान् शोधयति, तेन मार्गेण यियासति, अन्तरङ्गस्य राज्ञस्तेन मार्गेण तदारामप्रेप्सां विज्ञाय सम्राजो भृत्यैर्वृतौ निस्त्रोटितायां राजा तदीयाश्च जनास्तेन मार्गेणारामं प्राप्य तत्रामितमानन्दमनुभवन्ति। अयं दृष्टान्तः। अस्य दार्ष्टान्तिको यथा सदा स्वरूपरूपगुणविभवाढ्यः संश्रितानां छायाप्रदः संश्रितेभ्यः स्वरूपविकासपूर्वकं दायभाग-

---

तृण उग गये, मार्ग का पता ही नहीं चलता। सामान्य जनता उस आराम में पहुँचने के लिये निकलती है पगडंडी का पता न होने से अनादि दुर्वासना वश अन्यान्य दुर्मार्गों में चलती है, चलते चलते थक जाती है, अन्त में घोर कान्तार में पहुंच कर नाना विध कष्टों को भोगती है। एक समय उसी आराम के स्वामी सम्राट के अत्यन्त अन्तरङ्ग एक राजा उस आराम में पहुंचने के लिये उस प्राचीन पगडंडी से चलने के लिये तैय्यारी करता है मार्ग साफ किया जाता है इस राजा की उत्कण्ठा को देखकर प्रसन्न सम्राट से भेजे गये भृत्य उस कण्टकमय जाल को काट कर हटा देते हैं, राजा अपने अनुयायियों के साथ उस पगडंडी से जाकर उस आराम में पहुँचते हैं, वहाँ छाया पुष्प और फलों का अनुभव करते हुये आनन्द से रहते हैं। राजा के भृत्य जनता से कहते हैं कि राजा से साफ की हुई इस पगडंडी से उस आराम में पहुँचकर आनन्दानुभव करो। यही बात मैं आप लोगों से भी कहता हूँ। परमपद ही वह आराम (बगीचा) है जहाँ जाने पर सब को आराम मिलता है, उसे आनन्दमय लोक कहते हैं वहां पहुँच कर सभी ब्रह्मानन्द

न्यायेन स्वतः प्राप्तस्य स्वानुभवानन्दस्य प्रदाता श्रीभगवानेव स आरामः। श्रीशठकोपसूरेरारभ्य एकैकक्रमेणागतः श्रीसंप्रदाय एव तत्प्रापिका वर्तनी। श्रीसंप्रदायरूपस्य सत्पथस्य श्रीभगवद्रूपस्यारामस्य च मध्ये पापरूपा दुर्वृत्तिः प्रतिबन्धिका वर्तते। अतस्तेन मार्गेण श्रीभगवद्रूपमारामं प्राप्तुमपारयन् लोकोऽनादि-दुर्वासनाबलाद्दुःसंप्रदायरूपैर्दुर्मार्गैस्संसारकान्तारं प्राप्य यातना

का अनुभव करते हैं। वहाँ पहुँचे हुये लोगों को श्रीभगवान् की चरण छाया में आश्रय मिलता है। श्रीभगवान् के कल्याण गुण वहाँ पुष्प के समान विकसित होते हैं। उनकी अनुभवरूपी सुगन्धि वहाँ फैल रही है। आनन्दमय श्रीभगवान का अनुभव ही दिव्य मधुर फल है, उसका आस्वाद वहाँ जाने पर मिलता है। वहाँ जाने के लिये जो पगडंडी मार्ग है वह वेद मार्ग ही है, वेद मार्ग को पगडंडी इस लिये कहा जाता है पगडंडी में एक के पीछे एक होकर मनुष्य चल सकते हैं। वेद मार्ग में भी एक गुरु के पीछे एक शिष्य उसके पीछे दूसरा शिष्य इस तरह से वैदिक लोग चलते हैं। गुरु शिष्य परम्परा से यह वेद मार्ग तय किया जाता है। अतः वेद मार्ग पगडंडी मार्ग माना जाता है। इस वेद मार्ग से ही उस परमपदरूपी आराम में मनुष्य पहुंच सकते हैं। काम क्रोध लोभ मोह मद और मात्सर्यरूपी छः शत्रुओं ने परमपद और वेदमार्ग के बीच में दुःखरूपी कण्टकों से व्याप्त पापरूपी जाल को बिछा दिया। अतः परमपद पहुँचाना असंभव होगया। वेदमार्गरूपी पगडन्डी भी धीरे धीरे लुप्त होने लगी। जनता को आनन्द को प्राप्त करने की सहज लालसा है, अतः जनता आनन्द को प्राप्त करने के लिये निकली। श्री वेदमार्गरूपी पगडंडी का पता न चलने से अनादि दुर्वासना से अनेक दुर्मतरूपी दुर्मार्गों में चलती है, चलते चलते थक

अनुभूय क्लिश्यते अस्मिन् अवसरे सम्राजः श्रीमन्नारायणस्यान्तरङ्गे श्रीयतिराजे कण्टकशोधनं कृत्वा तया वर्तन्या श्रीभगवद्रूपमारामं गन्तुमुद्युक्ते श्रीयतिराजस्येच्छां विज्ञाय सम्राजा श्रीमन्नारायणेन प्रेरितेन अनुग्रहसंकल्परूपेण श्रीसुदर्शनेन दुरितरूपायां दुर्वृतौ छिन्नायां श्रीभाष्यकारस्तदनुयायिनश्च तेन मार्गेण

जाती है, अन्त में संसाररूपी कान्तार में प्रवेश कर तापत्रय का अनुभव करती है। उस परमपदरूपी आराम के स्वामी हैं सम्राट श्रीभगवान। श्रुति कहती है कि "एषब्रह्मलोकः सम्राडिति होवाच" अर्थात् परब्रह्म सम्राट हैं। महर्षि कहते हैं कि "राजाधिराजः सर्वेषां विष्णुर्ब्रह्ममयो महान्। ईश्वरं तं विजानीमः स पिता स प्रजापतिः॥" अर्थात् परब्रह्म श्रीविष्णु भगवान् राजाओं के भी राजा हैं, उन्हें हम लोग ईश्वर मानते हैं, वे ही पिता हैं वे ही प्रजापति हैं। इन वचनों से सिद्ध हुआ कि श्रीभगवान् सम्राट हैं। श्रीभगवान् ही उस परमपदरूपी बगीचे के स्वामी हैं। सम्राट श्रीभगवान के अत्यन्त अन्तरङ्ग हैं श्रीयतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी अपने अनुयायियों के साथ श्री वेदमार्गरूपी पगडंडी से चलकर परमपदरूपी आराम में पहुंचने का प्रयत्न करते हैं। वेदमार्गरूपी पगडंडी में उगे हुये दुष्ट सिद्धान्तरूपी तृण उखाड़े जाते हैं गलत धारणारूपी कण्टक और कंकड़ हटाये जाते हैं। वेदमार्गरूपी पगडंडी साफ हो जाती है। यतिराज श्रीरामानुज स्वामी जी अनुयायियों के साथ परिष्कृत वेदमार्गरूपी पगडंडी में चलते हुये सम्राटरूपी श्रीभगवान से शरणागतिरूपी सूचना देते हुये प्रार्थना करते हैं कि मैं अनुयायियों के साथ श्रीमान के परमपदरूपी आराम में पहुँचने के लिये वेदमार्गरूपी पगडंडी में आरहा हूँ, हम सब आपके शरण हैं। वेदमार्गरूपी पगडंडी और परमपदरूपी आराम के बीच में काम क्रोध इत्यादि

श्रीभगवद्रूपमारामं प्राप्य तत्र ब्रह्मानन्दमनुभवन्ति यदि यूयमपि तथाविधमानन्दमनुबुभूषत तर्हि श्रीभाष्यकारेण यतीन्द्रेण कण्टकशोधनं कृत्वा प्रवर्तितं सत्संप्रदायरूपं सन्मार्गं भजध्व-मिति। हे हृदय सन्निभा अन्तरङ्गाश्च। अनादेः कालाद् दुर्वा-सनाऽनुवर्वते। अतएव तादृशवासनाबलादन्यान्यदुर्मतरूपेषु दुर्मार्गेषु परिभ्रम्य "पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्" इति यातना

शत्रुओं से दुःखमय कण्टकों से व्याप्त पापरूपी जाल बिछाया गया है। उसको काटना हमारी शक्ति के बाहर है, वह श्रीमान् के अनुग्रहरूपी भृत्य से कट सकता है, अतः श्रीमान अनुग्रहरूपी भृत्य से उसे कटवाकर हम लोगों को परमपदरूपी आराम में पहुँचने के लिये सहायता करें। श्रीरामानुज स्वामी जी की शरणागति पूर्वक इस प्रार्थना को सुनकर चक्रपाणि श्रीभगवान प्रसन्न होकर अनुग्रहरूपी भृत्य को भेजते हैं उसके आते ही पापरूपी जाल कट जाता है। श्रीरामानुज स्वामी जी श्रीभगवान की सहायता से वेदमार्ग से परमपदरूपी आराम में पहुँचकर अपने अनुयायियों के साथ ब्रह्मानन्द का अनुभव करते हैं। जाते समय श्रीरामानुज स्वामी जी उत्तरकाल में होने वाले अनुयायियों को भी अपने द्वारा परिष्कृत वेदमार्ग रूपी पगडंडी से परमपद आने के लिये आदेश दे गये हैं। अतः कहते हैं कि हे हृदय! हे हृदय के समान अन्तरङ्ग सज्जनों! आप लोग श्रीरामानुज स्वामी जी से परिष्कृत वेद-मार्गरूपी पगडंडी पकड़ने के लिये प्रयत्न कीजिये तभी आनन्द को प्राप्त करेंगे।

हे हृदय! हे हृदय के समान अन्तरङ्ग सज्जनों! मेरे इस सदुपदेश को सुनें। अनादिकाल के दुर्वासना दृढ़ होती आरही है। इन दुर्वास-नाओं के कारण ही अन्यान्य दुर्मतरूपी दुर्मार्गों में घूमकर "पुनरपि

अनुभूय भवन्तः परिश्रान्ता वर्तन्ते अयं परिश्रमः श्रीभाष्यकारेण कण्टकशोधनं कृत्वा प्रहते सत्संप्रदायरूपे सन्मार्गे आरूढे सत्येव निवर्तेत नान्यथा। यथा वर्तन्यां त्यक्तायां ततो निपत्य कण्टकशर्करादिविद्धैः क्लेशोऽनुभोक्तव्यो भवति, तथा श्रीभाष्यकारसंप्रदाये त्यक्तेऽपि दुर्दशाऽनुभोक्तव्या भवेत्। अतः श्रीभाष्यकारप्रहतां वर्तनीं भजध्वम्। तथा सत्येव सुखं लभेध्वम्। तदाश्रयणे सुखप्राप्तिप्रकारमाह—

*"रथपदायुधानुग्रहद्रुतप्रहतिनिस्त्रुटद्दुरितदुर्वृतिनिर्वृतिं स्वयं लभस्व" ब्रह्मानन्दरूपानिर्वृतिर्दायभागन्यायेन सूरिवद्बद्धजीवानामपि स्वतः प्राप्ता, परं तु दुरितरूपादुर्वृतिदुष्टमावरणं

जननं पुनरपि मरणम्" इस प्रकार अनन्त यातनाओं के भोगते हुये आप लोग थक गये हैं। श्रीयतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी द्वारा कण्टकों और कंकडों को निकाल कर परिष्कार किये गये श्रीमद्वेदमार्ग रूपी सत्पथ में चलने पर ही यह परिश्रम दूर होगा, अन्यथा नहीं। जिस प्रकार पगडंडी से हटते ही पथिक कण्टकों से बिध जाते हैं, वैसे वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी से प्रवर्तित वेदमार्ग से हटते ही नाना प्रकार की दुर्दशा भोगनी पड़ेगी। अतः उसी वेदमार्ग में चलने के लिये सन्नद्ध हो जाइये। इस मार्ग से जाने पर अन्त में आनन्द कैसे प्राप्त होगा, बताते हैं।

तं प्रतिबध्नाति, प्रतिबन्धकनिवृत्तिरेव साधनीया । इमानि अनन्तानि अनादिकालार्जितानि दुरितानि न प्रतिपदोक्त प्रायश्चित्तैर्विनाशयितुं शक्यन्ते, न वा भोगेन क्षपयितुं शक्यन्ते, किंतु श्रीभगवदनुग्रहेणैव त्रोटनीयानि । श्रीभाष्यकारसंप्रदाय-रूपेण सन्मार्गेण गमने क्रियमाणे रथपदायुधश्चक्रायुधधारी महा-वीरः श्रियः पतिरनुगृह्णीयात् अवीरस्यानुग्रहोऽकार्यकरः स्यादपि, अयं तु चक्रपाणिः परमवीरः, अस्यानुग्रहोऽवश्यं कार्यं कुर्यात् । श्रीभगवदनुग्रहाविर्भावात् प्राक् अतिमहतउत्पातान् कृतवन्ति दुरितानि श्रीभगवदनुग्रह आसन्ने चक्रपाणिं श्रीभगवन्तं दृष्ट्वा स्वयमेव पलायेरन्, यथा सावेगमायुधेन प्रहृते वृतिः खण्डिता भवति, तथा चक्रायुधस्यानुग्रहसंकल्पे प्रवृत्ते स्वतः प्राप्तानन्दस्य

सब जीवों का अधिकार है। नित्यसूरिगण और मुक्त लोग ब्रह्मानन्द का अनुभव करते हैं, वैसे ही बद्ध जीवों को भी अनुभव करना चाहिये। किंतु क्या करें, प्रतिबन्धक बलवान है, इसलिये अनुभव नहीं मिलता है। अनादिकाल से किये गये नाना विध पाप ही कण्टकमय जाल की तरह प्रतिबन्ध करते हैं। ये अनन्त पाप न प्रायश्चित्तों से ही मिटाये जा सकते हैं, न भोग कर ही मिटाये जा सकते हैं कब तक भोगें पाप अनन्त हैं, अनन्तकाल तक भोगें तब शायद ही मिटें। इससे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं, श्रीभगवान के अनुग्रह से यह पापरूपी जाल कटेगा, वीर का अनुग्रह व्यर्थ नहीं जायगा, चक्रायुधधारी श्रीभगवान् अद्वितीय वीर हैं। श्रीभगवान् के अनुग्रह के आविर्भाव के पूर्व ये पाप नाना प्रकार के दुःख देते थे, श्रीभगवान् के अनुग्रह का समय उपस्थित होने पर चक्रपाणि श्रीभगवान को देखकर ये पाप अपने आप मिट जायेंगे। जिस प्रकार आयुध से जाल काटा जाता है, उसी प्रकार

वृत्तिवत् प्रतिबन्धकानि स्थितानि दुरितानि नश्यन्ति, प्रतिबन्धकेषु निवृत्तेषु राहुनिर्मुक्तं चन्द्रं ज्योत्स्नेव प्रतिबन्धके निवर्तिते जलं स्वतः एव निम्नभूमिमिव जीवात्मानं स्वत एव ब्रह्मानन्दरूपा निर्वृतिः परिष्वजते। अतो दुर्मतेष्वप्रविश्य श्रीभाष्यकारसंप्रदायमाश्रित्य महानन्दं प्राप्नुत। एष आदेशः एष उपदेशः ॥४२॥

पूर्वश्लोकेषु मतान्तरग्रन्थानां निःसारत्वं श्रीभाष्यकार-श्रीसूक्तीनां सारभूतत्वं च यदुक्तं तत्कथं संगच्छेत? भूयसां स्याद्बलीयस्त्वमिति न्यायमवलम्ब्य विचारे क्रियमाणे मतान्तर-

---

श्रीभगवान के अनुग्रह से ये प्रतिबन्धक पाप काटे जायेंगे। इस प्रकार प्रतिबन्धक पापों के कटते ही जीवात्मा को ब्रह्मानन्दरूपी विमल आनन्द प्राप्त होगा, जिस प्रकार राहु के पंजे से छूटे हुए चन्द्रमा को चन्द्रिका आलिंगन करती है जिस प्रकार बाँध टूटने पर जल स्वतः नीचे की ओर चलता है, उसी प्रकार पाप के कटते ही जीवात्मा को ब्रह्मानन्द वरण करेगा। अतः दुर्मतों में प्रविष्ट न होकर श्रीभाष्यकार स्वामी जी के श्रीसंप्रदायरूपी सत्पथ पर आरूढ़ हो जाइये। उस सत्पथ में जाकर ब्रह्मानन्द का अनुभव कीजिये। यही मेरा उपदेश है। इस प्रकार श्री देशिक स्वामी जीने अपने मन और मन के समान अन्तरङ्ग सज्जनों को समझाया ॥४२॥

ग्रन्थानां बहुत्वान्मतान्तराणां समीचीनत्वं श्रीभाष्यकारग्रन्थाना-मल्पत्वाच्छ्रीभाष्यकारमतस्यासमीचीनत्वं च सिद्ध्यतीत्याशङ्कायाअल्पत्वबहुत्वेन समीचीनत्वासमीचीनत्वयोः प्रयोजके प्रामाणिकत्वाप्रामाणिकत्वे एव तत्र प्रयोजके अन्यथा कौस्तुभमणिमेकस्यां घटायां कुलगिरिमपरस्यां घटायां निवेश्य सन्तोलने क्रियमाणे गौरवाधिक्यात्कुलाचलस्य महनीयत्वं कौस्तुभस्य लाघवादनुत्कर्षश्च प्रसज्येयाताम् । अतो यथा तत्र तेजस्वित्वतद्भावावेवोत्कर्षानु-

---

उसके विरुद्ध अर्थ को बतलाता है, तो वह अर्थ त्याज्य होगा। उस एकाध वेदवाक्य का गौण अर्थ कर विरोध शान्त किया जायगा। इस मीमांसा न्याय के आधार पर यहाँ निर्णय करना चाहिये। मतान्तरों में ग्रन्थ अधिक हैं, श्रीरामानुज स्वामी जी के मत में ग्रन्थ अल्प हैं, श्रीरामानुज स्वामी जी ने नौ ही तो ग्रन्थ बनाये। वे ग्रन्थ भी लघुकाय हैं। ऐसी स्थिति में असंख्य ग्रन्थों से बतलाये जाने वाले मतान्तर ही समीचीन सिद्ध होंगे। अल्प ग्रन्थों से प्रमाणित श्रीरामानुज स्वामी जी का मत असमीचीन सिद्ध हो सकता है। इसका उत्तर यह है कि ग्रन्थ अल्प होने के कारण किसी मत की असमीचीनता नहीं माननी चाहिये तथा ग्रन्थ अधिक होने के कारण ही किसी मत को समीचीन न मानना चाहिये। प्रमाणों पर आधारित न होने पर किसी मत को असमीचीन माना जायगा। यहाँ पर यह उदाहरण ध्यान देने योग्य है। एक तुला में एक पलड़े में कौस्तुभमणि को रख कर दूसरे पलड़े में कुल पर्वत को रख कर यदि तोला जाय तो कुल पर्वत भारी सिद्ध होगा, कौस्तुभमणि हलका सिद्ध होगा। क्या इतने मात्र से कुल पर्वत का उत्कर्ष और कौस्तुभमणि का निकर्ष ठहराना उचित होगा ? कभी नहीं। अधिक तेज वाला होने के कारण कौस्तुभमणि का उत्कर्ष मानना उचित होगा, सर्वथा तेज से

त्कर्षप्रयोजकौ स्वीकार्यौ, तद्वदिह प्रामाणिकत्वतदभावावेव समीचीनत्वासमीचीनत्वप्रयोजकौ स्वीकार्याविति परमप्रामाणिकस्य श्रीभाष्यकारमतस्य श्रैष्ठ्यं सिध्यतीत्युत्तरमभिप्रेत्याह—

कुमतिविहितग्रन्थग्रन्थिप्रभूतमतान्तर-
ग्रहिलमनसः पश्यन्त्यल्पां यतीश्वरभारतीम् ।
विकटमुरभिद्वक्षः पीठीपरिष्करणोचितः
कुलगिरितुलारोहे भावी कियानिवकौस्तुभः ॥४३॥

हीन होने के कारण कुल पर्वत का निकर्ष मानना उचित होगा। वैसे ही प्रमाणों पर आधारित होने के कारण श्रीभाष्यकार स्वामी जी के स्वल्पकाय ग्रन्थों का भी उत्कर्ष मानना उचित होगा। मतान्तर के ग्रन्थ प्रमाणों पर आधारित नहीं हैं, किंतु कल्पना पर आधारित हैं यह बात विद्वानों से छिपी नहीं है। अतः मतान्तर के अनेक ग्रन्थों को भी महत्व नहीं दिया जा सकता। इस उत्तर को व्यक्त करते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि—

कुमतिविहितग्रन्थग्रन्थिप्रभूतमतान्तरग्रहिलमनसो—जिन लोगों के मन कुत्सित बुद्धि वाले लोगों के द्वारा बनाये गये ग्रन्थरूपी ग्रन्थियों पर आधारित मतान्तरों में फंसी हुई है वे, *यतीश्वरभारती*—यतिराज की वाणी को, *अल्पां पश्यन्ति*—कम समझते हैं। *विकटमुरभिद्वक्षः पीठीपरिष्करणोचितः कौस्तुभः*—किन्तु श्रीमन्नारायण के विशाल वक्षःस्थल पर सुशोभित होने वाली कौस्तुभ मणि की, *कुलगिरितुलारोहे*—कुल पर्वत के साथ तुलना किये जाने पर, *कियानिवभावी*—क्या स्थिति होगी? अर्थात् कुल पर्वत की अपेक्षा बहुत छोटे होने पर भी कौस्तुभ मणि का महत्व कहीं अधिक है।

*"कुमतिविहितग्रन्थग्रन्थिप्रभूतमतान्तरग्रहिलमनसो यतीश्वर-भारतीमल्पां पश्यन्ति" कुमतिभिः कुत्सितमतिभिः प्रमाणान्यननुसृत्य स्वबुद्ध्याऽर्थकल्पनानि कृत्वा तानर्थान् संग्रथ्य ग्रन्थरूपा ग्रन्थयो ग्रथिता वर्तन्ते। ते ग्रन्था सुमतिभिर्विरचिता यद्यभविष्यन्, तर्हि प्रमाणाननुसारित्वेऽपि स्ववचनविरोधादिदोषरहिता वापि स्युः परंतु कुमतिकल्पितत्वात् एते ग्रन्थाः प्रमाणविरुद्धा लोकन्यायविरुद्धा स्ववचनविरुद्धाश्च वर्तन्ते। एवं भूतग्रन्थिभिर्मतान्तराणि प्रभूतानि स्थूलानि वर्तन्ते। सांख्यबौद्धमृषावादिप्रभृतिमतान्तराणां स्वबुद्धिकल्पितत्वादुपर्युपर्यापततां दोषाणां समाधानार्थं स्वमतानामुपोद्वलनार्थं च बहूनां ग्रन्थानां प्रणय-

---

"कुमतिविहितग्रन्थग्रन्थिप्रभूतमतान्तरग्रहिल मनसो यतीश्वरभारतीमल्पां पश्यन्ति"—मतान्तर के अनुयायी विद्वानों की बुद्धि दूषित है, अतएव वे प्रमाणों का अनुसरण न कर अपनी बुद्धि से नये २ अर्थों की कल्पना करते हैं, उन कल्पित अर्थों को एकत्र करने के लिये ग्रन्थ बनाते हैं। इस प्रकार उन लोगों ने अनेक ग्रन्थ बना डाले। यदि ये सुबुद्धि वाले विद्वानों से बनाये गये होते तो इनमें प्रमाणों का अनुसरण न होने पर भी स्ववचन विरोध इत्यादि दोष तो स्थान नहीं पाते। अपनी बात को अपनी बात से ही काटना स्ववचन विरोध कहा जाता है। परन्तु दूषित बुद्धि वाले विद्वानों द्वारा निर्मित होने के कारण ये ग्रन्थ प्रमाणों से विरोध रखते हैं तथा लोकन्याय और अपने वाक्यों से भी विरोध रखते हैं। मतान्तरों में ग्रन्थ बढ़ने का कारण यह है कि उन मतों में प्रमाण बल नहीं हैं, वे मत केवल कल्पना पर आधारित हैं, अधिक कल्पना में समर्थ विद्वद्गण जब उन मतों में दोषों को दिखलाकर खण्डन करते हैं तब उन मतों के अनुयायियों को दोषों

नान्मतान्तराणि स्थूलकायानि जातानि, ग्रन्था ववृधिरे मतानि स्थूलानि संपेदिरे परंतु दोषाणां समाधानं तु न बभूव। एवं भूतेषु मतान्तरेषु ग्रहिलमनस आग्रहयुक्तमनस्का यतीश्वरभारतीं यतिराजवाणीमल्पां पश्यन्ति । पिशाचाक्रान्तमनस्का इव वर्तमाना एते दुर्मताक्रान्तमनस्का मतान्तरग्रन्थापेक्षया श्रीयतिराजग्रन्थानामल्पत्वात् एषां श्रैष्ठ्यं नास्तीति प्रतिपद्यन्ते। ते इयं यतीश्वरस्य भारतीति अस्या महिमानं न प्रतिपद्यन्ते। बहुभिर्जनैर्बहुषु वाक्येषूक्तेष्वपि जनेश्वरो राजा सारभूतमेकमेव वाक्यं वक्ति, तच्च वाक्यं नानाजनोदाहृतनानावाक्यानां यथा प्रत्युत्तरं भवति, तथैव यतिराजेनोक्ताऽल्पापि भारती मतान्तरीय-

---

का समाधान के लिये तथा अपने मत को पुष्ट करने के लिये भी नित्य नये २ ग्रन्थों का निर्माण करना पड़ता है। इस प्रकार मतान्तरों में ग्रन्थ बढ़ने लगे उनका साहित्य स्थूलकाय होने लगा, परन्तु प्रमाणों के आधार पर दिये गये दोषों का समाधान तो हुआ ही नहीं। इस प्रकार के सांख्य बौद्ध और अद्वैत इत्यादि मतों में जिन लोगों का मन आग्रह के साथ फंस गया, वे लोग यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी की वाणी को अल्प समझते हैं। लोक में देखा जाता है कि जिनका मन पिशाच से आक्रान्त हो जाता है उनकी समझ गलत होती है। इन परवादियों का मन दुर्मतों से आक्रान्त हो गया, अत वे लोग समझते हैं कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थ अल्प हैं अतः श्रेष्ठ नहीं हैं। इन लोगों की यह धारणा गलत है। इन लोगों को यह समझने की शक्ति नहीं कि यह वाणी श्रीयतिराज की है इसका महत्व कितना होना चाहिये। जनता अनेक प्रकार की बातें करती है, परन्तु राजा एक ही बात करता है, वह एक ही राजा का वाक्य जनता के अनेक वाक्यों के लिये उत्तर

ग्रन्थानां सर्वेषां प्रत्युत्तरं भवति। इदं रहस्यमविद्वांस एते यतीश्वरभारत्या उत्कर्षं न प्रतिपद्यन्ते।

*"विकटमुरभिद्वक्षः पीठीपरिष्करणोचितः कौस्तुभः कुलगिरितुलारोहे कियानिव भावी" मुरभिदो विशाला वक्षः पीठी श्रियो लीलागृहायते, लीलागृहं चन्दनकर्पूरादिभिरनुलिप्तं सौरभमुद्गिरति, इयं वक्षः पीठी अपि चन्दनकर्पूरादिभिरनुलिप्ता सौरभं विस्तारयति, लीलागृहे रमणीयं पुष्पशयनमास्तृतं वर्तते, अत्रापि मल्लिकामालतीप्रभृतिपुष्पमालारूपं शयनमास्तृतं वर्तते,

---

होजाता है, अन्त में राजा का वाक्य ही सिद्धान्त रूप में टिकता है, वैसे ही श्रीयतिराज की स्वल्प वाणी भी मतान्तर के ग्रन्थों का उत्तर बन जाती है, अन्त में सिद्धान्त रूप में टिकती है। इस मर्म को प्रतिवादिगण नहीं समझते हैं, अतएव यतिराज की वाणी के उत्कर्ष को हृदयङ्गम नहीं करते हैं।

"विकटमुरभिद्वक्षः पीठीपरिष्करणोचितः कौस्तुभः कुलगिरितुलारोहे कियानिवभावी"—श्रीभाष्यकार स्वामी जी की वाणी का उत्कर्ष अब दृष्टान्त से समझाया जाता है। श्रीभगवान् ने मुर नामक असुर का वध किया अतः वे मुरभिद् कहलाये। श्रीभगवान के वक्षःस्थल में श्रीमहालक्ष्मी जी विराजती हैं। अतः श्रीभगवान् का वक्षःस्थल श्रीमहालक्ष्मी के विराजने का पीठ है एक प्रकार से श्रीमहालक्ष्मी का लीलागृह है। श्रीमहालक्ष्मी जी श्रीभगवान् की पट्टमहिषी है। पट्टमहिषी का लीलागृह चन्दन और कपूर के लेप से सुगन्धित रहता है, वैसे ही श्रीभगवान् के वक्षःस्थल भी चन्दन और कपूर के लेप से सुगन्धित हो रहा है। पट्टमहिषी के लीलागृह में सुन्दर पुष्प शयन बिछा रहता है, श्रीभगवान् के वक्षःस्थल में सुगन्धित मल्लिका और मालती इत्यादि

लीलागृहे रत्नसरा लम्बमानाः शोभां वर्धयन्ति, अत्रापि रत्नसरा लम्बमानाः शोभां वर्धयन्ति, लीलागृहं रङ्गवल्लिकाभिश्चित्रितं वर्तते, इदमपि असुरवृषभशृङ्गोल्लेखजरेखाभिश्चित्रितं वर्तते, इत्थं मुरभिद्वक्षः पीठ्या लक्ष्मीलीलागृहत्वे उपपद्यमानेऽपि एका न्यूनता वर्तते, लीलागृहेमङ्गलप्रदीपः प्रज्वलति, अत्र किमितिचेत् अत्रापि कौस्तुभरूपोनित्यदीप्तो मङ्गलप्रदीपश्चकास्ति, कौस्तुभ इमामपि न्यूनतां समाधत्ते । एवं भूतोऽतिपराक्रमशालिनो मुरभिदः श्रीमहालक्ष्मीनित्यनिवासपीठायमानस्य वक्षस्स्थलस्य शोभावहो महनीयः कौस्तुभ एकस्यां घटायां तरुपाषाणमयः कुलगिरिश्चा-

---

पुष्पों की मालारूपी शय्या बिछी रहती है। लीलागृह में रत्नों की लड़े लटकती हुई शोभा को बढ़ा रही है, श्रीभगवान् के वक्षःस्थल में भी रत्नों की लड़े लटकती हुई शोभा को बढ़ा रही हैं, लीलागृह रङ्गवल्लियों से अलंकृत रहता है श्रीभगवान् के वक्षःस्थल में श्रीवृषभ रूप को धारण करने वाले अनेक असुरों ने अपने सींगों से नाना प्रकार की रेखा खिचवाई ये रेखायें ही रङ्गवल्ली के रूप में भगवान् के वक्षःस्थल को अलंकृत कर रही हैं। इस प्रकार लीलागृह के सब लक्षण श्रीभगवान् के वक्षःस्थल में घटित हो जाते हैं। लीलागृह में सर्वदा मङ्गलदीप चमकता रहता है, श्रीभगवान् के वक्षःस्थल में ऐसा कौन पदार्थ चमकता है यह प्रश्न उठता है ? कौस्तुभमणि से इस प्रश्न का उत्तर मिल जाता है क्योंकि कौस्तुभमणि श्रीभगवान के वक्षःस्थल में मङ्गलदीप की तरह सर्वदा चमकता रहता है। इस प्रकार कौस्तुभमणि उस न्यूनता का समाधान करता है। इस प्रकार श्रीमहालक्ष्मी के लिये लीलागृह बनने वाले श्रीभगवान् के वक्षःस्थल की शोभा बढ़ाने वाले कौस्तुभमणि को तराजू में एक पलड़े में रख कर कुल पर्वत को दूसरे पलड़े में रख

परस्यां घटायां निक्षिप्य संतोल्येयातां चेत् कौस्तुभः कियानिव भावी, कुलाचलोऽतिगुरुः कौस्तुभश्चातिलघुः सिध्येत् । किं तावता कुलाचलस्योत्कर्षः कौस्तुभस्यनिकर्षो वा सिद्ध्येत् ? यथा तत्र तेजस्वित्वतदभावाभ्यामेव कौस्तुभकुलाचलयोरुत्कर्षनिकर्षौ रत्नपरीक्षका अवधारयन्ति, तथाऽत्र मतान्तरग्रन्थानां बहुलत्वेऽपि श्रीभाष्यकारश्रीसूक्तीनामल्पत्वेऽपि प्रमाणमूलत्वतदभावाभ्यामेव मतान्तराणामनुत्कर्षं श्रीभाष्यकारमतस्योत्कर्षं च प्रमाणतन्त्रा अवधारयन्तीति भावः ॥४३॥

इत्थं श्रीभाष्यकारश्रीसूक्तेः श्रेष्ठत्वे तां मतान्तरस्थाः किमिति

कर यदि तोला जाय तो कौस्तुभमणि कितना होगा । वजनदार कुलाचल पाताल को छुयेगा, हलका कौस्तुभमणि आकाश को छुयेगा । क्या इतने से कुल पर्वत का उत्कर्ष और कौस्तुभमणि का निकर्ष ठहराना युक्ति संगत होगा । कदापि नहीं । परंतु रत्नों की परीक्षा करने वाले जौहरी लोग यह निश्चित करते हैं कि तेजस्वी होने से कौस्तुभमणि उत्कृष्ट है, तेज रहित होने से कुलाचल निकृष्ट है । रत्न परीक्षकों का यह निर्णय ही युक्ति युक्त माना जायगा । वैसे ही यहाँ पर भी समझना चाहिये । चाहे ग्रन्थ अधिक हों या कम हों, उससे कोई प्रयोजन नहीं । परंतु प्रमाणों पर आधारित जो ग्रन्थ हैं वे उत्कृष्ट हैं, जो ग्रन्थ प्रमाणों पर आधारित नहीं है वे उत्कृष्ट नहीं । यही विवेकी सज्जनों की धारणा है । इस धारणा के अनुसार प्रमाणरूपी कसौटी में कसने पर ठीक उतरने वाली श्रीभाष्यकार स्वामी जी की वाणी वस्तुतः उत्कृष्ट है । यह विवेकी विद्वानों का मत है ॥४३॥

पूर्व श्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी ने कहा कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी की वाणी कौस्तुभमणि की तरह अत्यन्त उत्कृष्ट है । यह शङ्का

न परिगृह्णन्तीत्यत्र वेदार्थनिर्णायिकाया यतीश्वरभारत्या मतान्तरस्थैः कुमतिफणितिभिः क्षुब्धैर्मत्तजनैः प्रशंसनं तिरस्करणं चाकिञ्चित्करमित्युत्तरं सदृष्टान्तमनेन श्लोकेनाह—

स्थविरनिगमस्तोमस्थेयां यतीश्वरभारतीं
कुमतिफणितिक्षोभक्षीवाः क्षिपन्तु भजन्तु वा ।

होती है कि यदि श्री भाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति वास्तव में श्रेष्ठ है तो परमतस्थ विद्वान लोग उसे क्यों ग्रहण नहीं करते हैं ? इस शंका के उत्तर में श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी की वाणी वस्तुतः श्रेष्ठ ही है क्यों कि अनादि वेदों के परस्पर विरुद्ध वाक्यों से जहाँ अर्थों में सन्देह होता है, वहाँ श्रीभाष्यकार स्वामी जी की वाणी ही न्यायों का निरूपण कर सन्देहों को दूर करती हुई अर्थों का निर्णय करती है। एवं विध वाणी का महत्व स्वतः सिद्ध है। परमतस्थ विद्वान् उन्हीं ग्रन्थों के मनन में ही तल्लीन रहते हैं जिन ग्रन्थों को उनके प्रतिष्ठापक आचार्यों ने बनाया। उन ग्रन्थों में उन आचार्यों ने प्रामाणिक अर्थों की उपेक्षा कर अप्रामाणिक काल्पनिक अर्थों का ही वर्णन किया। उन ग्रन्थों के अध्ययन से परमतस्थ विद्वानों की बुद्धि इतनी कलुषित हो गई है जिससे वे उन्मत्त की तरह असंबद्ध प्रलाप करने लग गये हैं, इन उन्मत्त विद्वानों के आदर और अनादर दोनों बेकार हैं, इनके आदर से न श्रीभाष्यकार स्वामी जी की वाणी का उत्कर्ष बढ़ सकता है, न इनके अनादर से श्रीभाष्यकार स्वामी जी की वाणी का निकर्ष हो सकता है, इस उत्तर को श्रीदेशिक स्वामी जी इस श्लोक में दृष्टान्त से विशद करते हुये श्रीभाष्यकार स्वामी जी की वाणी की सहज सिद्ध महिमा का प्रतिपादन करते हैं—

रसपरिमलश्लाघाघोषस्फुटत्पुटभेदनं
लवणवणिजः कर्पूरार्धं किमित्यभिमन्वते ॥४४॥

*"स्थविरनिगमस्तोमस्थेयां यतीश्वरभारतीं कुमतिफणितिक्षोभक्षीबाः क्षिपन्तु भजन्तु वा" वृद्धानां विवादपदानामप्यर्थानां विषये निर्णयं ददानां सर्वविद्यासु निपुणां साक्षाद्विद्याधिदेवतां सरस्वतीमिव वर्तमानां सौन्दर्यसौगन्ध्यसौकुमार्यलावण्ययौवनादि गुणालंकृतां काञ्चिद्राजपुत्रीं दुर्वासनावशादतिकुरूपनीचस्त्रीसंसर्ग-

---

स्थविरनिगमस्तोमस्थेयां—सनातन श्रुति समूह के साथ स्थिर, *यतीश्वरभारतीं*—यतिराज की वाणी को, *कुमतिफणितिक्षोभक्षीबाः*—कुबुद्धि की वाक्चातुरी के कलुष से उन्मत्त दुर्जन लोग, *क्षिपन्तु भजन्तु वा*—चाहे तिरस्कार करें अथवा चाहें माने। *रसपरिमलश्लाघाघोषस्फुटत्पुटभेदनं*—जिसके रस और सुगन्धि की प्रशंसा सारे नगर में फैली हो, *कर्पूरार्धं*—उस कपूर के अंश का मूल्य, *लवणवणिजः*—नमक विक्रेता, *किमित्यभिमन्वते*—क्या जानें ?

मलिनबुद्धयो मत्तजना निन्दन्तु स्तुवन्तु वा तावता तस्या यथा-
नोत्कर्षापकर्षसिद्धिः तथैवात्रापि भाव्यम् । इह यतीश्वरस्य
श्रीभाष्यकारस्य सरस्वती राजपुत्रीव वर्तते । अत्यन्तवृद्धकल्पा
वेदाः अनादित्वात् । नैयायिकैर्यद्वेदस्य पौरुषेयत्वमुच्यते तन्न
स्थाने । वस्तुतो वेदा अपौरुषेयाः अतएव परमवृद्धाः । तैर्वेदैस्त-
त्तत्स्थलेषु जीवेश्वरयोर्भेदाभेदौ ब्रह्मणः सगुणत्वनिर्गुणत्वे

निर्णय करने में असमर्थ हो जाती है। वेद कई वाक्यों में जीव और
ईश्वर में भेद का वर्णन करते हैं, कई वाक्यों में अभेद का वर्णन करते
हैं, तथा कहीं ब्रह्म को सगुण बताते हैं, कहीं निर्गुण बताते हैं। यहाँ
पर बड़े २ विद्वानों की भी बुद्धि कुण्ठित हो जाती है, उपाय नहीं
सूझता है कि इस विरोध को कैसे शान्त किया जाय। इस प्रकार
विवाद ग्रस्त विषयों में निर्णय देने वाले वृद्ध वेद ही यदि विवाद
करने लग जायँ तो यहाँ कौन उन विवाद ग्रस्त विषयों में निर्णय दे
सकता है ? यह कार्य बड़ा गुरुतर है। श्रीरामानुज स्वामी जी महाराज
की श्रीसूक्ति इसी कार्य को संपन्न करती है। कैसे संपन्न करती है ?
सो बतलाया जाता है। वेदों में तीन प्रकार के वचन मिलते हैं, (१)
भेद श्रुति हैं जो जीव और ईश्वर में भेद बताती हैं, (२) अभेद श्रुति
हैं जो जीव और ईश्वर में अभेद बतलाती हैं (३) घटक श्रुति हैं जो
भेद और अभेद में विरोध को शान्त करने वाले अर्थों को बतलाती हैं।
वह अर्थ शरीरात्म भाव है। जीव परमात्मा का शरीर हैं, परमात्मा
जीवों के आत्मा हैं। इस प्रकार जीव और परमात्मा में भेद है।
शरीरात्म भाव स्थल में देखा जाता है कि शरीर को बतलाने वाले शब्द
आत्मा तक को बताते हैं। उदाहरण के लिये मनुष्य शब्द ही लिया
जाय। मनुष्य शब्द मनुष्य शरीर धारी आत्मा को बताता है, तभी

इत्यादयो विरुद्धार्था वर्ण्यन्ते, त इमे अत्यन्तशुद्धानामपि वेदानां विवादविषया अर्थाः श्रीयतिराजश्रीसूक्त्या परस्परनिरुद्धार्थप्रति-

---

तो लोक में कहा जाता है कि मैं मनुष्य को जानता हूँ। वहाँ केवल शरीर नहीं समझा जा सकता है केवल आत्मा भी मनुष्य नहीं कहा जा सकता। अतः सिद्ध होता है कि शरीर युक्त आत्मा ही मनुष्य शब्द से बतलाया जाता है। "मैं" यह शब्द भी आत्मा को बतलाता है। अतः "मनुष्य मैं" इस प्रयोग में दोनों भी शब्द भिन्न २ प्रकार से एक ही आत्मा को बतलाते हैं इस प्रकार वहाँ "मनुष्य" शब्द के अर्थ और "मैं" शब्द के अर्थ में अभेद हो जाता है। वैसे ही प्रकृत में भी समझना चाहिये। जीव परमात्मा का शरीर है परमात्मा जीवों के आत्मा हैं जीवों के बतलाने वाले मैं, तुम, आप, देव, मनुष्य, इत्यादि जितने शब्द हैं वे सभी शब्द जीवों को बतलाते हुये जीव युक्त परमात्मा तक को बतलाते हैं। इसलिये यों कहा जा सकता है कि तुम ब्रह्म हो इत्यादि। यहाँ पर तुम शब्द का अर्थ है सामने खड़े रहने वाले जीव के अन्दर रहने वाले परमात्मा। ब्रह्म शब्द का अर्थ भी परमात्मा है। दोनों शब्दों के अर्थ परमात्मा में कोई भेद नहीं हैं। अतः "तुम" शब्द के अर्थ और "ब्रह्म" शब्द के अर्थ में अभेद हो जाता है। इस

पादकानां वेदानामैककण्ठ्यसंपादनपूर्व घटकश्रुतिसाहाय्येन निर्णीयन्ते। एवं प्रभावां श्रीयतिराजसूक्तिं मतान्तरस्था अधिक्षिपन्तु स्वीकुर्वन्तु वा उभयमप्यकिञ्चित्करम्, कुतः ते कुमतीनां मुखनिस्सृताभिर्वेदविरुद्धाभिरुक्तिभिः क्षुब्धा मत्ताश्च जाताः।

कल्याण गुणों के विधान में है, निर्गुण श्रुतियों का तात्पर्य दुर्गुणों के निषेध में है। इस प्रकार श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रुति वेदों के विवाद में निर्णायक बनती है। यह इसका महत्व है। श्रीरामानुज स्वामी जी ने सम्पूर्ण वेदार्थों का समर्थन करने वाली श्रीसूक्तियों का अपनी सुमति से निर्माण किया।

परमतों के प्रतिष्ठापक आचार्यों ने ऐसे ग्रन्थों का निर्माण किया जो सम्पूर्ण वेदार्थों का समर्थन नहीं करते किन्तु अधिक मात्रा में काल्पनिक अर्थों का ही वर्णन करते हैं। मतान्तरस्थ विद्वद्गण उन ग्रन्थों को पढ़ते २ उसी में रंग गये हैं, स्वतन्त्र रूप से सोचने की उनके पास शक्ति नहीं है, उनकी बुद्धि इतनी दूषित हो गई है जिससे वह यथार्थ अर्थ का ग्रहण नहीं कर सकती है अतएव वे विद्वान् उन्मत्तों की तरह असंबद्ध प्रलाप करते हैं। ये विद्वान श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्ति की प्रशंसा करें अथवा निन्दा करें, दोनों भी निरर्थक है। न प्रशंसा से उत्कर्ष ही सिद्ध होगा, न निन्दा से निकर्ष ही सिद्ध होगा। इनका मौन ही श्रीरामानुज स्वामी जी की महिमा को बढ़ा सकता है। यहाँ पर यह दृष्टान्त मनन करने योग्य है। एक सम्राट की पुत्री सुशिक्षित होकर इतनी विदुषी हो गयी मानो सरस्वती का अवतार हो, वह सौन्दर्य लावण्य और सौकुमार्य इत्यादि शारीरिक गुण तथा आत्म गुणों से सम्पन्न है, बड़े बड़े वृद्धों के भी विवाद ग्रस्त विषयों में निर्णय देने की क्षमता रखती है। उस नगरी में ऐसे भी

श्रीभाष्यकारस्य श्रीसूक्तिस्तु शोभनमतिमूला वेदार्थनिर्णायिका। एवं भूतायाः सूक्तेर्नतैर्मत्तजनैर्निन्दनेनापकर्षः सेत्स्यति, न वा तेषां स्तुत्योत्कर्षः सेत्स्यति।

अत्र दृष्टान्तमाह *"रसपरिमलश्लाघाघोषस्फुटत्पुटभेदनं लवणवणिजः कर्पूरार्धं (रोद्धं) किमित्यभिमन्वते। अत्र पाठभेदेन कर्पूरार्धस्य श्रेष्ठकर्पूरस्य वा दृष्टान्तीकरणम्। कस्यचित् कर्पूरार्धस्य श्रेष्ठकर्पूरस्य वा अत्युत्तमोरसः परिमलश्च वर्तते तयोः श्लाघां नागरिकाः संभूय कुर्वते श्लाघाघोषेण नगरं

अनेकों मनुष्य हैं जिन लोगों को दुर्भाग्यवश कुरूप मूर्ख स्त्रियों के साथ विवाह हो गया, वे पुरुष उन मूर्ख स्त्रियों के संसर्ग से इतने मूर्ख हो गये मानों उन्मत्त हो गये। ऐसे मूर्ख मिलकर यदि सम्राट की पुत्री की प्रशंसा करें अथवा निन्दा करें, दोनों प्रकार से भी राजपुत्री का अपमान ही होगा। इन मूर्खों का मौन रहना ही वस्तुतः राजकुमारी की महिमा को बढ़ा सकता है। यहाँ की वर्णन शैली से प्रतीत होता है कि यहाँ यह दृष्टान्त अभिप्रेत है। अब इस बात का दूसरे दृष्टान्त से समर्थन किया जाता है।

विदीर्यमाणमिव वर्तते । नगरविदारकश्लाघाघोषविषयरसपरिमलाढ्यं कर्पूरार्धं लवणवणिजः किमिति मन्येरन्, कर्पूरतत्त्वावेदिनस्ते एकगोणीमितस्य कर्पूरस्य लवणस्येवैका मुद्रा मूल्यमिति ब्रूयुः किं तावता कर्पूरस्य निकर्षः स्यात् । तथैवात्र कुमतिग्रन्थाध्ययनमत्तमतान्तरस्थैः श्रीभाष्यकारसूक्तेरनादरेक्रियमाणे नास्या निकर्षः । यथा नागरिकस्तुत्यैव कर्पूरस्योत्कर्षः तथाऽत्रश्रीवैष्णवविपश्चिदपश्चिमाहृतत्वादस्या उत्कर्षोदुरपन्हव इति भावः ॥४४॥

पूर्वश्लोकयोः श्रीभाष्यकारस्य मतं कर्पूरकौस्तुभवत् श्रेष्ठमित्युक्तम् । यन्मतमनुयायिनामादर्शमयपवित्रजीवनयापनौपयिकीं सच्छिक्षां प्रयच्छति तस्यैव श्रैष्ठ्यं मन्तुं युक्तम्, श्रीभाष्यकार-

---

वे कपूर को देखकर यही समझेंगे कि यह भी एक प्रकार का लवण ही है, भले दूसरे देश वाले इसका कपूर नाम रक्खें। वस्तुतः वह लवण ही है, एक बोरा कपूर का अधिक से अधिक एक रुपया मूल्य होना चाहिये। वैसे ही उत्तमोत्तम विद्वानों से मुक्त कण्ठ से प्रशंसित सर्वोत्तम लोकहितकारी सिद्धान्तों को बतलाने वाली श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्ति की महिमा को ये असंबद्ध प्रलाप करने वाले पण्डित क्या समझेंगे। यदि ये श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति का अनादर करें, उससे उस सूक्ति की महिमा ही बढ़ेगी जिस प्रकार लवण के व्यापारियों से तिरस्कृत होने पर उत्तम कपूर की महिमा बढ़ती है ॥४४॥

पूर्व श्लोकों में कहा गया है कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति कपूर और कौस्तुभ के समान श्रेष्ठ है। यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि उसी श्रीसूक्ति को ही श्रेष्ठ मानना चाहिये जो जनता को

मतेन लोकस्य किं तथोपकृतमित्यत्र लोके मनुष्येण सर्वं जेतुं शक्यम् परन्तु कामो जेतुमशक्यः काम एव सर्वपापहेतुः "अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः । अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥" इति श्रीमतोऽर्जुनस्य प्रश्ने उपस्थिते "काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः । महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥" इति श्रीभगवता समाधानात् "त्रिविधं

आदर्शमय पवित्र जीवन बिताने के लिये व्यावहारिक सदिच्छा देती हो, क्या श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति ने ऐसा उपकार किया ? इस प्रश्न के उत्तर में श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति ने अवश्य ऐसा उपकार किया क्योंकि श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरणाश्रित सज्जन उनकी उपदेशमयी दिव्य सूक्तियों से सदुपदेश पाकर विषयों में वैराग्य तथा परमात्मा श्रीभगवान् में अनुराग करते हुये आदर्शमय पवित्र जीवन बिता रहे हैं, उनको देखते ही सब कोई समझ सकते हैं कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति ने कितना उपकार किया । लोक में मनुष्य सबको जीत सकता है, परन्तु काम को जीतना अशक्य है । सब पापों का जड़ काम ही है । श्रीमद्गीता में श्रीमान् अर्जुन ने श्रीभगवान् से प्रश्न किया कि 'जीव पाप करना न चाहता हुआ भी पाप करता है, प्रतीत होता है कि किसी

नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ॥" इत्यभिधानाच्च क्रोधलोभावपि कामस्यैव रूपान्तरम्। काम एव प्रतिहतगतिः प्रतिघातकविषये क्रोधरूपं बिभर्ति, अत्यागेच्छारूपोऽधिकाधिकसंजिघृक्षारूपो वा लोभः कामस्यैव रूपान्तरम्। सोऽयं कामः सुदुर्जयः लोकोत्तरप्रभावाणां त्रिमूर्तीनामपि कामविधेयत्वदर्शनात्। यतिराजसंश्रयास्तु परमविरक्तस्य यतिराजस्याश्रयणप्रभावात्कामविजयिनः

होता। क्रोध भयङ्कर से भयङ्कर हत्या आदि पापों को कराता है। इन्हें तुम शत्रु समझो। इसी गीता में ही अन्यत्र श्रीभगवान् कहते हैं कि 'काम क्रोध और लोभ ये तीनों नरक में पहुँचाने वाले तीन द्वार हैं। इनमें फंसा हुआ मनुष्य अवश्य नरक पहुँचेगा। ये तीनों द्वार आत्मा को नष्ट करने वाले हैं। इसलिये कल्याण कामी को इन तीनों को परित्याग करना चाहिये। इन तीनों में काम ही प्रधान शत्रु है। वही बहुरूपिये की तरह क्रोध और लोभ का रूप धारण करता है। काम ही अपने इष्ट का विघात करने वाले लोगों के प्रति क्रोध रूप को धारण करता है। वही लोभ रूप को धारण करता है क्योंकि लोभी मनुष्य अधिकाधिक रूप से भोग्य पदार्थों का संग्रह करने की कामना रखता है। यह काम भयङ्कर शत्रु है, इसको जीतना बहुत कठिन है। ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा विष्णु और महेश से बढ़कर कोई नहीं है। ये तीनों मूर्तियाँ सबसे बढ़कर हैं, इनका प्रभाव अपार है, ये तीनों जगत की सृष्टि स्थिति और प्रलय करती हैं। इस प्रकार अपार महिमा से सम्पन्न ये तीनों भी काम को जीत न सके, उलटे काम के दास हो गये इनके चरित्रों का मनन करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि काम को जीतना अत्यन्त अशक्य है। परन्तु परम विरक्त यतिश्रेष्ठ

अतएव परमात्मभिन्नेभ्यः पदार्थेभ्योऽत्यन्तविरक्ताः परमात्मन्यत्यन्तानुरक्ताश्च वर्तन्ते, एषां दर्शनेनैव यतिराजमतस्य श्रैष्ठ्यं सुवेदमित्युत्तरमनेन श्लोकेनाह—

वहति महिलामाद्यो वेधास्त्रयीमुखरैर्मुखैः
वरतनुतया वामो भागः शिवस्य विवर्तते ।
तदपि परमं तत्त्वं गोपीजनस्य वशंवदं
मदनकदनैर्न क्लिश्यन्ते यतीश्वरसंश्रयाः ॥४५॥

श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरणाश्रित सज्जन उस चरण सम्बन्ध के प्रभाव से काम विजयी तथा विषयों में विरक्त और श्रीभगवान् में अत्यन्तानुरक्त दिखाई देते हैं तथा आदर्शमय पवित्र जीवन बिताते हैं। इनको देखते ही सबको समझ में आ जायेगा कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी का मत कितना श्रेष्ठ है। इस उत्तर को इस श्लोक से व्यक्त करते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी प्रथमतः त्रिमूर्तियों की दशा का वर्णन करते हैं। यहाँ प्रिय पाठकों को इस बात को ध्यान में रखकर पढ़ना चाहिये कि श्रीदेशिक स्वामी जी को त्रिमूर्तियों की निन्दा करने में तात्पर्य नहीं किन्तु काम की अजेयता तथा श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरणाश्रित श्रीवैष्णवों के प्रभाव को बतलाने में ही तात्पर्य है। अतः श्लोकार्थ के प्रसङ्ग में आने वाली रसोक्तियों को अतिशयोक्ति समझना चाहिये।

आद्यो वेधाः—ब्रह्मा, *त्रयीमुखरैर्मुखैः*—वेदों का उच्चारण करने वाले मुखों से, *महिलां वहति*—सरस्वती को धारण करते हैं। *शिवस्य वामो भागः*—शिव का वाम भाग, *वरतनुतया विवर्तते*—नारी के रूप में परिवर्तित होता है, *तदपि परमं तत्त्वं*—वह परम तत्व विष्णु भी, *गोपीजनस्य*

*"आद्यो वेधास्त्रयीमुखरैर्मुखैर्महिलां वहति" प्रजापतीनां मध्ये प्राथमिको ब्रह्मापि कामपरतन्त्रः यतः स वेदाध्ययनमुखैरैश्चतुर्भिर्मुखैः सरस्वतीं स्त्रियं बिभर्ति, सर्वदा वेदाध्ययनपरस्य परमच्छान्दसस्य तस्य स्त्रीरञ्जनसामर्थ्यमतिन्यूनमेव संभाव्यते, एवं विधोऽपि सस्त्रीजितो नैकेन मुखेन सरस्वतीं बिभर्ति किंतु चतुर्भिर्मुखैः यतो विद्याधिदेवता सरस्वती वेदाध्ययनशीलेषु तस्य मुखेषु सर्वदा विराजते, वेदाध्ययनशीलताप्रदर्शनेन लोकं वञ्चयन् स सर्वदा चतुर्भिर्मुखैः स्त्रियमुपधारयन् चतुर्षु मुखगृहेषु तां

वशंवदं—गोपियों के वशीभूत होते हैं, किन्तु यतीश्वरसंश्रयाः—यतिराज का आश्रय ग्रहण करने वाले, मदनकदनैर्न *क्लिश्यन्ते*—काम के द्वारा नहीं सताये जाते हैं।

"आद्यो वेधास्त्रयीमुखरैर्मुखैर्महिलां वहति"—नौ प्रजापतियों की गणना में प्रथम श्री ब्रह्मा जी आते हैं, उनको भी काम का परतन्त्र होना पड़ा। क्योंकि वे सर्वदा वेदों का उच्चारण करने वाले चारों मुखों से अपनी स्त्री सरस्वती का धारण करते हैं। सर्वदा वेदाध्ययन में ही रत रहने वाले ब्रह्मा जी बड़े छान्दस कहलाते हैं, तभी तो महाकवि कालिदास ने उनको "वेदाभ्यासजड" ऐसा उपाधि दिया। मानों ब्रह्मा जी वेदाभ्यास करते २ जड़ हो गये। देखा जाता है कि वैदिकों में स्त्रियों को रञ्जन करने का चातुर्य बहुत कम रहता है। ब्रह्मा जी भी इस कोटि के ही हैं, वे भी स्त्री से जित हो गये उनको स्त्री सरस्वती ने उन पर इतना आधिपत्य जमा लिया कि उनके चारों मुखों में भी चढ़ बैठी, क्योंकि सरस्वती विद्या की अधिदेवता है, उनको वेदाभ्यास करने वाले मुखों में विराजमान होना उचित ही है। ब्रह्मा जी की दुर्दशा का क्या वर्णन करें, उनको एक मुख से स्त्री को ढोना नहीं

सावधानो रक्षति यथा सा न पलायेत इयं ब्रह्माण्डाधिपते-श्चतुर्मुखस्य कामपारतन्त्र्यदशा ।

*"वरतनुतया वामो भागः शिवस्य विवर्तते" शिवस्य कामपारतन्त्र्यं दृश्यताम् । शिवः कामदहन इति प्रसिद्धम्, तेन दग्धोऽपि इक्षुधन्वा पुष्पबाणो मन्मथो मेरुधन्वानं मरुदनल-शरमपि शिवमन्ते जिगाय मन्मथाज्ञापरतन्त्रेण शिवेनार्धं शरीरं

पड़ता, किन्तु चारों मुखों से ढोना पड़ता है। ब्रह्मा जी ने लोगों के सामने अपना यह रूप उपस्थित किया कि वे सर्वदा वेदों का अभ्यास करने वाले उच्चकोटि के महात्मा हैं। ब्रह्मा जो संसार के सामने इस रूप को रखकर वस्तुतः संसार को धोखा दे रहे हैं, उनका तात्विक रूप तो यही है कि वे अपने चारों मुख रूपी गृहों में अपनी स्त्री को बन्द कर रखवाली इसलिये करते हैं कि कहीं यह स्त्री भाग न जाय। ब्रह्माण्ड के अधिपति ब्रह्मा जी की यह दशा है कि उनको पूर्ण रूप से काम का परतन्त्र होकर रहना पड़ता है।

"वरतनुतया वामो भागः शिवस्य विवर्तते"—शिवजी भी कामदेव के परतन्त्र हैं। यद्यपि शिवजी के विषय में यह प्रसिद्धि है कि उन्होंने काम को दग्ध किया। तो भी इस संघर्ष में अन्त में विजय कामदेव को ही मिली। कामदेव का ईख ही धनु है, पुष्प ही अस्त्र हैं, शंकरजी का धनु मेरु है, वायु से सहित अग्नि उनका अस्त्र शस्त्र है, वे परशुराम और विश्वामित्र इत्यादि को धनुर्वेद सिखाने वाले आचार्य हैं, उनसे धनुर्वेद सीखकर परशुराम जी ने २१ वार भूतल में क्षत्रियों का वध किया। उनके शिष्य विश्वामित्र से धनुर्वेद सीखकर श्रीरामचन्द्र जी ने संसार को रुलाने वाले सपरिवार रावण का संहार किया। इससे अनुमान कर सकते हैं कि श्री शंकरजी में कितनी धनुर्विद्या है। इस

स्त्रियै दत्तं स्वेच्छया, स्त्रीभूतं च तद् शरीरार्धं शिवो वरतनुत्वे-
नावशिष्टं पुरुषरूपमर्धं चावरतनुत्वेन मन्यते कामपारतन्त्र्यस्य
काष्ठा सिद्धा। शिवस्य शरीरमर्धजटमर्धकेशपाशं अर्धांशे भोगि-
भूषणमर्धांशे हारभूषणमेककुचमर्धांशे गजकृत्तिपरिधानामर्धांशे

प्रकार अपार धनुर्विद्या सम्पन्न "ईशानः सर्वविद्यानाम्" इस वचन के अनुसार सर्व विद्याओं के जानने वाले सर्वज्ञ शिवजी को अन्त में मन्मथ से हारना ही पड़ा। उनके सब विचार परिवर्तित हो गये, उन्होंने अपने आधे शरीर को स्त्री के लिये दे दिया। उनका आधा शरीर स्त्रीमय हो गया, अतएव वे अर्ध नारीश्वर कहलाये। पार्वती ने आधे शरीर पर आधिपत्य जमाया। शिवजी के शरीर के बायें भाग में पार्वती विराजती हैं। यह लोक में मानी हुई बात है कि पुरुष का दक्षिण भाग बलवान् और वाम भाग दुर्बल होता है। अबला पार्वती वाम भाग में रहती है। उस भाग को निकृष्ट भाग समझना चाहिये। परन्तु शंकरजी उस भाग को वरतनु अर्थात् श्रेष्ठ भाग समझते हैं वरतनु शब्द के तीन अर्थ हैं (१) श्रेष्ठ शरीर वाली स्त्री (२) श्रेष्ठ शरीर (३) और वर का शरीर। शिव और पार्वती के विवाह में शिवजी वर हैं। शिवजी अपने शरीर को वर का शरीर समझें तो ठीक था। परन्तु शिवजी ने ऐसे न कर पार्वती से अधिष्ठित शरीर भाग को वरतनु समझ अर्थात् श्रेष्ठ शरीर समझ शिवजी का पार्वती से आक्रान्त शरीर के आधे भाग में अधिक व्यामोह हो गया। इसका कारण पार्वती जी में व्यामोह है। मन्मथ ने पूर्व वैर को याद कर शिवजी के शरीर की ऐसी दुर्दशा की जिसे वाणी से नहीं कहा जा सकता। उनके मस्तक में आधे भाग में जटा है, आधे भाग में अलंकृत केश पाश है, ललाट में आधे भाग में तिलक है आधे भाग में कुंकुम है,

कौशेयकपरिधानमर्धरूढश्मश्रु च विकृतं कृत्वा कामः स्वविजयोत्सुकानामियं मितोऽप्यधिका वा दुर्दशा भविष्यतीति वैराग्यमार्गपथिकं लोकं भीषयन्वर्तते । एवं शिवः कामविधेयो जातः ।

*"तदपि परमं तत्त्वं गोपीजनस्य वशंवदम्" कर्मवश्ययोर्ब्रह्मशिवयोः कामपारतन्त्र्यं न विस्मयावहम् । यो महाविष्णुरेतयोरपि निर्वाहकोऽकर्मवश्य इतरकर्मनिवर्तकः परमतत्त्वत्वेन

गले में एक पार्श्व में सर्प लटकते हैं दूसरे भाग में हार लटकते हैं, वक्षःस्थल की विकृति तो कहने योग्य नहीं, नीचे आधे शरीर में गजचर्म है, दूसरे भाग में रेशमी साड़ी है। कहाँ तक कहें, मुख में एक भाग में श्मश्रू है दूसरे भाग में वह नहीं। प्रदोष काल में आधा शरीर ताण्डव नृत्य करना चाहता है और आधा शरीर लास्य नृत्य करना चाहता है। एक चरण वृषभ पर चढ़ना चाहता है दूसरा चरण सिंह पर चढ़ना चाहता है, किंबहुना, शरीर का आधा गौर है दूसरा आधा श्याम है। इस प्रकार मन्मथ उनके शरीर की दुर्दशा कर मानों संसार को बतलाता है कि मन्मथ को जीतने की इच्छा रखने वालों की ऐसी या इससे बढ़कर दुर्दशा की जायेगी।

"तदपि परमं तत्त्वं गोपीजनस्य वशंवदम्"—ब्रह्मा जी और शंकरजी कर्म परतन्त्र हैं श्रीभगवान् ने इनको ब्रह्माण्ड में अधिकारी के पद पर नियुक्त किया है। इससे बढ़कर इनकी कोई विशेषता नहीं। अतः यदि ये कामदेव के परतन्त्र हो गये हों तो इसमें कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं। आश्चर्य की बात तो यह है कि जो श्रीभगवान् कर्म के परतन्त्र नहीं हैं, दूसरों के कर्म बन्धन को तोड़ने वाले हैं, सम्पूर्ण जगत की सृष्टि स्थिति और संहार करने वाले हैं, शास्त्र जिन्हें परात्पर

प्रसिद्धः स सर्वदा वक्षसि महालक्ष्मीमुद्वहन् अपि तावताऽतृप्तः कृष्णरूपेणावतीर्य गोपालनरूपंनिहीनं कर्मकुर्वतां गोपानां बह्वीनां स्त्रीणामत्यन्तपरतन्त्रो बभूव रासलीलायां तासां वशंवदो बभूव। इत्थं त्रिमूर्तिमध्ये कस्य चिन्मुखं कस्यचिच्छरीरार्धं कस्यचित् सर्वाङ्गमपि कान्तायत्तं वर्तते इतरेषां विषये किमुवाच्यम्।

*"मदनकदनैर्न क्लिश्यन्ते यतीश्वरसंश्रयाः" एवं लोकोत्तर-

तत्त्व कहता है वे भगवान् भी मन्मथ से बच न सके। सबको झुकाने वाले उनको भी मन्मथ के सामने झुकना पड़ा। वे श्रीभगवान् सर्वदा महालक्ष्मी जी को हृदय में धारण करते हैं, महालक्ष्मी जी उनके लिये अत्यन्त हृदयंगम वस्तु है। प्रतीत होता है कि श्रीमहालक्ष्मी जी से संतुष्ट न होते हुये श्रीभगवान् श्रीकृष्णावतार लेकर स्त्रियों के दास बन गये। उत्तम राजकन्याओं के दास बने होते तो कहीं अच्छा रहता, किन्तु गाय चराने वाले ग्राम्य कुरीतियों में फंसे गोपों की लड़कियों के दास हो गये। वह भी एक लड़की के नहीं, अनेक गोपकन्याओं के दास बन गये। उनके पूरे परतन्त्र हो गये। प्रतीत होता है कि श्रीभगवान पिता हैं, मन्मथ पुत्र है, पिता और पुत्र के संघर्ष में पुराण पुरुष पिता को झुकना पड़ा, इस प्रकार मन्मथ के सामने झुककर श्रीभगवान ने "पुत्रादिच्छेत् पराजयम्" अर्थात "पिता पुत्र से पराजित होने की इच्छा करें" इस लोकोक्ति को चरितार्थ किया। इस प्रकार कामदेव की आज्ञा से त्रिमूर्तियों में एक का मुख दूसरे का आधा शरीर तीसरे का सर्वाङ्ग स्त्रियों के अधीन हो गया। औरों के लिये क्या कहा जाय।

"मदनकदनैर्न क्लिश्यन्ते यतीश्वरसंश्रयाः"—लोकोत्तर प्रभाव रखने

प्रभावैरपि कामपारतन्त्र्येऽनुभूयमाने सत्यपि संन्यासिश्रेष्ठस्य श्रीभाष्यकारस्यचरणसम्बन्धं प्राप्तवन्तस्तत्प्रभावातिशयान्मन्मथोपद्रवैरक्लिश्यमाना दृश्यन्ते। न केवलं विरक्ताग्रेसरो श्रीभाष्यकार इत्थं भूतोवर्तते, किंतु तच्चरणाश्रिता अपि परमविरक्ता भवन्ति एषां मोक्षोऽनुक्तिसिद्धः अतः श्रीभाष्यकारमतमत्यन्तश्रेष्ठमिति सुग्रहम्। अत्र विषये श्रीधनुर्दासचरित्रं प्रमाणम्। तत् पूर्वमवर्णि। तथा श्रीगोविन्दार्यचरितमप्यत्र निदर्शनम्। सर्वदा-

---

वालों की भी जब यह स्थिति है, तब स्वतः यह प्रश्न उठता है कि क्या कामदेव को जीतने वाले संसार में है ही नहीं, क्या जगत में एक भी पुरुष ऐसा नहीं है जिस पर कामदेव का प्रभाव न पड़ा हो। श्रीदेशिक स्वामी जी इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि देखा जाता है कि लोक में प्रत्येक सामान्य नियम का भी अपवाद होता है, सम्पूर्ण चेतन काम का परतन्त्र है यह सामान्य नियम है। श्रीरामानुज स्वामी जी के चरणाश्रित सज्जन इस नियम के अपवाद हैं क्योंकि परम विरक्त परमहंस परिव्राजक श्रीरामानुज स्वामी जी के चरण सम्बन्ध के प्रभाव से अथवा उनकी उपदेश वाणी के प्रभाव से उनके शिष्य मन्मथ बाधाओं के शिकार नहीं होते। वैराग्य निधि श्रीरामानज स्वामी जी

ऽन्तर्यामिणः प्रकाशमानत्वादेकान्तस्थानालाभात्स्त्रीसंसर्गं त्यक्तवान् गोविन्दार्यः परमवैराग्येण विरराज। श्रीभगवद्रामानुजोऽस्य प्रभावं प्रचिकाशयिषन् एकदा काञ्चित् सूचीं गाढान्धकारावृते प्रकोष्ठके प्रक्षिप्यागतेषु तदानयनार्थमाज्ञप्तेषु दीपहस्तेष्वन्तः प्रविश्य सुचिरं निरीक्ष्यापि तामानेतुमपारयत्सु तदानयनार्थं नियुक्तो गोविन्दार्यो दीपसाह्यं विनैवान्तर्यामिप्रकाशप्रभावेण

सहवास नहीं किया। उनका प्रत्यक्ष अनुभव था कि अन्तर्यामी भगवान् सर्वदा जागते रहते हैं जीवों की प्रत्येक गति विधि को देखते रहते हैं उनसे छिपाकर जीव कोई कर्म कर नहीं सकता। वे सोचते थे कि प्रकाश रहित एकान्त स्थान में स्त्री के साथ सहवास गृहस्थों के लिये शास्त्र विहित है। हमको अन्तर्यामी के प्रकाश से कहीं अन्धकार दिखाई नहीं देता है, टकटकी लगाकर अन्तर्यामी देख रहे हैं, अतः हमको एकान्त स्थान भी नहीं मिलता है, अतः मैं स्त्री सहवास के लिये सर्वथा अनधिकारी हूँ। श्रीरामानुज स्वामी जी श्रीगोविन्दाचार्य के स्वरूप स्वभाव को अच्छी तरह जानते थे। अतः श्रीरामानुज स्वामी जी की इच्छा हुई कि इनको संन्यास दिया जाय। वे इनके स्वभाव से सबको परिचित कराना चाहते थे। तदर्थ श्रीरामानुज स्वामी जी ने एक सुई को अन्धेरी कोठरी में फेंककर आने के लिये श्रीवैष्णव से कहा। जब वह श्रीवैष्णव सुई को अन्धेर कोठरी में फेंककर आया, तब श्रीरामानुज स्वामी जी ने श्रीवैष्णवों के समक्ष श्रीगोविन्दाचार्य से कहा कि आप जाकर उस सुई को ढूंढ लावें। गोविन्दाचार्य स्वामीजी जाकर तत्क्षण उस सुई को ले आये। श्रीरामानुज स्वामी जी ने पूछा कि उस अन्धेर कोठरी में आपको सुई का दर्शन कैसा हुआ श्रीगोविन्दाचार्य ने कहा कि अन्तर्यामी के प्रकाश से हमको कहीं अन्धकार दिखाई

तामानिनाय। ततस्तस्य विरक्तिप्रभावं प्रकाश्य श्रीभाष्यकारस्तस्मै तुर्याश्रमं ददाविति तच्चरितं वर्ण्यते ॥४५॥

न केवलं श्रीभाष्यकारे आश्रितविषये मदनवश्यत्वनिवर्तकस्वरूपो महागुणो वर्तते किंतु अन्येऽपि महनीया महागुणा विद्यन्ते इत्याह—

निगमपथिकच्छायाशाखी निराशमहानिधिः
महितविविधच्छात्रश्रेणीमनोरथसारथिः ।
त्रिभुवनतमःप्रत्यूषोऽयं त्रिविद्यशिखामणिः
प्रथयति यतिक्ष्माभृत पारावरीमविपर्ययाम् ॥४६॥

देता ही नहीं, हमको सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश दिखाई देता है, अतः मैं सुई को ढूंढकर ला सका। अन्धकारमय एकान्त स्थान न मिलने के कारण हमारा ब्रह्मचर्य भी सुरक्षित रहा। मैं विहित भोग के लिये भी अधिकारी न रह गया हूँ। अतः मुझ पर कृपा करके संन्यास दिया जाय। इस प्रार्थना से प्रसन्न होकर श्रीरामानुज स्वामी जी ने उनको संन्यास दे दिया ॥४५॥

पूर्व श्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी ने कहा कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी आश्रितों की कामवश्यता को दूर करते हैं। इस श्लोक में यह कहते हैं कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी में यह एक ही गुण नहीं हैं किन्तु अन्यान्य उत्तम गुण भी विद्यमान हैं। उन गुणों का वर्णन करते हुये कहते हैं—

निगमपथिकच्छायाशाखी—वेदमार्ग के पथिकों को छाया प्रदान वाले वृक्ष, *निराशमहानिधिः*—निःस्पृह लोगों के महान् निधि, *महित-*

*"निगमपथिकच्छायाशाखी" श्रीभाष्यकारो यतिक्ष्माभृद् यतिराजः राजसदृशो यतिः। राजा निगमपथिकानां वैदिकानां छायां ददाति, वृत्तिप्रदानादिनोपकरोति। श्रीभाष्यकारोऽपि तथाविधः। तथाहि—मार्गे संचरन्त आतपतप्ताः श्रान्ताः पथिका विस्तृतनानाशाखं सुशीतलच्छायाप्रदं दिव्यफलाढ्यं वृक्षं यद्युपलभेरन् तर्हि तर्हितमुपसृत्य तस्य शीतलच्छायायां विश्रम्याऽऽतपसंतापं निवर्त्य तदीयानि मधुरफलानि भुक्त्वा यथा सुख्यन्ति, तथा परावरतत्त्वानि निःसन्देहविपर्ययं यथावद् वेदैर्वेदनीयानीति

विविधच्छात्रश्रेणीमनोरथसारथिः—अनेक प्रकार के पूज्य शिष्य श्रेणियों के मनोरथ के प्रवर्तक, *त्रिभुवनतमः प्रत्यूषः*—त्रिलोकी के अज्ञान रूपी अन्धकार के प्रातःकाल, *त्रिविधशिखामणिः*—वेदज्ञों के शिरोमणि, *अयं यतिक्ष्माभृत्*—यह यतिराज, *अविपर्ययाम् पारावरीं प्रथयति*—परिपूर्ण मोक्षानुभव प्रदान करते हैं।

"निगमपथिकच्छायाशाखी" श्रीभाष्यकार स्वामी जी यतिक्ष्माभृत हैं अर्थात् यतिराज हैं, राजा के समान यति हैं। राजा में पाये जाने वाले उत्तम गुण रूपान्तर में श्रीभाष्यकार स्वामी जी में विद्यमान हैं। राजा वेदमार्ग में संचार करने वाले वैदिकों के लिये छाया देने वाले वृक्ष की तरह उपकारक हैं क्योंकि राजा वैदिकों को अपने राज्य में आश्रय देकर उन लोगों के लिये वृत्ति की व्यवस्था करते हैं। श्रीरामानुज स्वामी जी में भी यह अर्थ संगत होता है। मार्ग में संचार करने वाले पथिक आतप से संतप्त हो जाते हैं तथा थक जाते हैं, यदि वे लोग विस्तृत नाना शाखाओं से युक्त पुष्प फलों से समृद्ध तथा छाया देने वाले महा वृक्ष के समीप पहुँचते हैं तो यह वृक्ष उनको छाया देकर संताप और श्रम को दूर करता है, मधुर फलों को खिलाकर उनको तृप्त कर

मनीषया वेदार्थविचारे प्रवृत्ता यादवभास्करमायावादिप्रभृतिभिर्व्यामोहिता अर्थानिर्णयक्लेशेन तप्यमानाः सज्जनाश्रीमद्वेदमार्गनिष्ठं श्रीभाष्यकारं यदाश्रयन्ति, तदा श्रीभाष्यकारस्तान् चरणच्छायायामुपवेश्याक्लेशेन परावरतत्वविवेकमुपजनय्य परमफलं मोक्षानन्दं भोजयन् तेषामुपकरोति। अथवा लोकस्य तत्वोपदेशं कुर्वन्तस्तन्मार्गे संचरन्तो वेदा एव पथिकाः तेषां कृतेच्छायाशाखी श्रीभाष्यकारः, यतोऽयं स्वयं तत्वान्युपदिशन् तेषां तत्वोपदेशेन श्रमं हरति।

*"निराशमहानिधिः" महाराजो नानोपायकरणोऽप्या-

देता है। वैसे ही वैदिक लोग वेद मार्ग में चलते हुये वेदोक्त धर्मो का आचरण करते हुये तत्व ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा से वेदार्थ विचार में प्रवृत्त होते हैं, मतान्तरों के आचार्यों के उपदेश से उनको यह निर्णय नहीं होता कि परतत्व कौन है? निकृष्ट तत्व कौन हैं कितने हैं उनका स्वरूप स्वभाव क्या है? अतः उनको सर्वदा जिज्ञासा सताती ही रहती है, इससे उनको अधिक संताप होता है, ऐसे संपन्न जिज्ञासु वैदिक गण यदि श्रीभाष्यकार स्वामी जी का आश्रय लेते हैं तो श्रीभाष्यकार स्वामी जी उनको अपनी चरणच्छाया में आश्रय देते हैं, उपदेश वाणी से अनायास उन लोगों को तत्व ज्ञान करा देते हैं, परम फल मोक्षानन्द को भी हैं। अथवा संसार को तत्वों का उपदेश देने वाले वेद ही पथिक हैं, उनको छाया देने वाले महावृक्ष श्रीभाष्यकार स्वामी जी हैं क्योंकि परमतस्थ विद्वानों से कहे गये काल्पनिक वेदार्थों का खण्डन कर यथार्थ वेदार्थों का श्रीभाष्यकार स्वामी जी उपदेश देते हैं, इससे वेदों का वह श्रम दूर होता है जो तत्वार्थों का उपदेश देते समय होता था।

❀"महितविविधच्छात्रश्रेणीमनोरथसारथिः" महाराजः सत्कृतानां विविधानां च्छत्रवत् सेवां कुर्वाणानां भृत्यानां मनोरथस्य सारथिवन्निर्वाहको भवति । तथा यतिराजोऽपि देवतान्तरसम्बन्धप्रयोजनान्तररुच्यादिदोषाभावान्महनीयानां गृहस्थब्रह्मचारिसंन्यासिब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रस्त्र्यादिभेदेन नानाविधानां छत्रवत्सेवां कुर्वाणानां शिष्याणां मनोरथानां सारथिवन्निर्वाहको-भवति, स्वबुद्ध्यनुसारेण वेदान्तार्थं जिज्ञासमानानां शिष्याणां

"महितविविधच्छात्रश्रेणीमनोरथसारथिः"—महाराजा के यहाँ अनेक भृत्य रहते हैं, वे छत्र की तरह अनेक सेवा करते हैं अतएव वे महाराजा से सत्कृत होते हैं, उन भृत्यों के मनोरथ एक प्रकार से रथ हैं, महाराजा उन मनोरथों को पूर्ण करते हैं अतएव राजा सारथि के समान हैं, जिस प्रकार सारथि रथ को गन्तव्य स्थान पर पहुँचाता है, वैसे ही महाराजा भी अपने आश्रितों के मनोरथों को प्राप्तव्य लक्ष्य पर पहुँचाते हैं। यह अर्थ श्रीरामानुज स्वामी जी में भी संगत होता है। श्रीरामानुज स्वामी जी के असंख्य शिष्य हैं। उनमें देवतान्तर का सम्बन्ध दूसरे फल की कामना इत्यादि कोई भी दोष नहीं हैं। अतएव वे अत्यन्त पूज्य हैं। वे सब श्रीरामानुज स्वामी जी की इस प्रकार सेवा करते हैं जिस प्रकार छत्र चामर सेवा करते हैं। वे समाश्रित शिष्य गण ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ब्रह्मचारी गृहस्थ संन्यासी स्त्री इत्यादि रूप में अनेक विध हैं। उन लोगों के नाना प्रकार के

संग्रहेण विस्तरेणचवेदान्तार्थोपदेशेन मनोरथस्य निर्वाहको भवति, भगवत्कैंकर्यं भागवतकैंकर्यं वा चिकीर्षून् तस्मिन् २ कैंकर्ये नियुञ्जानस्तेषां मनोरथं निर्वहति। सारथिर्लोके एकस्यैवरथस्य-निर्वाहकोभवति, अयं तु बहूनां मनोरथानां निर्वाहकः।

⊛"त्रिभुवनतमः प्रत्यूषः" महाराजोऽसंख्याचार्यकुलप्रतिष्ठा-पनपूर्वं विद्यावितरणं व्यवस्थापयन् सर्वस्या जनताया अज्ञानान्ध-कारनिवारणे प्रातःकालवदुपकरोति, तथैव यतिराजोऽपि त्रिभुवन-व्यापिनोऽज्ञानतमसो निवारणे प्रत्यूषायते, यथोषःकाले उपस्थिते

पहुँचाते हैं। जो अल्पबुद्धि वाले शिष्य, संक्षेप से ही दुरूह वेदान्तार्थों को समझना चाहते हैं, उनको संक्षेप से उपदेश देकर श्रीरामानुज स्वामी जी उनके मनोरथ को संपन्न करते हैं। जो अधिक बुद्धि वाले शिष्य विस्तार से वेदान्तार्थों को सुनना चाहते हैं, उनके लिये श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों का निर्माण कर उनके मनोरथों को संपन्न करते हैं। जो शिष्य गण श्रीभगवान् और भागवतों की सेवा करना चाहते हैं, उनको उन २ कैङ्कर्यों में लगाकर उनके मनोरथ को संपन्न करते हैं। श्रीभाष्य-कार स्वामी जी की सन्निधि में किसी का मनोरथ व्यर्थ नहीं जाता। सारथि एक रथ को गन्तव्य स्थान पर पहुँचाता है श्रीरामानुज स्वामी जी तो अनेक शिष्यों के अनेक मनोरथों को प्राप्तव्य लक्ष्य पर पहुँचाते हैं। यह इनकी विशेषता है।

तमः तात्कालिकप्रकाशसन्निधौ स्थातुमशक्नुवत् स्वत एव निवर्तते, तथा श्रीभाष्यकारेऽवतीर्णे त्रिभुवनादज्ञानं निववृते इति भावः। अतएवैतदवतारकालो "धीर्लब्धा" इति निर्दिश्यते।

किया। जिस प्रकार प्रातःकाल उपस्थित होते ही उस प्रकाश के सामने टिकने में असमर्थ होता हुआ अन्धकार स्वतः सम्पूर्ण भूमि छोड़कर भाग जाता है उसी प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामी जी के अवतार होते ही इनके कारण प्रकट होने वाले ज्ञान प्रकाश के सामने टिकने में असमर्थ होता हुआ अज्ञान तीनों भुवनों को छोड़कर भाग जाता है। अतएव श्रीभाष्यकार स्वामी जी के अवतार काल को "धीर्लब्धा" अर्थात् "ज्ञान प्राप्त हुआ" इस सांकेतिक शब्द से बतलाते हैं। दक्षिण भारत में शालिवाहनशक चलता है। शालिवाहनशक के ९३९ वें वर्ष में श्रीरामानुज स्वामी जी का अवतार हुआ। "ध" अक्षर ९ संख्या का परिचायक है क्योंकि "ट" से लेकर गिनने पर "ध" नवम संख्या में पड़ता है, "ल" यह अक्षर ३ संख्या का परिचायक है क्योंकि "य" से लेकर गिनने पर "ल" तीसरा अक्षर पड़ता है, इसी गणना को "कटपयादि क्रम से गणना" कहते हैं। इस गणना के आधार पर "धी" से ९ "ल" से ३ फिर "धा" से ९ संख्या सूचित होता है। तथा च "धीर्लब्धा" इस निर्देश से ९३९ संख्या सूचित होती है। श्रीरामानुज स्वामी जी के अवतार वर्ष शालिवाहनशक के ९३९ वें

*"त्रिविद्यशिखामणिः" महाराजो वैदिकत्वात् ऋग्यजुः सामरूपास्तिस्रो विद्याजानतां मध्ये शिखामणिवत् श्रेष्ठो वर्तते, अथवा त्रिविद्यानां शिरोभूषणं भवति, यतस्ते तं शिरोभूषण-वदभिनन्दन्ति, तथैव श्रीभाष्यकारोऽपि वेदप्रामाण्याभ्युपगन्तॄणां मध्ये शिखामणिवत् श्रेष्ठो भवति वेदप्रामाण्यमभ्युपयन्तोऽपि मायावादिनो भेदश्रुतीनां सगुणश्रुतीनां सृष्टिप्रलयादिप्रतिपादक-

---

"त्रिविद्यशिखामणिः"—भारतवर्ष के महाराजा सनातन धर्मानुयायी होने के कारण परमवैदिक होते थे, वे यथाकाल उपनीत होकर ऋग्यजु साम इन तीनों वेदों को पढ़कर वेदों के गूढ़ तत्वों को जानते थे, वेदज्ञ विद्वानों में वे मस्तक भूषण की तरह श्रेष्ठ निकलते थे, जिस प्रकार मस्तक भूषण किरीट अन्य भूषणों से श्रेष्ठ होता है, वैसे ही वे वैदिक महाराजा गण वेदज्ञों में श्रेष्ठ होते थे। अथवा वेदज्ञ लोग उन महाराजाओं को अपना मस्तक भूषण मानते थे, मस्तक भूषण को लोग शिर में धारण करते हैं, वैसे ही वेदज्ञ विद्वान् शिरकम्पन पूर्वक उन महाराजाओं का अभिनन्दन करते थे। इस प्रकार प्राचीन काल में भारतवर्ष में राजा लोग होते थे। उपनिषदों में ऐसे राजाओं के अनेक चरित्र वर्णित हैं। श्रीरामानुज स्वामी जी में भी यह अर्थ संगत होता है। श्रीरामानुज स्वामी जी वेद के प्रामाण्य मानने वाले विद्वानों में मस्तक भूषण की तरह अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। श्रीरामानुज स्वामी जी के ग्रन्थों के पढ़ने पर व्यक्त होता है कि वे वेदों को परम प्रमाण मानते हैं तथा वेदोक्त अर्थों को बिना 'ननु न च' के मानते हैं। अद्वैत सम्प्रदाय के विद्वान भी वेदों को प्रमाण मानते हैं। परन्तु वे कहते हैं कि सगुण श्रुतियाँ अविद्या कल्पित सगुण ब्रह्म को बतलाती हैं, सगुण ब्रह्म परमार्थ में बाधित है, अतः सगुण श्रुतियों का प्रामाण्य

श्रुतीनां बाधसहं प्रामाण्यमङ्गीकुर्वन्ति नत्वबाध्ये प्रामाण्यम्, तथैव वेदप्रामाण्याभ्युपगन्तारः पूर्वमीमांसका अपि निरीश्वरवादं देवतानां विग्रहादिपञ्चकखण्डनं च कुर्वाणा नास्तिककल्पा यथावद् वेदप्रामाण्यं न निर्वहन्ति श्रीभाष्यकारस्तु "शास्त्रैणैवावसेये विहति विरहिते नास्तिकत्वप्रहाणात्" इत्युक्तरीत्या वेदप्रतिपाद्यं सर्वमर्थमबाध्यसत्यं स्वीकुर्वन् वेदप्रामाण्यं कार्त्स्न्येन

भी परमार्थ में कट जाता है। भेद श्रुतियों के विषय में भी उनका मत यही है। अद्वैति गण अभेद श्रुति और निर्गुण श्रुतियों का जिस प्रकार का प्रामाण्य मानते हैं उस प्रकार का प्रामाण्य सगुण श्रुति भेद श्रुति और कर्म काण्डान्तर्गत श्रुतियों का नहीं मानते हैं। अतः उनके मत में वेद सर्वांश में प्रमाण नहीं होता है। पूर्व मीमांसक लोग निरीश्वर वाद को अपनाते हैं देवताओं के विग्रह इत्यादि पांच अर्थों का खण्डन करते हुये कहते हैं कि देवताओं का शरीर नहीं होता, देवतागण हव्य नहीं लेते, देवतागण एक समय में अनेक यज्ञों में सन्निहित नहीं हो सकते, देवता लोग न यज्ञों से प्रसन्न होते हैं न यज्ञों का फल देते हैं। इन पांच अर्थों को बतलाने वाले वेद भागों का इन अर्थों में प्रामाण्य नहीं। इससे सिद्ध होता है कि पूर्व मीमांसकों में भी पूर्ण वैदिकता नहीं रहती। श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने यह सिद्धान्त स्थिर किया कि वेदों से ही जो अर्थ सिद्ध होते हैं दूसरे प्रमाणों से सिद्ध नहीं होते। उन अर्थों को वैसे ही मानना चाहिये। उन अर्थों के विषय में अश्रद्धा प्रकट करना निरी नास्तिकता है। इस नास्तिकता से कल्याण कामी सज्जनों को दूर रहना चाहिये। यदि वेदोक्त इन अपूर्व अर्थों में ही कहीं विरोध प्रतीत हो तो मीमांसा न्यायों के आधार पर विरोध को शान्त करना चाहिये, अपने अनभिमत अर्थों का खण्डन नहीं करना

निर्वहतीति अयं त्रिविद्यमध्ये शिखामणिवद् वर्तते। अतएव त्रिविद्यानां शिरोभूषणं भवति, यतस्ते एनं शिरसि स्थापयन्तः शिरोमणिमिवाभिनन्दन्ति।

*"यतिक्ष्माभृत् पारावरीमविपर्ययां प्रथयति" महाराजो राज्ये वर्तमानानां प्रबलानां दुर्बलानां च व्यवस्थां प्रबलैर्दुर्बलबाधं विना यथावत् कल्पयति, तथैव श्रीभाष्यकारोऽपि परावरतत्वानां स्थितिं विपर्ययरहितामर्थात् परस्मिन् पुरुषेऽवरत्वमपरस्मिन्

चाहिये। इस सिद्धान्त के आधार पर श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने घटक श्रुतियों की सहायता से भेद श्रुति और अभेद श्रुतियों में तथा सगुण श्रुति और निर्गुण श्रुतियों में विरोध को शान्त कर उभय विध श्रुतियों को भी परम प्रमाण माना। तथा कर्मकाण्डान्तर्गत श्रुतियों को भी परम प्रमाण माना। देवताओं के शरीर इत्यादि पांच अर्थों को परम प्रामाणिक माना। इस प्रकार श्रीरामानुज स्वामी जी ने ही सम्पूर्ण वेदों के प्रामाण्य का समर्थन किया। अतः सिद्ध होता है कि श्रीरामानुज स्वामी जी वेद प्रामाण्य मानने वाले वैदिकों में शिरोमणि हैं। जिस प्रकार मनुष्य शिरोमणि को शिर से धारण करता है वैसे ही वैदिक गण श्रीरामानुज स्वामी जी को शिर से धारण करते हैं तथा अभिनन्दन करते हैं।

पुरुषे परत्वं तयोरैक्यं वा विपर्ययस्तद्रहितां प्रकाशयति, परावरतत्वज्ञाने लोकस्य यथाविपर्ययो नोदियात् तथा यथावदुपदिशति। एवमनेके महागुणाः श्रीभाष्यकारे विभ्राजन्ते इति भावः ॥४६॥

न केवलं यतिराजे श्रीभाष्यकारे एव महनीया अनेके गुणाः सन्ति, किन्तु तत्सूक्तिष्वपि सन्तीत्याह—

जडमतिमुधादन्तादन्तिव्यथौषधसिद्धयः
प्रमितिनिधयः प्रज्ञाशालिप्रपालनयष्टयः ।

श्रीभाष्यकार स्वामी जी इन सब भ्रमों को दूर करते हुये श्रेष्ठ तत्व श्रीभगवान को श्रेष्ठ तत्व समझने के लिये निकृष्ट जीव और जड़ पदार्थों को निकृष्ट तत्व के रूप में समझने के लिये उपदेश देते हैं। इस प्रकार अनेक लोक कल्याणकारी महागुण श्रीभाष्यकार स्वामी जी में निहित हैं ॥४६॥

पूर्वश्लोक में श्रीवेदान्तदेशिक स्वामी जी ने श्रीभाष्यकार स्वामी जी के अनेक कल्याण गुणों का वर्णन किया। इस श्लोक से वर्णन करते हैं कि जैसे श्रीभाष्यकार स्वामी जी में अनेक कल्याण गुण हैं वैसे ही उनकी श्रीसूक्तियों में भी अनेक कल्याण गुण हैं। श्रीसूक्तियों में विद्यमान कल्याण गुणों का वर्णन करते हैं—

यतीश्वरसूक्तयः—यतिराज की सूक्तियाँ, *जडमतिमुधादन्तादन्तिव्यथौषधसिद्धयः*—जड बुद्धि वाले लोगों की पारस्परिक व्यर्थ वाद विवाद से होने वाले दुःख को दूर करने वाली सिद्ध औषधियाँ हैं, *प्रमितिनिधयः*—प्रमाणों की निधि हैं, *प्रज्ञाशालिप्रपालनयष्टयः*—यथार्थ ज्ञान रूपी धानों

श्रुतिसुरभयः शुद्धानन्दाभिवर्षुकवारिदाः
यमगतिकथाविच्छेदिन्यो यतीश्वरसूक्तयः ॥४७॥

*"जडमतिमृधादन्तादन्तिव्यथौषधसिद्धयः" जडमतयो मन्दबुद्धयो वादिनो दुर्मतेष्वभिनिवेशातिशयात् वादेषु समञ्जसानर्थान् वक्तुमपारयन्तो वृथा दन्तादन्ति युद्धं कुर्वाणा नीचोच्चदन्तैरोष्ठौ जिह्वां च दशन्ति दष्टजिह्वोष्ठपुटेषु व्रणोत्पत्त्यतिरेकेण न किञ्चित्प्रयोजनं जायते, सुबुद्धाश्चेन्नैवं कुर्युः जडमतित्वादेवं

की रक्षा करने में दण्ड का कार्य करती हैं, *श्रुतिसुरभयः*—श्रुतियों से सुगन्धित हैं, *शुद्धानन्दाभिवर्षुकवारिदाः*—शुद्ध आनन्द को बरसाने वाली मेघ माला हैं, *यमगतिकथाविच्छेदिन्यः*—और नरक जाने की चर्चा को समाप्त करने वाली हैं।

"जडमतिमृधादन्तादन्तिव्यथौषधसिद्धयः"—श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ औषधि के समान कार्य करती हैं। मन्द बुद्धि वाले वादिगण उन २ मतों में अभिनिवेश से जब शास्त्रार्थ में उतारू होते हैं, समीचीन अर्थों का प्रतिपादन करने में असमर्थ जब हो जाते हैं तब वृथा कोप से प्रेरित होकर ऐसे शास्त्रार्थ करते हैं मानो लड़ते हैं। जगत में लड़ने वाले लोग आयुधों से अथवा केवल हाथों से लड़ते हैं, ये लोग दांतों से लड़ते हैं, यही अन्तर है, कोप में कोई अन्तर नहीं। जब आवेश में आकर शास्त्रार्थ करते हैं तब दांतों से जिह्वा और ओंठो को जोर से दबाते हुये शास्त्रार्थ करते हैं, ऐसे शास्त्रार्थ करने से उन लोगों की जिह्वा और ओठों में घाव उत्पन्न हो जाता है, इसके अतिरिक्त और कोई प्रयोजन हाथ नहीं लगता। यदि ये लोग अच्छे बुद्धिमान होते तो ऐसा कभी नहीं करते, क्या किया जाय

दशन्ति, एभिः श्रीभाष्यकारस्य श्रीसूक्तयोऽभ्यस्य यद्युच्चार्येरन् तर्हि ता दन्तादन्तिसमुत्थं व्रणं दन्तपीडां च विरोपयन्त्यो सिद्धौषधवदुपकुर्वते ।

※"प्रमितिनिधयः" यतीश्वरसूक्तयः प्रमाणनिधानभूताः प्रमाणनिरन्तरा इति यावत् । यद्वा प्रमितीनां यथार्थज्ञानानां निधयः । निधयो यथा बहूनां धनानामाधाराः सन्ति तथा एताः श्रीसूक्तयोऽनेकासां प्रमितीनामाधारभूताः । वेदान्तेषु कात्स्न्र्येन यथार्थज्ञानानामुत्पादनात् शास्त्रान्तरोक्तार्थानां सम्यक् शिक्षणाच्च बहुप्रमितीनां निधयो भवन्ति ।

ये जड बुद्धि वाले हैं, इसलिये शास्त्रार्थ में समीचीन अर्थों की स्फूर्ति न होने से ऐसा करते हैं। यदि उन लोगों के उन व्रणों को शान्त करने वाला कोई दिव्यौषध हो तो वह दिव्यौषध श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ ही हैं। यदि वे लोग इन श्रीसूक्तियों का अभ्यास कर इन श्रीसूक्तियों के आधार पर शास्त्रार्थ करते हैं तो उनका वह घाव शान्त हो जाता है, तथा दांतों को पीड़ा भी शान्त हो जाती है। इस प्रकार श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ दिव्य औषधियों की तरह शास्त्रार्थ करने वालों के लिये उपकार करती हैं।

"प्रमितिनिधयः"—ये श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ प्रमाणों के निधि हैं। इनमें सर्वत्र उत्तम प्रमाण ही भरे रहते हैं। किंच ये सूक्तियाँ यथार्थ ज्ञानों की निधि हैं, इनमें यथार्थ ज्ञान ही भरे रहते हैं, ढूंढने पर भी अयथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। जिस प्रकार निधि [illegible] का [illegible] भरे रहते हैं, वैसे ही श्रीरामानुज स्वामी [illegible] प्रकार के यथार्थ ज्ञान भरे रहते हैं।

श्रीसूक्तयस्तु प्रमितिहेतवो रसवत्यः श्रवणमधुराश्च सत्यः परिपूर्ण-ब्रह्मानन्दवर्षिण्यश्च भवन्तीत्याह शुद्धेति । विषयानन्दोऽशुद्धो दुःखसंभिन्नत्वात् । ब्रह्मानन्दो विशुद्ध आनन्दः दुःखासंभिन्नत्वात् । तादृशस्यानन्दस्यभिवर्षका मेघा इमाः सूक्तयः । यथाजलभरितः श्यामो मेघः प्रार्थनानिरपेक्षं स्वयमेवाभितो मधुरं पानीयं वर्षति

में कटु लगते हैं, रसहीन रहते हैं, अयथार्थ ज्ञान को उत्पन्न करते हैं, हानिकारक धारणाओं को उत्पन्न कराकर श्रोता लोगों को अन्त में नरक में ढकेल देते हैं। श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ तो सुनने में मधुर लगती हैं, रसभरित रहती हैं, यथार्थज्ञानों को उत्पन्न करती हैं, साथ में विशुद्ध आनन्द भी प्रदान करती हैं। विषयों से प्राप्त होने वाला आनन्द अशुद्ध है क्योंकि उसमें दुःख मिला रहता है। ब्रह्मानन्द विशुद्ध आनन्द है क्योंकि इसमें दुःख नहीं मिला रहता है। एवं विधि विशुद्ध आनन्द को बरसाने वाला कोई मेघ हो तो वह मेघ श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ ही हैं। मेघ अनन्य शरण चातक की तृषा को शान्त करने के लिये ही जल बरसाता है, तो भी इतना जल बरसाता है, जितने से संपूर्ण जगत परितृप्त हो जाता है, वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ अनन्यशरण श्री वैष्णवों की जिज्ञासा को शान्त करने के लिये ही प्रकट हुई हैं। तो भी संपूर्ण संसार उनसे लाभ उठा कर ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है। ग्रीष्म से संतप्त संपूर्ण जनता टकटकी लगा कर मेघ को ही देखती है आशा करती है कि यह मेघ जल बरसायगा। वैसे ही ताप त्रय से संतप्त सज्जन श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति को आशा भरी दृष्टि से देखते हैं। मेघ जनता की ओर से प्रार्थना की प्रतीक्षा न करता हुआ सम्पूर्ण जगत को मधुर जल से आप्लावित करता हुआ मयूरों को नचाता है। वैसे ही ये

तथा एताः सूक्तयोऽभ्यस्य तां शृण्वतां तत्सम्बन्धिनां च कृते दुःखासंभिन्नं ब्रह्मानन्दं वर्षन्ति। यद्वा—"अत्रब्रह्मसमश्नुते" इत्युक्तरीत्या एताः सूक्तयः स्वाभ्यासिनां पुरुषाणां महानन्दं दत्वा देहवियोगानन्तरं मोक्षानन्दमपि प्रयच्छन्ति, उपाये प्रवर्त्य मोक्षानन्दं वितरन्तीतिभावः।

प्रपत्तौ प्रवृत्तौ कारितायामेतद्देहावसाने मोक्षे दत्तेऽपि उपासने प्रवृत्तौ कारितायां प्रारब्धावसाने एव मोक्षस्य लभ्यत्वात् जन्मान्तरानुभावकप्रारब्धे सति पूर्वं कृतस्य पापांशस्य नरकफलं

किं भोक्तव्यमित्यत्राह यमगतिकथाविच्छेदिन्य इति। एताः सूक्तयो यमगतिकथां विच्छेदयन्ति "न खलु भागवता यमविषयं गच्छन्ति" इत्युक्तरीत्या एताः सूक्तीरभ्यस्यतामुपासकानां जन्मान्तरप्राप्तौ प्रारब्धवशात् संभावितायामपि नरकप्राप्तिरिहत्यब्रह्मानुभवस्य विच्छित्तिर्वा न भवति। एताः सूक्तीरभ्यस्यतां प्रपन्नानां बुद्धिपूर्वकात्युत्कटोत्तरपापे जातेऽपि निष्कृतावकृतायामपि तद्बलान्नरकप्राप्तिर्न भवति किंतु इहैव विविधोपक्लेशैस्तत्पापं दत्तफलं भवति। अतएव यमः स्वकिङ्करमेव माह—

"स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किलतस्य कर्णमूले।
परिहर मधुसूदनप्रपन्नान् प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम्॥

गत को नरक जाना होगा, इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि नहीं, शरणागत को नरक जाना नहीं होगा, प्रपत्ति से प्रसन्न भगवान् यहीं नाना प्रकार के क्लेशों को भुगाकर उस पाप को नष्ट कर देंगे। यह प्रपत्ति का प्रभाव है। यह प्रपत्ति श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियों से विहित हुई। अतः श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्ति प्रपत्ति कराकर प्रपन्नों को यम लोक जाने की वार्ता से भी बचा देती हैं, क्योंकि शास्त्रों में कहा गया है कि "न खलुभागवता यमविषयंगच्छन्ति" अर्थात् भागवत गण यमलोक नहीं जाते हैं, भक्तों के विषय में भी यही बात है कि उन लोगों को भी यमलोक नहीं जाना होगा क्यों कि वे भी भागवत हैं, उनसे प्रारब्धवश भयंकर पाप बन जाने पर भी यहीं उसका फल भुगाया जायगा नरक जाना नहीं होगा। श्रीविष्णु पुराण तृतीय अंश सातवें अध्याय मे यमकिंकर संवाद में कहा गया है अपने भृत्य को हाथ में पाश लिये देखकर श्रीयमराज ने उसके कान में इस रहस्य को कहा कि श्री भगवान मधुसूदन के शरणागत लोगों को छोड़ दो, क्योंकि मैं,

अहममरवरार्चितेन धात्रा यम इति लोकहिताहिते नियुक्तः ।
हरिगुरुवशगोऽस्मि न स्वतन्त्रः प्रभवति संयमने ममापि विष्णुः ॥
हरिममरवरार्चिताङ्घ्रिपद्मं प्रणमति यः परमार्थतो मनुष्यः ।
तमपगतसमस्तपापबन्धं व्रज परिहृत्य यथाग्निमाज्यसिक्तम् ॥
हृदि यदि भगवाननादिरास्ते हरिरसिशङ्खगदाधरोऽव्ययात्मा ।
तदघमघविधानकर्तृ भिन्नं भवति कथं सति चान्धकारमर्के ॥
कमलनयन वासुदेव विष्णो धरणिधराच्युत शङ्खचक्रपाणे ।
भवशरणमितीरयन्ति ये वै त्यज भट दूरतरेण तानपापान् ॥
वसति मनसि यस्य सोऽव्ययात्मा पुरुषवरस्य न तस्य दृष्टिपाते ।

दूसरे पुरुषों का ही स्वामी हूँ, वैष्णवों के लिये स्वामी नहीं हूँ। देव श्रेष्ठों से अर्चित विधाता श्रीमन्नारायण ने मुझे यम नाम देकर लोगों के हित और अहित का फल देने के लिये नियुक्त किया है। मैं अपने गुरु श्रीहरि के वश में हूँ स्वतन्त्र नहीं हूँ, श्रीविष्णु भगवान मुझे भी नियन्त्रण में रख सकते हैं। देववरों से वन्दित चरण कमल वाले श्रीभगवान् को जो मनुष्य परमार्थ भावना से प्रणाम करता है, घृताहुति से प्रज्वलित अग्नि के समान तथा समस्त पाप बन्धन से छूटे हुये उस महात्मा पुरुष को छोड़कर तुम दूर से ही चले जाओ। यदि खड्ग शङ्ख और गदा को धारण करने वाले अविनाशी अनादि श्रीहरि भगवान हृदय में विराजमान हैं तो उन पापहारी श्रीभगवान् के द्वारा उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं, सूर्य के रहते अन्धकार कैसे रह सकता है ? हे कमलनयन हे वासुदेव हे विष्णु हे धरणिधर हे अच्युत हे शङ्खचक्रपाणे आप हमें शरण दीजिये इस प्रकार जो लोग कहते हों, उन पाप शून्य पुरुषों को तुम दूर से ही छोड़ दो। जिस श्रेष्ठ पुरुष के मन में अव्ययात्मा श्रीहरि निवास करते हैं, उस महात्मा का दृष्टिपात

तव गतिरथवा ममास्ति चक्रप्रतिहतवीर्यबलस्य सोऽन्यलोक्यः ॥"
इति । तदेवं यतीश्वरसूक्तयः स्वसेवकान् श्रीवैष्णवानापाद्य तेषां यमगतिकथां विच्छिन्दन्ति ।

*"यतीश्वरसूक्तयो जयन्ति" एवंविधमहागुणविशिष्टा यतिश्रेष्ठस्यश्रीभाष्यकारस्य श्रीभाष्यादिसूक्तयः सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते इत्यर्थः ॥४७॥

अथ स्वयोर्जीवेश्वरतत्वयोः सुखेन बोधकत्वरूपं महागुणं बिभ्राणा यतीश्वरग्रन्था अस्माकं निरन्तरचिन्तनविषया भवन्तीत्याह—

जहाँ तक होगा वहाँ तक न तुम्हारी ही गति है न मेरी ही गति है क्योंकि तुम्हारे हमारे सम्पूर्ण वीर्य और बल श्रीभगवान् के चक्र से खण्डित हो जाते हैं। वह महापुरुष श्रीवैकुण्ठ लोक को प्राप्त करने का अधिकारी है। श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ इन सूक्तियों का सेवन करने वाले सज्जनों को श्रीवैष्णव श्री से सम्पन्न कर यमलोक जाने की वार्ता को ही काट देती हैं।

"यतीश्वरसूक्तयो जयन्ति"—यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ इस प्रकार के कल्याण गुणों से मण्डित होकर सर्वविध उत्कर्ष के साथ विराजमान रहती हैं, क्योंकि ये यतिराज की वाणी हैं राजा की वाणी सबसे उत्कृष्ट होती ही है। हम इन श्रीसूक्तियों के गुणों से आकृष्ट होकर कृतज्ञ भाव से इनका जय जयकार मनाते हैं ॥४७॥

श्रीवेदान्त देशिक स्वामी जी इस श्लोक से भी श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थों की महिमा को बतलाते हुये कहते हैं कि जीव और ईश्वर

प्रतिकलमिह प्रत्यक्तत्वावलोकनदीपिकाः
यतिपरिबृढग्रन्थाश्चिन्तां निरन्तरयन्ति नः ।
अकलुषपरज्ञानौत्सुक्यक्षुधातुरदुर्दशा-
परिणतफलप्रत्यासीदत्फलेग्रहिसुग्रहाः ॥४८॥

*"इह प्रतिकलं प्रत्यक्तत्वावलोकनदीपिकाः" इह भूलोकेऽस्माकं प्रत्यक्तत्वस्य जीवात्मतत्वस्यावलोकनार्थं विशदज्ञानार्थं दीपिकावदुपकुर्वते यतीन्द्रग्रन्थाः । यतीन्द्रग्रन्थानां दीपानां चास्ति महत् सादृश्यम् । दीपा अन्धकारं विनिवर्त्य सुसूक्ष्ममपि

तत्व अत्यन्त दुर्बोध हैं, उनके विषय में श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थ अनायास यथार्थ ज्ञान को उत्पन्न करते हैं अतएव ये ग्रन्थ हमारे निरन्तर चिन्तन का विषय बनते हैं।

इह—यहाँ, *प्रत्यक्तत्वावलोकनदीपिकाः*—आत्मतत्व का साक्षात्कार कराने वाले दीपक, *परज्ञानौत्सुक्यक्षुधातुरदुर्दशापरिणतफलप्रत्यासीदत्फले-ग्रहिसुग्रहाः*—परतत्व विषयक ज्ञान की उत्सुकता रूप क्षुधा से पीड़ित पुरुषों के लिये फल के वृक्ष के समान, *यतिपरिबृढग्रन्थाः*—यतिराज के ग्रन्थ, *प्रतिकलं*—प्रतिक्षण, *नः चिन्तां*—हमारी चिन्ता को, *निरन्तरयन्ति*—दूर करते हैं।

"इह प्रतिकलं प्रत्यक्तत्वावलोकनदीपिकाः"—इस भूलोक में हम लोगों को जीवात्मतत्व का अवलोकन करने में अर्थात्त विशद साक्षात्कार करने में श्रीरामानुज स्वामी जी के ग्रन्थ दीप की तरह उपकार करते हैं। श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थ और दीपों में अत्यन्त समता है। अन्धकार में दीप के बिना नेत्र व्यर्थ हो जाते हैं, वैसे ही श्रीभाष्यकार

पदार्थं दर्शयन्ति यतीन्द्रग्रन्था अज्ञानं विनिवर्त्य सुसूक्ष्ममपि आत्मतत्त्वं दर्शयन्ति। दीपाः पात्रेषु प्रकाशन्ते यतीन्द्रग्रन्था अपि सत्पात्रेषु प्रकाशन्ते दीपाः स्नेहेन प्रज्वलन्ति ग्रन्था अपि प्रेमरूपिणा स्नेहेन दीप्ता भवन्ति, सस्नेहमधीता एव ग्रन्थाश्चकासति, दीपा दशायामर्पिताज्ज्वलन्ति, ग्रन्था जिज्ञासादशायामर्पिता विद्योतन्ते। एते ग्रन्थाः प्रतिकलमेकदेशेऽपि ग्रन्थस्यात्यन्तापरिज्ञानेऽपि प्रत्यक्तत्त्वं यथावद्दर्शयन्ति। इह दर्शयन्ति भूलोके दर्शयन्ति नित्यविभूतौ शास्त्रनिरपेक्षंपटशोपतैकरसात्मस्वरूपदर्शनं

स्वामी जी के ग्रन्थों की सहायता लिये विना हमारी बुद्धि जीवतत्व के समझने के विषय में कुण्ठित हो जाती है। दीप अन्धकार को हटाकर अति सूक्ष्म पदार्थ का भी दर्शन कराते हैं। श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थ अज्ञान को हटाकर दुर्ज्ञेय आत्मतत्व के विषय में विशदज्ञान उत्पन्न करते हैं। दीप दिया इत्यादि स्वच्छ पात्र में चमकते हैं, श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थ परीक्षित सच्छिष्यरूपी सुपात्रों में चमकते हैं। दीप स्नेह से अर्थात तेल और घी इत्यादि से प्रज्वलित होते हैं। ये ग्रन्थ भी स्नेह से अर्थात प्रेम और श्रद्धा से प्रकाशमान रहते हैं क्योंकि प्रेम और श्रद्धा से अध्ययन किये जाने पर ये ग्रन्थ सर्वदा हृदय में चमकते रहते हैं। दीप दशा अर्थात् बत्ती में रक्खे जाने पर स्नेह को अर्थात् तेल इत्यादि को खींचकर चमकते हैं। वैसे ही ये ग्रन्थ शिष्यरूपी सुपात्र में जिज्ञासा रूपी दशा में जब रक्खे जाते हैं तब उन पात्रों में रहने वाले स्नेह अर्थात श्रद्धा और भक्ति को आकर्षित करते हुये चमकते हैं। ये ग्रन्थ एक देश का अध्ययन करने पर भी जीवात्मतत्व के विषय में यथार्थ ज्ञान को उत्पन्न करते हैं, पूरा अध्ययन करने पर क्या ही कहना है? ये ग्रन्थ इस संसार में ही हम

श्रीभाष्यकारः स्वग्रन्थेषु इमानि परमतानि प्रमाणतर्कैः खण्डयन्तो जीवात्मानं ज्ञातारं कर्तारं तत्रापि परतन्त्रकर्तारं स्वयंप्रकाशमजड-मणुपरिमाणं ब्रह्मभिन्नं ब्रह्माधेयं ब्रह्मनियाम्यं ब्रह्मशेषं ब्रह्मपृथक्-सिद्धं च साधयन्तो जीवविषये संशयविपर्ययरहितं यथार्थज्ञानं जनयन्ति। अतो यतीन्द्रग्रन्थाः जीवात्मनोऽवलोकने विशदज्ञाने जननीये करदीपिकावदुपकुर्वते।

*"अकलुषपरज्ञानौत्सुक्यक्षुधातुरदुर्दशापरिणतफलप्रत्यासीदत्फलेग्रहिसुग्रहाः" न केवलं यतीन्द्रग्रन्था जीवात्मतत्त्वं

में आधारित है, परमात्मा के नियन्त्रण में रहने वाला है, परमात्मा का शेषभूत है अर्थात् परमात्मा को उत्कर्ष पहुंचाने के लिये बना हुआ है तथा परमात्मा को छोड़ कर रह नहीं सकता इत्यादि। श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने श्रीभाष्य इत्यादि ग्रन्थों में इन परमतों को प्रमाण और तर्कों से खण्डन कर जीवात्मा के यथार्थ स्वरूप का इस प्रकार निरूपण किया कि जीवात्मा देह इन्द्रिय मन प्राण और बुद्धि से विलक्षण है, अपने लिये स्वयं अहम् अहम् इस रूप में प्रकाशने वाला है, अतएव जड नहीं, यह जीव ज्ञाता कर्ता और भोक्ता है, तथा श्रीभगवान का सर्वथा परतन्त्र है, जीव अणु परिमाण वाला है तथा परब्रह्म से भिन्न है। जीव परमात्मा पर आधारित है, परमात्मा के नियमन में रहने वाला है, परमात्मा का शेष भूत है, तथा परमात्मा को छोड़कर रह नहीं सकता है इत्यादि। अतः सिद्ध हुआ कि यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थ यथार्थ रूप से जीवात्मा का दर्शन कराने वाले दीप हैं।

"अकलुषपरज्ञानौत्सुक्यक्षुधातुरदुर्दशापरिणतफलप्रत्यासीदत्फलेग्रहिसुग्रहाः" श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थ न केवल जीवात्मा के विषय में यथार्थ

यथावद्दर्शयन्ति, किंतु अकलुषं परतत्वज्ञानं च सुखेनोत्पाद-यन्ति। परमात्मा निर्गुणः ब्रह्मरुद्रादिदेवेष्वन्यतमः त्रिमूर्त्युत्तीर्णः निमित्तकारणमात्रम् इत्यादिरीत्योत्पद्यमानं परतत्वज्ञानं कलुष-परतत्वज्ञानम्। अनेन नात्मकल्याणसिद्धिः। परमात्मा गुण-विग्रहविभूत्यादिविशिष्टः अभिन्ननिमित्तोपादानभूतः श्रियः पति-र्नारायण एवेत्युत्पद्यमानं ज्ञानमकलुषपरतत्वज्ञानम्। ईदृशं ज्ञानं

ज्ञान को उत्पन्न कराते हैं, किंतु परमात्मा के विषय में भी निर्मल ज्ञान को अनायास उत्पन्न करते हैं। परमात्मा के विषय में परवादियों ने अनेक प्रकार के भ्रमों को फैला रक्खा है, वे कहते हैं कि परमात्मा निर्गुण हैं, ब्रह्मा शङ्कर जी इत्यादि देवताओं में कोई एक हैं अथवा ब्रह्मा विष्णु और शिव इन त्रिमूर्तियों से भिन्न हैं, परमात्मा जगत के लिये केवल निमित्त कारण मात्र है जैसे कुलाल घट के लिये निमित्त कारण बनता है। परवादियों से फैलाये जाने वाले ये सब ज्ञान भ्रमात्मक हैं। इन ज्ञानों से आत्मकल्याण सिद्ध नहीं होता। परमात्मा के विषय में यथार्थ ज्ञान यही है कि परमात्मा अनन्त कल्याण गुण परम सुन्दर दिव्य मंगल विग्रह और लीलाविभूति तथा भोगविभूति से युक्त हैं प्रकृतिमण्डल को लीला विभूति कहते हैं जहाँ श्रीभगवान जीवों के साथ लीला करते हैं श्रीवैकुण्ठलोक को भोगविभूति कहते हैं जहाँ श्रीभगवान जीवों को ब्रह्मानन्द का अनुभव कराते हुये स्वयं भी अनुभव करते हैं परमात्मा जगत के लिये न केवल निमित्त कारण हैं किंतु उपादान कारण भी हैं, परमात्मा जगद्रूप से परिणत होते हैं जिस प्रकार मृत्तिका का पिण्ड घट के रूप में परिणत होता है, अतः परमात्मा जगत के लिये उपादान कारण भी हैं। श्रीमन्नारायण भगवान ही परमात्मा हैं। यही परमात्मा के विषय में निर्मल ज्ञान है यह निर्मल

कुदृष्टिग्रन्थैर्न केवलं नोत्पद्यते, किंतु विपरीतज्ञानमप्युत्पद्यते बोधायनवृत्त्यादिग्रन्थैरकलुषं ज्ञानं जायमानमपि नानायासेन जायते किंतु महता क्लेशेन जायते। ईदृशमतिनिर्मलमात्मकल्याणावहं परतत्त्वज्ञानं प्राप्तुं ये उत्कण्ठिता भवन्ति तैर्नानाग्रन्थेषु परिश्रमे कृतेऽपि तदलाभात् सोत्कण्ठावर्धमाना तीव्रक्षुधावत्तान् पीडयति, यथा तीव्रक्षुधया प्राणसंशयदशामापन्ना हस्तापचेयपरिणतफलवतां कदल्यादीनां लाभे यथा तत्फलानि सुखेन गृहीत्वा तद्भोजनेन तीव्रामपि क्षुधां प्रशमय्य परमतृप्ता विराजन्ते तथैवाकलुषपरतत्त्वज्ञानप्रेप्सारूपया तीव्रक्षुधया पीडिताः प्राणसंशयदशामापन्ना जिज्ञासवः सुखेन परमात्मतत्त्वज्ञानमुपजनयतः

ज्ञान कुत्सित दृष्टि संपन्न परवादियों के ग्रन्थों से उत्पन्न नहीं होता है प्रत्युत उन ग्रन्थों से विपरीत ज्ञान ही उत्पन्न होता है। जिज्ञासु सज्जन आत्मकल्याणकारी इस निर्मल ज्ञान को प्राप्त करने के लिये उत्कण्ठित होते हैं, अनेक ग्रन्थों में परिश्रम करने पर भी जब वे इस निर्मल ज्ञान को नहीं प्राप्त करते हैं तब उनकी जिज्ञासारूपी उत्कण्ठा विकराल रूप को धारण कर उनको वैसे ही सताती है जिस प्रकार बुभुक्षा विकराल रूप को धारण कर दरिद्र मनुष्यों को सताती है। तीव्र क्षुधा से सताये गये मनुष्य मरण दशा को प्राप्त होते २ ही यदि ऐसे कदली (केला) इत्यादि वृक्षों के समीप पहुंचे जिन वृक्षों में हाथ से तोड़ने योग्य परिपक्व अनेक फल लटकते हों तो उनके फलों को अनायास तोड़कर खाते हुये अपनी तीव्र क्षुधा को शान्त करते हैं अत्यन्त तृप्त हो जाते हैं, वैसे ही निर्मल परमात्म ज्ञान को प्राप्त करने के लिये उठी हुई तीव्र जिज्ञासा से पीड़ित सज्जन अत्यन्त निराशा को प्राप्त होते हुये यदि सौभाग्यवश श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थों का परिचय करते हैं तो

श्रीयतीन्द्रग्रन्थान् संसेव्य तेन निर्मलं परमात्मतत्वज्ञानं प्राप्य जिज्ञासां प्रशमयन्तः परमतृप्ताः सुखेन विराजन्ते। तथा चैवैवं-भूतनिर्मलपरतत्वज्ञानप्राप्त्यर्थजिज्ञासारूपमहाक्षुधातुराणां कृते सन्निहितफलितकदल्यादिवृक्षवद्यतीन्द्रग्रन्था उपकुर्वते।

*"यतिपरिबृढग्रन्थाः प्रतिकलं नश्चिन्तां निरन्तरयन्ति" एवं भूतमहागुणविशिष्टाः श्रीभाष्यादयोयतीन्द्रग्रन्थाः क्षणेक्षणे-ऽस्माकं चिन्तामविच्छिन्नां कुर्वन्ति। यथावयमविच्छेदेन तानेव-ग्रन्थान् चिन्तयेमहि तथा ते ग्रन्था अस्मानापादयन्ति। अनायासेन जीवेश्वरविषये तत्वज्ञानस्योत्पादकत्वाद्रसवत्वाच्चैव यतीन्द्रग्रन्था अस्मान् सदास्वचिन्तने प्रवर्तयन्ति। गुणाधिकाः

ये ग्रन्थ उनके लिये कल्पवृक्ष बनकर अनायास परमात्मतत्व ज्ञानरूपी परिपक्व फल प्रदान करते हैं परमात्मतत्वज्ञान को अनायास प्राप्त कर वे जिज्ञासा को शान्त कर परम तृप्त हो जाते हैं। इस प्रकार निर्मल परतत्वज्ञान को प्राप्त करने के लिये उठी हुई जिज्ञासारूपी तीव्र क्षुधा से पीड़ित सज्जनों के लिये श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थ फलित कदली (केल) आदि वृक्षों की तरह अपार उपकार करते हैं।

"यतिपरिबृढग्रन्थाः प्रतिकलं नश्चिन्तां निरन्तरयन्ति"—इस प्रकार महान् उपकार करने वाले ये यतीन्द्र के ग्रन्थ प्रत्येक क्षण में हमारे निरन्तर चिन्तन के विषय बन जाते हैं। ये ग्रन्थ हम लोगों को अपने विषय में अविच्छिन्न चिन्तन करने के लिये बाध्य करते हैं, हम लोगों से उनका चिन्तन किये बिना रहा नहीं जाता। ये यतीन्द्र के ग्रन्थ जीव और परमात्मा के विषय में निर्मल तत्वज्ञान के उत्पादक होने के कारण तथा स्वयं रसीले होने के कारण हम लोगों को सर्वदा अपने चिन्तन

पदार्थाः पुरुषस्य चित्तमाकर्षन्तीति प्रसिद्धं किल ॥४८॥

इत्थं पूर्वश्लोके श्रीभाष्यकारस्य दिव्यसूक्तयो यथार्थं जीव-परमात्मतत्त्वज्ञानं जनयन्तीत्युक्त्वाऽनेन श्लोकेनोत्पन्नजीव-परमात्मज्ञानानां भगवच्चरणारविन्दश्रद्धां मोक्षेच्छां च प्रयच्छन्ति एतत्क्षोभकदुर्वादिवित्रासनपूर्वकमित्याह—

मुकुन्दाङ्घ्रिश्रद्धाकुमुदवनचन्द्रातपनिभाः
मुमुक्षामक्षोभ्यां ददति मुनिवृन्दारकगिरः ।

करने के लिये प्रेरित करते रहते हैं। यह उचित ही है क्योंकि अत्यन्त गुण वाले पदार्थ मनुष्यों के चित्त को अपने प्रति आकर्षित करते ही रहते हैं ॥४८॥

पूर्व श्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी ने कहा कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ जीवात्मा और परमात्मा के विषय में यथार्थ ज्ञान को उत्पन्न करती हैं। इस श्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ यथार्थ ज्ञान को उत्पन्न कर विरत नहीं होती हैं। किन्तु जिन जिज्ञासु सज्जनों ने इन श्रीसूक्तियों से यथार्थ ज्ञान को प्राप्त किया उन लोगों को ये सूक्तियाँ श्रीभगवान् के चरणारविन्द में श्रद्धा भक्ति को विकसित करती हैं, तथा मोक्षेच्छा को उत्पन्न करती हैं। इन सद्गुणों को नष्ट करने वाले परवादियों के प्रति क्रूरता दिखलाती हैं। इस अर्थ का इस श्लोक में वर्णन करते हैं—

मुनिवृन्दारकगिरः—यतिराज की सूक्ति *मुकुन्दाङ्घ्रिश्रद्धाकुमुदवन-चन्द्रातपनिभाः*—जो भगवच्चरणों की श्रद्धा रूपी कुमुदवन की चाँदनी

स्वसिद्धान्तध्वान्तस्थिरकुतुकदुर्वादिपरिष-
द्दिवाभीतप्रेक्षादिनकरसमुत्थानपरुषाः ॥४६॥

*"मुकुन्दाङ्घ्रिश्रद्धाकुमुदवनचन्द्रातपनिभाः" ऐहलौकिकं भोगं मोक्षं च ददानः श्रीभगवान् मुकुन्दः तथाविधस्य तस्य चरणयोर्विषये विश्वासयुक्ता भक्तिः सर्वेषां हृदि सूक्ष्मरूपेण वर्तते, सा च भक्तिः कारणकार्यक्रोडीकारेण "श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥" इति नवविधा एवं विधोऽयं विश्वासयुक्त भक्तिसमूहएव कुमुदवनं तस्य विकासने श्रीयतीन्द्रसूक्तयश्चन्द्रिका साधर्म्यं बिभ्रति। यथा

है, *स्वसिद्धान्तध्वान्तस्थिरकुतकदुर्वादिपरिषद्दिवाभीतप्रेक्षादिनकरसमुत्थानपरुषाः* तथा स्वकीय मतों के अन्धकार में स्थिर उलूक रूपी दुर्वादियों को कठोर लगने वाला सूर्य का प्रकाश है, *अक्षोभ्यां मुमुक्षां ददति*—अचल मोक्षेच्छा प्रदान करती है।

"मुकुन्दाङ्घ्रिश्रद्धाकुमुदवनचन्द्रातपनिभाः"—श्रीभगवान् इहलोक में भोग और परलोक में मोक्षानन्द देते हैं, इसलिये श्रीभगवान मुकुन्द कहे जाते हैं। श्रीभगवान के चरण में सब की श्रद्धा होती है, तथा श्रीभगवान के चरण में श्रवण कीर्तन स्मरण पादसेवन अर्चन वन्दन दास्य सख्य भाव और आत्मनिवेदन ऐसे नौ प्रकार वाली भक्ति भी हुआ करती है। इस प्रकार की भक्ति साधकों के अन्तःकरण को सुगन्धित उसी प्रकार करती रहती है जिस प्रकार कुमुद पुष्पों का समूह तड़ाग को सुगन्धित करता है। अतः इन नौ भक्तियों का समूह ही एक कुमुद पुष्पों का समूह है। चन्द्रिका कुमुद पुष्पों को विकसित करती है क्योंकि कुमुद पुष्प रात्रि में ही खिलते हैं। भगवच्चरण भक्तिरूपी कुमुद पुष्पों

चन्द्रिका कुमुदवनं विकासयति तथा यतिवृन्दारकस्य यतिदेवस्य गिरो मुकुन्दाङ्घ्रिश्रद्धां विकासयन्ति यथा विकासितं कुमुदवनं सर्वतः सौरभं विकिरति तथा विकासिता मुकुन्दाङ्घ्रिभक्तिः सर्वत आनन्दं विकिरति। चन्द्रिका आह्लादकरी सौम्या च भवति, तथैव श्रीयतीन्द्रसूक्तयोऽप्याह्लादकारिण्यः सौम्याश्च भवन्ति। एवं भगवच्चरणारविन्दभक्तिं विकासयन्तीभिः श्रीयतीन्द्रोक्तिभिर्महान् लोकोपकारः क्रियते।

एवं मुकुन्दाङ्घ्रिश्रद्धाया उत्पादनेऽपि उत्पन्नां श्रद्धां यदि दुर्वादिनः स्वीयान् दुर्वादान् श्रावयित्वा विनाशयेयुस्तर्हि किं

को विकसित करने वाली यदि कोई चन्द्रिका हो वह चन्द्रिका श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ ही हैं क्योंकि इन सूक्तियों से ही श्रीभगवद्भक्ति विकसित होती है। विकसित होने पर कुमुद पुष्प चारों दिशाओं में सुगन्धि को फैलाते हैं, वैसे ही खिल जाने पर श्रीभगवद्भक्ति भी चारों दिशाओं में भगवत्प्रेम को फैलाती है, तथा ब्रह्मानन्द का अनुभव कराती है। चन्द्रिका सब को आह्लादित करती है, तथा सौम्य रहती है चन्द्रिका दर्शन के लिये सब लोग लालायित होते हैं। वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी की ये सूक्तियाँ भी सब को आह्लादित करती हैं, तथा सौम्य रहती हैं, इन श्रीसूक्तियों को सुनने के लिये सभी विद्वद्गण लालायित रहते हैं। इस प्रकार श्रीभगवान् के चरणारविन्द में भक्ति को विकसित करने वाली इन श्रीसूक्तियों से जगत अत्यन्त उपकृत हो रहा है।

यहाँ पर एक शङ्का होती है कि ये सूक्तियाँ भले ही भगवद्भक्ति को विकसित करें तथापि दुर्वादि लोग अपने दुष्ट वादों को सुनाकर यह

कार्यमित्यत्र उलूकानां चक्षुषोर्यथा सूर्य उद्वेजको भवति तथा दुर्वादिनां ज्ञानस्य एताः सूक्तय उद्वेजिका भवन्ति इत्थं दुर्वादिनां विभीषिकाः सत्य एव श्रीसूक्तयो यतो मुकुन्दाङ्घ्रिश्रद्धां विकासयन्ति, अत आसां सन्निधौ दुर्वादिनः पलायनपराः सन्तः श्रद्धां विनाशयितुं नोत्सहेरन्नित्याह—*"स्वसिद्धान्तध्वान्तस्थिरकुतुकदुर्वादिपरिषद्दिवाभीतप्रेक्षादिनकरसमुत्थानपरुषाः" इति । दुर्वादिन उलूककल्पाः श्रीसूक्तयः सूर्योदयकल्पाः सूर्यदर्शमुलूका इव श्रीसूक्तिदर्शं दुर्वादिन उद्विजन्ते । उलूकास्तमोनिवासमत्यर्थं रोचयन्ति एते दुर्वादिनः स्वसिद्धान्तरूपे तमसि स्थिरनिवासं रोचयन्ते तमोदृष्टिप्रतिबन्धकम्, तथैषां सिद्धान्तोऽपि सम्यग्ज्ञानस्य

भगवद्भक्ति को नष्ट करना चाहें तो क्या किया जाय ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि ये सूक्तियाँ दुर्वादियों को ऐसे भगाती हैं जैसे सूर्योदय उलूकों को भगाता है, अतः भगवद्भक्ति के नष्ट होने की संभावना ही नहीं है। इस उत्तर को व्यक्त करते हुए हैं कि "स्वसिद्धान्तध्वान्तस्थिरकुतुकदुर्वादिपरिषद्दिवाभीतप्रेक्षादिनकरसमुत्थानपरुषाः" ये दुर्वादी उलूकों के समान हैं, ये श्रीसूक्तियाँ सूर्योदय के समान हैं। सूर्योदय अन्धकार को दूर कर प्रकाश को फैलाता है, ये सूक्तियाँ परसिद्धान्तरूपी अन्धकार

प्रतिबन्धकः इदं रहस्यमविजानन्त एते दुर्वादिनः स्वसिद्धान्ते स्थिरं कौतुकं बिभ्रति । उलूका सूर्यकिरणप्रचारास्पदे दिने संचारभीता भवन्ति अतएव ते दिवाभीता इत्याख्यायन्ते तथा एते दुर्वादिनोऽपि श्रीभाष्यकारश्रीसूक्तिप्रचारवति देशे काले च वादकरणाद् बिभ्यति, अत एते उलूककल्पाः यथोलूकानामक्ष्णोः सूर्योदयः क्रूरो भाति तथा दुर्वादिनां ज्ञानस्यैताः श्रीसूक्तयः परुषा भवन्ति । यथा सूर्यदर्शमुलूकानां नेत्रनिमीलनं भवति, तथा श्रीभाष्यकारश्रीसूक्तिदर्शमेषां दुर्वादिनां ज्ञानं संकुचति न वादं प्रवर्तयितुमुत्सहते । अत एते दुर्वादिनः श्रीसूक्तिश्रवण-समनन्तरमेव भग्नज्ञानाः कथासंग्रामसीमतः पलायन्ते एवं भूत-

---

यह सिद्धान्त वस्तुतः अपसिद्धान्त है अर्थात् गलत सिद्धान्त है, यथार्थ ज्ञान का प्रतिबन्धक है, किंतु यह समझते हैं कि हम लोगों के लिये कल्याणकारी सिद्धान्त है। ऐसा समझ कर उन गलत सिद्धान्तरूपी अन्धकार में फंसे रहते हैं। उलूक दिन में संचार करने से डरते हैं क्योंकि उस समय सूर्य का प्रकाश फैला रहता है, ये वादिगण उस देश और काल में शास्त्रार्थ करने में डरते हैं जहाँ इन सूक्तियों का प्रचार होता हो तथा जय होता हो। दिन में डरने के कारण जिस प्रकार उलूकों का दिवाभीत नाम पड़ा है, वैसा शास्त्रार्थ में डरने के कारण इन लोगों को "वादभीरु" ऐसा नाम पड़ा है। उलूकों के नेत्रों के लिये सूर्य क्रूर प्रतीत होता है, उलूकों के नेत्र सूर्य को देखते ही फूटने लगते हैं, उनका नेत्र सूर्य को देखते ही मोचने लगता है, इन दुर्वादियों के ज्ञान के लिये ये सूक्तियाँ क्रूर प्रतीत होती हैं, इनका ज्ञान इन सूक्तियों को सामने आते ही फूटने लगता है, अथवा संकुचित होजाता है। सूर्य को देखते ही उलूक अन्धकारापूर्ण देश में भाग जाते हैं, इन सूक्तियों

रेभिः श्रीसूक्त्यभ्यासिनां संपन्ना मुकुन्दाङ्घ्रिश्रद्धा कथं क्षोभयितुं शक्येतेति भावः ।

❀"मुनिवृन्दारकगिरोऽक्षोभ्यां मुमुक्षां ददति" एवंभूता यतिदेवस्य श्रीभाष्यकारस्य श्रीसूक्तयो दुर्वादिभिरक्षोभ्यां मोक्षेच्छां स्वं सेवमानेभ्यः श्रद्धालुभ्यो वितरन्ति । दुर्वादिन उलूकसंनिभाः तेषां सिद्धान्तो ध्वान्तसदृशः उलूकेभ्यो ध्वान्तमिव दुर्वादिभ्यः स्वसिद्धान्त एव रोचत इति न तेषां मुमुक्षा जायेतेति भावः । यथाऽऽश्रितानां विषये "सोमवत् प्रियदर्शनः" इति वर्णितः

को सुनते ही ये दुर्वादि लोग उस देश में भाग जाते हैं जहाँ अन्धकार-मय उनके सिद्धान्त का प्रचार है । इस प्रकार इन श्रीसूक्तियों को सुनते ही भागने वाले प्रतिवादियों से भगवद्भक्ति के नष्ट होने का भय नहीं है ।

श्रीरामभद्र शत्रूणां विषये "अभितः पावकोपमम्" इति वर्ण्यते, यथा श्रीगीतायां "अमीहि त्वां सुरसंघा विशन्ति" इति देवैः सूपसदत्वेन वर्णितो विश्वरूपो भगवान् "रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति" इति राक्षसवित्रासकत्वेन वर्ण्यते तथा मुकुन्दाङ्घ्रिश्रद्धा-कुमुदवनानां कृते चन्द्रिकासंनिभाः श्रीसूक्तयः दुर्वादिदृष्टीनां कृते उलूकदृष्टीनां कृते सूर्योदय इव परुषा भवन्तीति वर्णितं भवति ॥४६॥

पूर्वश्लोके यतिवृन्दारकगिरामक्षोभ्यमुमुक्षादातृत्वं वर्णितम् तच्च प्रज्ञारसप्रवाहवर्धनद्वारेणेत्यनेनश्लोकेनयतिपतिनिबन्धानां प्रज्ञारसवर्धकत्वमाह—

अन्यत्र उन्हीं रामचन्द्र जी के विषय में वर्णन करते हैं "अभितः पावकोपमम्" अर्थात् श्रीरामचन्द्र जी शत्रुओं के लिये अग्नि के समान क्रूर प्रतीत होते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीभगवान के विश्वरूप के विषय में वर्णन आया है कि "अमीहि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति" इससे प्रतीत होता है कि अनुकूल प्रतीत होने के कारण देवगण विश्वरूप भगवान के पास आते हैं अन्यत्र उसी विश्वरूप के वर्णन में आया है कि "रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति" अर्थात् राक्षस लोग उस विश्वरूप को देखकर डरते हुए दिशाओं में भाग जाते हैं। वैसे ही श्रीरामानुज स्वामी जी के ग्रन्थों के विषय में सौम्य और भयंकर रूप में वर्णन किया गया ॥४६॥

निराबाधा बोधायनफणितिनिष्यन्दसुभगा
विशुद्धोपन्यासव्यतिभिदुरशारीरकनयाः ।
अकुण्ठैः कल्पन्ते यतिपतिनिबन्धा निजमुखैः
अनिद्राणप्रज्ञारसधमनिवेधाय सुधियाम् ॥५०॥

*"निराबाधाः" यतिपतिनिबन्धा निराबाधा निर्गत आसमन्ताद् बाधो येषां ते तथोक्ताः यतिपतेः प्रबन्धा निर्बाधाः सन्तोऽपि किं कचित्कचित् बाधवन्तः स्युरित्यत्रोच्यते निराबाधा इति। आसमन्तान्निर्बाधाः कात्स्न्र्येन बाधरहिता इत्यर्थः।

संवर्धन करती हैं जिससे मोक्षेच्छा उत्पन्न होती है—

यतिपतिनिबन्धाः—यतिराज के निबन्ध, *निराबाधाः*—जो बाधा रहित हैं, *बोधायनफणितिनिष्पन्दसुभगाः*—महर्षि बोधायन के वृत्ति ग्रन्थ के रस लेकर बहने वाले प्रवाह हैं, *विशुद्धोपन्यासव्यतिभिदुरशारीरकनयाः*—जिनमें व्याख्या करने की शुद्ध पद्धति में ब्रह्म मीमांसा के न्यायों का निरूपण है, *अकुण्ठैः निजमुखैः*—अपने अकुण्ठित अंशों द्वारा, *सुधियाम् अनिद्राणप्रज्ञारसधमनिवेधाय कल्पन्ते*—बुद्धिमानों की जागृत बुद्धि रस की नाडी का वेध करते हैं।

*"बोधायनफणितिनिष्यन्दसुभगाः" बोधायनफणितेर्वृत्ति-ग्रन्थस्य निष्यन्दवत् सारपरीवाहवत् सुभगा मनोहराः। वृत्ति-ग्रन्थानुसारित्वाच्छ्रीभाष्यादिग्रन्था अत्यन्तं सुभगा वर्तन्ते। मतान्तरग्रन्थास्तु स्वकपोलकल्पितत्वात्सुभगा न भवन्ति। श्रीभाष्यादिग्रन्थानां वृत्तिग्रन्थानुसारित्वं "भगवद्बोधायनकृतां विस्तीर्णां ब्रह्मसूत्रवृत्तिं पूर्वाचार्याः संचिक्षिपुः। तन्मतानुसारेण सूत्राक्षराणि व्याख्यास्यन्ते" इत्यारम्भे प्रतिज्ञानात् मध्येऽसकृत् "तदाहवृत्तिकारः" इत्युक्तावृत्तिग्रन्थस्योद्धरणाच्च दृढी भवति।

"बोधायनफणितनिष्यन्दसुभगाः"—श्रीबोधायन महर्षि ने ब्रह्म सूत्रों पर वृत्तिग्रन्थ नामक एक व्याख्यान का निर्माण किया ब्रह्मसूत्रकार श्रीवेदव्यास जी महर्षि हैं, उन ब्रह्म सूत्रों के व्याख्याकार श्रीबोधायन भी महर्षि हैं। महर्षि के अभिप्राय महर्षि ही ठीक जान सकते हैं दूसरा मनुष्य वैसा जान नहीं सकता। अतः सिद्ध होता है कि श्रीबोधायन महर्षि का वृत्ति ग्रन्थ परम प्रामाणिक है। श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ उस वृत्ति ग्रन्थ के सारों का संग्रह है। अतएव ये ग्रन्थ अत्यन्त मनोहर हैं श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ पूर्ण रूप से वृत्ति ग्रन्थ का अनुसरण करते हैं। यह बात श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों से ही सिद्ध होती है। श्रीभाष्य के आरम्भ में ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने प्रतिज्ञा की कि "भगवान श्रीबोधायन महर्षि ने विस्तृत वृत्ति ग्रन्थ का निर्माण किया। पूर्वाचार्यों ने उस ग्रन्थ का संक्षेप अपने ग्रन्थों में किया। उन पूर्वाचार्यों के मत के अनुसार ब्रह्म सूत्रों की व्याख्या की जायगी।" श्रीभाष्य में अनेकों बार वृत्ति ग्रन्थ के उद्धरण दिये गये हैं। इस निरूपण से सिद्ध हुआ कि श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ वृत्ति ग्रन्थ के रसों को लेकर बहने वाले प्रवाह हैं।

*"विशुद्धोपन्यासव्यतिभिदुरशारीरकनयाः" विशुद्धेन निर्दोषेणोपन्यासेन सयुक्तिकपूर्वपक्षसिद्धान्तोपन्यासेन व्यतिभिदुराः पृथक् पृथक् प्रकाशयमानाः शारीरकनयाः शारीरकसूत्रगतन्याया यैस्ते। श्रीभाष्यादयः प्रबन्धाः सयुक्तिकं पूर्वपक्षमुपन्यस्य प्रबलयुक्तिभिः पूर्वपक्षयुक्तिखण्डनपूर्वं सिद्धान्तं प्रतिष्ठापयन्तोऽसंकीर्णानगतार्थान् न्यायान् प्रतिपाद्य तैः सन्दिग्धवेदान्तवाक्यार्थनिर्णयं साधयन्ति। तथा च श्रीभाष्यादिग्रन्थाः सारभूताधिकरणपूर्वपक्षसिद्धान्तोपन्यासमुज्ज्वला वर्तन्ते इति भावः।

"विशुद्धोपन्यासव्यतिभिदुरशारीरकनयाः"—श्रीभाष्य में १५६ अधिकरण हैं प्रत्येक अधिकरण में सन्दिग्ध वेद वाक्यों के अर्थों का निर्णय किया गया है। जिस प्रकार न्यायालय में वादी और प्रतिवादियों के पक्ष को सुनकर विचार पूर्वक न्यायों के आधार पर निर्णय किया जाता है, इसी प्रकार श्रीभाष्य के प्रत्येक अधिकरण में विचार इस प्रकार किया जाता है, प्रथमतः उन उपनिषद्वाक्यों का उल्लेख किया जाता है जिनके अर्थ के विषय में संशय होता है। अनन्तर उस संशय का स्वरूप उपस्थापित किया जाता है। उसके अनन्तर पूर्वपक्षी सयुक्तिक अपना पूर्व पक्ष को रखते हुये कहते हैं कि उपनिषद् वाक्य का अर्थ ऐसा होना चाहिये। अनन्तर सिद्धान्ती समीचीन प्रमाण और युक्तियों से पूर्व पक्ष की युक्तियों का खण्डन कर सिद्धान्त को उपस्थापित करते हुये कहते हैं कि उपनिषद् वाक्य का अर्थ ऐसा होना चाहिये यही अर्थ प्रमाण और तर्कों से संगत है। श्रीभाष्य में पूर्व पक्ष और सिद्धान्त का विशद रूप से वर्णन किया गया है। प्रत्येक अधिकरण में अकाट्य न्यायों का निरूपण किया गया है। उन न्यायों में एक से दूसरा चरितार्थ नहीं होता है। ऐसे न्याय ही श्रीभाष्य में भरे हैं।

*"यतिपतिनिबन्धा अकुण्ठैर्निजमुखैः सुधियामनिद्राण-प्रज्ञारसधमनिवेधाय कल्पन्ते" यतिपतिनिबन्धाः श्रीभाष्यकारस्य-ग्रन्थाः अकुण्ठैः प्रतिवादिभिरखण्डितैः निजमुखैर्निजैकदेशैरपि अथवा मुखशब्देन लक्षितैः प्रधानप्रतिपाद्यार्थैरनिद्राणाऽसुप्ता या प्रज्ञा सैव रसस्तद्वाहिन्या नाड्या वेधार्थं कल्पन्ते समर्था भवन्ति, यथा नाडीज्ञेन पुंसा बुद्धिनाडीवेधने बुद्धिर्विकसति तथा श्रीभाष्यादिग्रन्था अपि प्रज्ञां विकासयन्तीत्यर्थः ॥५०॥

पूर्वश्लोके यतिपतिनिबन्धानां निराबाधत्वमुक्तम् । तत्र तेषां निराबाधत्वं कथम् ? प्रमाणान्तरबाधाभावेऽपि खण्डनयुक्त्या सर्वस्यापि खण्डनीयत्वेन तेषामपि सुखण्डत्वात् खण्डनयुक्तय-

---

"यतिपतिनिबन्धा अकुण्ठैर्निजमुखैः सुधियामनिद्राणप्रज्ञारसधमनिवेधाय कल्पन्ते"—श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थ अध्ययन करने वालों के प्रज्ञारूपी रस को प्रवाहित करते हैं। उन ग्रन्थों के प्रधान अर्थों को जो समझते हैं उनकी प्रज्ञा बढ़ने लगती है। मनुष्यों के शरीर में नाड़ियाँ होती हैं, कितनी ही नाड़ियों में रुधिर बहता रहता है, उन नाड़ियों में वेध करने पर रुधिर फूट निकलता है। अनेकों नाड़ियों में प्रज्ञा बहती है, यदि नाड़ीतत्त्व को समझने वाले योगी शिष्य के उन नाड़ियों में वेध करें तो प्रज्ञा तीव्र गति से प्रवाहित होती है, श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ भी उन नाड़ियों को वेधने में पूर्णक्षमता रखते हैं, अतएव उन ग्रन्थों का अभ्यास करने वालों की प्रज्ञा बढ़ती ही रहती है ॥५०॥

पूर्व श्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी ने कहा कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थों का खण्डन नहीं हो सकता। यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि भले अन्य प्रमाणों से खण्डन न होवे किंतु श्रीहर्ष प्रणीत खण्डन-

वष्टम्भेन व्युत्तिष्ठमानाः प्रतिवादिनः कथं दमनीया इत्यत्र खण्डनयुक्तिशरणानां दुर्वादिनां जयार्थं न प्रयासः कार्यः मदान्धानां वृक्षान्निपात्य तच्छाखाभिर्जनसंचारमार्गं विघटयतां गजानां सर्वोऽपि संभ्रमकलह सिंहनादे सस्यविनाशकवन्यगजहननार्थमृगयाविहारपरायणधनुर्धरनृपतिचापटङ्कारे तन्नाम्नि वा श्रुतमात्रे यथा विरमति तथा वितण्डावादमाश्रित्याहंकुर्वतां प्रतिवादिनां सर्वोऽपि वादकोलाहलो यतिनृपतिशब्दानां

खण्ड खाद्य में वर्णित युक्तियों से तो खण्डन हो सकता है क्योंकि वे युक्तियां सभी सिद्धान्तों को काट सकती हैं। ऐसी स्थिति में खण्डन युक्तियों से यदि प्रतिवादिगण श्रीभाष्यकार स्वामी जी के सिद्धान्तों के खण्डन में उतारू हो जाँय तो उनका दमन कैसे किया जाय ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि खण्डन युक्तियों के आधार पर शास्त्रार्थ करने वाले इन दुर्वादियों को परास्त करने के लिये अधिक प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है, अनायास इन को परास्त कर सकते हैं। इन दुर्वादियों के बल को हम नहीं जानते सो नहीं, अवश्य जानते हैं, जानते हुये ही कहते हैं कि अनायास ये परास्त हो सकते हैं। ये दुर्वादिगण मदोन्मत्त गजों के समान हैं। मदोन्मत्त गज मार्गस्थ वृक्षों को उखाड़ कर गिरा देते हैं, वृक्षों को शाखाओं से मार्ग को पाट देते हैं मार्ग में जनता का आना जाना रुक जाता है। वैसे ही ये दुर्वादिगण वैदिक सिद्धान्तों को उखाड़ कर फेंकते हैं, वेदमार्ग अवरुद्ध हो जाता है। उन दुर्दान्त उद्दण्ड गजों की संपूर्ण विनाश लीला या तो सिंह का गर्जन कान में पड़ते ही बंद हो जाती है, अथवा जंगली हाथियों के मारने वाले शिकारी महाराजा के धनुष का टंकार शब्द कान में पड़ते ही बंद हो जाती है, अथवा उस राजा का नाम सुनते ही बन्द हो जाती है,

श्रीभाष्यादिग्रन्थानां यतिपतिरितिनामश्रवणमात्रेण वा विरमती-त्युत्तरमभिप्रेत्याह—

विकल्पाटोपेन श्रुतिपथमशेषं विघटयन्
यदृच्छानिर्दिष्टे यतिनृपतिशब्दे विरमति ।
वितण्डाहंकुर्वत्प्रतिकथकवेतण्डपृतना-
वियातव्यापारव्यतिमथनसंरम्भकलहः ॥५१॥

*"विकल्पाटोपेनाशेषं श्रुतिपथं विघटयन्" दुर्वादिनो वितण्डावादमाश्रित्य श्रुत्यर्थ एवं वा तथावेति बहुधा विकल्प्य

वैसे ही इन दुर्वादियों का संपूर्णवाद कोलाहल श्रीभाष्यकार स्वामी जी की वाणी रूपी ग्रन्थ कान में पड़ते ही बंद हो जाता है, अथवा श्रीभाष्यकार स्वामी जी के नाम कान में पड़ते ही बंद हो जाता है। इस उत्तर को व्यक्त करते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं—

विकल्पाटोपेन श्रुतिपथमशेषं विघटयन्—कल्पनाओं के घटाटोप से वेद मार्ग पर दूषणों को आरोपित करने का दुस्साहस करने वाले, *वितण्डाहं-कुर्वत्प्रतिकथकवेतण्डपृतनावियातव्यापारव्यतिमथनसंरम्भकलहः*—जो मतांतर वादी वितण्डावाद का अहंकार करते हुये मदोन्मत्त हाथियों की विनाश लीला के समान खण्डन कार्य का कोलाहल करते हैं, *यतिनृपतिशब्दे यदृच्छानिर्दिष्टे विरमति*—वे यतिराज के शब्दों को सुनते ही चुप हो जाते हैं।

"विकल्पाटोपेनाशेषं श्रुतिपथंविघटयन्"—मदोन्मत्त गज राज मार्ग में रहने वाले वृक्षों को उखाड़ कर उन की शाखाओं से मार्ग को पाट देते हैं, जनता का आना जाना रुक जाता है, वैसे ही ये दुर्वादिगण

खण्डनयुक्तिभिः दूषयन्तस्तादृशविकल्पसंभ्रमेण सर्वं वेदमार्गमाकुलयन्ति। अतस्तेषां वादकोलाहलो वेदमार्गविदूषको भवति। प्रमाणप्रमेयविषये तत्कृतानि विकल्पपूर्वकखण्डनानि तेषां निरासो च श्रीभाष्यादिषु द्रष्टव्यः।

*"वितण्डाहंकुर्वत्प्रतिकथकवैतण्डपृतनावियातव्यापारव्यतिमथनसंरम्भकलहः" प्रतिकथकाः प्रतिवादिनो वितण्डायां स्वपक्षस्थापनाहीने परपक्षदूषणमात्रपरे निकृष्टे वादे प्रवृत्ता अहंकुर्वन्ति अहं सर्वखण्डनसमर्थ इत्यहंकारं कुर्वन्ति। एवं वितण्डावादे

वैदिक अर्थों का खण्डन कर श्रीमद्वेदमार्ग को नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं। ये लोग विकल्प करके वैदिक अर्थों का खण्डन करते हैं। वैदिक अर्थ ऐसा है या वैसा है, इस प्रकार ये लोग आरम्भ में विकल्प करते हैं, अनन्तर दोनों पक्षों का खण्डन करते हैं। इस प्रकार ये दुर्वादिगण वैदिक अर्थों का खण्डन करते हैं। इनके खण्डन से वेद से सर्वसाधारण की श्रद्धा उठ जाती है, वेद मार्ग अवरुद्ध होजाता है उसमें वैदिक जनता का संचार बंद हो जाता है। श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों से सभी समझ सकते हैं कि ये लोग प्रमाण इत्यादि पदार्थों का कैसे खण्डन करते हैं उनका उत्तर क्या है इत्यादि।

"वितण्डाहं–कुर्वत्प्रतिकथकवैतण्डपृतना–वियातव्यापारव्यतिमथनसंरम्भकलहः"—ये दुर्वादिगण वितण्डावाद में अधिक उत्साह रखते हैं शास्त्रार्थ को वाद कहते हैं। वाद तीन प्रकार का है (१) वाद (२) जल्प (३) और वितण्डा। वाद उस शास्त्रार्थ को कहते हैं जिसे जय और पराजयों में इच्छा न रखने वाले निर्णय के इच्छुक वादिगण प्रमाण और तर्कों से अपने पक्ष का समर्थन तथा परपक्ष का खण्डन करते हुए संपन्न करें। यह वाद शास्त्रार्थ उत्तम समझा जाता है क्यों कि इससे

प्रबुद्धा दुर्वादिनो मदान्धगजाननुकुर्वन्ति। यथा मदान्धा गजा-वृक्षान्निपात्य तच्छाखाभिर्मार्गं रुन्धाना जनानां गतागती विघट-यन्ति तथैवैते दुर्वादिनो वैदिकान् परमप्रामाणिकानप्यर्थान् विकल्प्यखण्डयन्तोऽखिलजगद्धितार्थं सर्वेश्वरेण प्रवृत्तं वेदमार्गं दूषयन्तस्तत्र वैदिकजनतायाः संचारं प्रतिबध्नन्ति, यथा मदान्धा गजाः कृतस्नाना अपि स्वशिरसि धूलीप्रक्षेपं कुर्वन्तो मलिना भवन्ति, तथैते खण्डनयुक्तिशरणा दुर्वादिनः परोपस्थापिताभिः स्वोक्तखण्डनयुक्तिभिरेव खण्डिता भवन्ति। एवं भूतानां प्रति-

---

तत्त्व निर्णय फलित होता है। जल्प उस उच्छा शास्त्रार्थ को कहते हैं जिसे जय में इच्छा रखने वाले वादी और प्रतिवादी प्रमाण और तर्कों से अपने पक्ष का समर्थन तथा परपक्ष का खण्डन करते हुये संपन्न करें। यह शास्त्रार्थ मध्यम समझा जाता है क्योंकि इसमें तत्त्व निर्णय नहीं होता है, किन्तु एक वादी का जय होता है। उस शास्त्रार्थ को वितण्डावाद कहते हैं, जिसे जय की कामना से प्रेरित वादी और प्रतिवादी विद्वान संपन्न करते हैं, उनमें भी एक को अपने पक्ष की स्थापना और परपक्ष का खण्डन करना पड़ता है, दूसरे को परपक्ष का खण्डन मात्र करना पड़ता है, स्वपक्ष का स्थापन नहीं करना पड़ता है। इस वितण्डावाद को अधम शास्त्रार्थ कहा जाता है क्यों कि इससे तत्त्व निर्णय तो होता ही नहीं, तथा इसमें एक वादी परपक्ष का खण्डन मात्र करता रहता है यदि उससे पूछा जाय कि तुम्हारा मत क्या है, वह उत्तर देता है कि हमारा मत कुछ नहीं, मुझे तो परमत का खण्डन मात्र करना है। इस प्रकार वह वादी न अपने मत को शास्त्रार्थ में रखता है न उसका समर्थन करता है केवल परमत के खण्डन में ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझता है। अतः यह वितण्डावाद सबसे

वादिनां समूहो मदान्धगजसमूहमनुकरोति मदान्धगजा यथाऽस्मत्तो बलवन्तो न भवन्तीति धिया वियातव्यापारं धृष्टव्यापारं कुर्वन्ति तथैवैतेऽपि दुर्वादिनोऽस्मत्तोऽन्ये प्रबलावादिनो न सन्तीति धियोद्दण्डव्यापारे प्रवर्तन्ते। यथा ते गजा धृष्टव्यापारं कुर्वन्तः परपीडनं कुर्वन्ति तथैवैते दुर्वादिन उद्दण्डव्यापारं कुर्वाणाः परपीडनसंभ्रमेण वादकोलाहलं कुर्वन्ति। मदान्धगजवदेतेऽजय्या इति लोकोऽपि प्रत्येति।

*"यदृच्छानिर्दिष्टे यतिनृपतिशब्दे विरमति" यथा

निकृष्ट शास्त्रार्थ समझा जाता है। दुर्वादी लोग अधिक संख्या में वितण्डावाद में ही प्रवृत्त होते हैं क्योंकि वे समझते हैं इसमें हमारा भार अल्प है, हमको परमत का खण्डन भर करना होगा, स्वपक्ष की स्थापना करना नहीं। इस प्रकार निकृष्ट शास्त्रार्थ में प्रवृत्त होने वाले उन दुर्वादियों को स्वयं अपने लिये निकृष्ट मानना चाहिये था। परन्तु वे लोग अपने को निकृष्ट नहीं मानते हैं अपितु गर्व से फूले नहीं समाते। वे लोग यही कहा करते हैं कि हम लोग सब का खण्डन कर सकते हैं परवादी जो कुछ बात कहें उसका हम लोग तत्क्षण कर देंगे। इस प्रकार पूरे उत्तरदायित्व को न लेने वाले ये वितण्डावादी शास्त्रार्थ में मदोन्मत्त हाथी की तरह प्रवृत्त होते हैं। मदोन्मत्त हाथी समझते हैं कि हमसे बढ़कर बलवान प्राणी संसार में नहीं है, इस गर्व के कारण निर्भय होकर वे मनमानी विनाश लीला में उतारू हो जाते हैं। वैसे ही ये वितण्डावादी समझते हैं कि हमसे बढ़कर शास्त्रार्थी जगत में नहीं हैं। इस गर्व से ये लोग भी निर्भय होकर खण्डन में प्रवृत्त होते हैं। जब वे बड़े संभ्रम के साथ खण्डन कोलाहल करते हैं, तब सामान्य जनता समझती है कि इनको जीतना अशक्य है।

मदान्धगजानां स सर्वोऽपि परपीडनपर्यवसायी व्यापारः मृगपतेः सिंहनादरूपे शब्दे अथवा वन्यगजवित्रासकनृपतिधनुष्टङ्कारशब्दे तथाविधनृपतिनाम्नि वा श्रुतमात्र एव शान्तो भवति गजाश्च भीताः पलायन्ते, तथैवेषां वितण्डावादिनां सर्वोऽपि वादकोलाहलो यतिनृपतेः श्रीभाष्यकारस्य श्रीभाष्यादिशब्दे यतिनृपतिरिति वाचकशब्दे वा श्रुतमात्र एव शान्तो भवति। "तस्य रामकथां श्रुत्वा मारीचस्य महात्मनः। शुष्कं सममवद्वक्त्रं परित्रस्तो बभूव ह॥" इत्युक्तरीत्या रावणमुखाच्छ्रीरामवृत्तान्तश्रवणमात्रेण

"यतिनृपतिशब्दे यदृच्छानिर्दिष्टे विरमति"—मदोन्मत्त गजों की संपूर्ण विनाशलीला उसी क्षण बंद हो जाती है जब मृगों के पति सिंह का गर्जन सुनाई देता है, अथवा जंगली गजों की शिकार करने वाले धनुर्धर महाराजा के धनुष का टंकार सुनाई देता है। उसी प्रकार इन वितण्डावादियों का संपूर्ण कोलाहल उसी समय बंद हो जाता है जब श्रीभाष्यकार स्वामी जी विरचित श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों की पंक्तियाँ सुनाई दें, चाहें उन पंक्तियों को यदृच्छा से उच्चारण अविद्वान करें या विद्वान करें। अथवा श्रीभाष्यकार स्वामी जी का नाम भी उच्चारित हो, तो उसी समय वितण्डावादियों का संपूर्ण कोलाहल समाप्त हो जाता है। उन लोगों को परास्त करने में कोई कठिनाई नहीं है। गज महानदी में स्नान कर निर्मल होकर निकलते हैं तो भी तीर पर पहुँचते ही धूल को अपने ऊपर बखेर कर मलीन हो जाते हैं, वैसे ही ये वितण्डावादी अपनी कृति से खण्डित हो जाते हैं। ये लोग जिन युक्तियों से परमत का खण्डन करते हैं, यदि उन्हीं युक्तियों का इनके विषय में प्रयोग किया जाय तो ये लोग अनायास खण्डित हो जाते हैं। श्रीवाल्मीकि रामायण सुन्दरकाण्ड में कथा आयी है कि

*"तर्काणां प्रतिष्ठा ऋचां प्रतिपदंयजुषां धाम साम्नां परिष्कारोऽथर्वाङ्गिरसयोः परिपणं तत्त्वानां प्रदीपस्तापसगिरां प्रतिकृतिरसौ यतीशानफणितिः" यतीशानस्य यतिराजस्य श्रीभगवद्रामानुजमुनेः फणितिः श्रीसूक्तिस्तर्काणां प्रतिष्ठा पर्यवसानभूमिः स्थितिकारणं च वर्तते वेदशास्त्राविरोधिनां तर्काणां प्रधानाश्रयः इति यावत्। "तर्काप्रतिष्ठानादिति" तर्का अप्रतिष्ठिता वर्णिताः तथोक्तानामपि तर्काणां प्रतिष्ठाहेतुः श्रीभगवद्रामानुजदिव्यसूक्तिः। वेदशास्त्रविरोधिनस्तर्का अप्रतिष्ठिताः वेदशास्त्राविरोधिनस्तर्काः प्रतिष्ठता इति विवेकः। वेदशास्त्राविरोधिनां वेदशास्त्रानुकूलानां तर्काणां सुबहुवर्णनं श्रीभाष्यकारेण क्रियते। विविधयुक्तिवादैरपि यतीश्वरश्रीसूक्तिः खण्डयितुं न शक्यते। सकलयुक्तीनामास्पदं हि सा। इतरग्रन्था युक्ति-

---

है एवं, *तापसगिरां प्रतिकृतिं*—स्मृति इतिहास और पुराणों की प्रतिनिधि है, *संवित्तेः प्रसत्तिं प्रदिशति*—बुद्धि को निर्मल ज्ञान देती है।

"तर्काणां प्रतिष्ठा ऋचां प्रतिपदं यजुषां धाम साम्नां परिष्कारोऽथर्वाङ्गिरसयोः परिपणं तत्त्वानां प्रदीपस्तापसगिरां प्रतिकृतिरसौ यतीशानफणितिः"—श्रीभाष्यकार स्वामीजी की श्रीसूक्ति तर्कों का प्रधान आधार है। वेदशास्त्र के अनुकूल कई तर्क हैं प्रतिकूल कई तर्क हैं। वेदशास्त्र के प्रतिकूल तर्क प्रतिष्ठित नहीं होते अनुकूल तर्क ही प्रतिष्ठित होते हैं। वेदशास्त्र के अनुकूल तर्कों के आधार हैं श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ। क्योंकि इन में वेदशास्त्रों के समर्थक समीचीन तर्कों का ही वर्णन है। अनेक प्रकार के दुस्तर्कों से श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति खण्डित नहीं हो सकती, क्योंकि इस में असंख्य सत्तर्क भरे हैं। मतान्तर के ग्रन्थ तर्कों से खण्डित हो जाते हैं। श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ ऐसे नहीं है।

विरुद्धत्वाच्च न यथार्थवस्तत्वप्रकाशका इति भावः। तापसगिरां प्रतिकृतिः पराशरपाराशर्यशुकशौनकप्राचेतसादिमहर्षिगिरां प्रतिबिम्बभूता यतो यतिराजश्रीसूक्त्या महर्षिप्रणीतस्मृतीतिहासपुराणार्था यथावत् प्रकाश्यन्ते। इतरग्रन्था आर्षग्रन्थविरुद्धा इत्येतत् श्रीभाष्येपुराणघट्टे प्रपञ्चितम्।

*"यतीशानफणितिः संविन्नेः प्रसत्तिं प्रदिशतु" एवंविधा-सत्तर्कपरिकर्मिता चतुर्वेदानुसारिणी आर्षग्रन्थार्थवर्णनपरा यति-

---

के विषय में विशद ज्ञान उत्पन्न करती है। अतः यह दीप के समान है। मतान्तर ग्रन्थ वेदों का अनुसरण नहीं करते हैं, समीचीन तर्कों पर आधारित नहीं हैं, अतः तत्वों के विषय में विशद ज्ञान उत्पन्न नहीं कर सकते। "तापसगिरां प्रतिकृतिः"—श्रीपराशर जी श्रीवेदव्यास जी श्रीशुकदेव जी श्रीशौनक जी श्रीवाल्मीकि जी इत्यादि महर्षियों के द्वारा प्रणीत स्मृति इतिहास और पुराण इत्यादि ग्रन्थ बिम्ब के समान हैं, श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति प्रतिबिम्ब के समान है। बिम्ब और प्रतिबिम्ब में पूर्ण समता रहती है, बिम्ब में जितनी विशेषतायें होती हैं, वे सब प्रतिबिम्ब में दिखाई देती हैं, वैसे ही इन महर्षियों की वाणी और श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति में अत्यन्त समता है। इन महर्षियों के ग्रन्थ में जो २ अर्थ बतलाये गये हैं वे सभी अर्थ श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों में पाये जाते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति स्मृति इतिहास और पुराणों का अनुसरण करती है। मतान्तर के ग्रन्थ इन आर्ष ग्रन्थों से विरोध रखते हैं। यह अर्थ श्रीभाष्य में पुराण घट्ट में विस्तार से वर्णित है।

*"असौ यतीशानफणितिः संविन्नेः प्रसत्तिं प्रदिशतु"—एवं विध अद्दिम

राजसूक्तिर्ज्ञानस्य प्रसन्नतां ददातु कलुषाया मद्बुद्धेः प्रसन्नता मया दुःसंपादा श्रीभाष्यादिग्रन्थपरिचयेनैव सा संपाद्या अतो यति-राजसूक्तिस्तत्त्वहितादिविषये निर्मलज्ञानं जनयत्विति प्रार्थये ॥५२॥

पूर्वश्लोके यतीशानफणितिः संविदः प्रसत्तिं दिशतु इति प्रार्थयामास। अस्मिन् श्लोके यथाप्रार्थनं धियः प्रसादं वितीर्य प्रसन्नया धियाऽस्माभिः संसारवर्धकेषु देवतान्तरेषु दोषे संसार-निवर्तके श्रीभगवति गुणे च विदिते यतिभूभृत्फणितयः देवतान्तर प्रावण्यनिवर्तनपूर्वकमस्माकं भगवत्यैकान्त्यं निबध्नन्तीत्याह—

संपन्न श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति हमारी बुद्धि की मलिनता को दूर करे, बुद्धि को निर्मल करे। यह प्रार्थना है। जिस प्रकार कतक फल का चूर्ण मलिन जल को निर्मल बना देता है, वैसे ही हमारी मलिन बुद्धि को *श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति ही निर्मल बना* सकती है। हम लोग अपनी बुद्धि को निर्मल नहीं बना पाते हैं। अतः प्रार्थना करना ही हम लोगों का एकमात्र अवलम्ब है। अतः प्रार्थना करते हैं ॥५२॥

श्रीदेशिक स्वामी जी ने पूर्व श्लोक में प्रार्थना की कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति हमारी बुद्धि में निर्मलता लावे। इस श्लोक में कहते हैं कि निर्मल बुद्धि से विचार करने पर हम लोगों को विदित हुआ कि संसार को बढ़ाने वाले देवतान्तरों में क्या क्या दोष हैं, संसार से छुड़ाने वाले श्रीभगवान में क्या क्या गुण हैं। उससे हम लोगों को यह इच्छा होने लगी कि देवतान्तरों छोड़कर श्रीभगवान का ही आराधन किया जाय। उस समय श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्तियों ने हम लोगों को देवतान्तरों से छुड़ाकर श्रीभगवान के

हतावद्ये हृद्ये हरिचरणपङ्केरुहयुगे
र्निबध्नन्त्यैकान्त्यं किमपि यतिभूभृत्फणितयः ।
शुनासीरस्कन्दद्रुहिणहरहेरम्बहुतभुक्-
प्रभेशादिक्षुद्रप्रणतिपरिहारप्रतिभुवः ॥५३॥

*"शुनासीरस्कन्दद्रुहिणहरहेरम्बहुतभुक्प्रभेशादिक्षुद्रप्रणति-परिहारप्रतिभुवो यतिभूभृत्फणितयः" । अस्मत्प्रार्थनानुसारेण यतीशानफणित्या संविन्तोः प्रसादे दत्ते प्रसन्नायां बुद्धौ निर्मलजले मुखवत् देवतान्तरदोषेषु भगवद्गुणेषु च प्रतिफलत्सु अस्माकं

विषय में अनन्यता का उपदेश देकर एकान्तियों के धर्म में आरूढ़ कराया । इस अर्थ को इस श्लोक से कहते हैं ।

देवतान्तरतित्यक्तायां श्रीभगवत्समाश्रयणौत्सुक्ये चोदिते देवतान्तरेषु इन्द्रकार्तिकेयचतुर्मुखशिवगणेशाग्निसूर्यादिषु संभूय अनादेः कालादस्माकं दासभावमुपेतैर्युष्माभिरद्य यावद्देवतः परमपि प्रणाम-पूजादिकं कुतो न क्रियते युष्मान् हनिष्यामः इति निर्बध्नत्सु अस्मासु चेतः पूर्वं यद्वृत्तं तदज्ञानकृतम् इतः परं देवतान्तर-श्रीभगवद्दोषगुणविदो वयं युष्मान्नाराधयिष्यामः "त्वयापिप्राप्त-

---

में भारी परिवर्तन होने लगा देवतान्तरों के सम्बन्ध तोड़ने की बलवती इच्छा होने लगी, श्रीभगवान का आश्रय लेने के लिये उत्साह बढ़ने लगा। उस समय महान् संघर्ष का सामना करना पड़ा। देवेन्द्र जी कार्तिकेय जी ब्रह्मा जी शंकर जी गणेश जी अग्नि सूर्य इत्यादि देवता गण एकत्रित होकर इस प्रकार डराने लगे कि हे मनुष्यों तुम लोग अनादिकाल से ही हम लोगों की सेवा करते आये हो, यदि आगे नहीं करोगे तो अच्छा नहीं होगा, अब तक हम लोगों ने जो कुछ तुम लोगों को दिया, उस का मूल्य अब तक तुम लोगों ने कुछ नहीं चुकाया। उसको चुकाने के लिये तुम लोगों को हमारी सेवा करनी ही होगी, नहीं करोगे तो हम मार डालेंगे इत्यादि। हम लोगों ने उत्तर दिया कि अब तक हम लोगों ने अवश्य आप लोगों की सेवा की है। अब तक हम अज्ञानावस्था में रहे। अतः सेवा बन गयी। अब हम लोगों को ज्ञान होने लगा कि नित्य निर्दोष कल्याण गुणनिधि श्रीभगवान के साथ हमारा अविच्छेद्य सम्बन्ध है, उसे हम लोग अब तक न समझते थे, अतः प्रमाद से आप लोगों के साथ सम्बन्ध होगया। अब श्रीभगवान के गुण तथा आप लोगों के दोष समझ में आ रहे हैं। अतः आज से लेकर हम लोग श्रीभगवान का ही आराधन करेंगे आप लोगों का नहीं। आप लोग जो मार डालने की

हृतावद्ये हृद्ये हरिचरणपङ्केरुहयुगे
निबध्नन्त्यैकान्त्यं किमपि यतिभूभृत्फणितयः ।
शुनासीरस्कन्दद्रुहिणहरहेरम्बहुतभुक्-
प्रभेशादिक्षुद्रप्रणतिपरिहारप्रतिभुवः ॥५३॥

*"शुनासीरस्कन्दद्रुहिणहरहेरम्बहुतभुक्प्रभेशादिक्षुद्रप्रणति-परिहारप्रतिभुवो यतिभूभृत्फणितयः" । अस्मत्प्रार्थनानुसारेण यतीशानफणित्या संवित्तेः प्रसादे दत्ते प्रसन्नायां बुद्धौ निर्मलजले मुखवत् देवतान्तरदोषेषु भगवद्गुणेषु च प्रतिफलत्सु अस्माकं

---

* में अनन्यता का उपदेश देकर एकान्तियों के धर्म में आरूढ़ । इस अर्थ को इस श्लोक से कहते हैं ।

देवतान्तररतित्यक्तायां श्रीभगवत्समाश्रयणौत्सुक्ये चोदिते देवतान्तरेषु इन्द्रकार्तिकेयचतुर्मुखशिवगणेशाग्निसूर्यादिषु संभूय अनादेः कालादस्माकं दासभावमुपेतैर्युष्माभिरद्य यावदितः परमपि प्रणामपूजादिकं कुतो न क्रियते युष्मान् हनिष्यामः इति निर्बध्नत्सु अस्मासु चेतः पूर्वं यद्वृत्तं तदज्ञानकृतम् इतः परं देवतान्तरश्रीभगवद्दोषगुणविदो वयं युष्मान्नाराधयिष्यामः "त्वयापिप्राप्त-

---

में भारी परिवर्तन होने लगा देवतान्तरों के सम्बन्ध तोड़ने की बलवती इच्छा होने लगी, श्रीभगवान का आश्रय लेने के लिये उत्साह बढ़ने लगा। उस समय महान् संघर्ष का सामना करना पड़ा। देवेन्द्र जी कार्तिकेय जी ब्रह्मा जी शंकर जी गणेश जी अग्नि सूर्य इत्यादि देवता गण एकत्रित होकर इस प्रकार डराने लगे कि हे मनुष्यों तुम लोग अनादिकाल से ही हम लोगों की सेवा करते आये हो, यदि आगे नहीं करोगे तो अच्छा नहीं होगा, अब तक हम लोगों ने जो कुछ तुम लोगों को दिया, उस का मूल्य अब तक तुम लोगों ने कुछ नहीं चुकाया। उसको चुकाने के लिये तुम लोगों को हमारी सेवा करनी ही होगी, नहीं करोगे तो हम मार डालेंगे इत्यादि। हम लोगों ने उत्तर दिया कि अब तक हम लोगों ने अवश्य आप लोगों की सेवा की है। अब तक हम अज्ञानावस्था में रहे। अतः सेवा बन गयी। अब हम लोगों को ज्ञान होने लगा कि नित्य निर्दोष कल्याण गुणनिधि श्रीभगवान के साथ हमारा अविच्छेद्य सम्बन्ध है, उसे हम लोग अब तक न समझते थे, अतः प्रमाद से आप लोगों के साथ सम्बन्ध होगया। अब श्रीभगवान के गुण तथा आप लोगों के दोष समझ में आ रहे हैं। अतः आज से लेकर हम लोग श्रीभगवान का ही आराधन करेंगे आप लोगों का नहीं। आप लोग जो मार डालने की

मैश्वय यतस्तं तोपयाम्यहम् । नाहमाराधयामि त्वां तत्र बद्धोऽय-मञ्जलिः । सत्वं प्रहर वा मा वा मयि वज्रं पुरन्दर। नाहमुत्सृज्य गोविन्दमन्यमाराधयामि भोः ॥" इति विष्णुधर्मोक्तरीत्या प्रति-भुवाणेषु विवादे च वृद्धिं गते यथा लोके वादिप्रतिवादिनो-र्विवादे यथाभूतार्थवेदी मध्यस्थः प्रतिभूभूय वास्तवार्थं प्रतिबोध्य स्वप्रातिभाव्येन प्रबलाक्रमणाद् दुर्बलं परित्रायते तथाऽत्र यति-

---

बात कर रहे हो उससे हम अणुमात्र भी विचलित नहीं होंगे। विष्णुधर्म में वर्णित भक्त के निश्चय और हमारे निश्चय में कोई अन्तर नहीं। उस भक्त ने देवेन्द्र से कहा था 'हे इन्द्र ! आप ने जिन भगवान से ऐश्वर्य को प्राप्त किया, उनको मैं प्रसन्न करूँगा। मैं तुम्हारी आराधना नहीं करूँगा। हाथ जोड़ता हूँ, हट जाओ, झगड़ा मत करो। तुम चाहे मेरे ऊपर वज्रायुध का प्रयोग करो, अथवा मत करो तुम्हारी खुशी है। मैं तो श्रीगोविन्द भगवान को छोड़कर दूसरे किसी की आराधना न करूंगा, यह मेरा अडिग निश्चय है।' हम लोगों का भी ऐसा ही निश्चय है। हे देवतान्तरों ! अब तक हम लोगों ने भूल से भी जो कुछ सेवा की उससे आप लोगों को तृप्त हो जाना चाहिये इत्यादि। परन्तु देवतान्तरों ने हमारी बात को नहीं माना। वे इस सृष्टि में बलवान हैं, हम मनुष्य दुर्बल हैं। वे विवाद को बढ़ाकर हम लोगों के ऊपर अनेक प्रकार से आक्रमण करने लगे। श्रीभगवान की असीम

भूभृत्फणितयो देवतान्तराणि प्रति "लिङ्गभूयस्त्वाधिकरणे" मुमुक्षुणा नारायण एवोपास्यो न देवतान्तराणीति बादरायणेन निरधारि नित्यनैमित्तिककर्मसु देवतान्तराराधनस्यावर्जनीयतया, प्रसक्तावपि "ये यजन्ति पितॄन् देवान् ब्राह्मणान् सहुताशनान् । सर्वभूतान्तरात्मानं विष्णुमेव यजन्ति ते ॥" "यज्ञैस्त्वमिज्यसे नित्यं सर्वदेवमयाच्युत । हव्यकव्यभुगेकस्त्वं पितृदेवस्वरूपधृक् ॥"

दोनों के पक्ष को सुन कर श्रीवेदव्यास जी के ब्रह्मसूत्र रूपी न्यायालय में निर्णीत न्यायों को सुनाकर इस प्रकार निर्णय दिया । श्रीवेदव्यास जी ने लिङ्गभूयस्त्वाधिकरण में न्याय के आधार पर निर्णय दिया कि मुमुक्षुओं के लिये श्रीमन्नारायण ही उपास्य हैं देवतान्तर उपास्य नहीं । स्मृत्यधिकरण में श्रीवेदव्यास जी ने निर्णय दिया कि मुमुक्षुओं को नित्य और नैमित्तिक कर्म अवश्य करना चाहिये न करने पर प्रत्यवाय लगेगा । आराधन करते समय देवतान्तरों के अन्तर्यामी श्रीभगवान को आराध्य समझ कर करना चाहिये ऐसा करने पर वे कर्म श्रीभगवान का आराधन बन जाते हैं । इसमें निम्नलिखित महर्षियों के वचन प्रमाण हैं—'जो मुमुक्षुजन पितृगण देवगण तथा अग्नि के सहित ब्राह्मणों का आराधन करते हैं, वे सर्व भूतों के अन्तर्यामी श्रीविष्णु भगवान का ही आराधन करते हैं ।' अन्यत्र श्रीभगवान के प्रति कहा गया है कि 'हे सर्वदेवमय अच्युत भगवन् ! यज्ञों से आप ही आराधित होते हो, आप ही पितृ रूपी शरीर को धारण कर कव्य स्वीकार करते हो । देवतारूपी शरीर को धारण कर हव्य स्वीकार करते हो । कव्य उस पदार्थ को कहते हैं जो पितरों के लिये दिया जाता है । हव्य उस पदार्थ को कहते हैं जो देवताओं के लिये दिया जाता है । देवतान्तरों को को बतलाने वाले शब्द दो प्रकार से श्रीभगवान को बतलाते हैं ।

इति प्रमाणैः तदाराधनं भगवदुद्देश्यकं भगवद्गामीति स्मृत्यधिकरणे निरणायि। अनन्यथासिद्धजीवलिङ्गरहितस्थलेषु प्रयुज्यमाना देवतान्तरनामत्वेन प्रसिद्धाः शब्दाः "साक्षादप्यविरोधं जैमिनिः" इति सूत्रोक्तरीत्या मुमुक्षुभिरुच्चार्यमाणाः साक्षाद् भगवद्वाचका इति तत्र श्रीभगवानेवाराध्यते अनन्यथासिद्धजीवलिङ्गवत्सुस्थलेषु मुमुक्षुभिः प्रयुज्यमाना देवतान्तरबोधकत्वेन प्रथिताः शब्दाः "अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः" इति सूत्रोक्तन्यायेन तत्तद्देवतान्तर्यामिवाचका इति निर्धारितत्वात् निमन्त्रितब्राह्मणीरयोद्देश्यतावच्छेदककोटिनिविष्टत्वाद्युष्माभिः कामं

---

(१) जहाँ पर देवतान्तरों के असाधारण गुण और क्रिया का वर्णन नहीं हैं वहाँ के देवतान्तर वाचक शब्द व्युत्पत्ति से श्रीभगवान को बतलाते हैं। उदाहरणार्थ अग्नि शब्द है। यह अग्नि शब्द देवता का वाचक है। ऐसी लोक में प्रसिद्धि है। परन्तु यह अग्नि शब्द साक्षात श्रीभगवान को व्युत्पत्ति से बतलाता है। 'अग्रं नयतीत्यग्नि.' ऐसी व्युत्पत्ति है। इसका अर्थ यह है कि जो आगे ले जाता है वह अग्नि है। परमात्मा उन्नति पथ में साधकों को आगे ले जाते हैं, इस लिये उनको भी अग्नि कह सकते हैं। इस प्रकार देवतान्तरों के वाचक शब्द साक्षात भगवान को बतलाते है। (२) जहाँ पर देवताओं के असाधारण गुण और क्रिया का वर्णन है (जैसा वज्रायुध का धारण करना इत्यादि इन्द्र का असाधारण धर्म हैं) वहाँ के देवतान्तरों के वाचक शब्द देवतान्तरों के अन्तर्यामी श्रीभगवान को बतलाते हैं। ये दोनों न्याय "साक्षादप्यविरोधं जैमिनिः" "अवस्थितेरितिकाशकृत्स्नः" इन सूत्रों में वर्णित हैं। लोक में देखा जाता है कि श्राद्ध करने वाले लोग पितरों को तृप्त करने के लिये ही श्राद्ध करते हैं। उससे आनुषङ्गिक

तृप्तैर्भूयताम् मुमुक्षूणां तत्राराध्यतयोद्देश्यस्तु भगवानेव भवन्तोऽमुमुक्षूणामेवाराध्या न तु मुमुक्षूणामिति तत्वार्थं प्रतिबोध्य देवतान्तरेष्वाग्रहस्तु स्वप्रातिमाव्येनास्मान् देवतान्तरदास्यान्मोचयन्ति इतः परं भवद्भिर्देवतान्तराराधनं परिह्रियताम् वयं

(गौण) रूप में निमन्त्रित श्राद्धभोक्ता ब्राह्मणों को तृप्ति होजाती है। वैसे ही श्रीभगवान को ही आराध्य समझ कर मुमुक्षुजनों से किये जाने वाले कर्मों से यदि कहीं श्रीभगवान के शरीर भूत देवता भी तृप्त हो सकते हों तो तृप्त हो जायें, इससे कोई हानि नहीं है। खेत के लिये जाने वाले जल से तृण भी बढ़ते ही हैं। मुमुक्षुओं के लिये आराध्य तो श्रीभगवान ही हैं, अतः हे देवतान्तरो! आप लोग मुमुक्षुओं के लिये आराध्य नहीं हैं, आप लोग उन लोगों के लिये ही आराध्य हैं जो मोक्ष के इच्छुक नहीं हैं किन्तु भोग के इच्छुक हैं। आप लोग लोकतन्त्र को चलाने के लिये श्रीभगवान से नियुक्त अधिकारी पुरुष हैं। आप लोगों को ईश्वराज्ञारूपी शास्त्र का उल्लंघन नहीं करना चाहिये, अन्यथा श्रीकृष्णावतार में ब्रह्मा जी और इन्द्रदेव पर जो दशा बीती, वैसी दशा आवेगी। अतः आप लोगों का कुशल इसी में है कि आप मुमुक्षुजनों को छोड़ दें। यदि आप लोगों को इनसे कुछ लेना है तो वह श्रीभगवान् से प्राप्त होजायगा हम इसका उत्तरदायित्व लेते हैं, आप लोग इन्हें छोड़ दीजिये क्योंकि शास्त्र में कहा है कि "देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां न किंकरो नायमृणी च राजन्। सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं नारायणं लोक गुरुं प्रपन्नः।"—अर्थात् जो साधक सब को शरण देने वाले लोक गुरु श्रीभगवान् के शरण में सर्व प्रकार से आगया हो वह साधक देवता ऋषि भूत मनुष्य और पितरों का किंकर दास नहीं है न इनका ऋणी है इस प्रकार श्रीरामानुज स्वामी जी को

प्रतिभुवः स्म इत्यस्मानाश्वासयन्ति। अनेन विवादेनास्माभिर्देवतान्तराणां क्षुद्रता सुविदिता जाता। श्रीभगवन्महिम्नि देवतान्तराणां महिम्नि च संतोल्यमाने—"पृथ्वीरेणुरणुः पयांसि कणिकाः फल्गुः स्फुलिङ्गो लघुस्तेजो निश्वसितं मरुत्तनुतरं रन्ध्रं सुसूक्ष्मं नभः। क्षुद्रा रुद्रपितामहप्रभृतयः कीटाः समस्ताः सुरा दृष्टे यत्र सतावको विजयते भूमाऽवधूतावधिः॥" इति श्रीकुलशेखरसूर्युक्तरीत्या लघिष्ठमहिमान्विततया देवतान्तराणि क्षुद्राणी-

---

श्रीसूक्ति यथार्थ अर्थ को समझाती है, समझाने पर भी यदि देवतान्तर न माने तो स्वयं जमानत देकर हम लोगों को देवतान्तरों के पञ्जे से छुड़ा लेती है। हम लोगों को आश्वासन देती है कि आज से आप लोग श्रीभगवान में आराध्य भावना रक्खें देवतान्तरों पर मत रखिये। अनन्य होकर रहिये, हम उत्तरदायित्व लेते हैं।

इस विवाद से हम लोगों को यह बात सुविदित होगई कि देवतान्तर कितने क्षुद्र हैं, कितनी दुर्भावना उनमें भरी रहती है। भगवान् की महिमा और देवतान्तरों की महिमा तोली जाय तो देवतान्तर अत्यन्त क्षुद्र सिद्ध होते हैं। इस अर्थ को श्रीकुलशेखर सूरिजी ने एक श्लोक से कहा, वह यह है कि—हे श्रीभगवन् आप की महिमा को देखने पर पचास करोड़ योजन विस्तीर्ण भूमि एक धूलिकण के समान दिखाई देती है। अपार जलतत्व एक जलकण के समान दिखाई देता है। सर्वव्यापक तेजस्तत्व एक क्षुद्र चिनगारी के समान दिखाई देता है। वायुतत्व क्षुद्र श्वास वायु के समान प्रतीत देता है। व्यापक आकाशतत्व अत्यन्त सूक्ष्म सुई के छेद के समान प्रतीत होता है पञ्च महाभूतों की ही यह दशा है तो दूसरों के लिये क्या कहना है। ब्रह्मा और शंकर इत्यादि क्षुद्र लगते हैं, समस्त देवगण कीड़े के समान प्रतीत होते हैं।

त्यत्र न सन्देहः । अनादेः कालादस्मत्तः सेवां गृहीतवद्भिर्देवतान्तरैः प्रबोधोदयोत्तरं देवतान्तरदास्यान्निवृत्तसूनामस्माकं विषये सकार्तज्ञ्यं दास्ये निवर्तनीये सति तदकरणात् "यथा पशुरेवं स देवानाम् । यथा ह वै बहवः पशवो मनुष्यं भञ्ज्युरेवमेकैकः पुरुषो देवान् भुनक्ति एकस्मिन्नेव पशावादीयमानेऽप्रियं भवति किमुबहुषु, तस्मादेषां तन्नप्रियं यदेतन्मनुष्या विद्युः" इति बृहदारण्यकोपनिषदुदाहृतरीत्याऽप्रसन्नताया एवाविष्करणात्

यह उनकी स्वाभाविक क्षुद्रता है। उनके व्यवहार से भी क्षुद्रता सिद्ध होती है। देव तिर्यक् और मनुष्य इत्यादि जीवगण परस्पर में समान हैं। सभी श्रीभगवान् के स्वाभाविक दास हैं। वे एक दूसरे का दास नहीं बन सकते। अनादिकाल से मनुष्य अपने स्वरूप को न समझ कर देवतान्तरों की सेवा करते आये हैं। स्वरूप ज्ञान होने पर देवतान्तरों के दास्य से निवृत्त होना चाहते हैं। देवतान्तर इस बात को अच्छी तरह से समझते हैं कि ये मनुष्य भूल से हमारी सेवा करते हैं, वास्तव में ये श्रीभगवान की सेवा करने के अधिकारी हैं। यदि ये हमारी सेवा छोड़कर हमारे आराध्य श्रीभगवान की सेवा करना चाहते हैं तो कृतज्ञता पूर्वक इन्हें छोड़ देना चाहिये। ऐसा अवश्य समझते हैं देवतागण, क्योंकि वे मनुष्यों से अधिक ज्ञान वाले हैं। इस प्रकार वस्तु तत्व को जानते हुये भी देवतागण मनुष्यों को अपनी सेवा से नहीं छुड़ाना चाहते हैं, यहाँ तक देवतागण चाहते हैं कि ये मनुष्य परमात्मा को सर्वथा न समझ पावे। बृहदारण्यकोपनिषद् में ऐसा वर्णन आया है कि—"जिस प्रकार पशु मनुष्यों का दास है, वैसे ही अज्ञ मनुष्य देवताओं के दास हैं। जिस प्रकार अनेक पशु एक मनुष्य की सेवा करते हैं वैसे ही ब्रह्म को न जानने वाला प्रत्येक मनुष्य अनेक देवताओं

श्रूयते किल गोविन्दे भक्तिमुद्वहतां नृणाम् । संसारन्यूनताभीता-स्त्रिदशाः परिपन्थिनः ॥" "सत्यं शतेन विघ्नानां सहस्रेण तथा तपः । विघ्नायुतेन गोविन्दे नृणां भक्तिर्निवार्यते ॥" इत्युक्तरीत्याऽस्माकं कल्याणप्रदे साधने विघ्नाचरणैर्दम्पर्याच्च तेषां क्षुद्रत्वं स्फुटी भवति । किं च वक्ष्यमाणवृत्तान्तैरप्येषां क्षुद्रता सिद्ध्यति । श्रीमन् महाभारते आदिपर्वणि: ययातिचरित्रे

की सेवा करता है। अन्तर इतना ही है कि दृष्टान्त में अनेक पशु एक मनुष्य की सेवा करते हैं, प्रकृत में मनुष्य अनेक देवताओं की सेवा करता है। इससे सिद्ध होता है कि पशुओं से भी मनुष्यों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। लोक में देखा जाता है कि राजा और चोर इत्यादि लोग यदि एक पशु को भी हर ले जायें तो पशु स्वामी को अधिक दुःख होता है, अनेक पशुओं को हर ले जाने पर क्या ही कहना है। अतः देवतागण इस बात को सर्वथा नहीं चाहते हैं कि मनुष्य ब्रह्मज्ञानी हो जाय क्योंकि देवताओं को यह भय बना रहता है कि आज अपने दास्य करने वाले मनुष्य यदि ब्रह्म को जान लेंगे तो हमारे दास्य से छूट जायेंगे। इस भय के कारण ही देवतागण मार्ग में जाने वाले साधकों के लिये अनेक विघ्न करते हैं। यह अर्थ निम्न लिखित वचनों से सिद्ध होता है "सुना जाता है कि श्री गोविन्द भगवान में भक्ति करने वाले मनुष्यों के लिये देवतागण शत्रु बन जाते हैं क्यों कि वे लोग इसलिये डरते हैं कि संसार घट जायगा, हमारे सेवक घट जायंगे। सौ विघ्नों से सत्य निष्ठा नष्ट की जाती है, सहस्र विघ्नों से तपस्या नष्ट की जाती है दस सहस्र विघ्नों से श्री गोविन्द भगवान में भक्ति नष्ट की जाती है। इन सब वचनों से सिद्ध होता है कि देवता-गण मनुष्यों का कल्याण नहीं चाहते हैं स्वार्थपरायण हैं, अतएव क्षुद्र

वर्ण्यते यत् ययातौ तपोमहिम्ना स्वर्गमेत्य देवेन्द्र इव महाभोगं भुञ्जाने तद्दृष्ट्वाऽसहमानेनेन्द्रेण त्वत्सदृशः तपस्वी भुवि कोऽन्योऽस्तीति पृष्टे ययातौ मत्सदृशो न कश्चिदस्तीति प्रतिब्रुवति इन्द्रः "तपः क्षरति विस्मयात्" इत्युक्तरीत्या त्वत्तपो नष्टम् अतः पतेति तमधः पातयामासेति। अनेनेन्द्रस्य क्षुद्रता स्फुटीभवति। श्रीमद्रामायणे उत्तरकाण्डे वर्ण्यते यत् विदर्भदेशाधिपे श्वेतनाम्नि महाराजे तपोबलाद् ब्रह्मलोकमुपेते तत्र क्षुत्पिपासाभ्यां पीड्यमाने क्षुत्पिपासादिदोषनिर्मुक्तमिमं लोकं प्राप्तवतोऽपि कुतः क्षुत्पिपासे वर्धेते पृष्टवति ब्रह्मा प्रत्युवाच-

---

हैं। किंच, निम्नलिखित वृत्तान्तों से भी इनकी क्षुद्रता सिद्ध होती है। महाभारत के आदि पर्व में ययाति के चरित्र में कहा गया है कि ययाति महाराजा तपस्या के बल से स्वर्गलोक पहुँचे, वहाँ इन्द्र के समान भोगों का अनुभव करने लगे। उसे देखकर इन्द्र को सहन न हुआ। भरी हुई सभा में देवेन्द्र ने ययाति से पूछा कि आजकल भूलोक में आपके समान तप करने वाला कौन है? ययाति ने उत्तर में कहा कि मेरे समान तप करने वाला आजकल भूलोक में एक भी नहीं है। इन्द्र ने कहा कि तुम्हारा गर्व बढ़ गया है, इसलिये तुम्हारा तप नष्ट हो गया अतः तुम स्वर्गलोक में रहने योग्य नहीं हो, इसलिये नीचे गिरो। ऐसा कहकर इन्द्र ने ययाति को नीचे गिरा दिया। इस कथा से व्यक्त होता है कि इन्द्र में कितनी क्षुद्रता भरी है। श्रीमद्रामायण में उत्तर काण्ड में यह कथा है कि श्वेतनामक विदर्भ देश के राजा तपस्या के बल से सत्यलोक पहुँचे, वहाँ व भूख और प्यास से पीड़ित हुए। एक दिन ब्रह्मा जी से पूछा कि यह ब्रह्मलोक क्षुधा और पिपासा से रहित है, यहाँ पहुँचने पर भी हमको क्षुधा और पिपासा कष्ट देती हैं,

अतिथये भिक्षामददत् शरीरं पुष्णन् त्वं तप अकरोः अतोऽस्मि-न्नपि लोके तव क्षुत्प्रवर्तते तन्निवृत्तेरयमेवोपायः यत् त्वत्तापः स्थाने जलाशये प्रत्यहं प्रातः शवरूपं त्वच्छरीरं प्लवमानं दृश्येत तत् त्वं प्रत्यहं गत्वा भुंक्ष्व तेन क्षुधा शाम्येदिति सोऽपि प्रत्यह-मेत्य शवं भक्षयन् अन्तेऽगस्त्येन तारितोऽभूदिति । अनेन स्वविषयमागतस्यापि श्वेतस्य मनुष्यमांसभक्षणार्थं गतागते कारितवतश्चतुर्मुखस्य क्षुद्रता स्फुटी भवति । भृत्यवदात्मानं पूजयतां वरप्रदानेन गर्ववर्धनपूर्वकं दुःखप्रदानवृत्तान्तेन शिवस्य क्षुद्रता स्फुटीभवति । श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे वर्ण्यते यत् बलिचक्रवर्तिनः पुत्रो बाणासुरो महता तपसा शिवमाराध्य ततो

ऐसा क्यों होता है ? ब्रह्मा जी ने उत्तर में कहा कि तुमने अतिथि को भिक्षा नहीं दी, शरीर को पुष्ट करते हुए तुमने तपस्या की इसलिये इस लोक में पहुँचने पर भी तुम को भूख और प्यास सताती है। इसको दूर करने का यही उपाय है कि तुम जिस जलाशय के समीप तपस्या करते रहे उसमें प्रतिदिन प्रात.काल तुम्हारा शरीर शव बनकर पानी के ऊपर तैरता दिखाई देगा, प्रतिदिन जाकर तुम उसे भक्षण करो, उससे तुम्हारी क्षुधा शान्त होगी अगस्त्य जी के द्वारा तुम्हारा उद्धार होगा। वह राजा प्रतिदिन ब्रह्मलोक से आकर अपने शव शरीर का भक्षण करता था, अन्त में अगस्त्य जी ने उसका उद्धार किया। ब्रह्मा जी का प्रभाव अगस्त्य से अधिक है, अतः ब्रह्मा जी चाहते तो राजा का उद्धार कर सकते थे। इतनी क्षमता रखते हुए भी ब्रह्मा जी ने उस राजा को शव के भक्षण में प्रेरित कर एक प्रकार से क्षुद्र स्वभाव को ही व्यक्त किया। श्रीमद्भागवत में दशमस्कन्ध में यह कथा वर्णित है कि बलिचक्रवर्ती के पुत्र बाणासुर ने अधिक तपस्या

वरत्वेन सहस्रं बाहूनपारं च बलं प्राप्य रुद्रमेव स्वनगररक्षक-
मापाद्य कदा तमेत्याह भवद्दत्ताः सहस्रं बाहवो भारायन्ते लोक-
त्रयेऽपि भवद्वर्जं सर्वेऽपि शूरा मया सह योद्धुं नोत्सहन्ते सर्वेऽपि
मद्दर्शनभीतभीताः पलायन्ते, अतो भवानेव मया सह युध्यतामिति।
एवं तस्याभिवृद्धो गर्वोऽन्ते श्रीकृष्णेन विनाशितो बभूवेति।
इत्थं स्वाराधकानां प्रकृतिमज्ञात्वा विविधवरप्रदानेन तेषां गर्वो-
त्पादनात् तद्द्वारा तेषां विपत्तावुपस्थितायामरक्षणाच्च रुद्रस्य
क्षुद्रता सिध्यति। इत्थं क्षुद्राणां नाना देवानामाराधनाद्विरं
सूनामस्माकं देवानां च विवादे यतिभूभृत्फणितयः प्रति-

से शिवजी को प्रसन्न कर उनसे वर के रूप में सहस्र भुजाओं को प्राप्त
किया, तथा अपार बल को भी प्राप्त किया। उसने नगर की रक्षा के
लिये शिवजी को नियुक्त किया। एक दिन शिवजी से कहा कि आपने
सहस्र भुजाओं का प्रदान किया परन्तु वे सहस्र भुजायें आज हमको
भार रूप प्रतीत होती हैं क्योंकि कोई भी हमसे युद्ध करने के लिये
तैयार नहीं होता, सभी हमको देखकर भाग जाते हैं। अतः आप ही
मेरे साथ लड़ें। अन्त में उसके गर्व को श्रीकृष्ण भगवान ने चूर्ण
किया। इस कथा से व्यक्त होता है कि शिवजी अपने भक्तों के शुभ
चिन्तक नहीं हैं क्योंकि असुर लोग भी आरम्भ में शम दम इत्यादि
आत्मगुणों से सम्पन्न होकर ही तपस्या करते थे यदि शिवजी इनके
हितचिन्तक होवे तो इनको आत्मगुणों की अभिवृद्धि के मार्ग में
प्रेरित करते, इनको प्रबल वर देकर इनकी आसुर प्रकृति को विकसित
होने का अवसर नहीं देते। परन्तु शिवजी ने ऐसा नहीं किया। किन्तु
असुरों को प्रबल वर देकर इनके दुर्गुणों को बढ़ाया, इनके द्वारा जगत
को क्लेश पहुँचाया, अन्त में इनकी दुष्टता को नष्ट करने के लिये

भाष्यमुपेत्य न केवलमस्माकं देवतान्तरप्रणामादिपरिहारं साधयन्ति किंतु श्रीभगवदैकान्त्यरूपं पतिव्रताधर्ममपि शिक्षयन्ति ।

तदाह*"हतावद्ये हृद्ये हरिचरणपंकेरुहयुगे किमप्यैकान्त्यं निबध्नन्ति" देवतान्तरप्रावण्यस्य भगवदैकान्त्यभञ्जकत्वादपथ्यपरिहारन्यायेन यतिभूभृत्फणितयः प्रथमं तत् परिहृत्य पश्चात् पथ्यसेवनन्यायेन भगवति ऐकान्त्यमुत्पादयन्ति । एकस्मिन्नेवान्तो निश्चयोऽस्यास्तीति एकान्ती, तस्य भाव ऐकान्त्यम् । देवतान्तरेषु प्रणामफलप्रार्थनापरत्वप्रज्ञादिगन्धराहित्यपूर्वकं भगवदेकनिष्ठत्वमैकान्त्यम् । इदमैकान्त्य भगवद्विषये स्वरसवाहि

श्रीभगवान को अवतार लेना पड़ा इस प्रकार देवतान्तरों की क्षुद्रता सिद्ध होती है । अस्तु, इस प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामीजी की श्रीसूक्तियाँ ने हम लोगों को देवतान्तरों की दासता से छुड़ाती है। इतना ही नहीं अपितु वे अनन्यता का पाठ पढ़ाती हैं, अनन्यता पतिव्रता के धर्म के समान है ।

*"हतावद्ये हृद्ये हरिचरणपंकेरुहयुगे किमपि ऐकान्त्यं निबध्नन्ति"—देवतान्तरों में जब तक आसक्ति रहेगी, तब तक श्रीभगवान के विषय में अनन्यता नहीं आ सकती है। इस अनन्यता को ही ऐकान्त्य कहते हैं। एकान्तियों का धर्म ऐकान्त्य कहलाता है, एकान्ती वे साधक हैं जिनका एक श्रीभगवान् के विषय में ही ऐसा सुदृढ़ निश्चय है कि श्रीभगवान् को ही आराध्य समझना चाहिये, श्रीभगवान् से फल की प्रार्थना करना चाहिये, श्रीभगवान् ही परतत्व हैं। यह निश्चय तभी हो सकता है जब देवतान्तरों से आराध्यता की भावना हट जाय, देवतान्तरों से फल की प्रार्थना न की जाय, देवतान्तरों में परत्व न

यतो हरिर्नित्यनिरवद्यः सावद्यत्वे हि देवतान्तरवत्र तत्रैकान्त्यं नोदियात्। श्रीहरिर्न केवलं निरवद्यः किंतु हृद्यश्च। अहृद्यत्वे हि तत्रैकान्त्यानुदयः शङ्क्येत। एवं भूतस्य हरेश्चरणावपि एवं भूतौ चरणौपद्मसमत्वादतिहृद्यौ तथा स्वाश्रितानांसमस्तावद्य-निरासकत्वाच्च निरवद्यौ। किंच "ना "देवर्षिभूतात्मनृणां पितृणां न किङ्करो नायमृणी च राजन्। सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं नारायणं लोकगुरुं प्रपन्नः॥" इत्युक्तरीत्या सवासनं देवतान्तर-दास्यनिवर्तकत्वाच्च निरवद्यौ। एवंभूतयोर्हरिचरणपंकेरुहयोर्युगे-

---

समझा जाय। प्रकृत में श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति वैद्य के समान कार्य करती है। वैद्य प्रथमतः अपथ्य को सेवन छुड़ाता है, अनन्तर पथ्य का सेवन कराता है। आत्मकल्याण चाहने वालों के लिये देवतान्तरों का सम्बन्ध सर्वथा अपथ्य है। श्रीभगवत्सम्बन्ध पथ्य है। श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति श्रीवैष्णवों को देवतान्तरों के सम्बन्ध से छुड़ाती हैं तथा श्रीभगवत्सम्बन्ध को दृढ़ करती हैं। जीवों को श्रीभगवान् के साथ प्रेममय सम्बन्ध जोड़ना न्याय प्राप्त है। क्योंकि श्रीभगवान् नित्य निर्दोष हैं, देवतान्तरों में दोष पाये जाते हैं, ऐसा एक भी दोष श्रीभगवान् में नहीं पाया जाता है। यदि श्रीभगवान् में दोष होता तो उनके साथ प्रेममय सम्बन्ध जोड़ना अवश्य कठिन हो जाता, परन्तु ऐसा दोष श्रीभगवान् में नहीं है। श्रीभगवान् नित्य निर्दोष हैं इतना ही नहीं, किन्तु कल्याण गुणों के सागर होने से अत्यन्त मनोहर हैं, यदि ऐसा न होते तो उनके साथ प्रेममय सम्बन्ध कठिन हो जाता। परन्तु ऐसा नहीं हैं किन्तु वे अत्यन्त मनोहर हैं। जैसे श्रीभगवान् निर्दोष तथा मनोहर हैं, वैसे ही उनके श्रीचरण भी निर्दोष तथा मनोहर है क्योंकि वे कमल के समान कोमल

ऽस्माकमैकान्त्यं नितरां बध्नन्ति यतिराजसूक्तयः संसारबन्ध-निवर्तकोऽयं भगवत्यैकान्त्यबन्धः एतमैकान्त्यबन्धं द्रढयन्त्यो यतिभूभृत्फणितयोऽस्माकं महोपकारं कुर्वन्तीत्यर्थः ॥५३॥

अनेन श्लोकेन श्रीयतिराजसूक्तेर्गुणान् गायन् तस्याजय-मुद्घोषयति—

यथाभूतस्वार्था यतिनृपतिसूक्तिर्विजयते
सुधासन्दोहाब्धिस्सुचरितविपक्तिः श्रुतिमताम्।
कथादृप्यत्कौतस्कुतकलहकोलाहलहत-
त्रिवेदीनिर्वेदप्रशमनविनोदप्रणयिनी ॥५४॥

और सुगन्धी हैं इसलिये मनोहर हैं, अपने आश्रितों के सभी दोषों को नष्ट करते हैं इसलिये निर्दोष हैं। एवं विध श्रीभगवान् के कमल के समान चरण युगल के विषय में अनन्यता श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियों की कृपा से प्राप्त होती है। श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ हम लोगों को अनन्यता के बन्धन में डाल देती हैं। यह अनन्यता का बन्धन संसार बन्धन को नष्ट करने वाला है। इस अनन्यता रूपी सम्बन्ध को दृढ़ करने वाली श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियों से हम लोग अत्यन्त उपकृत हैं। इस महोपकार को प्रकाशित करना ही हमारा धर्म है ॥५३॥

इस श्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति के गुणों का गान करते हुये उसी का जय जयकार मनाते हैं—

यथाभूतस्वार्था—सत्यार्थ का प्रतिपादन करने वाली, *सुधासन्दोहाब्धिः*—अमृतमयी, *श्रुतिमतां सुचरितविपक्तिः*—श्रोताओं के पुण्य का परिणाम, *कथादृप्यत्कौतस्कुतकलहकोलाहलहतत्रिवेदीनिर्वेदप्रशमनविनोद-*

सदृशी। श्रीभाष्यकारः पाराशर्यवचस्सुधामिति व्याससूत्रममृत-माह। अनेन तद्व्याख्यानभूतं श्रीभाष्यममृतसमूह इत्युच्यते, श्रीभाष्यपंक्तयोऽमृतसमूहवदतिभोग्याः किल भवन्ति।

प्रणयिनी—ऐसा क्यों, ऐसा क्यों कहकर कलह द्वारा कोलाहल करने वाले वादमत्त मतान्तरवादियों के आरोपों के कारण होने वाले वेदत्रयी के दुःख को निवारण कर शान्ति प्रदान करने वाली, *यतिनृपतिसूक्तिः*—यतिराज की सूक्ति की विजयते जय हो।

"यथाभूतस्वार्था"—श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति वास्तव में अर्थों का ही वर्णन करती है। यह सूक्ति जैसे पदार्थों का वर्णन करती है वैसे ही पदार्थ वास्तव में रहते हैं। इतर ग्रन्थों में ऐसे पदार्थों का वर्णन नहीं पदार्थ एक में रहता है ये ग्रन्थ दूसरे रूप में वर्णन करते हैं, अतएव इतर ग्रन्थ अप्रमाण हो जाते हैं। श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति ऐसी नहीं है, वास्तव रूप में पदार्थों का वर्णन करने के कारण परम प्रमाण हो जाती है।

"सुधासन्दोहाब्धिः"—श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्ति अमृत से भरा हुआ समुद्र है। श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने ब्रह्मसूत्रों को अमृत बतलाया, ब्रह्मसूत्रों के व्याख्यान श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ अमृत के समूहों से भरा हुआ समुद्र है क्यों कि श्रीभाष्य की प्रत्येक पङ्क्ति अमृत की तरह परम भोग्य प्रतीत होती है।

दृष्यतां कुतः कुत इति हेतुवादिनां हैतुकानां वेदार्थवर्णनावसरे अस्य वेदवाक्यस्यायमेवार्थः अयमेवार्थ इति प्रवर्तमानेन कलह-कोलाहलेनापार्थकल्पनैस्त्रिवेदी हता भवति नैको वेदः किंतु त्रयोऽपि वेदा हता भवन्ति। इत्थं वादिभिः स्वस्वाभिमतार्थे कृष्यमाणायास्त्रिवेद्याः जातस्य क्लेशस्य निवर्तनरूपेऽनायाससाध्ये लीलायमाने कर्मणि प्रियसखीव प्रणयमावहति यतिराजसूक्तिः

व्यथा को दूर करती है। यह दृष्टान्त है। दार्ष्टान्तिक यह है कि बारम्बार शास्त्रार्थ कर दुर्वादियों का गर्व बढ़ जाता है, "ऐसा क्यों वैसा क्यों" ऐसा कहकर लड़ना ही उनका स्वभाव है। श्रुति वेद को कहते हैं। श्रुतिशब्द स्त्रीलिङ्ग है, अतः वेद को स्त्री के रूप में मानना चाहिये। श्रुतिरूपी स्त्री के विषय में उन दुर्वादियों में परस्पर विवाद बढ़ जाता है एक दुर्वादी उस श्रुति के एक वाक्य को पकड़ कर उसी प्रकार अपने मत में खींचता है, जिस प्रकार एक दुष्ट उस स्त्री के एक हाथ को पकड़ कर अपनी दिशा में खींचता है, दूसरा दुर्वादी श्रुति के दूसरे वाक्य को पकड़ कर श्रुति को अपने मत में उसी प्रकार खींचते हैं जिस प्रकार दूसरा दुष्ट उस स्त्री के दूसरे हाथ को पकड़ कर अपनी दिशा पर खींचता है। ये दुर्वादी दूसरे से पकड़े हुये श्रुतिवाक्य का खण्डन करते हुये यह नहीं समझते कि इससे श्रुति का प्रामाण्य नष्ट हो जायगा जिस प्रकार वे दुष्ट दूसरे के पकड़े हुये हाथ में चोट पहुँचाते हुये यह नहीं समझते कि इससे स्त्री का कष्ट होगा। इस प्रकार खींचातानी और काल्पनिक अर्थों की कल्पना इत्यादि से श्रुति का खेद बढ़ जाता है। इन दुर्वादियों ने इस प्रकार एक वेद को कष्ट दिया हो सो बात नहीं, तीनों वेदों को भी कष्ट दिया क्योंकि ऋग् यजु और साम ये तीनों वेद अति प्रसिद्ध सर्वार्थ गर्भ हैं। इन दुर्वादियों के हाथ पड़ कर जब

वेदानां यथावस्थितार्थवर्णनाद्वादिनां कलहकोलाहलस्य शमनाच्च यतिराजसूक्तिस्त्रिवेद्याः क्लेशमपनयति । अथवा त्रिवेदीशब्देन भेदश्रुतिरभेदश्रुतिर्घटकश्रुतिरिति त्रिविधाः श्रुतयो विवक्षिताः । द्वैतिनो भेदश्रुतिं मुख्यार्थामभेदश्रुतिं च गौणार्थां वर्णयन्तोऽभेदश्रुतिं निघ्नन्ति । अद्वैतिनोऽभेदश्रुतिं पारमार्थिकाभेदपरां भेदश्रुतिं च व्यावहारिकभेदपरां व्याचक्षाणा भेदश्रुतिं निघ्नन्ति। द्वैताद्वैतिनो घटकश्रुतितात्पर्यमनुसृत्य भेदाभेदश्रुती अनिर्व-

---

श्रुति क्लेश पाती थी, तब एकाएक वहाँ यतिराज श्रीभाष्यकार की सूक्तिरूपी प्रिय सखी उपस्थित हुई, उसे देखते ही अर्थात् इस श्रीसूक्ति को सुनते ही श्रीयतिराज की विद्वता के बल से परिचित वे दुर्वादी भाग जाते हैं। यतिराज की श्रीसूक्तिरूपी प्रिय सखी समुचित अर्थों के वर्णनरूपी उपचार से श्रुतिरूपी स्त्री के कष्ट को दूर करने में प्रेम से प्रवृत्त हो जाती है श्रीयतिराज के सिद्धान्तरूपी सुदृढ़ दुर्ग में उस श्रुतिरूपी स्त्री को लेजाकर रक्षा करती रहती है। कहने का भाव यह है कि उपनिषदों के अर्थों को बतलाने के लिये प्रवृत्त वेदान्ती चार मतों में बंट जाते हैं, वे चार मत ये हैं (१) द्वैत, (२) अद्वैत (३) द्वैताद्वैत (४) विशिष्टाद्वैत। द्वैत मतवाले विद्वान जीव और ब्रह्म में भेद मानते हैं। अद्वैत मत को मानने वाले विद्वान जीव और ब्रह्म में अभेद मानते हैं, द्वैताद्वैतमत को मानने वाले विद्वान जीव और ब्रह्म में भेद और अभेद को मानते हैं। द्वैती लोग जीव और ब्रह्म में भेद को बतलाने वाली श्रुतियों को मुख्य मानकर अभेद प्रतिपादक श्रुतियों का गौण अर्थ करते हैं। अद्वैती लोग अभेद प्रतिपादक श्रुतियों को मुख्य मानकर अभेद प्रतिपादक श्रुतियों को गौण मानते हैं। द्वैताद्वैती दोनों श्रुतियों को मुख्य मानते हुये घटक श्रुतियों की उपेक्षा करते हैं,

हन्तो घटकश्रुतिं निघ्नन्ति। तिसृणामपि श्रुतीनां मुख्यार्थपरताया-स्तैर्यादिभिरनिर्वहणात् त्रिवेदी हता महान्तं क्लेशं भजते, श्रीभाष्यकारस्य श्रीसूक्तिर्विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तानुसारेण "मिथोभेदं तत्वेष्वभिलपतिभेदश्रुतिरतो विशिष्टैक्यादैक्यश्रुतिरपि च सार्था भगवती। इमावर्थौ गोप्तुं निखिलजगदन्तर्यमयिता निरीशो

घटक श्रुति के अनुसार भेद प्रतिपादक और अभेद प्रतिपादक श्रुतियों का अर्थ नहीं करते हैं। इस प्रकार ये वादिगण एक एक श्रुति को पकड़ कर अपने सिद्धान्त में श्रुति को खींचते हैं। दूसरे से पकड़े हुये श्रुतिवाक्य का गौण अर्थ करते हुये यह नहीं समझते कि इससे श्रुति पर आघात पहुँचता है। यहाँ पर विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्ति ने पहुँच कर परमतों का खण्डन कर श्रुति के सभी वाक्यों का यथार्थ अर्थ करके श्रुति के सर्वाङ्गीण प्रामाण्य की रक्षा की। श्रीसूक्ति ने यह बतलाया कि तत्व तीन हैं (१) चित् (२) अचित और (३) ईश्वर। जीवात्मा को चित कहते हैं, जड प्रपञ्च को अचित कहते हैं श्रीमन्नारायण भगवान को ईश्वर कहते हैं। चित अचित् दोनों ईश्वर के शरीर हैं ईश्वर इन दोनों का आत्मा हैं, अतएव ईश्वर परमात्मा अन्तर्यामी कहलाते हैं। जिस प्रकार "यह मनुष्य जानता है" ऐसा कहने में शरीर विशेषण रूप में आत्मा विशेष्य रूप में प्रतीत होता है, अतएव वह जीवात्मा शरीर विशिष्ट कहलाता है, वैसे ही ब्रह्मज्ञानियों की प्रतीति में चेतना चेतनात्मक प्रपञ्च विशेषण रूप में ईश्वर विशेष्य रूप में प्रतीत होते हैं। शरीर और जीवात्मा में जैसा भेद है वैसे ही चेतना चेतनात्मक प्रपञ्च और ईश्वर में भेद है, यही भेद श्रुतियों ने बतलाया है। शरीर और जीव में भेद रहने पर भी जैसे शरीर विशिष्ट जीव एक है, नाना नहीं

लक्ष्मीशः श्रुतिभिरपराभिः प्रणिदधे ॥" इत्युक्तरीत्या मुख्यार्थतां समयर्थयन्ती महतौत्सुक्येन त्रिवेद्यास्तं क्लेशं लीलया दूरीकरोति ।

*"यतिनृपतिसूक्तिर्विजयते" एवं भूता त्रिवेदी प्रियसखी यतिराजसूक्तिः सर्वोत्कर्षेण वर्तते । अस्याः सर्वोत्कर्षं सर्वदृश्यो दुरपलप इति भावः ॥५४॥

यदि यथाभूतस्वार्था यतिनृपतिसूक्तिः तर्हि तत्समर्थितमतस्य खण्डनं कथं परैः क्रियते इत्यत्र परैरारोप्यमाणा दोषा वस्तुतो

वैसे ही चेतना चेतनात्मक प्रपञ्च और ईश्वर में भेद रहने पर भी प्रपञ्चविशिष्ट ईश्वर एक है नाना नहीं है। इसी एकता को अभेद श्रुतियाँ बतलाती हैं, जिस सम्बन्ध के कारण प्रपञ्च विशेषण बनता है और ईश्वर विशेष्य बनते हैं उस शरीरात्मभाव संबन्ध को घटक श्रुतियाँ बतलाती हैं। शरीरात्मभाव बतलाने वाली श्रुतियाँ घटक श्रुति इसलिये कहलाती हैं कि वे भेदाभेद श्रुतियों में विरोध को शान्त कर दोनों में मेल करा देती हैं। इस प्रकार श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्ति ने सभी श्रुतियों का मुख्य अर्थ करके श्रुतियों के प्रामाण्य की रक्षा की। यह अर्थ संस्कृत व्याख्या में उदाहृत "मिथोभेदम्" इस श्लोक से प्रकट है।

"यतिनृपतिसूक्तिर्विजयते"—इस प्रकार प्रिय सखी बनकर श्रुतिपथ की सेवा करने वाली यतिराज की श्रीसूक्ति सर्वोत्कृष्ट रूप में विराजमान रहती है। उसका जय जयकार मनाना ही हम लोगों का कर्तव्य है॥५४॥

पूर्व श्लोक में श्रीवेदान्त देशिक स्वामी जी ने कहा कि श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्ति वास्तव अर्थों का वर्णन करती है। यहाँ प्रश्न उठता है कि यदि ऐसी बात है तब तो इन श्रीसूक्तियों से समर्थित मत

श्रीभगवद्रामानुजमुनिमतं श्रुतिश्रेण्याः "अनन्ता वै वेदाः" इत्युक्तत्वादनन्तानां वेदानां समूहस्य चूडानां वेदान्तानां पदं स्थानम् श्रीरामानुजमुनिमतं सर्ववेदान्तैककण्ठ्येन प्रवृत्तत्वात् सर्व-वेदान्तानां स्थानं भवति अत एव बहुमतं सर्वेषां बहुमतिपात्रं च भवति। अथवा श्रुतिश्रेणीचूडापदैः वेदसमूहस्य शिरोभाग-रूपाभिरुपनिषद्भिर्बहुमतं पूजितं भवति इतरमतेषु सर्वश्रुतीनामैक-कण्ठ्यस्याभावात् "बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदः" इत्युक्तरीत्या तन्मतानि दृष्ट्वा बिभ्यतो वेदान्ता अभेदश्रुतिभेदश्रुतिघटकश्रुतिसगुणश्रुति-

---

"श्रुतिश्रेणीचूडापदबहुमते लक्ष्मणमते"—वेद अनन्त हैं क्योंकि "अनन्ता वै वेदाः" ऐसा वेद में कहा गया है। वेदों का शिर वेदान्त हैं, श्रीरामानुज स्वामी जी के मत में सर्व वेदान्तों का स्थान है क्यों कि इस मत में सभी वेदान्तों का समन्वय किया गया है इसी कारण ही यह मत सब विद्वानों से सम्मानित हुआ है। अथवा वेदों का समूह अपने शिर से श्रीरामानुज स्वामी जी के मत का अभिनन्दन करता है। लोक में देखा जाता है कि जब एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के मत का अभिनन्दन करता है तब शिर हिलाकर अभिनन्दन करता है। वह अभिनन्दन शिर से किया हुआ अभिनन्दन समझा जाता है। वैसे ही सभी वेद अपने शिर से अर्थात् उपनिषद् से श्रीरामानुज स्वामी जी के मत का अभिनन्दन करते हैं, इस प्रकार यह मत वेद पुरुष से अभिनन्दन हुआ, अतः सिद्ध होता है कि यह मत परम प्रामाणिक है।

निर्गुणश्रुतिप्रभृतीनां सर्वासां श्रुतीनामैककण्ठ्यापादकं श्रीभगवद्रामानुजमुनिमतं दृष्ट्वा पूजयन्तीत्यर्थः। लोकेऽपि बहुभ्यो बिभ्यत्पुरुषो भयं निवर्त्य रक्षितवन्तं पूजयन् हि लक्ष्यते। तथा च श्रुतिश्रेणीभिः शिरोभिरभिनन्दितमिदं मतम् एवं च वेदैरेव-शिरोभिरभिनन्दितेऽस्मिन् स्वच्छे मते न कश्चिद्दोषः संभवीति सर्वैर्बोद्धुं शक्यम्।

*"वितथमतिर्यः स्वपक्षस्थान् दोषानारोपयति" एवं भूते सत्तर्कप्रमाणप्रतितिष्ठतेऽस्मिन् यो वितथमतिर्व्यर्थबुद्धिरयथार्थ-बुद्धिर्वा स्वपक्षस्थान् वस्तुतः स्वपक्षे एव प्रसजतो दोषान्

काल्पनिक अर्थों का ही प्रचार होता था। श्रीरामानुज स्वामी जी के मत में भेदश्रुति अभेदश्रुति घटकश्रुति सगुणश्रुति और निर्गुणश्रुति इत्यादि सभी श्रुतियों का समन्वय करके वेदार्थों का प्रचार किया जाता है। इस मत को देखकर वेदों को आश्वासन मिला, आश्वास्त वद इस मत का अभिनन्दन करने लगे। लोक में देखा जाता है कि यदि कोई मनुष्य अनेक मनुष्यों से भयभीत होगया हो तो वह उस मनुष्य का सर्वदा अभिनन्दन करता ही रहता है जिसने उस समय में उसकी रक्षा की हो, तथा भय को दूर किया हो। इस प्रकार परमतों से भयभीत हुए वेद भी अपने रक्षक श्रीरामानुज स्वामी जी के मत का अभिनन्दन करते ही रहते हैं। वेदों से अभिनन्दित इस मत में कोई भी दोष रह नहीं सकता इस पर किसी का सन्देह नहीं होना चाहिये।

"वितथमतिर्यः स्वपक्षस्थान् दोषानारोपयति"—इस प्रकार वेदों से अभिनन्दित इस मत में यदि कोई खण्डन करने वाला दोषों का आरोप करें तो समझना चाहिये कि ये दोष वास्तव में श्रीरामानुज स्वामी जी

*"स जडः स्वहस्तेनोत्क्षिप्तैर्निजगात्रेषु बहुलं गलद्भि-र्जम्बालैर्गगनतलमालिम्पति" स्वपक्षस्थान् दोषान् लक्ष्मणमते आरोपयन् जडः स्वहस्तेनोर्ध्वमुत्क्षिप्तैः स्वांगेषु बहुलं यथातथा पतद्भिः पंकैराकाशतलं आसमन्तात्लिम्पतीति भाव्यम्। जड' आकाशो मलिनः कार्यं इति धिया पङ्कपिण्डमूर्ध्वं क्षिपति स पिण्डः स्वच्छमाकाशं मलिनं कर्तुमप्रभवन् किंबहुनास्प्रष्टुमप्य-प्रभवन् बहुधा विकीर्णः सन् उत्क्षेपकस्य सर्वेषु गात्रेषु पतति।

श्रीरामानुज स्वामी जी के मत के विषय में उस वादी के द्वारा दिये गये दोष श्रीरामानुज स्वामी जी के मत में न लग कर उसी के मत में लग जाते हैं।

"स जडः स्वहस्तेनोत्क्षिप्तैर्निजगात्रेषु बहुलं गलद्भिर्जम्बालैर्गगनतलमा-लिम्पति"—अपने मत में रहने वाले दोषों का श्रीरामानुज स्वामी जी के मत में आरोप करने वाला यह मूर्ख उस मूर्ख के समान है जो आकाश में पङ्क (कीचड़) को फेंक कर अपने शरीर में पड़ने वाले उस पङ्क से मलिन होता है। मैं पङ्क से आकाश को मलिन कर दूँगा इस उत्साह से प्रेरित होकर वह मूर्ख ऊपर पङ्क को फेंकता है। वह पङ्क स्वच्छ आकाश को छूता ही नहीं, मलिन कैसे करेगा। वह पङ्क आकाश में फूट कर नीचे गिरता हुआ फेंकने वाले के शरीर पर गिरता है, फेंकने वाले का शरीर मलिन हो जाता है, फेंकने वाला पुरुष मूर्खतावश यह नहीं समझ पाता कि यह पङ्क आकाश को छू तक नहीं सकता, मलिन करना तो दूर, गिर कर मेरे शरीर को ही मलिन कर रहा है। वह मूर्ख समझता है कि इस बार मैं पङ्क से आकाश को लीप दूँगा। पुनरपि आकाश में पङ्क को फेंकता है, वह पङ्क भी आकाश में न लग कर उसी के शरीर में पड़ता है। इस प्रकार वह बारम्बार व्यर्थ प्रयास करता

तथैव श्रीलक्ष्मणमतं दूषयिष्यामीति धियाखण्डकेनोच्यमाना दोषाः स्वच्छं श्रीलक्ष्मणमतं स्प्रष्टुमप्रभवन्तः खण्डकस्य मते एव पतन्ति। अतो लक्ष्मणमतमनिवार्यमिति वेदितव्यम् ॥५५॥

पूर्वश्लोके श्रीभाष्यकारस्य मतं परोद्भावितदोषैरसंस्पृष्टं निर्दुष्टं चेति निरूप्यानेन श्लोकेनैवंविधतत्त्वज्ञानरूपं प्रकाशं सर्वतोदिक्कं प्रचारयन् श्रीभाष्यकारो दीपवत् प्रकाशते अस्या-

---

है। परन्तु विज्ञ लोग समझते हैं कि इस मूर्ख से आकाश तो मलिन नहीं किया जा सकता, स्वयं ही मलिन होता रहेगा। वैसे ही प्रकृत में भी समझना चाहिये। मैं श्रीरामानुज मत का खण्डन कर दूँगा इस उत्साह से प्रेरित होकर यह जडवादी श्रीरामानुज स्वामी जी के मत के ऊपर दोषों का आरोप करता है, वे दोष श्रीरामानुज स्वामी जी के मत पर न लग कर उनके मत में लग जाते हैं उनका मत दूषित हो जाता है। परन्तु यह जडवादी इस मर्म को न समझ कर बारम्बार श्रीरामानुज मत का खण्डन करने के लिये दोषों का आरोप करता ही जाता है, उससे उसका मत ही दूषित होजाता है। परन्तु विज्ञ लोग समझते हैं कि स्वच्छ श्रीवैष्णव मत में दोष लग नहीं सकते, उलटे उन दोषों से दूषकों का मत ही खण्डित हो जाता है। अतः सिद्ध हुआ कि

प्रकाशे साधुजना अपि परमतरूपे पाताले निपत्य विनश्येयुः यतिपतिदीपस्तेषां सत्पथं दर्शयन् संसाराध्वनः पारभूतं परं धाम प्रापयतीत्याह—

निरालोके लोके निरुपधिपरस्नेहभरितो
यतिक्ष्माभृद्दीपो यदि न किल जाज्वल्यत इह ।
अहङ्कारध्वान्तं विजहति कथंकारमनघाः
कुतर्कव्यालोघं कुमतिमतपातालकुहरम् ॥५६॥

रूपी पाताल में गिर कर नष्ट हो गये होते। श्रीभगवान का सज्जनों पर अपार अनुग्रह है। अतएव श्रीभगवान ने श्रीभाष्यकार रूपी महादीप को प्रज्वलित किया। यह दीप वेद मार्ग रूपी सन्मार्ग पर चलने वाले सज्जनों को अच्छी तरह मार्ग प्रदर्शन कर रहा है, उस वेद मार्ग में चल कर सज्जन अन्त में उस परमपद पर पहुँच जाते हैं जो मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है। श्रीभाष्यकार स्वामीरूपी महादीप से विस्तरित ज्ञान प्रकाश के कारण अज्ञान दशा में परमत में घुसकर अनन्त क्लेश भोगने वाले सज्जन भी उससे निकलकर वेद मार्ग रूपी सत्पथ में पहुँच पर अपने जीवन के परम लक्ष्य परमात्मा को प्राप्त कर रहे हैं। इस अर्थ का प्रतिपादन श्रीदेशिक स्वामी जी इस श्लोक से कर रहे हैं—

इह निरालोके लोके—प्रकाश रहित इस लोक में, *निरुपधिपरस्नेहभरितो*—निरुपधिक भगवत्प्रेम से परिपूरित, *यतिक्ष्माभृद्दीपः*—यतिराज रूपी दीपक, *यदि न जाज्वल्यत किल*—यदि न जला होता, *अहंकारध्वान्तं*—अहंकार रूपी अन्धकार से युक्त, *कुतर्कव्यालोघं*—कुतर्करूपी सर्पों के आवास भूत, *कुमतिमतपातालकुहरं*—कुमतरूपी पाताल कुहर अर्थात् गहरा गर्त को, *कथं कारं विजहति*—कैसे निकल पाते।

*"निरालोके इहलोके निरुपधिपरस्नेहभरितो यतिक्ष्माभृद्दीपो यदि न जाज्वल्यते किल" रात्रौ यदि दीपो न ज्वलेत् तर्हि निम्नोन्नतदेशापरिज्ञानेन चक्षुष्मन्तोऽन्धाश्चाविशेषेण श्वभ्रे पतेयुः तथा यदि श्रीभाष्यकारो नावातरिष्यत् तर्हि निर्दोषाः सन्तोऽपि परमते निपत्यात्मनाशं प्राप्स्यन् । श्रीभाष्यकारो दीपवल्लोकस्य सुबहूपकरोति । अयं लोको निरालोको वर्तते । यदा सूर्याद्यालोकोऽप्यस्तं गतो भवति तदा दीपस्यात्यन्तमावश्यकता वर्तते । अयं लोकोऽनाद्यविद्यामोहितत्वेन तत्त्वहितपुरुषार्थविषयकप्रकाशशून्यो वर्तते । अतः श्रीभाष्यकाररूपस्य दीपस्यात्यन्तमावश्यकता वर्तते । गाढान्धकारे सर्वेषां मार्गदर्शनार्थं महादीपः क्ष्माभृच्छिखरेस्थाप्यते, स बहुदूरपर्यन्तं प्रभां विकासयन्

"निरालोके इहलोके निरुपधिपरस्नेहभरितो यतिक्ष्माभृद्दीपो यदि न जाज्वल्यते किल"—श्रीभाष्यकार स्वामी जी दीप के समान हैं। (१) जगत में चारों दिशाओं में प्रकाश को फैलने वाले सूर्य और चन्द्र इत्यादि ग्रह जब अस्त हो जाते हैं तब जगत में सर्वत्र गाढ़ान्धकार छा जाता है, उस समय दीप को छोड़कर मनुष्यों का दूसरा कोई शरण नहीं, दीप ही उस परमोपकारक है। इस भूलोक में इस समय सब महर्षिगण अस्त हो गये हैं जो पूर्वकाल में ज्ञान प्रकाश को सर्वत्र फैलाते थे। अब अज्ञानान्धकार अत्यन्त बढ़ गया है सावधान चलने वाले भी फिसल जाते हैं गिर पड़ते हैं। इस समय श्रीभाष्यकार स्वामी जी को छोड़ कर दूसरा कोई शरण नहीं रह गया। ये ही शरण हैं ये ही ज्ञान प्रकाश देकर हम लोगों का उद्धार कर सकते हैं। (२) गाढ अन्धकार के समय मार्ग सर्वथा नहीं दिखाई देते, उस समय अच्छी तरह से मार्ग को दिखाने के लिये अधिक प्रकाश सम्पन्न महान दीप

सर्वेषां सत्पथं दर्शयति। तथैव श्रीभाष्यकारः सर्वेषां कल्याणा-वहस्य वेदमार्गस्य प्रकाशनार्थमत्युच्चे आचार्यपदेऽभिषिक्तो बहुदूरपर्यन्तं तत्वज्ञानालोकं विस्तारयन् सर्वेषां वेदमार्गं दर्शयति। दीपो निरुपाधिकेन निर्दोषेण परस्नेहेन श्रेष्ठस्नेहेनाज्यादिना भरितो वर्तते अतएव जाज्वल्यमानो भवति स्नेहस्याल्पत्वे दोषवत्त्वे वा दीपो न जाज्वल्येत उत्तमेन निर्दोषेणाधिकेना-ज्यादिना स्नेहेन भरित एव दीपो जाज्वल्यते। तथा श्रीभाष्य-कारोऽपि निरुपाधिकेन निर्दोषेण परेषु इतरजनेषु स्नेहेन भरितो-

---

ऊंचे स्थान पर रक्खा जाता है, वह दीप बहु दूर पर्यन्त प्रभा को फैला कर सब मार्गों का ज्ञान करा देता है। वैसे ही अनादि अज्ञान के कारण मनुष्य जान नहीं पाते हैं कि कौन सन्मार्ग है? कौन दुर्मार्ग है कौन मार्ग कहाँ पहुँचाने वाला है श्रीभगवान ने संसारी जीवों पर अधिक कृपा करके श्रीभाष्यकार स्वामी जी को जगदाचार्यरूपी उच्च पद पर स्थापित किया। श्रीभगवान के वरद हस्तों से प्रतिष्ठापित जगदाचार्य श्रीभाष्यकार स्वामी जी बहुत दूर तक यहाँ तक कि नीच जातीय मनुष्यों तक में ज्ञान प्रकाश को विस्तारित करते लोक कल्याणकारी श्रीवेद मार्ग का दर्शन कराते हैं। (३) महादीप निर्दोष घी तेल इत्यादि से अधिक मात्रा में भरा रहता है, दीप की दशा अर्थात् वत्ती भी मोटी रहती है, अतएव वह महादीप वायु आदि से नहीं बुझता, अबाधित रूप में प्रकाश को फैलाकर सर्वसाधारण का उपकार करता है। यदि घी तेल इत्यादि स्निग्ध द्रव्य कम रहता हो अथवा दूषित रहता हो तो वह दीप अत्यन्त प्रकाशान्वित नहीं रह सकता। उत्तम निर्दोष घी इत्यादि से अधिक मात्रा में जब भरा रहता है तभी अधिक प्रकाश से युक्त रहता है। वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी में स्वाभाविक उच्च

वर्तते । एते जनास्तत्वज्ञानाभावात्प्रस्खलन्तोऽधः पाताले निपतन्ति किं करवाम तत्वज्ञानप्रकाशं प्रदायोपकुर्यामेति परजनेषु प्रसरता स्नेहेन भरितो वर्तते श्रीभाष्यकारः । अयं स्नेहः स्वार्थपरश्चेत् सोपाधिको दुष्टः स्यात् तथा नास्ति किंतु स्वार्थभावनाशून्यो निर्दोषो वर्तते । इत्थं स्वपरविभागानादरेण सर्वत्रनिरुपधिकस्नेहेन भरितत्वादेव श्रीभाष्यकारो दीप्यते । यस्य पुरुषस्य

कोटि का प्रेम भरा रहता है जिस प्रकार दीप में घी भरा रहता है। श्रीभाष्यकार स्वामी जी का वह प्रेम सामान्य जनता तक फैलता है अपने अनुयायियों में ही सीमित नहीं होता। इसी प्रेम के कारण ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी सर्वदा इस प्रकार चिन्तित रहते हैं कि यह जनता तत्वज्ञान न होने के कारण ही प्रमाद से नाना प्रकार के पाप करती है, अधोगति को प्राप्त करती है, इसकी कैसे रक्षा की जाय क्या ज्ञानप्रकाश देकर इस को सत्पथ में लाऊँ। इस प्रकार स्वामी जी सामान्य जनता तक फैलने वाले प्रेम से भरे रहते हैं, श्रीभाष्कार स्वामी जी का यह प्रेम विशुद्ध है तथा निर्दोष है, इसमें अणुमात्र भी स्वार्थ भावना नहीं है। जिस प्रेम में अणुमात्र भी स्वार्थ भावना हो वह प्रेम अशुद्ध है तथा सदोष है। श्रीभाष्यकार स्वामी जी कभी भी यह विचार नहीं करते कि ये हमारे हैं अतएव इन पर अनुग्रह करना चाहिये ये हमारे नहीं हैं अतएव इन पर अनुग्रह नहीं करना चाहिये। श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कृपा सब पर एक रूप से प्रवाहित होती है। इस प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामी जी स्वाभाविक निर्दोष प्रेम से भरे रहते हैं। श्रीभगवान के कृपापात्र होने के कारण श्रीभाष्यकार स्वामी जी की दशा परिस्थिति और वातावरण इत्यादि भी बहुत उत्तम है अतएव श्रीभाष्यकार स्वामी जी कभी भी परवादियों से परास्त न हुये।

भगवत्स्नेहेन भरितो भाष्यकारः सर्वेऽपिश्रीभगवन्मङ्गलाशासनाधिकारिणः संपद्यन्तामिति भावेन संप्रदायं प्रवर्तयति । पात्रगतआज्यादिरूपः स्नेह एव प्रदीपस्य श्रियं वर्धयति गुणांश्च देदीप्यमानान् करोति तथा सर्वेषु सत्पुरुषेषु श्रीभगवति च सुपात्रेषु

स्नेह करते थे श्रीहनुमान जी ने श्रीरामचन्द्र जी से स्वयं कहा है कि—"स्नेहो मे परमो राजन् त्वयि नित्यं प्रतिष्ठितः । भक्तिश्च नियता वीरभावो नान्यत्र गच्छति ।" अर्थात् हे श्रीभगवन ! आप जो सब लोगों का रञ्जन कर रहे हैं आपके इस स्वभाव का अनुसन्धान करने पर आपके विषय में हम को सुदृढ़ स्नेह होता है । आपके वीर्य इत्यादि गुणों का अनुसन्धान करने पर आपके विषय में हमारी भक्ति बढ़ रही है । हमारा भाव आपको छोड़ कर अन्यत्र नहीं जाता है । श्रीभाष्यकार स्वामी जी भगवान में अधिक स्नेह करते थे । श्रीभगवान के अवतार लेकर जिन सौलभ्य सौशील्य और वात्सल्य इत्यादि गुणों से लोगों को परिचित कराया, उन गुणों का अधिक अनुसन्धान श्रीभाष्यकार स्वामी जी करते थे । अतएव श्रीभगवान में उनका अपार स्नेह रहा । तभी तो उन्होंने श्रीसंपत्कुमार भगवान को पुत्र समझ कर लालन किया तथा श्रीभगवान के मार्दव सुकुमारता इत्यादि गुणों के अनुभव में मग्न होते हुये श्रीभगवान की महिमा को भूल कर श्रीभगवान के मंगलाशासन में इस भय से प्रवृत्त हुये कि कहीं श्रीभगवान पर कुछ आपत्ति न आवे, श्रीभगवान के मंगलाशासन में लोगों को प्रवृत्त कराने

प्रवर्तमानः स्नेह एव श्रीभाष्यकारस्य श्रियं वर्धयति गुणांश्च देदीप्यमानान् करोति। निरुपधिपरस्नेहभरितस्य दीपस्य प्रज्वलनादेव लोकस्य मार्गदर्शनं गन्तव्यदेशप्राप्तिश्च भवति। तथा परस्नेहभरितस्य श्रीभाष्यकारस्य प्रकाशमानत्वादेव लोकस्य वेदमार्गदर्शनं संसारपारभूतपरमपदप्राप्तिश्च भवति। दीपाभावे लोकस्य जायमानोऽनर्थो दुर्वचः तथा श्रीभाष्यकारस्याभावे लोकस्य जायमानोऽनर्थोऽपि वाचामगोचरः। अथापि मात्रया ब्रूमः।

*"अहंकारध्वान्तं कुतर्कव्यालोघं कुमतिमतिपातालकुहरमनघाः कथंकारं विजहति" सूर्याद्यालोकरहितकाले संचरन्तश्चक्षु-

---

इत्यादि स्नेह द्रव्य दीपकी श्री को बढ़ाता है, दीप में रहने वाले गुणों को अर्थात् वन्तुओं को प्रकाशयुक्त करता है। वैसे ही सज्जन और श्रीभगवानरूपी सुपात्रों में प्रवृत्त होने वाला श्रीभाष्यकार स्वामी जी का स्नेह श्रीभाष्यकार जी की श्री को बढ़ाता है तथा श्रीभाष्यकार स्वामी जी के कल्याण गुणों को प्रकाशयुक्त कर देता है। (५) घी इत्यादि स्निग्ध द्रव्यों से युक्त दीप ही प्रज्वलित होगा वही लोगों का मार्ग प्रदर्शन कर सकता है, उस मार्ग से जाकर जनता गन्तव्य देश में पहुँच सकती है। वैसे ही जनता और जनार्दन में अपार स्नेह होने के कारण ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी जगत को ज्ञान प्रकाश दे सके, उनके द्वारा प्रदर्शित वेद मार्ग में जाकर सज्जन संसार के पारभूत परमपद पहुँच सके। दीप न होने पर जनता का जो कष्ट होता है, वह वाणी से परे है। वैसे ही यदि श्रीभाष्यकार स्वामी जी अवतार नहीं लिये होते तो

गन्तोऽपि गाढान्धकारयुक्ते सर्पवृश्चिकादिभिरात्मघातकैर्दुष्टजन्तुभिर्व्याप्ते ऽनुत्तार्ये महाबिलेऽपुनरुत्तरणं यथानिपतेयुः निपत्य च बहिर्निर्गन्तुमक्षमास्तत्रत्यैर्व्यालैर्दष्टा यथा म्रियेरन् तथा सूर्यादिकल्पानां महर्षीणामस्तंगतत्वाज्ज्ञानप्रकाशप्रसङ्गरहिते कलिकाले वेदमार्गे संचरन्तोऽप्यनघा वैदिका निरुपधिकस्नेहेन ज्ञानोपदेशं कुर्वतः श्रीभाष्यकारस्याभावेऽहंकाररूपगाढान्धकारावृते आत्मनाशककुतर्करूपदुष्टजन्तुसमाकीर्णे आत्मोद्धारसंभावनारहिते पातित्यहेतौ कुमतिमतरूपे पातालकुहरे निपतेयुः निपत्य च बहिर्निर्गन्तुमक्षमास्तत्रत्यैः कुतर्कैर्मर्मणि मर्मणि दष्टा "असन्नेव

विजहति"—सूर्य आदि जब अस्त हो जाते हैं, गाढ अन्धकार चारों दिशाओं में व्याप्त हो जाता है, उस समय दृष्टि शक्ति संपन्न पुरुष भी चलते २ ऊंचीनीची भूमि का दर्शन न होने के कारण पाँव फिसलने से ऐसे अन्धकूप में गिर जाते हैं जहाँ घनघोर अन्धकार है तथा वृश्चिक और सर्प इत्यादि प्राण लेने वाले दुष्ट जन्तु रहते हैं। उस में से निकलना उन लोगों को अशक्य होता है, वहाँ के दुष्ट जन्तुओं से कष्ट पाकर अन्त में उन्हें मरना ही पड़ता है। वैसे ही प्रकृत में सूर्य के समान जगत में ज्ञान प्रकाश को फैलाने वाले महर्षिगण अस्त होगये थे, सर्वत्र अज्ञानान्धकार अपना आधिपत्य जमा रहा था, यदि इस समय श्रीभाष्यकार स्वामीजी का अवतार नहीं हुआ होता तो वेदमार्ग में संचार करने वाले वैदिक सज्जन भी कुदृष्टियों के द्वारा प्रवर्तित मतरूपी पाताल गर्त में गिर पड़ते जहाँ अहंकाररूपी अन्धकार आरम्भ से ही अधिकार किये बैठा है ममकाररूपी पिशाच रहता है, कुतर्करूपी प्राण घातक वृश्चिक और सर्प रहते हैं। उन दुर्मतों में एक वार पड़ने पर उससे निकलना असम्भव है, आत्मोद्धार होना तो दूर है, वहाँ कुतर्करूपी

सभवति" इत्युक्तमात्मनाशं प्राप्नुयुः। कुतर्कदष्टानामभिवृद्धाहंकार-ममकाराणामुज्जीवनकथैव न संभाव्यते किल। श्रीभाष्यकाररूपस्य पर्वतारोपितमहादीपस्याभावेऽयं महाननर्थः सज्जनानामवश्यं-भावीति तादृशानर्थपरिहारकस्य श्रीभाष्यकारस्य विषये सर्वैर्मङ्गला-शासनं कर्तुं युक्तम् ॥५६॥

पूर्वश्लोकैर्मतान्तराणां निकर्षः श्रीभगवद्रामानुजमतस्यो-त्कर्षश्चोक्तः। तत्र प्राचीनमुत्कृष्टमतएवादरणीयम् नवीनमनुत्कृष्ट-मत एवानादरणीयमिति सर्वसंप्रतिपन्नम् एवं च श्रीभगवद्रामा-

---

वृश्चिक और सर्प इनके मनरूपी मर्म स्थल में काटते हैं। अन्त में लोगों का आत्मनाश होजाता है। जो लोग कुतर्कों में फंस गये हों जिनका अहंकार और ममकार बढ़ गये हों उनका उज्जीवन होना असम्भव है यह दुर्दशा सुयोग्य सज्जनों को भी भोगनी पड़ती है। श्रीभाष्यकाररूपी महादीप से ज्ञानप्रकाश के निकलने पर उन दुर्मतों में पड़कर कष्ट भोगने वाले सज्जन सत्य असत्य और हित अहित को जान कर किसी तरह उन दुर्मतोंरूपी पाताल से निकल कर श्रीभाष्यकार स्वामी जी के द्वारा श्रीभगवान का आश्रय लेकर आत्मोज्जीवन करते हैं। अतः सभी वैदिकों को कृतज्ञता के साथ श्रीभाष्यकार स्वामी जी का मंगलाशासन करना चाहिये। तभी ये उऋण हो सकते हैं, अन्यथा नहीं ॥५६॥

नुजदृष्टस्यनवीनस्यास्य मतस्योत्कर्षं आदरणीयत्वं च कथं युज्यते प्राचीनैस्तैस्तैराचार्यैर्दृष्टानां तेषां मतानां निकर्षेऽनादरणीयत्वं च कथं युज्यते इतिशङ्कायामुपस्थितायां नवीनत्वं न निकर्षस्य न वानुपादेयत्वस्य प्रयोजकत्वं किंतु अनर्थ्यत्वमेव तच्च परमतेषु पुष्कलम्, प्राचीनत्वं नोत्कर्षे न वाऽऽदरणीयत्वे प्रयोजकम् किंतु अर्थ्यत्वमेव, तच्च श्रीभगवद्रामानुजमते पुष्कलम् इदं संपरीक्ष्यताम् । यदि प्राचीनत्वमेवोत्कर्षप्रयोजकमित्याग्रहः तदपि अस्मन्मतेऽस्ति, मतान्तराचार्येभ्योऽपि प्राची-

---

वे निकृष्ट तथा अनादरणीय हैं। श्रीरामानुज मत नवीन है क्योंकि श्रीरामानुज स्वामी जी ने इस मत की स्थापना की श्रीरामानुज स्वामी जी के पूर्व यह मत इस लोक में था मतान्तरों के आचार्यों के मत इसके भी प्राचीन हैं। ऐसी स्थिति में उन मतों को उत्कृष्ट मान कर स्वीकार करना चाहिये, श्रीरामानुज मत को निकृष्ट मान कर त्याग देना चाहिये। आपका कथन तो इस सर्वमान्य सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है। ऐसी शङ्का उपस्थित होने पर श्रीदेशिक स्वामी जी इस श्लोक से उस शङ्का का समाधान करते हुए कहते हैं कि प्रथमतः यह धारणा ही गलत है कि प्राचीन मत उत्कृष्ट तथा संग्राह्य है तथा नवीन मत निकृष्ट तथा त्याज्य है । यही धारणा उत्तम है कि यथार्थ अबाधित अर्थों का प्रतिपादन करने वाला मत उत्कृष्ट तथा संग्राह्य है, अयथार्थ बाधित अर्थों का प्रतिपादन करने वाला मत निकृष्ट तथा त्याज्य है। परीक्षा करने पर श्रीरामानुज मत यथार्थ अबाधित अर्थों का प्रतिपादन करने वाला सिद्ध होता है अतएव संग्राह्य है। अन्य मत अयथार्थ बाधिक अर्थों का प्रतिपादन करने वाले सिद्ध होते हैं, अतएव ये त्याज्य हैं। यदि आप लोगों का प्राचीन मत का ग्रहण करने का

नैष्टङ्कद्रमिडगुहदेवप्रभृतिभिः प्रवर्तितस्य श्रीविशिष्टाद्वैतमतस्यैव श्रीभगवद्रामानुजमुनिभिः प्रवर्तितत्वादित्युत्तरमभिप्रेत्याह—

यतिक्ष्माभृद्दृष्टं मतमिह नवीनं तदपि किं
ततः प्रागेवान्यद्वद तदपि किं वर्णनिकषे ।
निशाम्यन्तां यद्वा निजमतितिरस्कारविगमा-
न्निरातङ्काष्टङ्कद्रमिडगुहदेवप्रभृतयः ॥५७॥

ॐ"यतिक्ष्माभृद्दृष्टं मतमिह नवीनं (भवतु) तदपि किम्" यतिराजेन दृष्टमिदं विशिष्टाद्वैतमतं नवीनम् तदिदं मतं लोकान्तरे

ही आग्रह है तो भी श्रीरामानुज मत का ही ग्रहण करना होगा क्योंकि यह परम प्राचीन है, श्रीबोधायन महर्षि टङ्काचार्य द्रमिडाचार्य गुहदेव स्वामी इत्यादि श्रद्धेय आचार्य इस मत के प्रवर्तक हैं जो मतान्तर के आचार्यों से परम प्राचीन हैं। इन लोगों द्वारा प्रवर्तित मत का ही निरूपण श्रीरामानुज स्वामी जी ने किया। श्रीदेशिक स्वामी जी इस श्लोक से इस समाधान को व्यक्त करते हुये कहते हैं—

किं प्राचीनं गण्यते उत नवीनम् न वयं तद्विद्मः इह तु लोके इदं मतं नवीनमित्यविप्रतिपन्नमिति चेत् तथा नवीनमेव भवतु, ततः किम् तावता का हानिर्भवित्री।

*"अन्यत् ततः प्रागेव (भवतु) तदपि किं वद" अन्यन्मतं श्रीभाष्यकारदृष्टान्मतात्प्रागेव भवतु प्राचीनमेव भवतु, ततोऽपि किम् किं तावता तेषामुत्कर्षः सिद्ध्येत् ? वद त्वमेव

जी ने स्वबुद्धि से समझ कर जिस विशिष्टाद्वैत मत का इस लोक में प्रचार किया वह तो नवीन है। भले लोकान्तर में रहने वाले इस मत को प्राचीन माने, इस भूलोक में रहने वाले तो नहीं मान सकते क्योंकि इन लोगों से यह बात छिपी नहीं है कि श्रीरामानुज स्वामी जी ने ही अपनी बुद्धि से कल्पना कर इस मत का प्रचार किया। अतएव यह मत नवीन सिद्ध होता है। ऐसा आक्षेप उपस्थित होने पर श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि उससे क्या ? श्रीरामानुज मत नवीनता ही हो उससे क्या न्यूनता होगी। उससे कोई हानि नहीं। यदि कहोगे कि नवीन होने से यह मत ग्राह्य नहीं, तो बतलाओ अन्यान्य मत भी जब संसार में सर्व प्रथम प्रचारित हुये, तब वे नवीन ही थे, उस समय के विद्वानों को वे कैसे संग्राह्य हुये। आपके कथन के अनुसार उस समय के विद्वानों को यही करना चाहिये था कि उन मतों को नवीन मान कर परित्याग कर दें। ऐसा तो उन विद्वानों ने नहीं किया। यदि उन विद्वानों ने उस समय परित्याग किया हो तो आजकल उन मतों को अपनाने वाला कोई नहीं मिलता। अतः सिद्ध होता है कि यह धारणा

मतापेक्षया प्राचीनानां बौद्धादिमतानामेवोपादेयत्वं प्रसज्येत। तस्मादर्थ्यत्वानर्थ्यत्वे एवोपादेयत्वानुपादेयत्वप्रयोजके यस्मिन् मते प्रमाणविरोधस्सत्तर्कविरोधश्च नास्ति अतएव यन्मतं यथावस्थितार्थप्रतिपादकं तन्मतमुत्कृष्टमुपादेयं च प्रतिपत्तव्यम् तत् कामं प्राचीनमस्तु नवीनं वास्तु तत्रानादरः यस्मिन् मते प्रमाणविरोधस्सत्तर्कविरोधश्चास्ति अतएव यन्मतमयथावस्थितार्थबोधकम् तन्मतं निकृष्टमनुपादेयं च प्रतिपत्तव्यम्। तन्मतं प्राचीनं नवीनं

हों तो सर्वदा उनका परित्याग करना चाहिये। यह कभी न होगी कि उन सिद्धान्तों का कभी संग्रह किया जाय कभी परित्याग किया जाय। किंच मान लिया जाय कि दोनों आचार्यों ने परस्पर विरुद्ध दोनों मतों की स्थापना की उनमें कौन से सिद्धान्त को त्याज्य मानना चाहिये, कौन से सिद्धान्त को ग्राह्य मानना चाहिये। दोनों ही सिद्धान्त समान कालिक हैं। उनमें एक प्राचीन दूसरा नवीन नहीं है। उनमें आपका यह निर्णय नहीं लग सकता कि प्राचीन का संग्रह करना चाहिये नवीन को त्याग देना चाहिये। दोनों सिद्धान्तों का संग्रह करना भी उचित नहीं क्योंकि परस्पर विरुद्ध होने से उनमें कोई एक अवश्य गलत होगा, उसका संग्रह करना उचित नहीं। दोनों सिद्धान्तों का त्याग करना भी उचित नहीं क्योंकि उनमें कोई एक अवश्य समीचीन होगा, उसका त्याग करना उचित नहीं। वहाँ पर कैसे निर्णय करना चाहिये। अन्त में समान कालिक परस्पर विरुद्ध सिद्धान्तों के विषय में यही निर्णय देना होगा कि उन सिद्धान्तों में जो यथार्थ अबाधित अर्थों का प्रतिपादन करता हो तथा जिसमें प्रमाण और तर्कों से विरोध न लगता हो वह सिद्धान्त ग्राह्य है। जो सिद्धान्त अयथार्थ बाधित अर्थों का प्रतिपादन करता हो तथा जिसमें प्रमाण और तर्कों से विरोध

वास्तु, तत्रानादरः। अस्यां व्यवस्थायामथ्र्यस्य मतस्य सर्वदोपादेयत्वमनर्थ्यस्य मतस्य सर्वदाऽनुपादेयत्वं च फलतीति नाव्यवस्था प्रसज्यते।

तर्हि कस्मिन् मते प्रमाणतर्कविरोधाः? कस्मिन् मते न? किं मतमुत्कृष्टम्? किं मतं निकृष्टम् किं मतं समम् इति कथं

लगता हो वह सिद्धान्त त्याज्य है। समान कालिक परस्पर विरुद्ध सिद्धान्तों के विषय में एक निर्णय परस्पर विरुद्ध प्राचीन और नवीन सिद्धान्तों के विषय में दूसरा निर्णय देना उचित नहीं। सर्वत्र एक प्रकार का ही निर्णय देना उचित है। ऐसी स्थिति में हमारा यह पक्ष ही उचित सिद्ध होता है कि जो मत परस्पर विरुद्ध हैं चाहे वे समान कालिक हों अथवा प्राचीन या नवीन हों उनमें जो मत यथार्थ अर्थों का वर्णन करता है वह ग्राह्य है। जो मत गलत अर्थों का वर्णन करता है वह त्याज्य है। इस व्यवस्था के अनुसार विचार करने पर सिद्ध होगा कि श्रीरामानुज मत यथार्थ अर्थों का वर्णन करने के कारण ग्राह्य है, अन्यान्य मत गलत अर्थों का वर्णन करने के कारण त्याज्य है। महाकवि कालिदास ने कहा है प्राचीन होने से ही सभी काव्य समीचीन नहीं होते नवीन होने से ही कोई भी काव्य दोषवान नहीं होता। इस महाकवि की उक्ति को समझने वाले आप ही कहें कि हमारा निर्णय उचित है या नहीं।

यदि कहोगे कि हम लोग यह कैसे जानें कि कौन से मत में प्रमाण और तर्कों से विरोध होता है? कौन से मत में नहीं होता है? कौनसा मत यथार्थ अर्थों का वर्णन करता है? कौनसा मत गलत अर्थों का वर्णन करता है? कौनसा मत उत्कृष्ट सिद्ध होता है? कौनसा

वास्तु, तत्रानादरः। अस्यां व्यवस्थायामर्थ्यस्य मतस्य सर्वदोपादेयत्वमनर्थ्यस्य मतस्य सर्वदाऽनुपादेयत्वं च फलतीति नाव्यवस्था प्रसज्यते।

तर्हि कस्मिन् मते प्रमाणतर्कविरोधाः? कस्मिन् मते न? किं मतमुत्कृष्टम्? किं मतं निकृष्टम् किं मतं समम् इति कथं

लगता हो वह सिद्धान्त त्याज्य है। समान कालिक परस्पर विरुद्ध सिद्धान्तों के विषय में एक निर्णय परस्पर विरुद्ध प्राचीन और नवीन सिद्धान्तों के विषय में दूसरा निर्णय देना उचित नहीं। सर्वत्र एक प्रकार का ही निर्णय देना उचित है। ऐसी स्थिति में हमारा यह पक्ष ही उचित सिद्ध होता है कि जो मत परस्पर विरुद्ध हैं चाहे वे समान कालिक हों अथवा प्राचीन या नवीन हों उनमें जो मत यथार्थ अर्थों का वर्णन करता है वह ग्राह्य है। जो मत गलत अर्थों का वर्णन करता है वह त्याज्य है। इस व्यवस्था के अनुसार विचार करने पर सिद्ध होगा कि श्रीरामानुज मत यथार्थ अर्थों का वर्णन करने के कारण ग्राह्य है, अन्यान्य मत गलत अर्थों का वर्णन करने के कारण त्याज्य है। महाकवि कालिदास ने कहा है प्राचीन होने से ही सभी काव्य समीचीन नहीं होते नवीन होने से ही कोई भी काव्य दोषवान नहीं होता। इस महाकवि की उक्ति को समझने वाले आप ही कहें कि हमारा निर्णय उचित है या नहीं।

यदि कहोगे कि हम लोग यह कैसे जाने कि कौन से मत में प्रमाण और तर्कों से विरोध होता है? कौन से मत में नहीं होता है? कौनसा मत यथार्थ अर्थों का वर्णन करता है? कौनसा मत गलत अर्थों का वर्णन करता है? कौनसा मत उत्कृष्ट सिद्ध होता है? कौनसा

अत्र श्लोके श्रीयतिराजसूक्तीनामत्र परत्र चापि अमृतास्वादकत्ववैभवं वर्णयति—

सुधासारं श्रीमद्यतिवरभुवः श्रोत्रकुहरे
निषिञ्चन्ति न्यञ्चन्निगमगरिमाणः फणितयः ।
यदा स्वादाभ्यासप्रचयमहिमोल्लासितधियां
सदा स्वाद्यं काले तदमृतमनन्तं सुमनसाम् ॥५८॥

पूर्वश्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी ने कहा कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने नूतन किसी सिद्धान्त का प्रचार नहीं किया। किन्तु श्रीबोधायन महर्षि टङ्काचार्य द्रमिडाचार्य गुहदेवाचार्य ब्रह्मनन्द्याचार्य इत्यादि पूर्वाचार्यों से प्रवर्तित परमप्राचीन वैदिक श्रीविशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का ही प्रचार किया। इस श्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि यद्यपि उन पूर्वाचार्यों के द्वारा विरचित ग्रन्थ इस समय नहीं मिलते हैं, कालक्रम से एक २ करके लुप्त हो गये हैं, तथापि हम लोगों को उद्विग्न नहीं होना चाहिये क्योंकि श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थ विद्यमान हैं उनसे हम लोगों का इहलोक और परलोक में आत्मकल्याण सिद्ध हो सकता है। श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीभाष्य आदि श्रीसूक्तियाँ इहलोक में भी हम लोगों को अमृतपान कराती हैं, परलोक में भी अमृतपान कराती हैं। इन सूक्तियों से हमारे सभी मनोरथ सिद्ध हो सकते हैं। इस अर्थ को व्यक्त करते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं—

श्रीमद्यतिवरभुवो—श्रीमान् यतिराज की, *न्यञ्चन्निगमगरिमाणः*—वेदों से भी बढ़कर प्रभावशालिनी, *फणितयः*—सूक्तियाँ, *श्रोत्रकुहरे सुधासारं निषिञ्चन्ति*—कानों में अमृत का सार डालती हैं। *यदा स्वादाभ्यास प्रचय-*

*"न्यञ्चन्निगमगरिमाणो श्रीमद्‌यतिवरभुवः फणितयः श्रोत्रकुहरे सुधाऽऽसारं निषिञ्चन्ति" श्रीभाष्यकारः श्रीमान् वेदार्थज्ञानं श्रीः "ऋचो यजूंषि सामानि । सा हि श्रीरमृता सताम्" इति हि श्रूयते । वेदार्थज्ञानरूपया श्रिया युक्तः श्रीयतिवरः । अथवा भगवत्प्रावण्यं श्रीः । अतएव हि "लक्ष्मणो लक्ष्मिसंपन्नः"

महिमोल्लासितधिया—इनके आस्वादन से होने वाले अनुभव का अभ्यास करने वाले, *सुमनसा*—मनस्वी, *तदनन्तं अमृतं काले सदा स्वाद्यं भवति*—इस लोक तथा परलोक में सदा अनन्त ब्रह्मानन्द का आस्वादन करते हैं।

"न्यञ्चन्निगमगरिमाणः श्रीमद्यतिवरभुवः फणितयः श्रोत्रकुहरे सुधासारं निषिञ्चन्ति"—वैदिक त्रैवर्णिकों के लिये श्री वेद है। वेद में कहा गया है—"ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद सन्तों की अमृत श्री है। यह श्री अमृत इसलिये कही जाती है यह श्री नश्वर नहीं है तथा यह श्री इहलोक और परलोक में अमृतपान कराने वाली है अथवा अमृत पद पर अर्थात् ब्रह्म पद पर पहुँचने वाली है।" श्रीरामानुज स्वामी जी वेदार्थों को पूर्ण रूप से जानते हैं इसलिये श्रीमान् कहलाते हैं। अथवा जीवों की श्री यही है कि जीव श्रीभगवान् में अत्यन्त आसक्त हो जायें। जीव जब तक संसार में आसक्त रहेंगे तब तक श्री से हीन रहेंगे। जब से संसार से विमुख होकर श्रीभगवान में आसक्त होंगे तब से श्रीमान् हो जायेंगे। उदाहरणार्थ श्रीलक्ष्मण जी को लक्ष्मण नाम रक्खा गया। क्यों ? श्रीवाल्मीकि रामायण में कहा गया है कि "लक्ष्मणो लक्ष्मिसंपन्नः" श्रीवसिष्ठ जी ने श्रीलक्ष्मण जी को देखते ही अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से देख लिया कि इनमें कूट २ कर लक्ष्मी भरी हुई है। वह लक्ष्मी कौन है ? यही है कि श्रीरामचन्द्र जी की सेवा

"स तु नागवरः श्रीमान्" "अन्तरिक्षगतः श्रीमान्" इत्युच्यते। एतादृश्या श्रिया युक्तो यतिवरः। अस्माद्यतिवरात्

करने की उत्कट अभिलाषा। इस उत्कट अभिलाषा से प्रेरित होकर ही श्रीलक्ष्मण जी ने दण्डकारण्य में साथ ले जाने के लिये श्रीरामचन्द्र जी की शरणागति की यह आग्रह किया कि—"कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेहविद्यते। कृतार्थोऽहं भविष्यामि तव चार्थः प्रकल्पते॥" अर्थात् हे भगवन् आप मुझे सेवक बना लीजिये, इसमें कोई अनौचित्य नहीं हैं, आप स्वामी हैं, मैं दास हूँ मुझे सेवक बनाने पर दोनों का लाभ होगा। मैं सेवा कर कृतार्थ हो जाऊँगा और आप का भी अभीष्ट सिद्ध होगा। इस प्रकार कैङ्कर्य लक्ष्मी से युक्त होने के कारण ही श्रीलक्ष्मण जी लक्ष्मि संपन्न कहलाये। जब गजेन्द्र ग्राह से लड़ते २ बहुत श्रान्त हो गये, मरण के समीप पहुँच गये, सब प्रकार के उपाय करके विफल होने के कारण उनका एक मात्र श्रीभगवान में ही विश्वास रह गया, तब महर्षि कहते हैं कि "स तु नागवरः श्रीमान्" अर्थात् वह गजेन्द्र श्रीमान् है मुमूर्षु दशा में पड़े हुये गजेन्द्र को श्रीमान् क्यों कहा गया। इसलिये कहा गया कि उनका मन एक मात्र श्रीभगवान् के प्रति झुकने लगा। श्रीविभीषण जी रावण से तिरस्कृत होकर श्रीरामचन्द्र जी की सन्निधि में पहुँचने के लिये आकाश मार्ग में आये, वानरों के क्रोध को देखकर नीचे न उतरे, न इधर के ही रहे न उधर के ही रहे, उस दुरवस्था में पड़े हुये श्रीविभीषण के विषय में श्रीवाल्मीकि जी कहते हैं "अन्तरिक्षगतः श्रीमान्" अर्थात् आकाश में रहने वाले विभीषण श्रीमान् हैं। उस समय उनके पास कौनसी श्री थी। वह श्री थी श्रीरामचन्द्र जी में अपार विश्वास और प्रेम। अन्त में श्रीविभीषण जी ने यही कहा कि मुझे आपकी सेवा करने की प्रबलतो इच्छा है,

*"न्यञ्चन्निगमगरिमाणो श्रीमद्यतिवरभुवः फणितयः श्रोत्र-कुहरे सुधाऽऽसारं निषिञ्चन्ति" श्रीभाष्यकारः श्रीमान् वेदार्थ-ज्ञानं श्रीः "ऋचो यजूंषि सामानि । सा हि श्रीरमृता सताम्" इति हि श्रूयते। वेदार्थज्ञानरूपया श्रिया युक्तः श्रीयतिवरः। अथवा भगवत्प्रावण्यं श्रीः । अतएव हि "लक्ष्मणो लक्ष्मिसंपन्नः"

महिमोल्लासितधियां—इनके आस्वादन से होने वाले अनुभव का अभ्यास करने वाले, *सुमनसां*—मनस्वी, *तदनन्तं अमृतं काले सदा स्वाद्यं भवति*—इस लोक तथा परलोक में सदा अनन्त ब्रह्मानन्द का आस्वादन करते हैं।

"न्यञ्चन्निगमगरिमाणः श्रीमद्यतिवरभुवः फणितयः श्रोत्रकुहरे सुधासारं निषिञ्चन्ति"—वैदिक त्रैवर्णिकों के लिये श्री वेद है। वेद में कहा गया है—"ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद सन्तों की अमृत श्री है। यह श्री अमृत इसलिये कही जाती है यह श्री नश्वर नहीं है, तथा यह श्री इहलोक और परलोक में अमृतपान कराने वाली है अथवा अमृत पद पर अर्थात् ब्रह्म पद पर पहुँचने वाली है।" श्रीरामानुज स्वामी जी वेदार्थों को पूर्ण रूप से जानते हैं इसलिये श्रीमान् कहलाते हैं। अथवा जीवों की श्री यही है कि जीव श्रीभगवान् में अत्यन्त आसक्त हो जायें। जीव जब तक संसार में आसक्त रहेंगे तब तक श्री से हीन रहेंगे। जब से संसार से विमुख होकर श्रीभगवान में आसक्त होंगे तब से श्रीमान् हो जायेंगे। उदाहरणार्थ श्रीलक्ष्मण जी को लक्ष्मण नाम रक्खा गया। क्यों ? श्रीवाल्मीकि रामायण में कहा गया है कि "लक्ष्मणो लक्ष्मिसंपन्नः" श्रीवसिष्ठ जी ने श्रीलक्ष्मण जी को देखते ही अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से देख लिया कि इनमें कूट २ कर लक्ष्मी भरी हुई है। वह लक्ष्मी कौन है ? यही है कि श्रीरामचन्द्र जी की सेवा

"स तु नागवरः श्रीमान्" "अन्तरिक्षगतः श्रीमान्" इत्युच्यते। एतादृश्या श्रिया युक्तो यतिवरः। अस्माद्यतिवरात्

करने की उत्कट अभिलाषा। इस उत्कट अभिलाषा से प्रेरित होकर ही श्रीलक्ष्मण जी ने दण्डकारण्य में साथ ले जाने के लिये श्रीरामचन्द्र जी की शरणागति की यह आग्रह किया कि—"कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेहविद्यते। कृतार्थोऽहं भविष्यामि तव चार्थः प्रकल्पते॥" अर्थात् हे भगवन् आप मुझे सेवक बना लीजिये, इसमें कोई अनौचित्य नहीं है, आप स्वामी हैं, मैं दास हूँ मुझे सेवक बनाने पर दोनों का लाभ होगा। मैं सेवा कर कृतार्थ हो जाऊँगा और आप का भी अभीष्ट सिद्ध होगा। इस प्रकार कैङ्कर्य लक्ष्मी से युक्त होने के कारण ही श्रीलक्ष्मण जी लक्ष्मि संपन्न कहलाये। जब गजेन्द्र ग्राह से लड़ते २ बहुत श्रान्त हो गये, मरण के समीप पहुँच गये, सब प्रकार के उपाय करके विफल होने के कारण उनका एक मात्र श्रीभगवान में ही विश्वास रह गया, तब महर्षि कहते हैं कि "स तु नागवरः श्रीमान्" अर्थात् वह गजेन्द्र श्रीमान् है मुमूर्षु दशा में पड़े हुये गजेन्द्र को श्रीमान् क्यों कहा गया। इसलिये कहा गया कि उनका मन एक मात्र श्रीभगवान् के प्रति झुकने लगा। श्रीविभीषण जी रावण से तिरस्कृत होकर श्रीरामचन्द्र जी की सन्निधि में पहुँचने के लिये आकाश मार्ग में आये, वानरों के क्रोध को देखकर नीचे न उतरे, न इधर के ही रहे न उधर के ही रहे, उस दुरवस्था में पड़े हुये श्रीविभीषण के विषय में श्रीवाल्मीकि जी कहते हैं "अन्तरिक्षगतः श्रीमान्" अर्थात् आकाश में रहने वाले विभीषण श्रीमान् हैं। उस समय उनके पास कौनसी श्री थी। यह श्री थी श्रीरामचन्द्र जी में अपार विश्वास और प्रेम। अन्त में श्रीविभीषण जी ने यही कहा कि मुझे आपकी सेवा करने की बलवती इच्छा है,

फणितयः सूक्तयः प्रभवन्ति एताः सूक्तयो वेदातिशयित-वैभवाः वेदस्यसर्वोऽपि गरिमा आसां सन्निधौ न्यग्भूतो भवति । अत्यन्तातीन्द्रियार्थप्रतिपादकत्वाद्वेदानां गरिमा । इतरद्धिप्रमाणमैन्द्रियिके तत्सजातीये च प्रवर्तते अतीन्द्रिये तु न प्रवर्तते। वेद एवातीन्द्रियमर्थं प्रतिपादयितुं प्रगल्भते। सोऽपि वेदोऽतीन्द्रियमर्थमस्पष्टं बोधयति नानान्यायसंचारोत्तर-

---

इसलिये मैं भी शत्रुओं से लड़ूंगा। इन तीन उदाहरणों से सिद्ध होता है, श्रीभगवान् के प्रति आसक्त होना ही जीवों की श्री है। यह श्री श्रीरामानुज स्वामी जी में पूर्ण मात्रा में विराजती हैं। इसलिये श्रीरामानुज स्वामी जी श्रीमान कहलाते हैं। श्रीरामानुज स्वामी जी के मुखारविन्द से जो २ वाणी प्रगट होती हैं, उनका प्रभाव वेदों के प्रभाव से बढ़कर है। वेदों का प्रभाव इसलिये है कि वेद अतीन्द्रिय पदार्थों का वर्णन करते हैं। दूसरे किसी प्रमाण में यह प्रभाव नहीं हैं। क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण इन्द्रिय ग्राह्य पदार्थों को ही बता सकता है, अतीन्द्रिय पदार्थ के विषय में ज्ञान कराने में प्रत्यक्ष की क्षमता नहीं। अनुमान प्रमाण उसी वस्तु के विषय में ज्ञान करा सकता है जो अब प्रत्यक्ष न होने पर भी किसी समय प्रत्यक्ष हो सकता हो। उदाहरणार्थ पर्वत में अग्नि अनुमान करते समय प्रत्यक्ष नहीं रहता, किन्तु वही अग्नि वहाँ जाने पर प्रत्यक्ष हो सकता हैं। अतः सिद्ध हुआ कि प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण अतीन्द्रिय पदार्थ को नहीं सिद्ध कर सकते हैं। एक वेद ही ऐसा है जो अतीन्द्रिय पदार्थ को बता सके। हमारे इन्द्रियों से ग्राह्य पदार्थ परिमित हैं। अतीन्द्रिय पदार्थ अनन्त हैं। उन सबका ज्ञान हम लोगों को वेदों से ही होता है। अतीन्द्रिय सूक्ष्म पदार्थों को बतलाने के लिये प्रवृत्त वेद उन अर्थों को अस्पष्ट

मेव वेदार्थ इदमित्थमिति स्पष्टतया धियमधिरोहति प्रसादगुण-वत्यः श्रीभाष्यकारसूक्तयस्तु अतिगूढानस्पष्टानपि वैदिकान-तीन्द्रियार्थान् स्पष्टं प्रतिपादयन्तीति वेदातिशयितवैभवाः। एतादृश्यो यतिराजसूक्तयः श्रोतॄणां श्रोत्रकुहरे सुधासारमभृतवर्षं नितरां सिञ्चन्ति श्रवणकाले अमृतवदतिभोग्या भवन्ति। इयं

रूप से ही बतलाते हैं। अनेक मीमांसा न्यायों को लगाकर विचार करने पर ही वेद का तात्पर्य स्पष्ट होता है तब जाकर प्रतीत होता है कि यहाँ पर वेद इस अर्थ को बतलाता है। वेद जब अस्पष्ट रूप से अर्थों को बतलाते हैं तभी इतने मत मतान्तरों का उदय होने का अवसर मिला। वेद यदि स्पष्ट रूप से अर्थों को बतलाने लग जावें इतने मत मतान्तर होंगे नहीं। श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ अतीन्द्रिय सूक्ष्म पदार्थों को स्पष्ट रूप से बतलाती हैं। इसलिये इनकी महिमा वेदों से अधिक है। अथवा "व्यघविगमगरिमाणः" श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्तियों के आविर्भाव के पूर्व वेदों का प्रभाव रूपी प्रवाह ऊपर २ ही बहता था, ऋषि मुनि और देवता इत्यादि उच्चकोटि के लोग ही वेदार्थों को समझते थे, वेदों का प्रभाव उन उच्चकोटि के जीवों पर ही पड़ता था। श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्तियों का आविर्भाव होने के अनन्तर वेदों का प्रभाव रूपी प्रवाह अस्मदादि निम्नकोटि के जीवों पर भी पड़ने लगा क्योंकि श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्तियों से हम लोग गूढ़ वेदार्थों को भी समझकर वेदों से प्रभावित होने लगे। श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियों का ही यह प्रभाव है कि वेद निम्नकोटि के अस्मदादि जीवों पर भी प्रभाव डालने लगा। एवं विध प्रभाव सम्पन्न श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ हमारे कानों के छिद्रों में अमृत बरसाती हैं। जैसे कोई

फणितयः सूक्तयः प्रभवन्ति एताः सूक्तयो वेदातिशयित-वैभवाः वेदस्यसर्वोऽपि गरिमा आसां सन्निधौ न्यग्भूतो भवति । अत्यन्तातीन्द्रियार्थप्रतिपादकत्वाद्वेदानां गरिमा । इतरद्धिप्रमाणमैन्द्रियिके तत्सजातीये च प्रवर्तते अतीन्द्रिये तु न प्रवर्तते। वेद एवातीन्द्रियमर्थं प्रतिपादयितुं प्रगल्भते। सोऽपि वेदोऽतीन्द्रियमर्थमस्पष्टं बोधयति नानान्यायसंचारोत्तर-

---

इसलिये मैं भी शत्रुओं से लड़ूंगा। इन तीन उदाहरणों से सिद्ध होता है, श्रीभगवान् के प्रति आसक्त होना ही जीवों की श्री है। यह श्री श्रीरामानुज स्वामी जी में पूर्ण मात्रा में विराजती हैं। इसलिये श्रीरामानुज स्वामी जी श्रीमान् कहलाते हैं। श्रीरामानुज स्वामी जी के मुखारविन्द से जो २ वाणी प्रगट होती हैं, उनका प्रभाव वेदों के प्रभाव से बढ़कर है। वेदों का प्रभाव इसलिये है कि वेद अतीन्द्रिय पदार्थों का वर्णन करते हैं। दूसरे किसी प्रमाण में यह प्रभाव नहीं हैं। क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण इन्द्रिय ग्राह्य पदार्थों को ही बता सकता है, अतीन्द्रिय पदार्थ के विषय में ज्ञान कराने में प्रत्यक्ष की क्षमता नहीं। अनुमान प्रमाण उसी वस्तु के विषय में ज्ञान करा सकता है जो अब प्रत्यक्ष न होने पर भी किसी समय प्रत्यक्ष हो सकता हो। उदाहरणार्थ पर्वत में अग्नि अनुमान करते समय प्रत्यक्ष नहीं रहता, किन्तु वही अग्नि वहाँ जाने पर प्रत्यक्ष हो सकता है। अतः सिद्ध हुआ कि प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण अतीन्द्रिय पदार्थ को नहीं सिद्ध कर सकते हैं। एक वेद ही ऐसा है जो अतीन्द्रिय पदार्थ को बता सके। हमारे इन्द्रियों से ग्राह्य पदार्थ परिमित हैं। अतीन्द्रिय पदार्थ अनन्त हैं। उन सबका ज्ञान हम लोगों को वेदों से ही होता है। अतीन्द्रिय सूक्ष्म पदार्थों को बतलाने के लिये प्रवृत्त वेद उन अर्थों को अस्पष्ट

मेव वेदार्थ इदमित्थमिति स्पष्टतया धियमधिरोहति प्रसादगुणवत्यः श्रीभाष्यकारसूक्तयस्तु अतिगूढानस्पष्टानपि वैदिकानतीन्द्रियार्थान् स्पष्टं प्रतिपादयन्तीति वेदातिशयितवैभवाः। एतादृश्यो यतिराजसूक्तयः श्रोतॄणां श्रोत्रकुहरे सुधासारममृतवर्षं नितरां सिञ्चन्ति श्रवणकाले अमृतवदतिभोग्या भवन्ति। इयं

रूप से ही बतलाते हैं। अनेक मीमांसा न्यायों को लगाकर विचार करने पर ही वेद का तात्पर्य स्पष्ट होता है तब जाकर प्रतीत होता है कि यहाँ पर वेद इस अर्थ को बतलाता है। वेद जब अस्पष्ट रूप से अर्थों को बतलाते हैं तभी इतने मत मतान्तरों का उदय होने का अवसर मिला। वेद यदि स्पष्ट रूप से अर्थों को बतलाने लग जावें इतने मत मतान्तर होंगे नहीं। श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ अतीन्द्रिय सूक्ष्म पदार्थों को स्पष्ट रूप से बतलाती हैं। इसलिये इनकी महिमा वेदों से अधिक है। अथवा "न्यग्विगमगरिमाणः" श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्तियों के आविर्भाव के पूर्व वेदों का प्रभाव रूपी प्रवाह ऊपर २ ही बहता था, ऋषि मुनि और देवता इत्यादि उच्चकोटि के लोग ही वेदार्थों को समझते थे, वेदों का प्रभाव उन उच्चकोटि के जीवों पर ही पड़ता था। श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्तियों का आविर्भाव होने के अनन्तर वेदों का प्रभाव रूपी प्रवाह अस्मदादि निम्नकोटि के जीवों पर भी पड़ने लगा क्योंकि श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्तियों से हम लोग गूढ़ वेदार्थों को भी समझकर वेदों से प्रभावित होने लगे। श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियों का ही यह प्रभाव है कि वेद निम्नकोटि के अस्मदादि जीवों पर भी प्रभाव डालने लगा। एवं विध प्रभाव सम्पन्न श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ हमारे कानों के छिद्रों में अमृत बरसाती हैं। जैसे कोई

सुधाश्रोत्रेण पेया विलक्षणसुधा अत इमां श्रोत्रकुहरे निषिञ्चन्ति। अथवा सुधायाः सारः सुधासारः। सुधायां चासारांशे निराकृते यः सारांशस्तं श्रोत्रकुहरे निषिञ्चन्ति। फणितयः सुधा तासामर्थः सुधासारः। अमृतसारवत्परमभोग्यानर्थान् अनुभावयन्ति यतिराजसूक्तयः। ततश्चयतिपतिसूक्तयः शब्दतोऽर्थतश्च इह लोके एवममृतमनुभावयन्ति।

अथ परलोकेऽमृतास्वादकत्वमाह—* "यदास्वादाभ्यासप्रचयमहिमोल्लासितधियां सुमनसां तदनन्तममृतं काले सदास्वाद्यं भवति" यासां फणितीनां यस्यसुधासारस्यवाऽभ्यासे स्वत एव

पात्रों में मधु को भरता हो, वैसे ये सूक्तियाँ हमारे कानों में अमृत को भरती हैं, क्योंकि सुनने में ये सूक्तियाँ अमृत के समान लगती हैं, उतना मधुर लगती हैं। अथवा "सुधासारं निषिञ्चन्ति" अमृत यद्यपि समुद्र का अत्युत्तम सार है, तथापि उसमें से भी असार भागों को हटाकर सार भाग लिया जाय तो वह अत्यन्त उत्तम होगा। अमृत के उस सार भाग को श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्तियाँ हमारे श्रोत्रों में बरसाती हैं। शब्द अमृत हैं, शब्दों का अर्थ अमृत का सार है। ये सूक्तियाँ अपने अर्थ रूपी सारतम अंश को हमारे श्रोत्रों में बरसाती हैं। भाव यह है कि ये सूक्तियाँ, चाहे शब्द को लेकर हों अथवा अर्थ

लोकः प्रवर्तते, न हीक्षुभक्षको दक्षिणामपेक्षते। सकृदास्वादे लब्धे तस्य पुनः पुनरभ्यासे लब्धास्वादो विद्वल्लोकः प्रवर्तते तस्याभ्यासस्य प्रचये वृद्धौ तस्य प्रचयस्य महिम्ना सुमनसां धीरुल्लासिता विकसिता भवति। श्रीभाष्यादिग्रन्था लब्धास्वादै-रसकृदभ्यस्यमाना बुद्धिकौशलं वर्धयन्ति। एवं विकसितधियो विद्वांस एव सुमनस इति गीयन्ते यत एषां मनोऽनवरत-श्रीभाष्यादिग्रन्थाभ्यासेनाभिभूतरजस्तमस्कमुद्रिक्तसत्त्वं च भवति।

अर्थ अमृत के समान परम भोग्य हैं। इनका अनुभव करने का सौभाग्य विरले ही सज्जनों को होता है। उन सज्जनों को इनका स्वाद लेने के लिये जब भाग्य खुलता है, तब आस्वाद करते २ वे स्वतः इनका अभ्यास करने में प्रवृत्त हो जाते हैं, अभ्यास कराने के लिये उनको कुछ प्रलोभन देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जिस मनुष्य ने एक बार इक्षु के रस का आस्वाद न किया हो, उसको इक्षु चखने के लिये पुनः प्रवृत्ति होती है, तदर्थ दक्षिणा देनी नहीं पड़ती। इस प्रकार उन लोगों का अभ्यास जब बहुत बढ़ जाता है, तब उनकी बुद्धि अत्यन्त विकसित हो जाती है वे स्वस्वरूप और परस्वरूप तथा श्रीभगवान् के रूप गुण विभूति इत्यादि अर्थों को विशद रूप में समझकर श्रीभगवान के शरण में जाते हैं, उस समय उनका मन अत्यन्त पवित्र हो जाता है। मन में रजोगुण और तमोगुण दब जाते हैं, सत्त्वगुण बढ़ता है इसलिये वे सुमना अर्थात् अच्छे मन वाले कहलाते हैं। देवताओं को सुमना कहते हैं क्योंकि उनका मन निर्मल रहता है। इस प्रकार श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों का अभ्यास करने वाले सुमना विद्वान् सुमना देवताओं के समान हो जाते हैं। कहा जाता है कि देवतागण अमृत पीते हैं। वैसे ही श्रीभाष्यादि ग्रन्थों का अभ्यास

देवा अपि सुमनसः कथ्यन्ते देवैः सुमनोभिरमृतं पीयते इति प्रसिद्धिः देवैः जीयमानममृतं सान्तम् अतएव हि "स्वर्गेऽपि पातभीतस्य क्षयिष्णोर्नास्ति निर्वृतिः" इत्युच्यते । एषां श्रीभाष्याद्यास्वादाभ्यासप्रचयमहिमविकसितधियां सुमनसां तु काले शरीरमुक्तिकाले तत् इदमित्थमिति निर्देष्टुमशक्यं प्रसिद्ध-अनन्तममृतं परंब्रह्म सदाऽऽस्वाद्यं पुनरावृत्तिं विना सर्वदाऽनु-भाव्यम् । अथवा सदाऽऽस्वाद्यम् "अत्र ब्रह्म समश्नुते" इत्युक्त-रीत्येहलोकेऽपि श्रीभाष्यादिश्रवणकाले मननकाले प्रवचनकाले च भगवद्गुणानुभवः प्रवर्तते परलोकेऽपि समग्रगुणयुक्तभगवद-नुभवो लभ्यते । श्रीभाष्यादिग्रन्थार्थानुसन्धानरूपस्य इह लोके

करने वाले विद्वान् भी अमृत रूपी आनन्दमय परब्रह्म का अनुभव करते हैं। अन्तर इतना ही है कि देवताओं के भोग्य अमृत अन्तवान हैं, इनका भोग्य अमृत अनन्त है। क्योंकि स्वर्गलोक में रहने वालों के विषय में कहा गया है कि—स्वर्ग में रहने वालों को भी भय रहता है कि कब मुझे यहाँ से गिरना होगा। इसलिये उनको सुख नहीं होता।" इसलिये सिद्ध होता है कि देवताओं का भोग्य अमृत नाशवान् है। परब्रह्म के विषय में वर्णन आया है कि 'न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते' अर्थात् परब्रह्म को प्राप्त करने वाला साधक ब्रह्मानन्द के अनुभव को छोड़कर इस संसार में लौटकर नहीं आता, उस ब्रह्मानन्द रूपी अमृत का पान इन लोगों को सर्वदा मिलता है। श्रुति कहती है "साधक यहीं जीवनकाल में ब्रह्म का अनुभव करता है।" श्रीभाष्यादि ग्रन्थों के अध्ययन करने वाले लोग श्रीभाष्य सुनते समय मनन करते समय प्रवचन करते समय भी सर्वदा श्रीभगवान् के कल्याण गुणों का अनुभव करते रहते हैं। शरीर छूटने के अनन्तर परमपद पहुँचकर

क्रियमाणस्य सुधास्वादस्य फलं तत्क्रतुन्यायेन परत्र भगवदनुभवरूपोऽमृतास्वाद इति श्रीभाष्यादिसूक्तीनां सर्वदाऽमृतास्वादकत्वं तदभ्यासिनां सर्वदाऽमृतास्वादरूपमहाफलसंपत्त्या धन्यता च सिद्ध्यति ॥५८॥

पूर्वश्लोके यतिवरफणितय इह परत्र चामृतमास्वादयन्तीति तत्प्रभाव उक्तः। अस्मिन् श्लोके तादृशश्रीसूक्त्यनधिकारिणां श्रीभाष्यकारचरणसम्बन्धमात्रेणापि कल्याणसिद्धिरवश्यं भाविनी सिंहसंचारवति देशे यथा क्षुद्रमृगा न संचरेयुः तथा श्रीभाष्यकार-

---

वहाँ निरन्तर भगवदनुभव करते ही रहते हैं। इस प्रकार श्रीभाष्यादि ग्रन्थ सुनते समय भी अमृत पान कराते हैं, अर्थ समझते समय मनन करते समय आवृत्ति करते समय भी इस लोक में अमृतपान कराते हैं। इस साधना के फलस्वरूप परलोक में अपार ब्रह्मानन्दामृत का पान कराते हैं। जैसी साधना होती है वैसा फल होता है यह नियम तत्क्रतुन्याय कहलाता है। यह न्याय यहाँ पर पूर्ण रूप में संगत होता है। इस लोक और परलोक में भी अमृत पिलाने वाले श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों का अभ्यास करने वाले वस्तुतः धन्य हैं ॥५८॥

चरणाधिष्ठिते देशेऽर्थकामप्रावण्यादिदोषा न संचरेयुः । अतं यतीन्द्रस्य पादयुगलमिह लोके गाढसम्बन्धेन वर्तताम् स्वसम्बन्धेः सर्वांश्चोत्तारयत्विति प्रार्थयते—

यतिक्षोणीभर्तुर्यदिदमनिदं भोगजनता-
शिरः श्रेणीजुष्टं तदिहदृढबन्धं प्रभवतु ।
अविद्यारण्यानीकुहरविहरन्मामकमनः
प्रमाद्यन्मातङ्गप्रथमनिगलं पादयुगलम् ॥५६॥

*"यतिक्षोणीभर्तुर्यदिदं पादयुगलमनिदं भोगजनताशिरः श्रेणीजुष्टम्" यतिक्षोणीभर्तुर्यतिराजस्य यदिदं पादयुगलं वर्तते,

---

प्रकार सिंह के संचार से युक्त देश में क्षुद्र मृग संचार नहीं कर सकते हैं। अतः प्रार्थना करता हूँ कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरण युगल इस लोक में दृढ़ता के साथ विराजमान रहें तथा अपने सम्बन्ध से सब का उद्धार करें। श्रीदेशिक जी इस श्लोक से इसी अर्थ को व्यक्त करते हुये कहते हैं—

यतिक्षोणीभर्तुर्यदिदं पादयुगलं—यतिराज के ये चरण कमल, *अनिदं भोगजनताशिरः श्रेणीजुष्टम्*—जिनको जनता लौकिक भोगों से विमुख होकर मस्तक पर धारण करती है, *अविद्यारण्यानीकुहरविहरन्मामकमनः*

तदपारमहिमशालि कथं ज्ञायत इति चेत् "अनिदं भोगजनता-शिरः श्रेणीजुष्टम्" न विद्यतेऽयं भोगो यस्याः सा अनिदं भोगा सांसारिकभोगविमुखेत्यर्थः । एवं भूता या जनता तस्याः शिरः श्रेण्या शिरः समूहेन जुष्टं सेवितम् । ऐहलौकिकभोगोऽयमिति सर्वेषां प्रत्यक्षसिद्धः । मोक्षानुभवस्तु परोक्षः । परोक्षानुभवार्थमैहिकभोगवैमुख्यमास्तिकजनानामेव संभवि । एवं भूतैरनन्यप्रयोजनैः परमैकान्तिभिः स्वीयं शिरः श्रीयतिवरचरणयोर्निधाय तच्चरणद्वन्द्वं सेव्यते अथवा स्वशिरसि निधाय तच्चरणद्वन्द्वं सेव्यते एवमनन्यप्रयोजनैः परमैकान्तिभिः वृन्दशः सेव्यमानत्वादेवेदं पादयुगलं त्रिवर्गप्रावण्यनाशकमिति सुग्रहम् । अयमेकः प्रभावः । अथ प्रभावान्तरम्—

जनता इह लौकिक भोग से विमुख होकर आत्मकल्याण के लिये इन चरणों को शिर से धारण करती हैं, अथवा इन चरणों में अपना मस्तक रखकर सेवा करती है। इस लोक में प्राप्त होने वाला भोग सबको प्रत्यक्ष है। मोक्ष में प्राप्त होने वाला सुखानुभव प्रत्यक्ष नहीं हैं, किन्तु परोक्ष हैं, शास्त्रों पर विश्वास करके *ही उसे मानना पड़ता है।* प्रत्यक्ष ऐहिक सुखानुभव में आसक्ति होना सहज है। परोक्ष मोक्ष सुख में आसक्ति रखकर प्रत्यक्ष ऐहिक भोग को ठुकराना सहज काम नहीं हैं। उच्च कोटि के आस्तिक सज्जन ही ऐसे कर सकते हैं। ऐसी लाखों संख्या में आस्तिक जनता ऐहिक भोग से विमुख होकर श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरण द्वन्द्व को उपाय और प्राप्य समझ कर शिर से धारण करती हैं तथा उन चरणों में अपने शिर को रखती हुई परिपूर्ण भाव से सेवा करती है। इसे देखने पर सब को विदित होगा कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरणारविन्द सब को संसारिक भोग से

*"अविद्यारण्यानीकुहरविहरन्मामकमनः प्रमाद्यन्मातङ्गप्रथमनिगलं पादयुगलम्" इति। यथा निगलं मत्तगजं विनीतं करोति। तथा श्रीभाष्यकारचरणयुगलं स्वसम्बन्धेन मामकं मनो विनीतं करोति। मत्तगजस्य दुष्टमनसश्च बहुधा सादृश्यं वर्तते। तथाहि—मत्तगजोऽरण्यान्यां महारण्ये विहरति विनीत गज एव नगर्यां विहर्तुमधिकरोति। तथा दुष्टं मनोऽविद्यायां विहरति विनीतं हि मनो विद्यायां विहर्तुमधिकरोति। मत्तो गजः पादाघातेन भूमिं मर्दयति पक्षिणस्त्रासयति, सरांसि पङ्किलानि करोति गण्डकषणेन शाखिनः क्षतान् आपादयति एवं दुर्वचानु-

---

विमुख कराकर मोक्षानन्द को प्राप्त करने के लिये प्रेरित करते हैं। श्रीचरणों का यह एक प्रभाव है। दूसरा प्रभाव भी है, वह इस प्रकार है कि—

"अविद्यारण्यानीकुहरविहरन्मामकमनः प्रमाद्यन्मातङ्गप्रथमनिगलं पादयुगलम्" जिस प्रकार शृङ्खला का बन्धन मदोन्मत्त गज को विनय युक्त बना देता है, वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरण सम्बन्ध मदोन्मत्त मेरे मन को तथा दूसरों के मन को भी विनय युक्त बना देता है। हम लोगों के दुष्टमन और उन्मत्त गज में अत्यन्त समता है। इसलिये हम लोगों के दुष्ट मन को एक प्रकार से उन्मत्त गज कहा जा सकता है। (१) उन्मत्त गज घनघोर अरण्य के मध्य में संचार

यच्छायया कर्कशसूर्यकिरणेभ्यस्त्रातोऽभूत् धानुष्कैर्गजहननार्थं वाणेषु प्रयुज्यमानेषु सत्सु यैर्वृक्षैः कवचीभूयरक्षाऽकारि तानेव पादपानयमुत्पाटयन् विहरति। तथैव मत्तेन मनसोपकर्तृणां मातापितृभ्रातृबन्धुसुहृद्गुरुसत्पुरुषदेवतादिविषये यो योऽपराधः कृतः स प्रत्यात्मवेदनीयो गणयितुं न शक्यते। मत्तगजो दानार्थिनो भ्रमरान् कर्णतालैर्दूरीकरोति तेनास्यैव कपोलयुगलभूषणहानिः भ्रमरास्तु अन्यत्र कमलादिषु गत्वा मधु निपीय तृप्तां

नूतन कोमल पत्तों को करोड़ों की संख्या में खाकर पर्वत के समान मोटा हो गया, ग्रीष्म ऋतु में जिन वृक्षों की छाया में रह कर श्रम परिहार किया, गज को मारने के उद्देश्य से धनुर्धर शिकारियों के द्वारा प्रयुक्त बाण उपस्थित होने पर जिन वृक्षों ने कवच बनकर हाथी की रक्षा की उन वृक्षों को भी उखाड़ कर फेंकने में उन्मत्त गज नहीं हिचकता, वैसे ही हमारे यह दुष्ट मन ने नाना प्रकार उपकार करने वाले माता पिता भ्राता बन्धु मित्र गुरु देवता श्रीभगवान और भागवत इत्यादियों के विषय में जो जो अपराध किया, वह वाणी से नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक मनुष्य इस को स्वयं जानता है। इससे सिद्ध होता है कि इस दुष्ट मन से बढ़कर दूसरा कोई कृतघ्न संसार में नहीं है।

(५) संस्कृत भाषा में मत्त हाथी के कपोल से बहने वाले मद जल को दान कहते हैं, उस मद जल को पीने के लिये भ्रमर हाथी के कपोल पर आकर बैठते हैं, हाथी व्यर्थ बहने वाले मद जल रूपी दान के इच्छुक उन भ्रमरों को कानों से मार २ कर भगा देता है यह नहीं समझता है कि इन को मार कर भगाने से हमारे कपोलों की शोभा घट जायेगी क्योंकि ये भ्रमर कपोलों में बैठ कर कपोलों को नील रत्नजटित बना रहे हैं भगाये हुये भ्रमर तो कमलों में पहुँच कर मधुपान से

शमयिष्यन्ति । तथैव मत्तं मनः स्वः सुकृतिनं कर्तुं ये सत्पुरुषा यत्किंचिदर्थंजिघृक्षयाऽऽसीदन्ति तान् कटुभाषणैस्तिरस्करोति, तेन सत्पुरुषसंसर्गाभावादस्यैव हानिः सत्पुरुषास्त्वन्यत्रगत्वा-मनोरथं पूरयिष्यन्ति । मत्तो गजः पङ्कमग्न उज्जिगमिषया तीरस्थ-वृक्षानवलम्बमानस्तेषु समूलं पतत्सु उद्धारकाभावादत्यन्तमव-सीदति तथैव संसारमग्नं मत्तं मनस्संसारादुत्तरणार्थं यान् यानल्पसत्वानाश्रयति तेषु 'शिष्यपापं गुरोरपीति' न्यायेन पतत्सु

अपनी तृषा को बुझा सकते हैं। वैसे ही यह दुष्ट मन भी करता है। सत्पुरुष लोग इस दुष्ट मन को धर्मात्मा बनाने के लिये इससे यदि कुछ दान के रूप में ले जाना चाहते हैं तो यह दुष्ट मन कपोल कल्पित नाना प्रकार के कटु वचनों को सुना कर उनको भगा देता है। यह नहीं समझता है कि इससे हमारी ही हानि होगी क्यों कि हम सुपात्र में कुछ भी न दे सकेंगे, इन लोगों का तो अन्यत्र भी निर्वाह हो जायगा। (६) मदोन्मत्त गज जब भयंकर दलदल में फंस जाता है निकल नहीं पाता है, तब तीरस्थ अनेक वृक्षों को पकड़ कर उनकी सहायता से निकलना चाहता है, किंतु तीरस्थ वे वृक्ष दुर्बल होने के कारण उखड़ २ कर गिरते हैं, इस महाकाय गज का उद्धार करने वाला इससे भी बलिष्ठ प्राणी मिलता नहीं है, अन्त में पङ्क में फसे हुये गज को अनेक प्रकार की यातनायें भोगनी पड़ती हैं। वैसे ही यह दुष्ट मन जब संसार में कण्ठ पर्यन्त फंस जाता है, नाना प्रकार के सांसारिक क्लेशों को भोगता है तब संसार से उद्धार पाने के लिये लालायित होता है, उस समय जिन २ दुर्बल गुरुओं का आश्रय लेता है, अल्प सत्व गुण वाले दुर्बल वे गुरु भी "शिष्य पापं गुरोरपि" अर्थात् शिष्य का पाप गुरु को लगता है इस लोकोक्ति के अनुसार न केवल

सत्सु उद्धारकाभावादत्यन्तमवसीदति । नदीस्नानेन निर्मलः संपन्नोऽपि मत्तगजस्तीरमेत्यात्मानं धूलिधूसरितं करोति तथैव सत्सङ्गेन निर्मलमपि मत्तं मनः पश्चादात्मानं वासनारेणुधूसरितं करोति । मत्तो गजो गले तीव्रे पाशे क्लेशयति सति चरण-युगले दृढनिगडे संचारं रुन्धति सति शिरसि तीक्ष्णांकुशे प्रहरति सति उत्तमाङ्गं मनुष्ये आरूढे सति मरणयोग्यायामप्यस्याम-वस्थायां मदं न मुञ्चति । तथैव मत्तं मनः संसारे आधिदैविकै-राध्यात्मिकैराधिभौतिकैश्च त्रिविधैस्सन्ततानुवृत्तैर्दुर्विषहैस्तापैः

इस दुष्ट मन का उद्धार करने में असमर्थ रह जाते हैं किन्तु इसके पापों से दब कर गिर जाते हैं, इस महापापी मन का उद्धार करने में समर्थ कोई प्रबल मन वाला सज्जन इसको मिलता नहीं, अतः इस दुष्ट मन को संसार में नाना प्रकार की यातनायें भोगनी पड़ती है। (७) मदोन्मत्त गज नदी में स्नान कर निर्मल हो जाता है। परन्तु तीर में पहुँचते ही अपने ऊपर धूलि झोंक कर अपने को मलिन कर देता है। वैसे ही दुष्ट मन सत्सङ्ग रूपी नदी में अवगाहन कर निर्मल बना हुआ भी सत्सङ्ग से उठते ही नाना प्रकार के विषयों के चिन्तन में डूब अपने को दुर्वासनाओं से मलिन कर देता है। (८) उन्मत्त गज के गले में कसी हुई मोटी रस्सी बहुत कष्ट देती है, चरणों में पड़ी हुई शृङ्खला चलने नहीं देती है शिर में तीक्ष्ण अंकुश का प्रहार पड़ता रहता है, उत्तमाङ्ग शिर में मनुष्य चढ़ कर लटकते हुये दोनों चरणों से मारता ही रहता है, ऐसी स्थिति में हाथी को मर जाना कहीं अच्छा था, उस समय में भी मरना तो दूर, मद को छोड़ने के लिये भी तैयार नहीं होता, सोचना चाहिये कि उसमें कितना मद कूट २ भरा है। वैसे ही यह दुष्ट मन संसार में धारा प्रवाह से होने वाले दुःसह तापत्रय से

प्रतिक्षणं पीड्यमानमपि मदं न मुञ्चति। मत्तो गजः पितरं विन्ध्यगिरिं मातरं नर्मदां सुहृदः कलभांश्च परित्यज्य करिणी-मनुसरन् हस्तिपकैर्गर्ते निपात्य वशीकृतः शिरसि कठोरांकुशैः प्रह्रियते करिणीं नासादयितुं प्रभवति। तथैव मत्तं मनः माता-पितरौ श्रीलक्ष्मीनारायणौ सुहृदो भागवतांश्च हित्वा विषयानु-बुभूषया विषयाननुसरत् पापैः शरीरगर्ते निपात्य दुःखांकुशैः प्रह्रियते विषयांस्तु नासादयितुं प्रभवति। मत्तो गजस्तडागेऽव-तीर्य क्रीडामपि सम्यक् न कृतवान् मल्लकीकिसलयानपि न भक्षितवान् कान्तां करिणीमपि नाश्लिष्टवान् एषु मनोरथेष्वनुवर्त-

---

प्रतिक्षण सताये जाने पर भी मद को छोड़ना नहीं है। (६) विन्ध्य पर्वत के वनों में गज अधिक उत्पन्न होते हैं नर्मदा के जल को पीकर वहाँ के गज बहुत स्थूल हो जाते हैं, विन्ध्य पर्वत एक प्रकार से उनका पिता है नर्मदा माता है। वहाँ के मदोन्मत्त गज पिता विन्ध्य पर्वत माता नर्मदा मित्र अन्यान्य गजों को भी छोड़कर हाथियों को पकड़ने के लिये छोड़ी गई हथिनी में आसक्त होकर कामवासना से उसके पीछे चलता हुआ अन्त में गहरे विस्तीर्ण गर्त में गिर जाता है, पकड़ने वाले लोग उसे पकड़ लेते हैं भूखा रखते हैं, शृंखलाओं से बाँधते हैं, अंकुशों से मारते हैं, फिर हथिनी का दर्शन तो होता ही नहीं। वैसे ही यह दुष्ट मन माता श्रीमहालक्ष्मी जी पिता श्रीमन्नारायण भगवान्

मानेषु सत्स्वेव तं दंष्ट्राकरालवदनः सिंहो निहन्तुमासीदति। तथैव यथामनोरथं विषयभोगात् प्रागेवेदं मत्तं मनो मृत्युरेत्य विनाशयति। मत्तो गजः अयं न मेषादिवदूर्णां ददाति, नापि धेनुवद्दोहस्ययोग्यः नाप्यश्ववद्वाहस्य योग्यः अस्य महोदरस्य घासैः पलालैरपिरुदरदरीपूर्तिर्दुःसंपादा अस्य पृष्ठे गोण्यपि समारोपयितुं न शक्यते निरर्थकोऽयं स्थूलकायः प्राणी किमर्थं ब्रह्मणा सृष्ट इति लोकेन परिहस्यते। तथैव मत्तं मनोऽपि नानेन दुःखिनां दुःखापनोदः क्रियते नापि ऐहिकं सत्कर्म क्रियते नामुष्मिकं सुकृतं विधीयते न भगवद्भागवतसेवा क्रियते

फलों को खाया नहीं, हथिनी को छू तक नहीं पाया, इतने में उस गज का संहार करने के लिये भयंकर दंष्ट्रा वाला सिंह समक्ष उपस्थित होता है, उसे देखते ही इसके प्राण निकलने लगते हैं। वैसा ही यह दुष्ट मन भी पूर्ण रूप से विषयों का अनुभव नहीं पा रहा है इतने में इसके समक्ष मृत्यु आ जाती है उसे देखते ही इसके प्राण निकलने लगते हैं। (१०) मत्तगज को देखकर लोग उपहास करते हुये कहते हैं कि यह अत्यन्त अनुपयोगी प्राणी है क्योंकि यह भेड़ की तरह ऊन नहीं देता, यह न गौ की तरह दुहने योग्य है, न घोड़े की तरह वाहन बनने योग्य है, घास पूलों से इसके इस महान् उदर को भरना ही असंभव है, इसके पीठ पर भार चढ़ाना भी अशक्य है, इस स्थूलकाय प्राणी को किस प्रयोजन के लिये ब्रह्मा जी ने सृजन किया। इस प्रकार मत्तगज का संसार में उपहास होता है। वैसे ही दुष्ट मन के विषय में भी विज्ञ लोग उपहास करते हुये कहते हैं कि इस दुष्ट मन ने किसी दुःखी की सेवा नहीं की, इस लोक में फल देने वाले किसी पुण्य को नहीं किया, परलोक के लिये भी यज्ञयाग इत्यादि पुण्य नहीं किया, श्रीभगवान्

प्रतिक्षणं शिक्षमाणमपि मदं न मुञ्चति। मत्तो गजः पितरं विन्ध्यगिरिं मातरं नर्मदां सुहृदः कलभांश्च परित्यज्य करिणी-मनुसरन् हस्तिपकैर्गर्ते निपात्य वशीकृतः शिरसि कठोरांकुशैः प्रहियते करिणीं नामादायिनं प्रभवति। तथैव मत्तं मनः माता-पितरौ श्रीजनकीनारायणौ सुहृदो भागवतांश्च हित्वा विषयानु-वृष्णया विषयाननुसरन् पापैः शुरगर्ते निपात्य दुःखांकुशैः प्रहियते विषयांस्तु नामादायिनं प्रभवति। मत्तो गजस्तडागेऽव-तीर्य क्रीडामपि सम्यक् न कृतवान् मञ्जुकोकिमलयानपि न भक्षितवान् कान्तां करिणीमपि नाश्लिष्टवान् एवं मनोऽपेष्वनुवर्त-

प्रतिक्षण मनाये जाने पर भी मद को छोड़ना नहीं है। (८) विन्ध्य

मानेषु सत्स्वेव तं दंष्ट्राकरालवदनः सिंहो निहन्तुमासीदति। तथैव यथामनोरथं विषयभोगात् प्रागेवेदं मत्तं मनो मृत्युरेत्य विनाशयति। मत्तो गजः अयं न मेषादिवदूर्णां ददाति, नापि धेनुवद्दोहस्ययोग्यः नाप्यश्ववद्वाहस्य योग्यः अस्य महोदरस्य घासैः पलालैरपिस्वदरदरीपूर्तिर्दुःसंपादा अस्य पृष्ठे गोण्यपि समारोपयितुं न शक्यते निरर्थकोऽयं स्थूलकायः प्राणी किमर्थं ब्रह्मणा सृष्ट इति लोकेन परिहस्यते। तथैव मत्तं मनोऽपि नानेन दुःखिनां दुःखापनोदः क्रियते नापि ऐहिकं सत्कर्म क्रियते नामुष्मिकं सुकृतं विधीयते न भगवद्भागवतसेवा क्रियते

फलों को खाया नहीं, हथिनी को छू तक नहीं पाया, इतने में उस गज का संहार करने के लिये भयंकर दंष्ट्रा वाला सिंह समक्ष उपस्थित होता है, उसे देखते ही इसके प्राण निकलने लगते हैं। वैसा ही यह दुष्ट मन भी पूर्ण रूप से विषयों का अनुभव नहीं पा रहा है इतने में इसके समक्ष मृत्यु आ जाती है उसे देखते ही इसके प्राण निकलने लगते हैं। (१७) मत्तगज को देखकर लोग उपहास करते हुये कहते हैं कि यह अत्यन्त अनुपयोगी प्राणी है क्योंकि यह भेड़ की तरह ऊन नहीं देता, यह न गौ की तरह दुहने योग्य है, न घोड़े की तरह वाहन बनने योग्य है, घास पूलों से इसके इस महान उदर को भरना ही असंभव है, इसके पीठ पर भार चढ़ाना भी अशक्य है, इस स्थूलकाय प्राणी को किस प्रयोजन के लिये ब्रह्मा जी ने सृजन किया। इस प्रकार मत्तगज का संसार में उपहास होता है। वैसे ही दुष्ट मन के विषय में भी विज्ञ लोग उपहास करते हुये कहते हैं कि इस दुष्ट मन ने किसी दुःखी की सेवा नहीं की, इस लोक में फल देने वाले किसी पुण्य को नहीं किया, परलोक के लिये भी यज्ञयाग इत्यादि पुण्य नहीं किया, श्रीभगवान्

न देवता आराध्यन्ते न श्रीभगवानुपास्यते न शमदमादयो गुणा अर्ज्यन्ते, अस्य महोदरस्य प्रभूतविषयभोगैरपि तृप्तिर्दुःसंपादा अस्योपरि केनापि शासनं दुष्करम् अस्य विनयनमसंभवि सर्वथा निरर्थकमिदं वस्तु ब्रह्मणा किमर्थं सृष्टमिति सद्भिः परिहस्यते। तदेवं मत्तं मनो मत्तेन हस्तिना सह बहुविधं साधर्म्यं बिभर्ति। अरण्ये स्वच्छन्दं विहरतो निरंकुशस्य गजस्य निगलेन बन्धनं दुष्करम्। एवमविद्यायां स्वच्छन्दं विहरतो मन्मनसोऽपि बन्धनं दुष्करम्। यथा स मत्तगजोऽपि कदाचित् सुदृढेन निगडेन बध्यते तथा मदीयं मनोऽपि श्रीयतिराजस्य चरणयुगलेन निगलेन बद्धम्। यथा स मत्तगजः प्रथमतः सुदृढनिगडेन बद्धः परस्तात् रज्जुभिरितरनिगडैश्च बद्धो भवति तथा मदीयं मनः

और भागवतों की सेवा नहीं की, न सत्कथा कालक्षेप सुना, न शमदम इत्यादि आत्मगुणों को प्राप्त किया, इसका उदर इतना बड़ा है कि संसार के सम्पूर्ण विषयों को भोगने पर भी नहीं भरेगा, इसके ऊपर आस्तिकता चढ़ाना भी अशक्य है, परमात्मा ने किस प्रयोजन के लिये इस दुष्ट मन की सृष्टि की। किंबहुना। इस निरूपण से सिद्ध होता है दुष्ट मन और मत्तगज में अत्यन्त समता है। अस्तु। अरण्य में स्वच्छन्द घूमने वाले हाथी को शृंखला बांधना क्लेश साध्य है, वैसे ही इस माया रूपी संसार में स्वच्छन्द घूमने वाले मन को बांध रखना क्लेश साध्य है। ऐसा होने पर भी वह मत्तगज भी कभी सुदृढ़ शृंखला से बँध जाता है, वैसे ही हमारे दुष्ट मन भी श्रीरामानुज स्वामी जी के चरण द्वन्द्व रूपी शृंखला से सर्व प्रथम बँध गया है। मत्तगज सुदृढ़ शृंखला से बँध जाने के बाद ही नाना प्रकार की रस्सी और छोटी मोटी शृंखलाओं से बाँधा जा सकता है। वैसे ही यह मन भी

प्रथमतः सुदृढेन श्रीयतिराजचरणनिगडेन बद्धं सत् पश्चात् तदीय-श्रीसूक्तिकालक्षेपेण मदे विनष्टे परित्यक्तदुर्मतानुधावनं श्रीभगवत्पादसमाश्रयणादिभिः सम्यग्निबद्धं भवति। इत्थं दुर्निग्रहमन्मनोनिग्राहकयोः श्रीभाष्यकारचरणयोरितरमनोवशीकरणं न दुष्करम्।

*"तदिहदृढबन्धं प्रभवतु" तच्चरणयुगलं इह मन्मनोविषये दृढबन्धं सत्प्रभवतु सर्वाधिकारं करोतु, तदैव मन्मनसो मम च कल्याणसिद्धिः। आचार्यसम्बन्धरूपे मङ्गलसूत्रे सति अन्यानि ज्ञानभक्तिवैराग्यादीनि मनःप्रसाधनान्युत्तरकालेऽपि सुसंपादानि

श्रीरामानुज स्वामी जी के श्रीचरण रूपी शृंखला से बँध जाने के बाद ही भगवत्समाश्रयण इत्यादि उपायों से बांधा जा सकता है क्योंकि यह दुष्ट मन श्रीभाष्यकार स्वामी जी के श्रीचरण रूपी शृंखला से बँध जाता है, उसके अनन्तर श्रीभाष्यकार स्वामी जी की श्रीसूक्तियों का कालक्षेप करने पर इसका मद उतर जाता है दुष्टमतों में घूमने की इच्छा नहीं होती है, तब जाकर श्रीभगवत्समाश्रयण इत्यादि साधनों से बांधा जाता है। इस प्रकार जब श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरण युगल ने जब हमारे दुर्दान्त मन को भी बांध रक्खा है, तब अन्यान्य मनों को वश में रखना इनके लिये दुष्कर नहीं है। यह श्रीचरणों का दूसरा प्रभाव है। ये श्रीचरण ही दुष्ट मन को बांधकर सुशिक्षित बना सकते हैं।

"तदिहदृढबन्धं प्रभवतु" चरणद्वन्द्व से प्रार्थना है कि वह हमारे मन के विषय में अपने बन्धन को दृढ़ रक्खे तथा हमारे मन पर सर्वाधिकार करे, तभी हमारे मन और हम कल्याण को प्राप्त कर सकेंगे। क्योंकि आचार्य चरण के साथ सम्बन्ध मङ्गलसूत्र के समान है, मंगलसूत्र स्थिर

आचार्यसम्बन्धरूपे मङ्गलसूत्रे त्रुटिते आर्जितानि अन्यानि मनः-प्रसाधनानि विधवालङ्कारवदवद्यावहानिस्युः। यथा सुदृढे प्रथम-निगले छिन्नेऽन्यानि रज्ज्वादीनि निगलानि न मत्तं गजं बद्धुं प्रभवन्ति, तथाऽऽचार्यसम्बन्धे छिन्नेऽन्यानि साधनानि न मनो निर्मलयितुमीशते। अतः श्रीभाष्यकारस्य चरणयुगलं मन्मनसि दृढबन्धं सत्प्रभवत्विति प्रार्थये। नैतावदेव किंतु तत् श्रीभाष्य-कारस्य पादयुगलमिह लोके दृढबन्धं सत् अन्येषामप्युद्धाराय-प्रभवत्विति प्रार्थये। यथा "यावत्सपादपद्माभ्यां पस्पर्शेमां वसुन्धराम्। तावत् पृथ्वीपरिष्वङ्गे समर्थो नाभवत् कलिः॥"

रहने पर कालान्तर में अपेक्षित भूषण बनाकर धारण किये जा सकते, हैं, मंगलसूत्र टूट जाने पर जो कुछ भूषण धारण किये जायेंगे, वे विधवा का अलंकार समझे जायेंगे उससे बदनामी होगी। वैसे ही श्रीसदाचार्य चरण के साथ सम्बन्ध बने रहने पर ज्ञान भक्ति और वैराग्य इत्यादि गुण प्राप्त किये जा सकते हैं। आचार्य चरण के सम्बन्ध के टूटने पर विद्यमान ज्ञान भक्ति और वैराग्य विधवालंकार के समान बन जायेंगे, उनसे बदनामी हो बढ़ेगी। जिस प्रकार हाथी को बाँधने वाली सुदृढ़ प्रथम शृंखला टूट जाय तो अन्यान्य रस्सी इत्यादि बन्धन हाथी को नहीं बाँध सकते, वैसे ही आचार्य सम्बन्ध टूटने पर अन्यान्य साधन मन पर निमन्त्रण नहीं कर सकते। इसलिये मैं प्रार्थना करता हूँ कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी का श्रीचरण हमारे मन पर अपने बन्धन को दृढ़ करें तथा हमारे मन पर सर्वाधिकार करें। इतना ही नहीं। यह भी प्रार्थना करता हूँ कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी का चरण द्वन्द्व इस लोक में दृढ़ रूप में विराजमान रहें जिससे दूसरों का भी उद्धार होगा। श्रीकृष्ण भगवान् के विषय में कहा गया है कि जबतक श्रीकृष्ण

इत्युक्तरीत्या श्रीभगवच्चरणसम्बद्धे भूलोके कलेः प्रसरो नाभूत, तथा "यत्राष्टाक्षरसंसिद्धो महाभागो महीयते। न तत्र संचरिष्यन्ति व्याधिदुर्भिक्षतस्कराः॥" इत्युक्तरीत्याऽष्टाक्षरसंसिद्धश्रीभाष्यकार-दिव्यचरणसम्बन्धपूते भूतले "रागादिदोषान् सततानुपक्तान् अशेषकायप्रसृतानशेषान्। औत्सुक्यमोहारतिदान् जघान योऽपूर्ववैद्याय नमोऽस्तुतस्मै॥" इत्यायुर्वेदविद्भिः प्रधानव्याधि-त्वेनपरिगणिता रागादिदोषाः "सा हि श्रीरमृता सताम्" इति सतां श्रीत्वेन वर्णितायाः ज्ञानसंपत्तेस्संकोचरूपं दौर्भिक्ष्यं बाह्यतस्करदुस्साधात्मापहारादिमहाचौर्यकारिणोऽहं — कारादयो

भगवान अपने चरण कमलों से भूमिका स्पर्श करते हुये विराजमान थे, तब तक कलिभूमि को छू न सका। वैसे ही अष्टाक्षर महामन्त्र से सिद्धि को प्राप्त हुये महापुरुषों के विषय में वर्णन आता है कि अष्टाक्षर महामन्त्र की सिद्धि को प्राप्त हुये महापुरुष जिस देश में पूजित होंगे उस देश में व्याधि दुर्भिक्ष और चोरों का संचार नहीं होगा। इस श्लोक में विवक्षित व्याधि दुर्भिक्ष और चोर विलक्षण हैं, लोक प्रसिद्ध व्याधि दुर्भिक्ष और चोर नहीं हैं। काम क्रोध और लोभ भयंकर व्याधि हैं। आयुर्वेद के विद्वानों ने भी इनको भयंकर व्याधि माना है। जहाँ पर अष्टाक्षर सिद्धि सम्पन्न महात्मा रहेंगे वहाँ काम क्रोध और लोभ इत्यादि व्याधि न होगी। तत्वज्ञान ही बड़ी सम्पत्ति है, तत्वज्ञान का न होना ही दुर्भिक्ष है। यह दुर्भिक्ष भी वहाँ न रहेगा जहाँ अष्टाक्षर सिद्धि सम्पन्न महात्मा विराजमान हों। अहंकार बड़ा चोर है क्योंकि वह श्रीभगवान के वस्तु जीवात्मा को अपना बना लेता है, क्योंकि अहंकारी मनुष्य यही समझता है कि मैं मेरा हूँ, मैं श्रीभगवान् का नहीं हूँ। यह अहंकार इत्यादि चोर भी उस देश में

महातस्कराश्च न संचरेयुरिति श्रीभाष्यकारस्य दिव्यौ चरणौ इह लीलाविभूतौ दृढबन्धौ सर्वेषामुद्धारार्थं प्रभवतामिति प्रार्थये ॥५६॥

पूर्वश्लोके उक्तं यच्छ्रीभाष्यकारस्य चरणसम्बन्धेन लोकस्य मनोजयो भवतीति। तत्र मनसि जितेऽपि मुक्तिः कथं सिद्ध्येत ? महापापिषु अस्मासु श्रीभाष्यकारस्य दया कथं प्रवहेदित्यत्र दृप्तेऽनम्रे मय्यपि श्रीभाष्यकृतो दयारूपा गङ्गा प्रवहति, अन्येषु प्रवहेदिति किमुवाच्यमित्युत्तरमभिप्रयन्नाह—

नहीं रहेंगे जहाँ अष्टाक्षर सिद्धि सम्पन्न महापुरुष रहते हों। श्रीभाष्य-कार स्वामी जी से बढ़कर अष्टाक्षर सिद्धि सम्पन्न कोई महापुरुष नहीं है। अतः इन सब दोषों को भगाकर जीवों का उद्धार करने के लिये प्रार्थना करता हूँ कि श्रीभाष्यकार स्वामीजी का श्रीचरण द्वन्द्व इस लीला-विभूति में दृढ़ता के साथ विराजमान रहकर सब लोगों के साथ अपने सम्बन्ध को दृढ़कर सब पर शासन करें, सब पर सर्वाधिकार करें ॥५६॥

पूर्व श्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी ने कहा कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरण सम्बन्ध से लोगों का मनोजय होता है। यहाँ पर यह शङ्का होती है कि मन को जीतने से ही मुक्ति कैसे प्राप्त होगी। मैं महा पापी हूँ, मेरे ऊपर श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कृपा कैसे प्रवाहित होगी ? धर्मात्मा ही तो श्रीभाष्यकार स्वामी जी के कृपापात्र हो सकते हैं। इस शङ्का का समाधान करते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि दृप्त मेरे ऊपर भी जब श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कृपा प्रवाहित होती है, तब दूसरों के लिये क्या कहना है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कृपा अभिमुख सब चेतनों पर अवश्य प्रवाहित होती है। इस उत्तर को व्यक्त करते हुये कहते हैं—

सवित्री मुक्तानां सकलजगदेनः प्रशमनी
गरीयोभिस्तीर्थैरुपचितरसा यामुनमुखैः ।
दुरुच्छेदा निम्नेतरमपि समाप्लावयति मां
यदृच्छाविक्षेपाद्यतिपतिदयादिव्यतटिनी ॥६०॥

*"यतिपतिदयादिव्यतटिनी" श्रीभाष्यकारस्य दया नदी-तुल्या न सामान्यनदीतुल्या, किंतु दिव्यतटिन्या गङ्गयाः तुल्या गङ्गाया यतिपतिदयायाश्चास्ति बहुधा साधर्म्यम् । तथाहि— गङ्गायाः सर्वोऽपि महिमा श्रीभगवत्सम्बन्धाधीनः श्रीभाष्यकार-दयायाः सर्वोऽपि महिमा श्रीभगवत्सम्बन्धाधीनः श्रीभगवच्चरणाद्

मुक्तानां सवित्री—जो साधकों को मुक्त करने वाली है, *सकलजगदेनः प्रशमनी*—सम्पूर्ण जगत के पापों को नष्ट करने वाली है, *गरीयोभिः यामुनमुखैः तीर्थैः उपचितरसा*—यामुनाचार्य आदि आचार्यों के कारण जिसका रस बढ़ गया है, *दुरुच्छेदा*—जो अविच्छिन्न है, *यतिपतिदया-दिव्यतटिनी*—ऐसी यतिराज की दया रूपिणी गंगा, *निम्नेतरमपि मां यदृच्छाविक्षेपात् समाप्लावयति*—मुझ उद्धत अहंकारी का भी उद्धार करती है।

"यतिपतिदयादिव्यतटिनी"—श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कृपा नदी के समान है, सामान्य नदी के समान नहीं, किन्तु दिव्य नदी गङ्गा के समान है। श्रीभाष्यकार स्वामी जी की दया और गङ्गा में अत्यन्त साम्य है। (१) गङ्गा की संपूर्ण महिमा का मूल कारण श्रीभगवान का सम्बन्ध है। वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कृपा की संपूर्ण महिमा का भी मूल कारण श्रीभगवान का सम्बन्ध है, क्योंकि श्रीरामानुज स्वामी जी श्रीभगवान् के अत्यन्त अन्तरङ्ग कृपापात्र हैं,

गङ्गोद्भवति, श्रीभगवत्सङ्कल्पानुसारेण श्रीभाष्यकारस्य दयोद् भवति। ब्रह्मणा कमण्डलुजलेन श्रीत्रिविक्रमस्य भगवतश्चरणे प्रक्षाल्यमाने श्रीभगवतो वामपदांगुष्ठान्निःसृता सर्वज्ञेन शिवेन शिरसा ध्रियमाणा गङ्गा त्रिमूर्तिषु भगवतः पारम्यमन्ययोरवरत्वं

इसलिये इनकी कृपा का इतना प्रभाव हुआ। (२) गङ्गा श्रीभगवान् के श्रीचरण से प्रकट हुई हैं, श्रीभाष्यकार स्वामी जी की भी कृपा श्रीभगवान् के संकल्प के अनुसार प्रवृत्त होती है। (३) गङ्गा तीनों लोकों में प्रवाहित होती है श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कृपा भी तीनों लोकों में रहने वाले जीवों पर प्रवाहित होती है। (४) गङ्गा परदेवता के विषय में निश्चय कराती है क्योंकि बड़े २ विद्वान भी ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीनों मूर्तियों में निर्णय नहीं कर पाते हैं कि इनमें कौन परदेवता है ? तीनों लोकों में प्रवाहित होती हुई गङ्गा तीनों लोकों में रहने वाले सभी जीवों को इस प्रकार बोधित करती है कि श्रीविष्णु भगवान् ही परदेवता हैं ब्रह्मा और महेश उनसे निम्न कोटि के देवता हैं क्योंकि त्रिविक्रम अवतार में जब श्रीभगवान का श्रीचरण सत्य लोक में पहुँचा तब ब्रह्मा जी ने कमण्डलु के जल से उस श्रीचरण को धोया, श्रीशङ्कर जी ने उसे चरणामृत मान कर शिर से धारण किया, मैं ही वह चरणामृत हूँ, गङ्गा कहलाती हूँ। आप लोग जिन तीनों देवों में तारतम्य को समझने में असमर्थ होते हैं उन तीनों देवों में एक देव चरण पसारते हैं, दूसरे देव उस चरण को पाद्यजल से धोते हैं, तीसरे देव उस पाद्यजल को मस्तक में रखते हैं, इन तीनों में कौन बड़े होंगे, इसे सब कोई अनायास समझ सकते हैं। भाव यह है कि इन तीनों देवों में श्रीभगवान् ही बड़े हैं, वे ही परदेवता हैं, सब लोगों का चरण नख का जल अपवित्र होता है मैं अर्थात् गङ्गा श्रीभगवान

च प्रस्फुटं ज्ञापयति तथैव श्रीभाष्यकारस्य कृपापि जनेषु प्रसरन्ती सर्वप्रथमं परत्वेन गृह्यमाणेषु त्रिषु देवेषु भगवतः पारम्यमन्ययोरवरत्वं च सर्वप्रथमं ज्ञापयति।

तथा ०"सवित्री मुक्तानाम्" गङ्गा स्वमवगाहमानान् मुक्तान् करोति गङ्गास्नानस्य मुक्तिहेतुत्वात्। अथवा गङ्गा समुद्रगामिनी महानदीति समुद्रवत् शुक्तिषु मुक्ताउत्पादयति तथैव श्रीभाष्य-

---

के वाम चरण के अंगुष्ठ से निकला हुआ जल हूँ, मैं तीनों लोकों को पवित्र करती रहती हूँ, मुझ में इतना सामर्थ्य श्रीभगवान् के चरण सम्बन्ध के कारण उत्पन्न हुआ, जिनके चरण नख से निकले हुये जल का इतना प्रभाव है, उनका प्रभाव कितना होना चाहिये? सर्वोत्तम होना चाहिये। ऐसे अत्युत्तम प्रभाव से सम्पन्न देवता कौन है? श्रीविष्णु भगवान् ही है। अतः श्रीविष्णु भगवान् को पर देवता मानकर उपासना करने वाले लोगों को इस लोक में भोग परलोक में मोक्ष अवश्य प्राप्त होगा, क्योंकि वे मुकुन्द हैं अर्थात् भोग मोक्ष देने वाले हैं इस प्रकार श्रीगङ्गा परतत्वज्ञान को उत्पन्न करती है वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कृपा भी सर्वप्रथम कृपापात्र जिज्ञासु श्रीवैष्णवों में इस परतत्वज्ञान को उत्पन्न करती है कि श्रीभगवान् ही परतत्व है ब्रह्मा रुद्र इत्यादि सभी देवता उनसे निकृष्ट हैं।

"सवित्री मुक्तानाम्"—गंगा नदी मुक्तों को उत्पन्न करती हैं क्योंकि गंगा में स्नान करने वाले मुक्त हो जाते हैं, ऐसा शास्त्रों में वर्णन है। अथवा संस्कृत भाषा में मोती को मुक्ता कहते हैं। गंगा समुद्र तक पहुँचने वाली महानदी है। अतः इसमें शुक्तियाँ आ जाती हैं, इसलिये इसमें मोतियों का उत्पन्न होना संभावित है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है। कि गंगा मुक्ताओं को अर्थात् मोतियों को उत्पन्न करती है।

कारस्य दयापि स्वमवगाहमानान् मुक्तानापादयन्ती मुक्ताना-मुत्पादिका भवति, यथा सर्वप्रथमं जननी पुत्रानुत्पादयति, अनन्तरमेव बन्धवः शिशुनुपलालयन्ति तथैव सर्वप्रथमं श्रीभाष्य-कारस्य कृपैव बद्धान् जीवान् मुक्तान् आपादयति, तदनन्तरमेव भगवता भागवतैश्च ते श्रीभाष्यकारकृपामुधारिताः सज्जना उपलाल्यन्ते।

पापेषु सत्सु मुक्तिः कथं नाम भवेदित्यत्राह "सकल-जगदेनः प्रशमनी" इति। यथा गङ्गा सर्वाणि पापानि विनाश-यति. अतएव हि कपिलशापदग्धा अपि षष्ठिः सहस्राणि सगर-पुत्रा गङ्गया समाप्लाविताः पूतपापाः स्वर्गमीयुः। तथा चानु-

सन्धीयते प्रत्यहं भागीरथीस्नायिभिः "गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्यो-जनानां शतैरपि। विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥" इति। श्रीभाष्यकारस्य दयापि सकलस्य जगतः सकलमेनः प्रशमयति। अतः सर्वपापेषु नाशितेषु मुक्तिः करस्थेति न तत्र संशेतव्यम्।

*"गरीयोभिर्यामुनमुखैस्तीर्थैरुपचितरसा" भागीरथी यमुनाप्रभृतीनां महानदीनां जलैरभिवर्धितजला भवति। तथैव श्रीभाष्यकारस्य दयापि श्रीयामुनाचार्यप्रभृतिभिः पूर्वाचार्यैरभि

प्रयत्न से गंगा जी लाई गई। उनके भस्मों पर वही उनका निस्तार हुआ, वे साठ हजार सगर के पुत्र साक्षात् स्वर्ग पधारे। इस कथा से व्यक्त होता है कि श्रीगंगा जी सम्पूर्ण जगत् के पापों को नष्ट करती है। तभी तो श्रीगंगा जी में स्नान करने वाले विद्वान् इस श्लोक का प्रतिदिन अनुसन्धान करते हैं कि—"गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥" अर्थात् श्रीगङ्गा जी से सौ योजन के दूर में रहकर यदि कोई गंगा २ ऐसा कहे तो वह सर्व पापों से छूट जाता है, तथा विष्णुलोक पहुँचता है। वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी की दया भी सकल जगत् के पापों को नष्ट करती है। सब पाप मिटने पर अवश्य मुक्ति हाथ लगेगी। इसमें सन्देह नहीं है।

"गरीयोभिर्यामुनमखैस्तीर्थैरुपचितरसा"—संस्कृत भाषा में यामुनतीर्थ शब्द के दो अर्थ हैं (१) यमुना का जल (२) और श्रीयामुनाचार्य। यमुना इत्यादि महा नदियों के जल से श्रीगंगा जी का जल बढ़ जाता है, वैसे ही श्रीयामुनाचार्य इत्यादि पूर्वाचार्यों के कारण श्रीरामानुज स्वामी जी की दया का प्रभाव बढ़ गया क्योंकि श्रीयामुनाचार्य इत्यादि पूर्वाचार्यों की कृपा के पात्र श्रीरामानुज स्वामी जी थे, अतः उन लोगों

वर्धितप्रभावा प्रभवति श्रीभाष्यकारकिरीटसम्बन्धादेव हि तेषां मुक्तिर्गण्यते अतएव ह्युच्यते "पत्युः संयमिनां प्रणम्य चरणौ तत्पादकोटीरयोः सम्बन्धेन समिध्यमानविभवान् धन्यांस्तथाऽन्यान् गुरून्" इति। अथवा श्रीयामुनाचार्यप्रभृतिपूर्वाचार्यकृपाकटाक्षप्रभावाद् यतिपतिदयाऽभिवृद्धप्रभावाऽभूत्।

*"दुरुच्छेदा" यमुनाप्रभृतिमहानदीजलवर्धितसलिला भागीरथी विवर्धिता नित्यं प्रवहन्ती वर्तते, तथैव श्रीयामुना-

---

की कृपा के प्रभाव से श्रीरामानुज स्वामी जी की दया की महिमा बढ़ गई। किंच, श्रीयामुनाचार्य इत्यादि आचार्यों के कारण श्रीरामानुज स्वामी जी की कृपा की महिमा प्रसिद्ध हुई हैं। भाव यह है कि श्रीरामानुज स्वामी जी से प्राचीन जितने आचार्य हुये, तथा श्रीरामानुज स्वामी जी के शिष्य प्रशिष्य रूप में जितने श्रीवैष्णव हुये, इन सबका उद्धार श्रीरामानुज स्वामी जी के सम्बन्ध के कारण ही हुआ, हाँ, पूर्वाचार्यों के साथ श्रीरामानुज स्वामी जी के शिर का सम्बन्ध था, शिष्यों का श्रीरामानुज स्वामी जी के श्रीचरण से सम्बन्ध था। किसी प्रकार से भी हो, श्रीरामानुज स्वामी जी का सम्बन्ध सबको है। इसी कारण ही सबका उद्धार हुआ। इस अर्थ का वर्णन श्रीदेशिक स्वामी जी ने "पत्युः संयमिनां प्रणम्य चरणौ तत्पादकोटीरयोस्सम्बन्धेन समिध्यमानविभवान् धन्यांस्तथान्यान् गुरून्" इस श्लोक में किया। इस प्रकार श्रीयामुनाचार्य इत्यादि पूर्वाचार्यों के कारण श्रीरामानुज स्वामी जी की दया का प्रभाव बढ़ गया।

"दुरुच्छेदा"—यमुना इत्यादि महा नदियों के प्रवाह से जल बढ़ जाने के कारण श्रीगंगा जी निर्विघ्न नित्य प्रवाहित होती रहती है, श्रीगंगा जी का प्रवाह कभी नहीं टूटता। वैसे ही श्रीयामुनाचार्य

चार्यादिपूर्वाचार्यकृपाप्रवाहेण वर्धितप्रवहा प्रवहन्ती यतिपति-
दयाऽपि अपायसंप्लवादिभिर्दूरपनोदाऽविहता नित्यं प्रवहति ।

*"यतिपतिदयादिव्यतटिनी यदृच्छाविक्षेपान्निम्नेतरमपि मां समाप्लावयति" प्रवाहस्योन्नतदेशे आरोपणार्थं सेतुप्रभृतीनामबन्धनेऽपि यथाऽन्यान्यमहानदीप्रवाहसम्बन्धेनाभिवृद्धजल-प्रवाहा गङ्गा कदाचिद्यदृच्छयोन्नतभूमिमप्याप्लावयन्ती दृश्यते, तथैव श्रीभाष्यकारस्य कृपा प्राप्तव्येति मया प्रयत्नेऽकृतेऽपि श्रीयामुनाचार्यादि कृपासंवलनाभिवर्धितप्रभावा श्रीयतिपतिदया-

---

इत्यादियों के कृपा प्रभाव से बढ़ जाने के कारण श्रीरामानुज स्वामी जी की दया भी निर्विघ्न नित्य आश्रितों पर प्रवाहित होती है, आश्रितों के द्वारा प्रमाद से पाप बन जाने पर भी उससे दया का प्रवाह नहीं टूटता ।

"यतिपतिदयादिव्यतटिनी निम्नेतरमपि मां यदृच्छाविक्षेपात्समाप्लावयति" नदी के जल को यदि ऊँची भूमि में पहुँचाना पड़ता है, तब बाँध बाँधना पड़ता है, कभी २ गङ्गा जी ऊँची भूमि में भी बहने लगती है, बाँध न होने पर भी अन्यान्य नदियों का प्रवाह मिल जाने के कारण बढ़ा हुआ गंगा प्रवाह ऊँची भूमि में भी बहने लगता है, यह अप्रत्याशित घटना कभी २ घट जाती है, यह बात श्रीभाष्यकार स्वामी जी की दया में भी देखने में आती है। मैं ऊँची भूमि के समान हूँ, ऊँचे गुणों के कारण नहीं किन्तु गर्व के कारण मैं ऊँची भूमि के समान हूँ, मैंने श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कृपा को प्राप्त करने के लिये कभी प्रयत्न नहीं किया। गर्व के कारण मैं सर्वदा उन्नत ही रहा, कभी नम्र नहीं हुआ हूँ। ऊँची भूमि के समान उद्धत मुझ पर भी श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कृपा बह रही है, तभी तो मैं इस रूप में आ सका,

ऽतिगर्वादनम्रं "न नमेयं कथंचन" इत्यखर्वगर्वपर्वताग्राधिरूढं मामपि यादृच्छिकविजृम्भणेन समाप्लावयन्ती दृश्यते । ईषदप्यभिमुख्यमावहतोऽन्यान् समाप्लावयेदिति किमुवाच्यम् ॥६०॥

पूर्वश्लोके "सवित्रीमुक्तानाम्" इति श्रीभगवद्भाष्यकारस्य कृपा मुक्तिहेतुरित्युक्तम् । तत्रैवं मुक्तिहेतौ श्रीभाष्यकारस्य कृपायां लब्धायामपि स कृपापात्रभूतो भाग्यवानितरसिद्धान्तेषु प्रविश्यात्मानं नाशयेच्चेत् किं क्रियतामिति शङ्कायामुपस्थितायां श्रीभाष्यकारस्य कृपया श्रीभाष्यादिग्रन्थानुसन्धानं कुर्वन् स इतरसिद्धान्तान्नैव रोचयेत, अत इतरसिद्धान्तप्रवेशेनात्मनाशस्य प्रसक्तिरेव नास्तीति स दृष्टान्तमुत्तरमनेन श्लोकेनाह—

कभी नम्र न होने वाले मुझ पर भी जब श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कृपा प्रवाहित होती है तो श्रीभाष्यकार स्वामी जी पर श्रद्धा भक्ति करने वाले कृपापात्र बने, इसमें क्या आश्चर्य है। भाव यह है कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कृपा से उद्धार अवश्य होगा। उनके समाश्रित होकर रहने की ही आवश्यकता है ॥६०॥

पूर्व श्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी ने कहा कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी को कृपा मोक्ष देने वाली है। यहाँ पर यह प्रश्न उठता है श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कृपा प्राप्त होने पर भी यदि कोई जिज्ञासु परमतों के ग्रन्थों के अध्ययन में प्रवृत्त होकर उन ग्रन्थों में प्रतिपादित सिद्धान्तों को समीचीन मानकर अपने आत्मा को नष्ट कर देगा तो क्या किया जाय? इस प्रश्न के उत्तर में श्रीदेशिक स्वामीजी कहते हैं कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी के कृपापात्र वे सज्जन यदि ग्रन्थों के अध्ययन करने की योग्यता रखते हों तो वे श्रीभाष्यकार स्वामी जी से प्रणीत ग्रन्थों के अध्ययन में ही प्रवृत्त होंगे, उनको इन सिद्धान्तों में रुचि ही नहीं

चिन्ताशेषदुरर्थदन्तुरवचः कन्थाशतग्रन्थिलाः
सिद्धान्ता न समिन्धते यतिवरग्रन्थानुसन्धायिनि ।
मुक्ताशुक्तिविशुद्धसिद्धनटिनी चूडालचूडापदः
किं कुल्यां कलयेत खंडपरशुर्मगङ्क्रमंजूपिकाम ॥६१॥

*"यतिवरग्रन्थानुसन्धायिनि चिन्ताशेषदुरर्थदन्तुरवचः कन्थाशतग्रन्थिलाः सिद्धान्ता न समिन्धते" श्रीयतिवरस्य कृपा नुपात्रेषु प्रवर्तते, कृपापात्रभूतास्ते सज्जनाः श्रीयतीन्द्रस्य श्रीभाष्यादीनां ग्रन्थानामध्ययन एव प्रवर्तन्ते तेषामनुसन्धाने

होगी। इस प्रकार को दृष्टान्त के साथ स्पष्ट करते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं—

ऽतिगर्वादनम्रं "न नमेयं कथंचन" इत्यखर्वगर्वपर्वताग्राधिरूढं मामपि यादृच्छिकविजृम्भणेन समाप्लावयन्ती दृश्यते । ईषदप्यभिमुख्यमावहतोऽन्यान् समाप्लावयेदिति किमुवाच्यम् ॥६०॥

पूर्वश्लोके "सवित्रीमुक्तानाम्" इति श्रीभगवद्भाष्यकारस्य कृपा मुक्तिहेतुरित्युक्तम् । तत्रैवं मुक्तिहेतौ श्रीभाष्यकारस्य कृपायां लब्धायामपि स कृपापात्रभूतो भाग्यवानितरसिद्धान्तेषु प्रविश्यात्मानं नाशयेच्चेत् किं क्रियतामिति शङ्कायामुपस्थितायां श्रीभाष्यकारस्य कृपया श्रीभाष्यादिग्रन्थानुसन्धानं कुर्वन् स इतरसिद्धान्तान्नैव रोचयेत, अत इतरसिद्धान्तप्रवेशेनात्मनाशस्य प्रसक्तिरेव नास्तीति स दृष्टान्तमुत्तरमनेन श्लोकेनाह—

कभी नम्र न होने वाले मुझ पर भी जब श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कृपा प्रवाहित होती है तो श्रीभाष्यकार स्वामी जी पर श्रद्धा भक्ति करने वाले कृपापात्र बने, इसमें क्या आश्चर्य है । भाव यह है कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कृपा से उद्धार अवश्य होगा । उनके समाश्रित होकर रहने की ही आवश्यकता है ॥६०॥

पूर्व श्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी ने कहा कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कृपा मोक्ष देने वाली है । यहाँ पर यह प्रश्न उठता है श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कृपा प्राप्त होने पर भी यदि कोई जिज्ञासु परमतों के ग्रन्थों के अध्ययन में प्रवृत्त होकर उन ग्रन्थों में प्रतिपादित सिद्धान्तों को समीचीन मानकर अपने आत्मा को नष्ट कर देगा तो क्या किया जाय ? इस प्रश्न के उत्तर में श्रीदेशिक स्वामीजी कहते हैं कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी के कृपापात्र वे सज्जन यदि ग्रन्थों के अध्ययन करने की योग्यता रखते हों तो वे श्रीभाष्यकार स्वामी जी से प्रणीत ग्रन्थों के अध्ययन में ही प्रवृत्त होंगे, उनको इन सिद्धान्तों में रुचि ही नहीं

चिन्ताशेपदुरर्थदन्तुरवचः कन्थाशतग्रन्थिलाः
सिद्धान्ता न समिन्धते यतिवरग्रन्थानुसन्धायिनि ।
मुक्ताशुक्तिविशुद्धसिद्धतटिनी चूडालचूडापदः
किं कुल्यां कलयेत खंडपरशुर्मण्डूकमंजूषिकाम् ॥६१॥

*"यतिवरग्रन्थानुसन्धायिनि चिन्ताशेपदुरर्थदन्तुरवचः कन्थाशतग्रन्थिलाः सिद्धान्ता न समिन्धते" श्रीयतिवरस्य कृपा सुपात्रेषु प्रवर्तते, कृपापात्रभूतास्ते सज्जनाः श्रीयतीन्द्रस्य श्रीभाष्यादीनां ग्रन्थानामध्ययने एव प्रवर्तन्ते तेषामनुसन्धाने

होगी। इस उत्तर को दृष्टान्त के साथ व्यक्त करते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं—

यतिवरग्रन्थानुसन्धायिनि—यतिराज के ग्रन्थों का अध्ययन और मनन करने वालों को, *चिन्ताशेपदुरर्थदन्तुरवचः*—जिनमें चिन्ता और श्रम उत्पन्न करने वाले शब्द है, *कन्थाशतग्रन्थिलाः*—तथा जिनमें सैकड़ों गाठे लगी हैं, *सिद्धान्ता न समिन्धते*—ऐसे सिद्धान्त अच्छे नहीं लगते। *मुक्ताशुक्तिविशुद्धसिद्धतटिनी* चूडालचूडापदः—मुक्ता रत्न की तरह विशुद्ध गंगा को अपने मस्तक पर धारण करने वाले, *खण्डपरशुः मण्डूकमञ्जूषिकां कुल्या कलयेत किम्*—शंकर क्या उस नाली को पसन्द करेंगे जिसमें मेंढक भरे हों।

एव तेषां रुचिरहरहः प्रवर्धते, श्रीयतीन्द्रग्रन्थोक्तान् सिद्धान्तान् हृदयंगमीकृतवद्भयस्तेभ्य इतरसिद्धान्ता नैव रोचन्ते, न हि नगरेषु कृतसंचारो ग्रामे संचारं रोचयेत् न वा मिष्टान्नभोजी कदन्नं रोचयेत, इतरसिद्धान्ताः काममबहुश्रुतान् स्वया दीप्त्या वशीकुर्युः एतांस्तु न वशीकर्तुं समर्थाः। ते रात्रौ खद्योतवदितरेषां पुरतो दीप्येरन् मयूखमालिमयूखसंचारसमेधितप्रकाशाढ्यदिनसंनिभानामेषां श्रीभाष्यादिसिद्धान्तपरिशीलनविद्योतितहृदयानां सहृदयानां पुरतो नैव दीप्यन्ते। ते सिद्धान्तास्तत्प्रतिपादकग्रन्थाश्च तेषां

ग्रन्थों का परिशीलन करने के लिये ही रुचि होती है। वे ग्रन्थ शब्द अर्थ दोनों दृष्टियों से भी बहुत मनोहर लगते हैं। जिन सज्जनों ने श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों का परिशीलन कर उन ग्रन्थों से प्रतिपादित हृदयानुमोदित अकाट्य सिद्धान्तों का मर्म जान लिया हो उनको इतर सिद्धान्त अणुमात्र भी नहीं प्रभावित कर सकते। नगरों को देखा हुआ मनुष्य ग्राम को देखने में कैसे उत्सुक होगा? मिष्टान्न भोजी पुरुष कदन्न को कैसे पसन्द करेगा? इतर सिद्धान्त भले हो उन लोगों को वश कर सके जो अल्पज्ञ हैं। इन बहुज्ञ श्रीवैष्णवों पर प्रभाव नहीं डाल सकते हैं। खद्योत (जुगनूं) रात्रि में ही तत्रापि अन्धकार में ही अपनी चमक दमक दिखा सकते हैं दिन में नहीं। जैसे सूर्य के प्रखर किरणों के समक्ष चन्द्र अग्नि इत्यादि भी हतप्रभ हो जाते हैं, वैसे ही ये इतर सिद्धान्त अज्ञानान्धकार में पड़े हुये लोगों पर ही अपना प्रभाव विस्तार कर सकते हैं, उन श्रीवैष्णव विद्वानों के सामने इनका कुछ भी मूल्य नहीं है जिनका हृदय इतर ग्रन्थों को हतप्रभ बनाने वाले श्रीभाष्य आदि उत्तम ग्रन्थों के अनुशीलन से देदीप्यमान हो गया है। इन श्रीवैष्णव विद्वानों को वे इतर सिद्धान्त अत्यन्त

जुगुप्स्यनीया भवन्ति। ते हि सिद्धान्ताश्चिन्ताशेषदुरर्थदन्तुरवचः कन्थाशतग्रन्थिला वर्तन्ते। यथासीवितुमप्यनर्हाणां संचितानां शतसंख्याकानां कन्थानां ग्रथनेन कश्चिदवयवी निष्पाद्यते तथाऽत्यन्तभंगुराणां शतसंख्याकानां वचनानां ग्रथनेन ते सिद्धान्ता निष्पाद्यन्ते। तानि वचांसि दुरर्थानि प्रमाणबाधितार्थप्रतिपादकानि सन्ति तथा दन्तुराणि पूर्वोत्तरविरुद्धार्थानि दुरुच्चारशब्दगुम्फात्मकानि सन्ति सदर्थजिज्ञासयाऽसकृच्चिन्तने कृतेऽपि तेभ्यो वचोभ्यः सदर्थो नैव लभ्यते, केवलं चिन्तैवावशिष्यते यथोषरे कूपे खन्यमाने जलं न लभ्यते, श्रम एवावशिष्यते तथात्र चिन्त-

---

जुगुप्सित प्रतीत होते हैं। ऐसा प्रतीत होना युक्त ही है क्योंकि वे सिद्धान्त ऐसे ही हैं। दृष्टान्त के लिये फटे पुराने वस्त्रों के टुकड़े जहाँ तहाँ बिखरे पड़े रहते हैं, वे इतने जीर्ण हैं, कि सीने के भी योग्य नहीं हैं, दरिद्र लोग उन रङ्क (बिरङ्के) चिथड़ों का संग्रह कर उनमें ग्रन्थि देकर एक वस्त्र बना लेते हैं। वैसे ही मतान्तर के प्रवर्तकों ने जहाँ तहाँ बिखरी पड़ी हुई जीर्ण शीर्ण खण्डित पंक्तियों का इधर से कुछ उधर से कुछ इस रीति से संग्रह कर उनमें गांठ देकर सिद्धान्तों की स्थापना की है। उनके वाक्य रूपी वे पंक्तियाँ ग्रहण करने योग्य नहीं हैं क्योंकि वे गलत अर्थों का ही प्रतिपादन करती हैं, तथा वे पंक्तियाँ परस्पर विरुद्ध अर्थों का वर्णन करती हैं, उन पंक्तियों का उच्चारण करना भी कठिन है क्योंकि उनमें ऐसे ही क्लिष्ट विषम शब्द भरे पड़े हैं। इन पंक्तियों में कोई उत्तम अर्थ निहित होगा उसे मैं जानूं इस इच्छा से प्रेरित होकर यदि कोई विद्वान उन पंक्तियों का बारम्बार चिन्तन करें तो भी उनका चिन्तन का फल श्रम ही रह जाता है, कोई उत्तम अर्थ उन पंक्तियों से प्राप्त नहीं होता, यदि कोई सज्जन जल को प्राप्त करने

नाश्रम एवावशिष्यते न सदर्था उपलभ्यन्ते तथा च तानि वचांसि न तत्त्वज्ञानहेतुभूतानि यथा यतस्ततः कन्था आहृत्य ग्रथ्यन्ते तथैव यतस्तत आहृत्य तानि वचांसि ग्रथितानि वर्तन्ते एवं भूतै-श्चिन्ताशेषैर्दुरर्थैर्दन्तुरैर्वचोभिः प्रतिपादितास्ते सिद्धान्ता यतिवर-ग्रन्थानुसन्धायिनि न प्रकाशन्ते। अत्र दृष्टान्तमाह—

*"मुक्ताशुक्तिविशुद्धसिद्धतटिनीचूडालचूडापदः खण्डपरशु-र्मण्डूकमञ्जूषिकां कुल्यां कलयेत किम् ?" श्रीशङ्करः शिरसा महानदीं गङ्गां बिभ्राणः किं भेकमयीं क्षुद्रकुल्यां शिरसा धार-यितुमुत्सहेत ? नैवोत्सहेत। शिवेन ध्रियमाणा सा गङ्गा मुक्तो-त्पादिकाभिः शुक्तिभिर्विशुद्धा भवति तथैवैतैः श्रीवैष्णवैरनुसन्धीय-

---

की इच्छा से ऊपर भूमि में कूप खोदें तो उनको कूप खोदने का श्रम ही रह जायेगा जल तो प्राप्त होगा ही नहीं। वैसी ही यहाँ की दशा है। कहने का भाव यह है कि इतर मत के ग्रन्थों से तत्वज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। इस प्रकार जहाँ तहाँ से संगृहीत वचन रूपी चीथड़ों में ग्रन्थि देकर वे सिद्धान्त निर्माण किये गये हैं। वे सिद्धान्त श्रीभाष्य-कार स्वामी जी के ग्रन्थों का अनुसन्धान करने वाले श्रीवैष्णवों को आकर्षित नहीं कर सकते हैं, न इन पर कुछ प्रभाव डाल सकते हैं। इसमें दृष्टान्त यह है कि—

"मुक्ताशुक्तिविशुद्ध सिद्धतटिनीचूडालचूडापदः खण्डपरशुर्मण्डूकमञ्जू-षिकां कुल्यां किं कलयेत"—महानदी श्रीगङ्गा जी को सिर से धारण करने वाले श्रीशङ्कर जी क्या मेंढकों से भरी हुई क्षुद्र नाली को पसन्द करेंगे ? कभी नहीं। वैसे ही श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों का अनुसन्धान करने वाले ये श्रीवैष्णव भी इतर सिद्धान्तों को पसन्द नहीं करेंगे। श्रीशिवजी के सिर में विराजने वाली श्रीगङ्गाजी मोतियों से गर्भित

मानाः श्रीभाष्यादिग्रन्था भगवद्गुणगर्भाभिः पंक्तिभिर्विशुद्धा भ्रमप्रमादादिदोषरहिता वर्तन्ते । सा गङ्गासिद्धतटिनी तस्या गङ्गायाः सेवनेन बहवो महान्तः सिद्धा जाताः । तथैवैषां ग्रन्थानां सेवनेनापि बहवः सिद्धाः सिद्धिं प्राप्ताः संपन्नाः । तां पुण्यनदीं गङ्गां शिरसा बिभर्ति शङ्करः । एतान् ग्रन्थान् शिरसा बिभ्रति श्रीवैष्णवाः । गङ्गाधारणं माहाभाग्यं मन्यमानः शिवः किं मण्डूकमंजूषिकां भेकनिधानपेटिकायमानां कुल्यां वराह-दीर्घिकां किमाद्रियेत ? नैवाद्रियेत । तथैव श्रीभाष्यादिग्रन्थाध्ययनं

शुक्तियों से भरी रहती हैं। वैसे ही लोक में मङ्गल करने वाले इन श्रीवैष्णवों के द्वारा सिर से अभिनन्दित श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ भी श्रीभगवद्गुणों से गर्भित पंक्तियों से भरे हैं। श्रीगङ्गाजी अत्यन्त शुद्ध हैं, अतएव सब पापों को नष्ट करने वाली हैं, वैसे ही ये श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ भी अत्यन्त शुद्ध हैं, सब पापों को नष्ट करने वाले हैं। श्रीगङ्गाजी सिद्धों की नदी कहलाती है क्योंकि श्रीगङ्गाजी का सेवन कर अनेक महात्मा सिद्ध हो गये हैं। इन ग्रन्थों का सेवन कर अनेक विद्वान मोक्षरूपी सिद्धि को प्राप्त हुये हैं। पुण्य नदी श्रीगङ्गाजी को शिवजी सिर से धारण करते हैं। इन धर्म ग्रन्थों को श्रीवैष्णव सिर से धारण करते हैं श्रीभगवान के चरणामृत श्रीगङ्गाजी को सिर से धारण करना महाभाग्य है ऐसा श्रीशिवजी मानते हैं इन ग्रन्थों का अध्ययन करना महाभाग्य है ऐसा श्रीवैष्णव लोग मानते हैं। क्या ऐसे मानने वाले श्रीशिवजी उस दिव्य गङ्गाजी को सिर से उतार कर उसके स्थान में धारण करने के लिये उस नाली को पसन्द करेंगे जिसमें मेंढक ही मेंढक भरे हों, जो एक प्रकार से मेंढकों से भरी पेटी बन गयी हो। कभी नहीं पसन्द करेंगे, वैसे ही श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों के अध्ययन

महाभाग्यपरिपाक इति मन्वानाः श्रीवैष्णवा अपार्थनिधीन् अबहुश्रुतोपलाल्यान् इतरसिद्धान्तान् कथमाद्रियेरन् ? नैवाद्रियेरन् । कुल्यायां किं समीचीनः पदार्थोऽस्तीत्यसकृदन्वेषणे कृतेऽपि विविधा भेका एवोपलभ्येरन् न तु समीचीनाः पदार्थाः । तथैवेतरसिद्धान्तेषु असकृदन्वेषणे कृतेऽपि अपार्था एव लभ्येरन् न तु सदर्थाः अतस्तान् सिद्धान्तान् बहुश्रुताः श्रीवैष्णवाः कथमाद्रियेरन् ? अतः श्रीवैष्णवानां परसिद्धान्तेषु प्रवेशेनात्मनाशः स्यादितिशङ्का दूरोत्सारिता ॥६१॥

एवमुक्तानुक्तैर्गुणैराकृष्टः श्रीभाष्यकारं नमस्यति—

को महाभाग्य मानने वाले ये श्रीवैष्णव उन दिव्य ग्रन्थों के स्थान में ऐसे ग्रन्थों को क्या पसन्द कर सकते हैं जो गलत अर्थों से भरे हों तथा जिनमें अल्पज्ञ लोग ही रत रहते हों। कभी नहीं पसन्द कर सकते हैं। क्या इसमें कुछ अच्छे पदार्थ होंगे ? इस इच्छा से नाली में बारम्बार खोजने पर भी मेंढक ही मेंढक मिलेंगे, मोती इत्यादि नहीं मिल सकते, वैसे ही इतर सिद्धान्तों में बारम्बार खोजने पर भी असमीचीन अर्थ ही प्राप्त होंगे, समीचीन अर्थ कभी नहीं मिल सकते। ऐसी स्थिति में बहुज्ञ श्रीवैष्णव विद्वान उन सिद्धान्तों का कैसे स्वीकार करेंगे ? इसलिये यह शङ्का कभी नहीं करना चाहिये कि श्रीवैष्णव विद्वान इतर सिद्धान्तों में प्रविष्ट होकर आत्मनाश कर लेंगे तो क्या किया जाय। ये श्रीवैष्णव विद्वान श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थों के अनुसन्धान में ही मग्न रहेंगे, कभी भी इतर सिद्धान्तों को न अपनायेंगे, न आत्मनाश ही होने देंगे। इनकी आत्मा का उद्धार सुनिश्चित है ॥६१॥

पूर्वश्लोकों में ज[illegible]ार [illegible] के गुण कहे गये हैं और

वन्दे तं यमिनां धुरन्धरमहं मानान्धकारद्रुहा
पन्थानं परिपन्थिनां निजदृशा रुन्धानमिन्धानया ।
दत्तं येन दयासुधाम्बुनिधिना पीत्वा विशुद्धं पयः
काले नः करिशैलकृष्णजलदः कांत्ताधिकं वर्षति ॥

*"अहं मानान्धकारद्रुहा इन्धानया निजदृशा परिपन्थिनां पन्थानं रुन्धानं तं यमिनां धुरन्धरं वन्दे" प्रतिवादिनः कुतर्कैर्वेदविरुद्धं मार्गं कल्पयन्तोऽहमेव वादे समर्थ इत्यहंकारं

जो अब तक नहीं कहे गये, श्रीभाष्यकार स्वामी जी के उन सभी गुणों से आकृष्ट होकर श्रीदेशिक स्वामी जी इस श्लोक में श्रीभाष्यकार स्वामी जी को प्रणाम करते हैं—

अहं—मैं, *मानान्धकारद्रुहा इन्धानया निजदृशा*—प्रकाशमान मान-रूपी अन्धकार को दूर करने वाली अपनी दृष्टि से, *परिपन्थिनां पन्थानं रुन्धानं*—विरोधियों के मार्ग को रोकने वाले, *तं यमिनां धुरन्धरं वन्दे*—उन यतिराज को प्रणाम करता हूँ। *येन दत्तं विशुद्धं पयं पीत्वा*—जिनके द्वारा दिये गये विशुद्ध जल को पीकर, *करिशैल कृष्ण जलदः*—हस्तिगिरि के भगवत्तत्व रूप कृष्ण मेघ, *काले नः कांत्ताधिकं वर्षति*—पूर्ण रूप से वर्षा करते हैं।

"अहं मानान्धकारद्रुहा इन्धानया निजदृशा परिपन्थिनां पन्थानं रुन्धानं तं यमिनां धुरन्धरम् वन्दे"—प्रतिवादिगण कुतर्कों से श्रीसद्वेदमार्ग के विरुद्ध मार्ग की कल्पना कर उसमें चलने के लिये जनता को बाध्य करते हैं तथा बड़े गर्व के साथ कहते हैं कि शास्त्रार्थ में हम एक क्षण में ही वेदमार्गावलम्बियों को परास्त कर सकते हैं। इन प्रतिवादियों का यह जो अहंकार है वह एक प्रकार से अन्धकार है। अन्धकार

बिभ्रति, सोऽहंकार एवान्धकारस्तेषां सम्यक्तत्वदृष्टिं प्रतिबन्धाति तमन्धकारं श्रीभाष्यकारो देदीप्यमानया ज्ञानप्रकाशं सर्वतो विक्षिपन्त्यानिजदृशा विनाशयति, तेषां परिपन्थिनां दुर्वादिनां पन्थानं वेदविरुद्धं मार्गमपि दृष्टिपातमात्रेण रुन्धे प्रतिवादिनामहंकारनाशसमकालमेव तैः कल्पितः कुमार्गोऽपि विलीयते। "जायमानं हि पुरुषं यं पश्येन्मधुसूदनः। सात्त्विकः स तु विज्ञेयः स वै मोक्षार्थचिन्तकः॥" इत्युक्तरीत्या जायमानदशायां प्रवर्तमानो भगवत्कटाक्षः जीवानां रजस्तमसी अभिभूय प्रवर्तमानं

दृष्टि शक्ति को रोक देता है, अन्धकार में पदार्थ नहीं दिखाई देते हैं। वैसे ही इन लोगों का यह अहंकार भी उन लोगों की दृष्टि शक्ति को रोक देता है, इसलिये इन लोगों को तत्वज्ञान नहीं होता है। इन परवादियों के इस अहंकार रूपी अन्धकार को श्रीभाष्यकार स्वामी जी अपनी जाज्वल्यमान दृष्टि से नष्ट कर देते हैं श्रीभाष्यकार स्वामी जी की दृष्टि चारों दिशाओं में ज्ञान प्रकाश को फैला रही है। इस दृष्टि के सम्मुख वह अन्धकार कैसे रह सकता है? इसलिये श्रीभाष्यकार स्वामी जी के दिव्य दृष्टि प्रसूत ज्ञान के समक्ष परवादियों का सम्पूर्ण अहंकार रूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है। श्रीभाष्यकार स्वामी जी अपनी दृष्टि से न केवल परवादियों के अहंकार को नष्ट करते हैं किन्तु उस वेद विरुद्ध कुमार्ग को भी बन्द कर देते हैं जिसे परवादियों ने कुतर्कों से सिद्ध किया था। श्रीभगवान् की दृष्टि तथा श्रीभाष्यकार स्वामी जी की दृष्टि इन दोनों का प्रभाव एक सा है। श्रीभगवान् की दृष्टि के विषय में शास्त्र में वर्णन आया है कि "उत्पन्न होते समय यदि किसी शिशु पर श्रीमधुसूदन भगवान् की दृष्टि पड़ जाय तो सत्वगुण निधि श्रीभगवान् के दृष्टिपात के प्रभाव से वह शिशु सात्विक हो

सत्वगुणमापाद्य तान् सात्विकान् जीवान् मोक्षार्थचिन्तकान् वेदोक्तमोक्षसाधनानुष्ठायिन आपादयतीति श्रीभगवत्कटाक्षप्रभावो- वर्ण्यते। तथैव श्रीभाष्यकारस्य कटाक्षः प्रतिवादिनामहंकारं विनाश्य तत्कल्पितं दुमार्गं निरुध्य तान् वेदमार्गारूढानापाद- यतीति श्रीभाष्यकारकटाक्षस्य प्रभावोऽत्र प्रतिपाद्यते। एवं विधमहाप्रभावशालिदृष्टिसंपन्नं यमिनां धुरन्धरमहं वन्दे।

*"दयासुधाम्बुनिधिना येन दत्तं विशुद्धं पयः पीत्वा करिशैलकृष्णजलदः नः काले कांक्षाधिकं वर्षति" यदिदानीं करिशैलशिखरे विराजमानो नीलमेघश्यामलः श्रीभगवान् वरद- राजोऽस्मन्मनोरथाधिकं स्वानुभवामृतमस्मासु वर्षन् अस्माना- नन्दयति तत्रापि निदानं श्रीभाष्यकारस्य दयैव। कथमितिचेत्

जाता है, उसका रजोगुण और तमोगुण नष्ट हो जाता है, वह वेदोक्त साधनों का अनुष्ठान कर मोक्ष को प्राप्त करने के लिये चिन्तित हो जाता है, तदर्थ मोक्षोपयोगी पदार्थों को जानने के लिये सन्नद्ध हो जाता है। वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी की दृष्टि भी परवादियों के अहंकार को नष्ट करती है, उन लोगों द्वारा कल्पित दुमार्ग को बन्द कर देती है, और उन परवादियों को वेदमार्ग के अनुगामी बना देती है। जिनका दिव्य कटाक्ष इतना प्रभाव रखता है, उन महा महिमशाली श्रीभाष्यकार स्वामी जी को मैं प्रणाम करता हूँ।

"दयासुधाम्बुनिधिना येन दत्तं विशुद्धं पयः पीत्वा करिशैलकृष्णजलदः काले नः कांक्षाधिकं वर्षति"—श्रीकाञ्ची नगरी में श्रीवरदराज भगवान् हस्तिगिरि पर विराजमान होकर हम लोगों पर ब्रह्मानन्द रूपी अमृत की वर्षा कर रहे हैं। इसका कारण क्या है? विचार करने पर यही निर्णय करना पड़ता है कि इसका कारण श्रीभाष्यकार स्वामी जी की

अम्बुनिधिः समुद्रः स्वं क्षारं जलं मेघाय ददाति तत् पयः पीत्वा मेघः श्यामायमानः सन् पर्वतशिखरमारुह्य लोकमनोरथातिवर्तिविशुद्धजलवर्षणं कुर्वन् जगत् पयसाऽऽप्लावयतीति दृश्यते। श्रीभाष्यकारो दयारसभरितोऽगाधः समुद्रः। अयं श्रीकांच्यां विराजमानाय श्रीवरदराजाय भगवते विशुद्धं श्रीचतुर्मुखानुष्ठितहयमेधयज्ञपत्नीशालाकूपपयः समर्पयति स्म। अत्रेदं चरित्रमनुसन्धेयम्। श्रीरामानुजः प्रयागे गङ्गायां निपात-

---

दया ही है। क्योंकि श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने एक समय श्रीवरदराज भगवान् को तीर्थ का पान कराया था इसलिये मानों कृतज्ञ होकर श्रीवरदराज भगवान् हम लोगों को भगवदनुभव रूपी अमृत का पान करा रहे हैं। जिस प्रकार समुद्र से पानी लेकर मेघ जगत में मधुर जल की वर्षा करता है वैसे ही श्रीवरदराज भगवान् श्रीभाष्यकार स्वामी जी के हाथ से तीर्थ का पान कर हम लोगों पर अमृत वर्षा कर रहे हैं। हाँ, इतना अन्तर अवश्य है कि समुद्र मेघ को क्षार जल देता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने श्रीभगवान् को विशुद्ध तीर्थ का प्रदान किया है। यहाँ पर यह चरित्र अनुसन्धान करने योग्य है। श्रीरामानुज स्वामी जी यादव प्रकाश के पास अद्वैत वेदान्त पढ़ते थे, कभी २ गुरु और शिष्य में विवाद बढ़ जाता था। श्रीरामानुज स्वामी जी का खण्डन प्रबल था, यादव प्रकाश समुचित उत्तर नहीं दे पाते थे। "शेषं कोपेन पूरयेत्" इस न्याय से डांट डपट कर शान्त करते थे। कुछ काल के बाद यादव प्रकाश ने अपने अन्तरङ्ग शिष्यों को बुलाकर कहा कि प्रतीत होता है कि श्रीरामानुजाचार्य हमारे मत का समूल उन्मूलन करेंगे। अतः यही उचित प्रतीत होता है कि इन्हें यथा शीघ्र इस लोक से विदा कर दिया जाय। इनको तीर्थ यात्रा के व्याज से प्रयाग

नीय इत्यन्तरङ्गशिष्यैः सह संमन्त्र्य यादवप्रकाशेन तीर्थयात्रा-मिषेण नीतः श्रीभगवद्रामानुजाचार्यो विन्ध्याटव्यां श्रीगोविन्द-भट्टात् परेषां मतं विज्ञाय रात्रौ तान् विसृज्य दक्षिणां प्रति पलायमानः साह्याभावाद्विषीदन् तदात्वोपसृताभ्यां भिल्लदम्पति-वेषधारिभ्यां दिव्यदम्पतिभ्यां रात्रौ शालाकूपपर्यन्तमानीतः तृषार्ताभ्यामावाभ्यामेतत्कूपपय आनीय देहीति प्रार्थितस्तज्जल-मानीय पाययन् ताभ्यां पश्येयं काञ्ची अयं श्रीवरदराजस्य

ले जाकर श्रीगङ्गा जी में डुबा दिया जाय जिससे डुबाने वाले तथा गिरने वालों को पुण्य मिलेगा। इस प्रकार यादव प्रकाश निश्चय करके श्रीरामानुजाचार्य को फुसला कर तीर्थाटन करते हुये विन्ध्याटवी पहुँचे। एक रात श्रीरामानुजाचार्य शौचार्थ बाहर गये हुये थे, तब श्रीगोविन्दाचार्य ने जोकि इनके मौसेरे भाई थे, रहस्य रूप से बाहर आकर इनसे सारा हाल कहकर वहाँ से भाग जाने की सम्मति दी। तदनुसार श्रीरामानुजाचार्य उस अन्धकार पूर्ण रात में भयंकर विन्ध्या-टवी में अकेले दक्षिण लौट पड़े। परन्तु मार्ग नहीं दिखाई देता था। उस समय श्रीवरदराज भगवान् तथा श्रीमहालक्ष्मी जी भिल्ल तथा भिल्लनी का रूप धारण कर उसी मार्ग पर आये। श्रीरामानुजाचार्य ने उनसे पूछा कि आप कहाँ जा रहे हैं। उन्होंने कहा कि काञ्ची जा रहे हैं। श्रीरामानुजाचार्य ने भी अपने को साथ लेने की प्रार्थना की। उन्होंने स्वीकार किया। श्रीरामानुजाचार्य भिल्लों के पीछे २ चले। भिल्लिनी ने भिल्ल से पूछा कि यहाँ कहीं समीप में जल है? उसने उत्तर दिया कि इतने दूर में एक कूप है। भिल्लों के द्वारा प्राप्त उपकार को स्मरण करते हुये श्रीरामानुजाचार्य शीघ्र पानी लाने को उद्यत हुये, कूप से पानी लाकर भिल्लों को दिया। भिल्लों ने जल का पान कर कहा

देवालय इत्युक्त्वाऽन्तर्हिते सति विस्मितस्तौ दिव्यदम्पती निश्चित्य प्रत्यहं शालाकूपजलं दिव्यदम्पतिभ्यां समर्पयन् आसीदिति। इत्थं श्रीभाष्यकृता समर्पितं विशुद्धं पयः पीत्वा करिगिरिशिखराधिरूढः श्रीभगवत्कृष्णरूपी कृष्णजलदोऽस्माकमभीष्टादप्यधिकं स्वानुभवरूपं विशुद्धं पयो वर्षति। लोके मेघस्य जलं समर्पयन् समुद्रः क्षाराम्बुधिः, श्रीभगवते जलं समर्पयन् श्रीभाष्यकारस्तु

कि यह देखिये श्रीकाञ्ची आ गई, यह श्रीवरदराज भगवान् का मंदिर श्रीपुण्यकोटि विमान है। ऐसा कहकर दिव्य दम्पति अर्न्तध्यान हो गये। पौ फट रहा था, श्रीरामानुजाचार्य ने पुण्यकोटि विमान को देखा और आश्चर्य चकित हो गये कि कहाँ विन्ध्याटवी और कहाँ यह काञ्ची? श्रीवरदराज भगवान् के इस महान् अनुग्रह से श्रीरामानुजाचार्य वहुत ही प्रभावित हुये। अपना नित्यकर्मानुष्ठान एक तटाक में कर श्रीरामानुजाचार्य मंदिर पहुँचकर श्रीमहालक्ष्मी सहित श्रीवरदराज भगवान् का दर्शन कर आनन्द विभोर हो गये, और प्रतिदिन उसी कूप से तीर्थ लाकर श्रीभगवान् की सेवा में समर्पित करने लगे। इस चरित्र से सिद्ध होता है कि श्रीरामानुज स्वामी जी श्रीवरदराज भगवान् का तीर्थ कैङ्कर्य करते थे। श्रीब्रह्मा जी ने काञ्ची में अश्वमेघ यज्ञ किया था, उस समय पत्नी शाला के समीप जो कूप खोदा गया था वही यह कूप है जिससे श्रीरामानुज स्वामी जी तीर्थ लेकर श्रीभगवान् की सेवा में समर्पित करते थे। जिस प्रकार मेघ समुद्र में से जल लेकर सर्व साधारण के कल्याणार्थ बरसाता है, वैसे ही श्रीवरदराज भगवान् श्रीरामानुज स्वामी जी के हाथ से तीर्थ पान कर हम लोगों पर भगवदनुभवरूपी अमृत को वरसाते हैं। एक दो वातों को छोड़ कर मेघ और श्रीभगवान् में अत्यन्त समता है। मेघ को

दयारसाम्बुनिधिः, समुद्रेण समर्प्यमाणं जलं क्षारत्वादविशुद्धम् श्रीभाष्यकारेण समर्प्यमाणं पयस्तु स्वार्थगन्धराहित्याद्विशुद्धम्, सामुद्रजलं पीत्वा यथा मेघः पर्वतशिखरमारुह्यविराजते तथा श्रीभगवानपि श्रीभाष्यकाराहृतं पयः पीत्वा करिगिरिमधिरुह्य-विराजते, मेघो जलरसभरितो वर्तते श्रीभगवान् दयारसभरितो वर्तते, मेघः स्वस्मिन् विहरन्तीं विद्योतमानां विद्युतं बिभर्ति, श्रीभगवान् स्ववक्षसि विहरन्तीं चकासतीं श्रियं बिभर्ति, मेघो नानारूपान्वितमिन्द्रधनुर्धारयति, श्रीभगवान् नानाविधमयूखोद्गारिभूषणजालं धारयति, जलभरितो मेघः श्यामो भवति दया-

---

पानी देने वाला समुद्र क्षार जल से भरा रहता है, श्रीवरदराज भगवान् को तीर्थ देने वाले श्रीरामानुज स्वामी जी दयारस से भरे रहते हैं। समुद्र का जल लवण मिश्रित होने से शुद्ध नहीं। श्रीभाष्यकार स्वामी जी का तीर्थ अत्यन्त शुद्ध है क्योंकि इसमें स्वार्थ इत्यादि कोई भी दोष नहीं है। समुद्र जल को पीकर मेघ जल रस से भरा रहता है, दया समुद्र श्रीभाष्यकार स्वामी जी के तीर्थ को पीकर श्रीभगवान् दया रस से भरे रहते हैं। मेघ जल पीकर हृष्ट पुष्ट और श्याम हो जाता है, श्रीवरदराज भगवान् भी श्रीभाष्यकार स्वामी जी से हृष्ट पुष्ट तथा घनश्याम बन गये हैं। समुद्र जल को पीकर मेघ पर्वत के शिखर में चढ़कर विश्रान्ति लेता रहता है, श्रीभाष्यकार स्वामी जी के तीर्थ को पीकर श्रीवरदराज भगवान् हस्ति पर्वत पर विराजते हैं। मेघ के वक्षःस्थल में विद्युत विहार करती है, श्रीभगवान् के वक्षःस्थल में तेज की निधि श्रीमहालक्ष्मी जी विहार करती रहती हैं। मेघ रङ्ग विरङ्ग के इन्द्र धनु को धारण करता है, श्रीभगवान् रङ्ग विरङ्ग के किरणों को प्रसारित करने वाले भूषणों का धारण करते हैं। मेघ वायु

रसभरितो भगवान् श्यामो भवति। मेघो वायोर्गतिमनुसृत्य चलति, श्रीभगवान् आचार्याणामिच्छामनुसृत्य चेष्टते। मेघः सौरं तापमपहरति, श्रीभगवान् सांसारिकं तापमपहरति। मेघः सूर्यपाद-स्पर्शनिरोधिनीं छायां प्रदाय पान्थान् सुखयति, श्रीभगवान् दुष्कर्मविपाकस्पर्शनिरोधिनीं कल्याणसंकल्परूपां छायां वितीर्य श्रीमद्वेदमार्गपान्थान् सुखयति। मेघः सर्वान् जीवयत् जीवन-शब्दाभिधेयं पानीयं वर्षति, श्रीभगवान् सर्वानुज्जीवयन्तं स्वानु-भवामृतरसं वर्षति। मेघः पानीयं पाययित्वा लोकमपिपासं करोति श्रीभगवान् स्वानुभवानन्दमुपभोज्य लोकम् "अपहत-पाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः" इत्युक्तरीत्याऽत्यन्तिकाशनायापिपासाहीनमा-

---

की गति के अनुसार चलता है, श्रीभगवान् आचार्यों की इच्छा के अनुसार चलते हैं। मेघ सूर्य के कारण उत्पन्न होने वाले ताप को मिटाता है, श्रीभगवान् संसार के कारण उत्पन्न होने वाले तापत्रय को मिटाते हैं। मेघ सूर्य के किरणों के स्पर्श से बचाने वाली छाया देकर पथिकों को सुख देता है, श्रीभगवान् दुष्कर्मों के फलभूत दुःखों से बचाने वाली शुभ संकल्प रूप छाया देकर श्रीमद्वेदमार्ग के पथिक वैदिकों को सुख देते हैं। मेघ सबको जीवित रखने वाले मधुर जल को बरसाता है। श्रीभगवान् सबको उज्जीवित करने वाले श्रीभगवद-नुभवरूपी अमृत रस को बरसाते हैं। मेघ पानी पिलाकर लोगों की पिपासा को शान्त करता है श्रीभगवान् ब्रह्मानन्दरूपी अमृत का पान कराकर सर्वदा के लिये भूख और प्यास को शान्त कर देते हैं क्योंकि ब्रह्मानन्द का अनुभव करने वाले साधक भूख प्यास शोक मोह जरा मृत्यु इन छः सांसारिक ऊर्मि (लहरयों) को पारकर "अपहतपाप्मा"

विभूतगुणाष्टकं परमतृप्तं करोति । मेघ एकान्तिनां चातकाना-मन्येषां च कृते कांक्षाधिकं पानीयं वर्षति, तथैव श्रीभगवानै-कान्तिनामन्येषां च कृते कांक्षाधिकं स्वानुभवं वितरन् दिव्य-देशेषु विराजते । समुद्रजलं पीतवान् मेघः कृतज्ञतयेव समुद्राम्ब-राया भूमेरुत्सङ्गे विहरमाणान् तिर्यक्स्थावरमनुष्यादीन् सर्वानपि पानीयेन समाप्लावयति तथैव श्रीभाष्यकारदत्तं विशुद्धं पयः पीतपूर्वो श्रीभगवान् वरदराजः कृतज्ञतयेव श्रीभाष्यकारसम्बन्धि-नोऽस्मान् सर्वानपि चीरसदृशेन स्वानुभवेन समाप्लावयति अत एव श्रीभगवद्वरदराजानुभवमग्नैरस्माभिः "निरन्तरं निर्विशत-

---

इत्यादि श्रुति से वर्णित आठ गुणों से अलंकृत हो जाते हैं। मेघ का अनन्य भक्त चातक पक्षी है, क्योंकि वह मेघ के जल को ही पीता है, मेघ अपने अनन्य भक्त चातक तथा अन्य प्राणियों के लिये भी इतना जल बरसाता है जितने की कल्पना तक उन लोगों ने नहीं की। श्रीभगवान् अनन्य भक्त और सब दर्शनार्थी मनुष्यों को भी इतना आनन्द देते हैं जिसकी कल्पना तक उन लोगों ने नहीं की। मेघ समुद्र का जल पीकर समुद्र के विषय में अत्यन्त कृतज्ञ हो जाता है, अतएव समुद्र के सम्बन्धियों तक का उपकार करने के लिये उतावला हो जाता है क्योंकि समुद्र को वस्त्र रूप में पहनने वाली भूदेवी के गोद में विराजने वाले तिर्यक्स्थावर मनुष्य इत्यादि सभी जीवों को भी बड़ी कृतज्ञता से मधुर पानी को अत्यधिक मात्रा में मेघ देता है। वैसे ही श्रीरामानुज स्वामी जी के हाथ से तीर्थ पान कर श्रीवरदराज भगवान श्रीरामानुज स्वामी जी के कृपापात्र अस्मदादियों को भी वाञ्छित से अधिक मात्रा में ब्रह्मानन्द रूपी अमृत का पान कराते हैं। इसलिये इनके दर्शन से आनन्दित मैं स्तुति करता हूँ

स्त्वदीयमस्पृष्टचिन्तापदमाभिरूप्यम् । सत्यं शपे वारणशैलनाथ वैकुण्ठवासेऽपि न मेऽभिलाषः" इति अकैतवेन स्वाशयः प्रकाशनीयो भवति । एवमेकतः श्रीभाष्यकारो दृङ्मात्रेण परिपन्थिनां मार्गं निरुन्धन् अन्यतोऽनुकूलानामस्माकं ब्रह्मानन्दानुभावनार्थं भगवन्तं समुत्साहयन् वर्तते । तमहं कार्तस्न्य-भरसंनतो वन्दे ॥६२॥

पूर्वश्लोके श्रीभाष्यकारोदृष्टिमात्रेण परिपन्थिनामहंकारं नाशयतीत्युक्तम् । दत्तात्रेयावतारभूते श्रीभाष्यकारेऽयं गुणो

"निरन्तरं निर्विशतस्त्वदीयमस्पृष्टचिन्तापदमाभिरूप्यम् । सत्यं शपे वारणशैल-नाथ वैकुण्ठवासेऽपि न मेऽभिलाषः ॥" हे श्रीवरदराज भगवन् ! आपका सौन्दर्य इतना उच्चकोटि का है कि वह चिन्तन के परे है, उस सौन्दर्य का निरन्तर अनुभव मैं करता रहता हूँ। मुझे वैकुण्ठ में जाकर रहने की भी इच्छा नहीं है क्योंकि यहीं मुझे अपार आनन्द प्राप्त हो रहा है। यह मेरा सत्य शपथ पूर्वक कथन है।

इस प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामी जी अपनी दृष्टि से ही प्रतिकूल परवादियों के अहंकार को नष्ट कर उन लोगों के द्वारा कल्पित वेद विरुद्ध मार्ग को बन्द करते हैं और अनुकूल हम लोगों पर ब्रह्मानन्द को बरसाने के लिये श्रीभगवान् को प्रेरित करते हैं। इस प्रकार दुष्टों का निग्रह और शिष्टों का परिपालन करने वाले यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी को मैं प्रणाम करता हूँ, इसलिये प्रणाम करता हूँ कि प्रणाम किये बिना मुझसे रहा नहीं जाता ॥६२॥

पूर्वश्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी ने कहा कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी दृष्टिमात्र से परवादियों के अहंकार को नष्ट करते हैं। यह प्रभाव उचित ही है क्योंकि श्रीभगवद्रामानुज स्वामी जी श्रीदत्तात्रेय भगवान्

युज्यत इति तस्य दत्तात्रेयावतारत्वं साधयन् जयमुद्घोषयति अनेनश्लोकेन—

काषायेन गृहीतपीतवसना दण्डैस्त्रिभिर्मण्डिता
सा मूर्तिर्मुरमर्दनस्य जयति त्रय्यन्तसंरक्षिणी।
यत्प्रख्यापिततीर्थवर्धितधियामभ्यस्यतां यद्गुणान्
आसिन्धोरनिदं प्रदेशनियता कीर्तिः प्रजागर्ति नः ॥

*"काषायेन गृहीतपीतवसना त्रिभिर्दण्डैर्मण्डिता त्रय्यन्त-संरक्षिणी मुरमर्दनस्य सा मूर्तिर्जयति" काणादशाक्यपाषण्डैस्त्रयी-धर्मे विलोपिते वेदतदर्थसंरक्षणार्थं सर्वेश्वरो दत्तात्रेयरूपेणावतीर्य

की तरह श्रीमन्नारायण भगवान् के अवतार हैं इस अर्थ को सिद्ध करते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी इस श्लोक से श्रीभाष्यकार स्वामी जी का जय २ कार मानना हैं—

यत्प्रख्यापिततीर्थवर्धितधिया—जिस मूर्ति द्वारा स्थापित आचार्यों के प्रभाव से, *अभ्यस्यतां यद्गुणान्*—तथा जिस मूर्ति के गुणों का चिन्तन करने वाले, *नः अनिदं प्रदेशनियता कीर्तिरासिन्धोः प्रजागर्ति*—हम लोगों की कीर्ति समुद्र पर्यन्त सारे देशों में फैली हुई है, *काषायेण गृहीत-पीतवसना*—काषायाम्बर से पीताम्बर को छिपाने वाली, *त्रिभिर्दण्डैः मण्डिता*—त्रिदण्ड को धारण करने वाली, *त्रय्यन्तसंरक्षिणी*—वेदान्त का संरक्षण करने वाली, *मुरमर्दनस्य*—भगवान को, *सा मूर्ति र्जयति*—उस मूर्ति की जय।

"काषायेन गृहीतपीतवसना दण्डैस्त्रिभिर्मण्डिता त्रय्यन्तसंरक्षिणीमुरमर्दन स्य सा मूर्तिर्जयति"—श्रीभगवान् ने दत्तात्रेय के रूप में अवतार लिया था। उस समय काणाद शाक्य और पाषण्डयों ने वैदिक धर्म का

प्रदेशनियता कीर्तिरासिन्धोः प्रजागर्ति।" वयं श्रीरामानुजमुनेः सर्वप्रथितं श्रीपादतीर्थं निषेव्य तेन वर्धितधियो जाताः स्म। तथा श्रीरामानुजमुनिभिः प्रख्यापिता ये चतुस्सप्ततिसंख्याका आचार्याः तद्वंशजैर्वर्धितधियोजाताः स्मः। वयं श्रीरामानुजमुनेर्गुणानावर्तयामहे एतत्प्रभावादस्माकं कीर्तिरपि जाता सा चानिदं प्रदेशनियता अत्रदेशेऽस्ति अत्र देशेनास्तीति देशनियमं विना

"यत्प्रख्यापिततीर्थवर्धितधियां यद्गुणानभ्यस्यतां नः कीर्तिरनिदंप्रदेश-नियता आसिन्धोः प्रजागर्ति"—श्रीरामानुज स्वामी जी के चरणामृत का प्रभाव लोक प्रसिद्ध है, वह चरणामृत सर्व पाप और दुर्वासनाओं को नष्ट कर देता है, रज और तमोगुण को दबा देता है, सत्वगुण को बढ़ाता है, बुद्धि को निर्मल करके बढ़ाता है। इस प्रकार प्रसिद्ध श्रीरामानुज स्वामी जी के श्रीपाद तीर्थ का सेवन करने से हम लोगों की बुद्धि वृद्धिगत हुई है। इतना ही नहीं है, श्रीरामानुज स्वामी जी ने जिन ७४ आचार्यों को सिंहासनाधिपत्य देकर प्रसिद्ध कराया, उन आचार्यों के वंशजों की सन्निधि में अध्ययन करने से हम लोगों की बुद्धि विकसित हुई है। तथा हम लोग सर्वदा श्रीरामानुज स्वामी जी के गुणों का ही अनुसन्धान करते रहते हैं, उस अनुसन्धान की आवृत्ति कभी रुकती नहीं है। श्रीरामानुज स्वामी जी के श्रीपाद तीर्थ का सेवन श्रीरामानुज स्वामी जी के कृपापात्र आचार्य वंशजों की सन्निधि में अध्ययन और श्रीरामानुज स्वामी जी के गुणों का अनुसन्धान इन तीनों का यह सुन्दर परिणाम हुआ कि हम लोगों की भी कीर्ति होने लगी, एक हमारी ही नहीं मेरे समान अन्यान्य लोगों की भी कीर्ति होने लगी। लोग कीर्ति का गान करने लगे कि ये श्रीरामानुजीय आचार्य अपार विद्वत्ता से पूर्ण हैं, आत्मगुण सम्पन्न हैं, ज्ञान भक्ति

सर्वत्र व्याप्ता वर्तते तत्रापि आसिन्धोश्चतुः समुद्रपर्यन्तं व्याप्ता वर्तते, तत्रापि नित्यं प्रजागर्ति न कदाचित् स्वपिति। एवं श्रीरामानुजमुनिसम्बन्धधन्यानामस्माकमपि दिगन्तविश्रान्ता कीर्तिश्चेत् श्रीरामानुजमुनेर्जयविषये किमु वाच्यम् श्रीभगवद्-वतारस्यतस्यजयो मध्यान्हसूर्यवत् सर्वविदितः। तस्य जयप्रकाशनेन वयं कृतार्था भवामः ॥६३॥

श्रीभगवद्रामानुजदिव्यगुणानुसन्धानवशीकृतहृदयः श्रीदेशिकोऽहं तत् श्रीलक्ष्मणयोगिनः पदयुगं लिप्से यदीयपादुकाधारणेन

और वैराग्य में अद्वितीय हैं, कविता और शास्त्र पाण्डित्य में अद्वितीय इत्यादि। इस प्रकार कीर्ति होने लगी, इतना ही नहीं, किन्तु वह कीर्ति किसी एक देश में नियत न रहकर सभी देशों में फैली है, यहाँ तक फैली है कि चारों समुद्रों तक पहुँची है। इतना ही नहीं, सर्वदा जागृत रहती है, कभी सोती नहीं है, इस प्रकार सर्व देश सर्वकाल और सर्व अवस्थाओं में भी हमारी कीर्ति नित्य नव होकर फैलती रहती है। यह सब श्रीरामानुज स्वामी जी के सम्बन्ध का ही तो प्रभाव है। हम लोगों की कीर्ति की ही जब यह स्थिति है, तब श्रीरामानुज स्वामी जी की महिमा के विषय में क्या ही कहना है, वह तो मध्यान्ह सूर्य की तरह सर्व जगत में आबालवृद्ध विदित है। एवं विध अपार महिमसम्पन्न श्रीरामानुज स्वामी जी की जय हो, यही प्रार्थनीय है ॥६३॥

श्रीभगवद्रामानुज स्वामी जी के गुणों के अनुसन्धान से परवश होते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी इस श्लोक से अपनी इच्छा को इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि श्रीरामानुज स्वामी जी के भिक्षाटन करते समय जिस चरणद्वन्द्व के स्पर्श से भूमि अलंकृत होती है जिन चरणों

सूरयो धन्या जायन्ते भिक्षाटनकाले येन चरणयुगेन भूरलं-क्रियते इत्यनेन श्लोकेन प्रार्थयते—

लिप्से लक्ष्मणयोगिनः पदयुगं रथ्यापरागच्छटा-
रक्षारोपणधन्यसूरिपरिषत्सीमन्तसीमान्तिकम् ।
भिक्षापर्यटनक्षणेषु बिभरांचक्रे गलत्किल्बिषा
यद्विन्यासमिषेण पत्रमकरीमुद्रां समुद्राम्बरा ॥६४॥

*"समुद्राम्बराभिक्षापर्यटनक्षणेषु यद्विन्यासमिषेण गलत्किल्बिषा पत्रमकरीमुद्रां बिभरांचक्रे" श्रीरामानुजमुनिर्यतिराजः

जिन पादुकाओं को सिर पर धारण कर विद्वान् लोग धन्य हो जाते हैं मैं श्रीरामानुज स्वामी जी के उस चरणद्वन्द्व को प्राप्त करना चाहता हूँ तथा यथेष्ट उनकी सेवा करना चाहता हूँ ।

समुद्राम्बरा—समुद्र रूपी वस्त्र को धारण करने वाली पृथ्वी, *भिक्षापर्यटनक्षणेषु*—भिक्षा के लिये पर्यटन करते समय, *यद्विन्यासमिषेण*—जिनके चलने से, *गलत्किल्बिषा*—पाप रहित हो जाती है, *पत्रमकरीमुद्रां बिभरांचक्रे*—पत्रमकरी मुद्रा को धारण करती है । *लक्ष्मणयोगिनः*—श्रीभाष्यकार के, *पदयुगं*—उन चरण कमलों को, *लिप्से*—चाहता हूँ । *रथ्यापरागच्छटारक्षारोपणधन्यसूरिपरिषत्सीमन्तसीमान्तिकम्*—जिनको वीथी की धूलि से बचाने वाली पादुकायें विद्वन्मण्डली के मस्तक पर सौभाग्यवती स्त्रियों के सिन्दूर के समान शोभा दे रही हैं ।

"समुद्राम्बराभिक्षापर्यटनक्षणेषु यद्विन्यासमिषेण गलत्किल्बिषा पत्रमकरीमुद्रां बिभरांचक्रे"—कवियों के काव्यों में ऐसा वर्णन पाया जाता है कि सौभाग्यवती स्त्रियाँ स्नान कर निर्मल हो जाती हैं, उत्तम साड़ियों को पहिन लेती हैं, अनन्तर अपने अङ्गों में रङ्ग विरङ्ग के रसों से मत्स्य

तस्य चतुर्थाश्रमविहितं न किमपि कर्म हीयते। श्रीरामानुजमुनिर्मध्यान्हे भिक्षार्थं माधुकरग्रहणार्थं पर्यटति, तदानीं पद्मध्वजच्छत्रमत्स्यादिसामुद्रिकलक्षणपरिपूर्णं तस्य पदयुगं भूमौ विन्यस्तं भवति। तेन भूमिर्गलत्किल्विषा निष्पापा निर्मला संपद्यते। समुद्राम्बरधारिणी भूमिः स्नाननिर्मला परिहितोत्तमवसनेव स्त्री पत्रमकरीभिरलंकृतेव भवति यदा श्रीरामानुजमुनेर्मत्स्यादिरेखां-

---

मकर इत्यादि रूप से अनेक प्रकार के चित्रों को लिख लेती हैं, ये ही चित्र पत्रमकरी मुद्रा कहलाते हैं। इस श्लोक में भी ऐसा ही वर्णन किया गया है। श्रीरामानुज स्वामी जी चतुर्थाश्रम में विराजते हैं। आप संन्यासियों के धर्म को पूर्ण रूप से परिपालन करते थे, मध्यान्ह में भिक्षाटन के लिये बाहर निकलते थे, उनके चरणतल में पद्म ध्वज छत्र शंख कल्पवृक्ष अंकुश इत्यादि सामुद्रिक शास्त्रोक्त सम्पूर्ण राज लक्षण विद्यमान थे, इस प्रकार राजलक्षणों से युक्त होने के कारण ही वे यतिराज हुये। भिक्षाटन के समय उनके श्रीचरण भूमि पर जितने बार पड़ते थे, उतने बार चरणों के चिन्ह भूमि पर लगते थे, उन चिन्हों में भी पद्म ध्वज छत्र शङ्ख कल्पवृक्ष अंकुश इत्यादि स्पष्ट रूप से दिखाई देते थे, उनको देखने पर ऐसा प्रतीत होता था कि श्री भूदेवी पत्रमकरी मुद्राओं से अपने अङ्ग प्रत्यङ्गों को अलंकृत कर रही हैं श्री भूदेवी तो परम सौभाग्य से सम्पन्न है, उनका पति श्रीविष्णु भगवान् है। तभी तो प्रतिदिन शय्या से उठते ही भूदेवी से ऐसी प्रार्थना की जाती है कि—"समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादन्यासं क्षमस्व मे॥" अर्थात् हे समुद्र रूपी वस्त्र को धारण करने वाली पर्वत रूपी स्तन मण्डल से युक्त श्रीविष्णु भगवान् की धर्मपत्नि हे श्रीभूदेवी! आपको नमस्कार है, मैं आपके ऊपर चरण रख रहा हूँ, इस अपराध

कितं पदयुगं हृदये बिभर्ति । इत्थं येन श्रीयतिवरपदयुगेन भिक्षा-
काले भूमिः पत्रमकरीभिरलंकृतेव भवति, तत् पदयुगमहं लिप्से ।

*"रथ्यापरागच्छटारक्षारोपणधन्यसूरिपरिषत्सीमन्तसीमा-
न्तिकं लक्ष्मणयोगिनः पदयुगं लिप्से" श्रीरामानुजयोगिनश्चरण-
युगे पादुके रथ्यासु संचारकाले परागस्पर्शात् पदयुगं रक्षतः सर्व-
रक्षकस्यापि पदयुगस्य रक्षिके इति मत्वा सूरीणां परिषत् स्वीय-
मस्तके सीमन्तसीमाया अन्तिके पादुकायुगं बिभर्ति तेन सा धन्या

की क्षमा करें। श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरण सम्बन्ध से ही भूमि पाप शून्य हो गई, रत्नाकर समुद्र रूपी वस्त्र को पहिनी हुई है, अब उनकी इच्छा हुई कि मैं हम अङ्गों में पत्रमकरी मुद्राओं को धारण करूं उनकी वह इच्छा भी पूर्ण हो गई क्योंकि सामुद्रिक लक्षणों से उपेत श्रीरामानुज स्वामी जी के चरण चिन्ह भूमि में पत्रमकरी मुद्रा के समान दिखलाई देते हैं। इस प्रकार श्रीरामानुज स्वामी जी के चरण चिन्ह भूमिको अलंकृत करते हैं। इतना ही नहीं, दूसरा भी विशेष है, वह यह है कि—

"रथ्यापरागच्छटारक्षारोपणधन्यसूरिपरिषत्सीमन्तसीमान्तिकं लक्ष्मण-योगिनः पदयुगं लिप्से"—जिन राज मार्गों में रथों का संचार होता है उन मार्गों में श्रीरामानुज स्वामी जी पधारते हैं, पधारने के पूर्व ही उनके श्रीचरणों को धूलि इत्यादि से बचाने के लिये पादुकायें कवच की तरह उनकी रक्षा करती हैं। श्रीरामानुज स्वामी जी के श्रीचरण सर्व रक्षक है, उन श्रीचरणों की भी रक्षा करने वाली हैं ये पादुकायें। ये ही पादुकायें आश्रितों के रक्षार्थ श्रीचरणों को आश्रितों के स्थान तक पहुँचाने वाली हैं श्रीरामानुज स्वामी जी के चरणों से भी ये पादुकायें श्रेष्ठ हैं, इनकी सेवा करना चाहिये, इनको सिर पर धारण करना

भवति यथासीमन्तसीमायां सिन्दूरधारणेन सौभाग्यवती वनिता धन्या भवति। एवं यदीयपादुकावहनेनापि विद्वत्परिषद् धन्या भवति तस्य पदयुगस्य साक्षाद्वहने धन्यता भवतीति किमु-वाच्यम्। अतोऽहं भूदेव्या अलंकारभूतं विद्वत्परिषदः पादुका-द्वारा धन्यतापादकं श्रीमतोभगवद्विभूतिभूतबद्धचेतनवर्गस्य श्रीभगवन्मङ्गलाशासनाधिकारापादनपूर्वकं भगवत्कैङ्कर्यें नियो-

---

चाहिये। ऐसी विवेचना कर विद्वान् लोग इन श्रीचरण पादुकाओं को सिर पर धारण करते हैं। विद्वन्मण्डली के सिर पर विराजने वाली ये पादुकायें सौभाग्यवती स्त्रियों के सीमन्त की सीमा में विराजमान सिन्दूर की तरह शोभा पा रही हैं, श्रीरामानुज स्वामी जी की चरण पादुकाओं को धारण करने से उनका उत्तमाङ्ग धन्य हो जाता है। सिर तभी उत्तमाङ्ग कहा जायेगा जब श्रीरामानुज स्वामी जी की चरण पादुकाओं को धारण करे, अन्यथा रेशमी वस्त्र किरीटादि से अलंकृत होने पर वह भार रूप ही है, इस प्रकार श्रीरामानुज स्वामी जी की चरण पादुकाओं को धारण कर विद्वन्मण्डली धन्य २ हो जाती है, इनके मस्तक में ब्रह्माजी ने जो कुछ खोटे वर्ण लिखे हों, वे सब सुवर्ण बन जाते हैं। इस प्रकार भूमिको अलंकृत करने वाले तथा विद्वन्मण्डली के सिर पर विराजने वाले इन श्रीचरणों को मैं प्राप्त करना चाहता हूँ। ये श्रीचरण श्रीरामानुज स्वामी जी के हैं। सम्पूर्ण जगत् को उज्जीवित करने के लिये ही श्रीरामानुज स्वामी जी का अवतार हुआ। श्रीरामानुज स्वामी जी ने इसी सदिच्छा से प्रेरित होकर ही जगत् में श्रीसम्प्रदाय का प्रचार किया कि ये सभी बद्ध जीव वस्तुतः श्रीभगवान् के समान दास हैं इनको भी श्रीवैकुण्ठ में पहुँचकर अनन्त गरुड़ विष्वक्सेन आदि के समान श्रीभगवान् का मंगलाशासन करते रहना

ननेन परिपूर्णभगवच्छेषत्वलक्ष्मीकस्य श्रीरामानुजमुनेः पदयुगमहं शिरसि धारणार्थं नेत्राभ्यां स्पर्शनार्थं तापनिवृत्तये हृदि निधानार्थं संवाहनार्थं पूजनार्थं च लिप्से ॥६४॥

पूर्वश्लोके लक्ष्मणयोगिनः पदयुगं लिप्से इत्युक्तम् ।

चाहिये था। इनको मंगलाशासन के अधिकारी बनाना चाहिये। यदि ये लोग स्वस्वरूप परस्वरूप इत्यादि को अच्छो तरह से समझ लेंगे, तो श्रीभगवान् के शरण में जाकर श्रीभगवान् के सौन्दर्य सौकुमार्य सौशील्य इत्यादि गुणों का अनुसन्धान कर बड़े प्रेम से श्रीभगवान् के मंगलाशासन में प्रवृत्त हो जायेंगे। ऐसा होने पर इनके आत्मा कृतार्थ हो जायेंगे, श्रीभगवान् भी अनादिकाल से खोई हुई वस्तु इस जीवात्मा को प्राप्त कर प्रसन्न होंगे। इस प्रकार सबके कल्याणकारी सत्य सनातन वैदिक श्रीवैष्णव सिद्धान्त का प्रचार करना चाहिये, परवादियों के द्वारा इस वैदिक सिद्धान्त पर बाधा उपस्थित न हो तदर्थ श्रीभाष्य इत्यादि सुदृढ़ प्रबल ग्रन्थों के द्वारा सिद्धान्त का प्रचार करना चाहिये। इस प्रकार विचार कर श्रीरामानुज स्वामी जी ने श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों का निर्माण किया। उन ग्रन्थों से श्रीसम्प्रदाय का प्रचार किया। सर्व साधारण के लिये शरणागति रूपी सरल साधन को प्रस्तुत कर सबको श्रीभगवान् के मंगलाशासन में प्रवृत्त कराया। इस प्रकार अपने आत्म कल्याण में संतुष्ट न होकर सबको आत्म कल्याण मार्ग में प्रवृत्त करने वाले सर्वभूत सुहृद श्रीरामानुज स्वामी जी के चरणारविन्द को मैं प्राप्त करना चाहता हूँ प्राप्त कर मैं अपनी इच्छानुसार अनवरत सेवा करना चाहता हूँ, तभी मैं कृतार्थ होऊँगा। यही मेरी इच्छा है ॥६४॥

पूर्वश्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी ने कहा कि मैं श्रीरामानुज

अस्मिन् श्लोके श्रीभाष्यकारचरणसम्बन्धरहितानां परमतस्थानां दुर्दशायां तैः क्रियमाणायामितरेषां दुर्दशायां च दृष्टायां श्रीभाष्यकारचरणावलम्बनमन्तरा न गत्यन्तरमिति भातीत्याह—

नानातन्त्रविलोभितेन मनसा निर्णीतदुर्नीतिभिः
कष्टं कुत्सितदृष्टिभिर्यतिपतेरादेशवैदेशिकैः ।
व्यासो हासपदीकृतः परिहृतः प्राचेतसश्चेतसः
क्लृप्तः केलिशुकः शुकः स च मुधा बाधाय बोधायनः ॥

स्वामी जी के चरणारविन्द को प्राप्त करना चाहता हूँ। इस श्लोक में कहते हैं कि श्रीरामानुज स्वामी जी के चरणारविन्दों का आश्रय न लेने वाले जिन मतान्तरस्थ विद्वानों की दुर्दशा हो रही है, उन विद्वानों के द्वारा श्रीवेदव्यास महर्षि श्रीवाल्मीकि महर्षि श्रीशुकदेव महर्षि तथा श्रीबोधायन महर्षि की जो दुर्दशा हो रही है उसे देखने पर यही निश्चय होता है कि श्रीरामानुज स्वामी जी के चरणारविन्दों का आश्रय लेने के अतिरिक्त दूसरी गति नहीं है। इस अर्थ को व्यक्त करते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं—

वासिते मनसि विपरिवर्तमानान् तानवैदिकानेवार्थान् इन्द्रिय-दोषादुपनिपत्सुत्प्रेक्षमाणा उपनिपत्प्रतिपाद्यानां स्वोत्प्रेक्षितार्थ-विप्रतीपानां बाधनार्थं दुर्न्यायान् निरणैषुः। नानादुस्तन्त्राभ्यास-वञ्चितं मनोदुर्न्यायनिर्णये एव साह्यं कुर्यात्। अतएव ते प्रत्यक्षानुमान-वैदिककर्मकाण्डोपासन-तत्फलविधिसृष्टिप्रलयवादि-

---

ग्रन्थों में भी बौद्ध सिद्धान्त ही दिखाई देने लगे। इन लोगों की दशा और श्रावण मास के अन्धों की दशा में अन्तर नहीं है, श्रावण मास के अन्धों को सभी पदार्थ हरे २ ही दिखाई देते हैं, इन लोगों को वेद और महर्पियों के ग्रन्थों में बौद्ध सिद्धान्त ही दिखाई देने लगे। इसलिये इन लोगों ने धैर्य के साथ निश्चय किया कि हम बौद्ध सिद्धान्तों को वैदिक रूप देंगे, तदर्थ उपनिषद ब्रह्मसूत्र श्रीभगवद्गीता तथा अन्यान्य महर्पियों के ग्रन्थों की व्याख्या करेंगे। इस प्रकार उपनिषद आदि ग्रन्थों की व्याख्या में जब ये प्रवृत्त हुए, तब उनको उन ग्रन्थों में बौद्ध सिद्धान्तों के विरुद्ध अर्थ अधिक मात्रा मे दिखाई देने लगे, उस समय इन लोगों को बहुत कठिनाई उपस्थित हो गई। उस समय इन लोगों ने ऐसे ऐसे दुष्ट न्यायों की कल्पना की जिन मे अपने सिद्धान्त के प्रतिकूल अर्थों का महत्त्व घटाया जा सकता है, उन अनभिमत अर्थों के प्रतिपादन करने वाले वेद आदि शास्त्रों का प्रामाण्य घटाया जा सकता है, अनेक प्रकार के वेद विरुद्ध शास्त्रों के मनन से दूषित मन इस प्रकार के दुष्ट न्यायों के निर्णय में सहायता दे सकता है, उससे दूसरी आशा करना व्यर्थ है। इन लोगों ने उन न्यायों की सहायता से सत्य वैदिक सिद्धान्तों को नीचा स्थान दिया बौद्ध सिद्धान्तों को वैदिक सिद्ध करते हुये ऊँचा स्थान दिया। उदाहरण—निर्दोष प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण के द्वारा जगत सत्य प्रतीत होता है, शास्त्रों के द्वारा पुण्य पाप

वचनैः सत्यत्वेन साधितस्य प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वं सिद्धान्तयन्ति, उपनिषत्सु त्रिविधासु भेदाभेदघटकश्रुतिषु घटकश्रुत्यर्थावलम्बनेन भेदाभेदश्रुती संगमय्य सर्वासां श्रुतीनामैकरूप्येण बाधगन्धाना-

---

और उनके फल सत्य प्रतीत होते हैं, उपासना विधायक वाक्य और उपासना का फल ईश्वर सायुज्य प्रतिपादक वाक्यों के द्वारा ईश्वर और उनके कल्याण गुण तथा भोगविभूति इत्यादि पदार्थ सत्य सिद्ध होते हैं वर्ण और आश्रम तथा उनके धर्म इत्यादि भी शास्त्रों के द्वारा सत्य सिद्ध होते हैं, सृष्टि स्थिति और प्रलय के प्रतिपादक उपनिषद् वाक्यों के द्वारा भी जगत सत्य प्रतीत होता है। अद्वैती लोग इन सब प्रमाणों को अप्रमाण मानते हुये जगत को मिथ्या सिद्ध करते हैं। जगत को मिथ्या मानना बौद्धों का सिद्धान्त है। बौद्धों में योगाचार बौद्ध ज्ञान को सत्य ज्ञेय जगत को मिथ्या मानते हैं। अद्वैती लोग ज्ञान रूपी ब्रह्म को सत्य और ज्ञेय जगत को मिथ्या मानते हैं। इससे सिद्ध होता है कि अद्वैती लोग बौद्ध सिद्धान्त को ही वैदिक रूप देते हैं। बौद्ध लोग जगत को मिथ्या मानने से व्यवहार में बाधा देखकर जगत को संवृति सत्य मानते हैं और कहते हैं कि जब तक दोष रहेगा तब तक जगत सत्य प्रतीत होता है, दोष मिटने पर मिथ्या प्रतीत हो जायेगा। अद्वैती लोग भी जगत को मिथ्या मानने पर व्यवहार में बाधा देखकर अपने को नास्तिकता से बचाने के लिये जगत को व्यावहारिक सत्य मानते हैं और कहते हैं कि जगत व्यवहार दशा में सत्य प्रतीत होता है, परन्तु परमार्थ दशा में मिथ्या सिद्ध होता है। इस प्रकार अद्वैती लोग संवृति सत्य को ही व्यावहारिक सत्य नाम देकर बौद्ध सिद्धान्त को वैदिक रूप देने के लिये चेष्टा करते हैं। बौद्ध लोग जिस ज्ञान को सत्य मानते हैं, उस ज्ञान को निर्धर्मक कहते हैं, अद्वैती लोग ज्ञान

प्रति प्रामाण्ये समर्थनीये सति अभेदश्रुतीनामबाध्यं प्रामाण्यं भेदघटकश्रुतीनां बाधसहं प्रामाण्यं च निर्वहन्ति। सगुणनिर्गुण-श्रुत्योर्विरोधे घटकश्रुत्यनुरोधेन शमनीये सति तदकृत्वा

रूपी ब्रह्म को सत्य मानते हुये उस ब्रह्म को निर्धर्मक कहते हैं। वेद में सगुण श्रुतियाँ हैं जो ब्रह्म को सगुण बतलाती हैं। तथा वेद में निर्गुण श्रुतियाँ भी हैं जो ब्रह्म को निर्गुण बतलाती हैं। इन दोनों प्रकार की श्रुतियों में परस्पर विरोध है। इस विरोध को शान्त करना चाहिये। नहीं हो तो दोनों श्रुतियों को प्रमाण मानना कठिन हो जायेगा। इस विरोध को शान्त करने वाली श्रुतियाँ भी वेद में विद्यमान हैं जिन्हें घटक श्रुति कहते हैं। ये घटक श्रुतियाँ बतलाती हैं कि ब्रह्म दुर्गुणों से रहित है तथा कल्याण गुणों से परिपूर्ण है। इन घटक श्रुतियों के आधार यह मानना चाहिये था कि निर्गुण श्रुतियाँ ब्रह्म को दुर्गुणों से शून्य बतलाती हैं, सगुण श्रुतियाँ ब्रह्म को कल्याण गुणों से युक्त बतलाती है। ऐसे मानने पर दोनों प्रकार की श्रुतियाँ एक सा प्रमाण बनती हैं। परन्तु अद्वैती लोगों ने ऐसा नहीं माना किन्तु निर्गुण ब्रह्म परमार्थ सत्य है सगुण ब्रह्म व्यावहारिक सत्य अर्थात् परमार्थ दशा में मिथ्या है ऐसा सिद्धान्त कर सगुण श्रुतियों को मिथ्यार्थ का प्रतिपादक माना। इससे सिद्ध होता है कि अद्वैती लोग कुछ श्रुतियों को अप्रमाण मानने के लिये भी तैयार हैं, बौद्ध सिद्धान्त को वैदिक रूप देने के आग्रह को छोड़ने के लिये तैयार नहीं। वैसे ही उपनिषदों में भेद श्रुतियाँ हैं जो जीव और ब्रह्म में भेद बतलाती हैं। अभेद श्रुतियाँ भी हैं जो जीव और ब्रह्म में अभेद बतलाती हैं। इन दोनों श्रुतियों में विरोध है। इस विरोध को शान्त करना चाहिये नहीं तो सब श्रुतियों का एकसा प्रामाण्य नहीं होगा कुछ श्रुतियाँ प्रमाण हो

निर्गुणश्रुतीनामबाध्यं प्रामाण्यं सगुणश्रुतीनां बाधसहं प्रामाण्यं च संगिरन्ते। इत्थं वेदप्रामाण्यं न्यक्कृत्यापि वेदबाह्यतन्त्रोक्तानर्थान् वेदैः प्रमाणयद्भिरेभिः कृता वेदानां कदर्थना दुर्वचा।

जायेंगी, कुछ अप्रमाण बन जायेंगी। इस विरोध को शान्त करने वाली श्रुतियाँ भी हैं उन्हें घटक श्रुति कहते हैं। वे घटक श्रुतियाँ बतलाती हैं कि संपूर्ण चेतनाचेतन प्रपञ्च परमात्मा का शरीर है एक ही परमात्मा इस प्रपञ्च में प्रत्येक पदार्थ में अन्दर बाहर व्याप्त होकर आत्मा के रूप में विराजमान हैं, जगत और परमात्मा में इस शरीरात्मभाव सम्बन्ध को मानने पर भेद श्रुति और अभेद श्रुतियों में विरोध शान्त हो जाता है, उन श्रुतियों का तात्विक भाव यों समझ में आता है, कि भेद श्रुति बतलाती है कि शरीर और आत्मा में जैसा भेद है वैसा जगत और परमात्मा में भेद है। अभेद श्रुतियाँ बतलाती हैं कि शरीर और आत्मा में भेद रहने पर भी जैसे शरीर विशिष्ट आत्मा एक होता है नाना नहीं होता है वैसे ही जगद्विशिष्ट परमात्मा एक हैं नाना नहीं हैं। इस प्रकार तीनों प्रकार की श्रुतियों का भाव मानने पर सभी श्रुतियों का एकसा प्रामाण्य स्थिर होता है। किन्तु अद्वैतियों ने ऐसा नहीं माना। उन लोगों ने यही माना कि जीव और ब्रह्म में भेद बतलाने वाली भेद श्रुतियाँ व्यावहारिक अर्थात् अन्त में मिथ्या सिद्ध होने वाले भेद को बतलाती हैं, अभेद श्रुतियाँ परमार्थ सत्य अर्थात् कभी भी मिथ्या नहीं सिद्ध होने वाले अभेद को बतलाती हैं। इससे सिद्ध होता है कि अद्वैती लोग भेद श्रुति और घटक श्रुतियों को अप्रमाण मानने के लिये भी संनद्ध हैं किन्तु एक से बढ़कर सत्य नहीं मानना इस बौद्ध सिद्धान्त को छोड़ने के लिये संनद्ध नहीं। इस प्रकार बौद्ध सिद्धान्तों को वैदिक रूप देने के लिये इन लोगों ने उपनिषदों की

यदीमे उत्तरकालेऽपि श्रीभाष्यकारसम्बन्धं प्राप्स्यन् तर्हि श्रीभाष्यकारचरित्रस्यया समीचीनान् सर्वश्रुतिप्रामाण्यसमर्थकान् न्यायान्विज्ञाय वेदहिंसनाद् व्यरंस्यन तदपि न संपन्नमित्याह—

*"यतिपतेरादेशवैदेशिकैः" इति। एते यतिपतिसमीपमेव नोपासर्पन् यतिपतेरादेशो यावति देशे प्रसरति स्म, ततोऽपिदूरेऽवसन्, नूनं विदेशेऽवसन् इव। अत एषां दृष्टिदोषो नाशाम्यत्, प्रत्युत वर्धमान एवासीत्। अतो वेदान् अपार्थकल्पनेन दूषयन्त एते महर्षिसिद्धान्तानां खण्डनेऽपि प्रावर्तिषत। तदुच्यते—

*"कुत्सितदृष्टिभिर्व्यासो हासपदीकृतः" कुदृष्टिनिर्णीतानामर्थानां व्यासकर्तृकसूत्रभारतादिविरुद्धत्वात् व्यासोहासपदी-

---

जो दुर्दशा की वह वाणी से परे है।

कृतः। कुदृष्टिमतानां सूत्रभारतादिविरुद्धत्वं श्रीभाष्यादौ बहुषु-स्थलेषु सुग्रहम्।

*"प्राचेतसश्चेतसः परिहृतः" श्रीवाल्मीकिश्चेतोहीनः कृतः। "भवान्नारायणो देवः" "गुणैर्विरुरुचे रामः" इति सकल-कल्याणगुणपरिपूर्णः श्रीरामचन्द्र एव श्रीमन्नारायणः परं दैवम्, प्रपत्तिर्मोक्षसाधनमिति श्रीवाल्मीकिना बहुषु स्थलेषु प्रतिपादित-त्वात् तद्विप्रतीपं ब्रह्म निर्गुणम्, वाक्यजन्यज्ञानं मोक्षहेतुरिति वदन्त एते कुदृष्टयः श्रीवाल्मीकिं चेतोहीनं मूढमकुर्वन्। श्रीवाल्मीकिवचः सर्वमपि उन्मत्तप्रलापमापादयामासुः।

सिद्धान्तों को वेदों पर लादते थे, यथार्थ वैदिक सिद्धान्तों को हृदयंगम नहीं करते थे क्योंकि इनकी दृष्टि दूषित हो गई थी। इसलिये ये लोग कुदृष्टि कहलाते हैं। इन लोगों ने श्रीवेद व्यास महर्षि को उपहास योग्य बनाया क्योंकि श्रीव्यास जी के ब्रह्म सूत्र और महाभारत के विरुद्ध सिद्धान्तों को ही ये लोग प्रचारित करते थे। यह अर्थ श्रीभाष्य आदि में वर्णित है।

"प्राचेतसश्चेतसः परिहृतः"—इन लोगों ने श्रीवाल्मीकि महर्षि को बुद्धिहीन बनाया क्योंकि श्रीवाल्मीकि महर्षि ने श्रीवाल्मीकि रामायण में बारम्बार इस अर्थ का प्रतिपादन किया कि नित्य निर्दोष सकल कल्याणगुण परिपूर्ण श्रीरामचन्द्र जी श्रीमन्नारायण हैं ये ही परतत्व हैं, इनकी शरणागति ही मोक्ष साधन हैं। इन लोगों ने श्रीवाल्मीकि महर्षि के इस सिद्धान्त को ताख में रख कर यह बतलाया है कि ब्रह्म निर्गुण है "तत्वमसि" इत्यादि महावाक्यों के अर्थ समझने से ही मोक्ष प्राप्त हो जायगा। इस प्रकार श्रीवाल्मीकि महर्षि के सिद्धान्त के विरुद्ध अर्थ का वर्णन करने वाले लोगों ने श्रीवाल्मीकि महर्षि को

श्रीवाल्मीकिना "वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः" इति प्रतिपादितरीत्या श्रीमद्वाल्मीकिरामायणे इतिहासोत्तमे वेदार्थोपबृंहणस्य कृतत्वात् तदनुरोधेन "इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्" इत्युक्तरीत्याऽर्थनिष्कर्षे कर्तव्ये सति श्रीवाल्मीकिना वेद उपबृंहित इति मनसाप्यस्मरन्त एते कुदृष्टयः श्रीवाल्मीकिं स्वकीयान्मनसः परिजहुः। तं मनसापि न सस्मरुरिति भावः।

"शुकः केलिशुकः कृतः" "अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ-

बुद्धिहीन बनाया, ऐसा कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है क्योंकि इनके यहाँ श्रीवाल्मीकि जी श्रीमद्रामायण उन्मत्त के प्रलाप से अधिक मूल्य नहीं रखता है। किंच लोगों ने श्रीवाल्मीकि महर्षि को अपने मन में स्थान नहीं दिया, प्रत्युत उनको मन से उतार दिया क्योंकि श्रीवाल्मीकि रामायण में यह वर्णन आता है कि "वेदार्थों को अच्छी तरह से व्यक्त करने के लिये श्रीवाल्मीकि जी ने श्रीकुश जी और श्रीलव जी को श्रीवाल्मीकि रामायण पढ़ाया।" इससे सिद्ध होता है कि श्रीवाल्मीकि जी ने वेदार्थों का स्पष्ट वर्णन करने के लिये श्री वाल्मीकि रामायण का निर्माण किया। श्री महाभारत में कहा गया है कि "इतिहास और पुराण से वेदार्थ को व्यक्त करना चाहिये, अर्थात् इतिहास और पुराण के अनुसार वेदार्थ को समझना चाहिये" उपनिषदों की व्याख्या करने में प्रवृत्त इन मतान्तरस्थ विद्वानों को चाहिये था कि श्रीरामायणरूपी इतिहास के अनुसार उपनिषदों की व्याख्या करें। परन्तु इन लोगों ने ऐसा नहीं किया। श्रीवाल्मीकि रामायण का सर्वथा अनादर कर बौद्ध सिद्धान्तों को वैदिक रूप देने को ही उचित समझा। अतः यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि इन लोगों ने श्रीवाल्मीकि जी को मन से उतार दिया।

विनिर्णयः। गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ वेदार्थः परिबृंहितः॥" इति वर्णितप्रभावे श्रीमद्भागवते समस्तकल्याणगुणनिधेर्भगवतः पारम्यस्य भक्त्येकलभ्यत्वस्य च श्रीशुकदेवेन प्रतिपादनात् तद्विरुद्धं सिद्धान्तयन्त एते कुदृष्टयः श्रीशुकदेवं लीलाशुकमापादयामासुः। तदुक्तीर्लीलाशुकप्रलापमकुर्वन्।

"स च बोधायनो मुधा बाधाय क्लृप्तः" श्रीबोधायनमहर्षिप्रणीतब्रह्मसूत्रवृत्तिग्रन्थविरुद्धार्थप्रतिपादनात् स वृथा बाधार्थमेव स कल्पितः कुदृष्टिभिः। मुधा बोधायेति पाठे व्यर्थज्ञानाय क्लृप्त

इत्यर्थः। इत्थं श्रीमद्रामायणश्रीमन्महाभारतश्रीमद्भागवतवृत्ति-ग्रन्थादिविप्रतीपार्थान् वर्णयन्त एते कुदृष्टयो न केवलमात्मानं किन्तु जगद्भ्रमजाले पातयन्तो लोकस्यापकुर्वते। एतन्निराकरण-पूर्वं लोकोज्जीवने प्रवृत्तस्य श्रीभाष्यकारस्य चरणसम्बन्धमन्तरा न कल्याणसिद्धिः। अतो लक्ष्मणयोगिनः पदयुगं लिप्से ॥६५॥

पूर्वश्लोके मतान्तरप्रवर्तकाचार्यादयो विद्वांसो यतिपत्यादेश-वैदेशिकत्वाद् भ्रष्टबुद्धयो जाता इत्युक्तम्। अथ भवता यतीन्द्रो-

---

थे। उन लोगों ने श्रीबोधायन महर्षि और उनके ग्रन्थ को अनावश्यक खण्डन के लिये ही बना रक्खा है, अथवा उनके ज्ञान को व्यर्थ सिद्ध करने के लिये ही योग्य समझा था। श्रीरामानुज स्वामी जी ने श्रीभाष्य में वृत्ति ग्रन्थ का समर्थन किया, उन लोगों के खण्डन को निराधार बतलाया। इस प्रकार ब्रह्म सूत्र श्रीमहाभारत श्रीरामायण श्रीभागवत के विरुद्ध सिद्धान्तों का प्रचार करने में प्रवृत्त ये मतान्तर प्रवर्तक विद्वानों ने न केवल अपने को भ्रम में फंसा रक्खा किन्तु सर्व साधारण को भी भ्रम में डाल दिया। इसलिये सबकी सद्‌गति अवरुद्ध हो गई। श्रीरामानुज स्वामी जी ने इनके सिद्धान्तों का खण्डन कर लोको-ज्जीवन के लिये श्रीमद्वेदमार्ग की पुनः स्थापना की। अतः सिद्ध होता है कि श्रीरामानुज स्वामी जी के चरण सम्बन्ध पाये बिना जीवों का उद्धार नहीं होगा। इसलिये मुझे श्रीरामानुज स्वामी जी के चरणार-विन्दों को उपाय और प्राप्य के रूप में प्राप्त करने की बलवती इच्छा हो रही है ॥६५॥

पूर्व श्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी ने कहा कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी के सम्बन्ध होने के कारण मतान्तरों के प्रवर्तक विद्वानों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि आपने तो श्रीभाष्यकार

पदेशलाभात् किं नु महाफलं प्राप्तम् लोकेनापि कोनु महोपकारो लब्ध इत्यत्र तदुभयमाह—

अर्थ्या तिष्ठति मामिका मतिरसावाजन्मराजन्वती
पत्या संयमिनामनेन जगतामत्याहितच्छेदिना ।
यत्सारस्वतदुग्धसागरसुधासिद्धौषधास्वादिनां
प्रस्वापाय न बोभवीति भगवन्मायामहायामिनी ॥

*"जगतामत्याहितच्छेदिनाऽनेन संयमिनां पत्याऽऽजन्मराजन्वती असौ मामिका मतिरर्थ्या तिष्ठति" अनेनार्धेन श्रीभाष्यकारोपदेशप्राप्त्या स्वस्य जातं महाफलं सदृष्टान्तं वर्ण्यते ।

स्वामी जी का सम्बन्ध पाया, उससे आपको क्या लाभ हुआ, श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थों का अध्ययन करने वाले लोगों को क्या लाभ हुआ। इस प्रश्न का उत्तर देते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी श्रीभाष्यकार स्वामी जी के सम्बन्ध से प्राप्त हुये महा लाभ का वर्णन करते हैं—

जगतामत्याहिच्छेदिना—जगत के भय को मिटाने वाले, *अनेन संयमिनां पत्या*—इन यतिराज को, *आजन्मराजन्वती असौ मामिका मतिः*—आरम्भ से ही राजा (स्वामी) मानकर मेरी बुद्धि, *अर्थ्या तिष्ठति*—सार्थक हुई है। *यत्सारस्वतदुग्धसागरसुधासिद्धौषधास्वादिनां*—जिनके वाङ्मय रूपी क्षीर समुद्र के अमृत रूपी सिद्धौषधि (सिद्धान्तार्थ) का आस्वादन करने वाले लोगों को, *भगवन्मायामहायामिनी*—भगवान् की मायारूपिणी महारात्रि, *प्रस्वापाय न बोभवीति*—सुला नहीं पाती।

"जगतामत्याहितच्छेदिनाऽनेन संयमिनां पत्याऽऽजन्मराजन्वती असौ मामिका मतिरर्थ्या तिष्ठति"—मैंने श्रीभाष्यकार स्वामी जी के सम्बन्व से जिस महालाभ को प्राप्त किया उसे दृष्टान्त के साथ बतलाता हूँ। दृष्टान्त यह

अयमत्र दृष्टान्तः—"नाराजके जनपदे भार्या वा वर्तते वशे" इत्युक्तरीत्याऽराजके जनपदे जारपुरुषैर्विविधप्रलोभनदानेन वशीकृताः स्त्रियो भर्तारमतिलङ्घयन्त्यः कुलद्वयस्य सत्कीर्ति नाशयेयुः यदि स्वशासनेन जारचोरादिजं लोकस्यात्याहितं नाशयितुं समर्थो धार्मिको राजा तत्र शासनं कुर्वीत यदि च तथाविधो नरपतिः प्रजाभिर्जन्मकालादारभ्यैव महता सौभाग्येन लभ्येत, तर्हि दयालोः शासकस्य तस्य सुराज्ञो लाभात् तद्राज्यवर्तिन्यः

है। शास्त्र में कहा गया है कि "जिस देश में मैं धार्मिक राजा का शासन नहीं होगा, उस देश की स्त्रियाँ भर्ता के वश में न रहेंगी।" यदि किसी देश में धार्मिक राजा शासन न करे तो सम्भव है उस देश के पुरुष परस्त्रीगामी होने लगेंगे, इस प्रकार बढ़ते हुये जार पुरुष वहाँ की सुयोग्य स्त्रियों को नाना प्रकार के प्रलोभन देकर सन्मार्ग से प्रच्युत करेंगे क्योंकि अधिक मात्रा में यही देखने में आता है कि पुरुषों के कारण ही स्त्रियाँ चरित्र से च्युत हो जाती हैं। यदि कोई स्त्री एक बार सचरित्र से च्युत हो जाय तो बाद में उसका सुधरना कठिन है। जिन स्त्रियों का दुर्मार्ग में चलने का अभ्यास बढ़ जायगा वे स्त्रियाँ भर्ता के वश में रहना पसन्द न करेंगी न भर्ता की आज्ञा का ही पालन करेंगी। स्त्रियों को चरित्रहीन होने पर पितृकुल और श्वशुरकुल की कीर्ति नष्ट हो जायगी। यदि उस देश में उत्तम रीति से शासन करने वाला कोई धार्मिक राजा रहे तो वह राजा जार और चोरों को दण्ड देकर उनके कारण प्रजाओं में फैले हुये भय को दूर करेगा। यदि प्रजा को जन्मकाल से ही लेकर इस प्रकार का धार्मिक राजा प्राप्त हुआ तो क्या कहना है, वहाँ की प्रजा जन्म से ही लेकर सुधरी हुई रहेंगी। चोर और जार इत्यादि का उपद्रव न होने के कारण वह प्रजा सुखी

स्त्रियः क्षणार्धमपि भर्तृत्यागमसहमाना आर्जवेन पतिव्रताधर्मं पालयन्त्यः कुलद्वयस्य न केवलं निश्चिन्ततामपितु कीर्तिमपि वर्धयन्त्यो लक्ष्यन्ते। अथ दार्ष्टान्तिकं निरूप्यते। तथैव मन्मतिरूपा इयं कन्यकापि श्रीयतिराजरूपस्योत्तमराजस्याभावे कुदृष्टिरूपैर्जारपुरुषैः कुहनायुक्तिकान्ततत्तत्सिद्धान्तरूपविविधप्रलोभनदर्शनेन विप्रलब्धा सती तं तमर्थं व्यभिचरन्ती भर्तुः परमात्मनो वशे न वर्तेतेति ममाधिकचिन्ताविषयोऽवश्यं स्यात्। परं तु

रहेगी। स्त्रियाँ भी सच्चरित्र से च्युत न होंगी,, भर्ता के वश में रहेंगी, भर्ता को छोड़कर रहना पसंद न करेंगी। श्रद्धा से पतिव्रत धर्म का पालन करेंगी। उनके दोनों कुल अर्थात् पितृकुल और श्वशुरकुल न केवल निश्चिन्त रहेंगे किन्तु कीर्ति सम्पन्न होंगे। यह हुआ दृष्टान्त। दार्ष्टान्तिक यह है कि श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि मेरी जो बुद्धि है वह मेरी पुत्री है, हम लोग श्रीयतिराज रूपी उत्तम राजा के शासन में रहते हैं, इससे हम लोगों का कल्याण है। यदि हम लोग श्रीभाष्यकार स्वामी जी के शासन में न रहते तो अहंकाररूपी चोर से मेरी आत्मसंपत्ति लुट जाती। ये कुदृष्टि संपन्न विद्वान ही जार पुरुष हैं, ये कपट युक्तियों से अच्छे जँचने वाले अपने सिद्धान्तरूपी प्रलोभनों को दिखाकर हमारी बुद्धि को सच्चरित्र से भ्रष्ट अवश्य कर देते यदि यतिराजरूपी राजा का शासन नहीं होता। जो वस्तु जैसी है उस वस्तु को उसी रूप में निश्चिय करना ही बुद्धि का सच्चरित्र है, एक वस्तु को दूसरे रूप में समझना ही बुद्धि का व्यभिचार दोष है। इन लोगों के बहकावे में आने पर अवश्य वह भ्रम रूपी व्यभिचार में फंसेगी, श्रीभगवान सब वस्तु में अन्तर्यामी के रूप में विराजमान हैं बुद्धि को किसी वस्तु को देखते समय यही समझना चाहिये कि अनन्तरूप

महदिदं सौभाग्यं यदियं यतिराजस्य सुराज्ञो राज्ये वर्तते, यथा राजा प्रजानां जारचोरादिनिबन्धनं महाभयं समूलमुन्मूलयति तथा श्रीभाष्यकारो बाह्यकुदृष्टिनिबन्धनं जगतामनर्थावहं महाभयं छिनत्ति। यथा राजा नरपतिः तथाऽयं संयमिनां पतिः। यथा सुराजा स्खालित्ये शासिता दयालुश्च भवति तथैव श्रीभाष्यकारोऽपि "स्खालित्ये शासितारम्" "दीर्घबन्धुं दयालुम्" इत्युक्ता-

---

श्रीभगवान् ही इस वस्तु के अन्दर रहते हुये दर्शन देते हैं इस प्रकार जो बुद्धि सर्वत्र श्रीभगवान का दर्शन करती है, वह अवश्य पतिव्रत धर्म का पालन करती है, वह कहीं भी श्रीभगवान् को नहीं भूलती, सर्वदा वह बुद्धि श्रीभगवान के पास ही रहती है। ऐसा होना ही बुद्धि का सच्चरित्र है। इससे भ्रष्ट करने के लिये मतान्तरों के प्रवर्तक विद्वान अवश्य प्रयत्न करते यदि श्रीयतिराज का शासन नहीं होता। उस समय भी हमारी बुद्धि की चरित्र हीनता को देखकर अवश्य चिन्तित होना पड़ता। बड़े सौभाग्य की बात है कि हम लोग श्रीयतिराज के शासन में रहते हैं। जिस प्रकार राजा जार और चोर आदि से होने वाले भय को दूर करता है वैसे ही श्रीरामानुज स्वामी जी कुदृष्टि विद्वानों से होने वाले भय को दूर करते हैं। राजा जिस प्रकार जार और चोरों को दण्ड देता है वैसे ही रामानुज स्वामी जी इन विद्वानों को परास्त करते हैं, वह राजा प्रजाओं का रक्षक होने से नरपति कहलाता है, श्रीरामानुज स्वामी जी यतियों के पति कहलाते हैं, प्रमाद करने पर दण्ड देता हुआ भी राजा दयालु रहता है क्योंकि प्रजा के साथ उसका अविच्छेद्य सम्बन्ध है। वैसे ये हमारे यतिराज प्रमाद करने पर शिष्यों को दण्ड देते हुये भी दयालु ही हैं क्योंकि इनका शिष्यों के साथ सम्बन्ध अविच्छेद्य है। यह सदाचार्य का लक्षण है कि "स्खालित्ये शासितारम्"

चार्यगुणपूर्णः। यथा एवं विधस्य सुराज्ञो राज्ये जन्मप्रभृति-वासो महाभाग्येनैव लभ्यते, तथा एवं विधस्य श्रीभाष्यकारस्य विद्यावंशे महाभाग्येनैव मया जन्म प्राप्तम्। यथा सुराजराज्यस्थ-गृहस्थकन्यका जारपुरुषैः प्रलोभयितुं न शक्यन्ते, तथैव मदीया मतिरपि कुदृष्टिभिः कुहनायुक्तिकान्तसिद्धान्तप्रदर्शनेन न प्रलोभ-यितुं शक्यते, यथा ताः कन्यका भर्तृभिरुद्धा भर्तॄन् न व्यभि-चरन्ति, तथैव मम प्रतिक्षणं जायमाना मतयो विषयान् न व्यभिचरन्ति योऽर्थो यथा वर्तते तं तथैव गृह्णन्ति नैकं विषय-मन्यथा गृह्णन्ति। अन्यथा विषयीकरणमेव हि मतेर्व्यभिचारः। तादृशव्यभिचारव्युत्पत्तिर्मन्मतेर्नास्ति, किं च "अर्थोऽनर्थो महाकोशः" इत्यर्थशब्दाभिहितं भगवन्तं भर्तारमासाद्य तं क्षणार्ध-

मपि त्यक्तुं नोत्सहते सर्वथा मन्मतिः श्रीभगवद्विषये पातिव्रत्य-धर्ममनुतिष्ठति भगवन्मन्त्रजपभगवदाराधनभगवद्गुण प्रतिपादक-ग्रन्थावलोकनतथाविधग्रन्थनिर्माणादिभिर्भगवद्धर्मैरेव कालं क्षिपति। यथा पतिव्रताभिः पितृकुलस्य कीर्तिर्वर्धते तथा एवं-विधमतिमत्वान्ममापि कीर्तिवर्धते अस्य सर्वस्यापि श्रेयसो मूलं जन्मतः प्रभृत्यनुवृत्तः श्रीभाष्यकार सम्बन्ध एव। अनेनेदमेव महाफलं प्राप्तं यन्मन्मतिर्भगवद्विषये पतिव्रता सम्पन्नेति।

अथ श्रीभाष्यकारसम्बन्धेन लोकेन लब्धो महोपकारो

"*अर्थ*" है, "*अर्थोऽनर्थोमहाकोशः*" ऐसा श्रीविष्णु सहस्र नाम में पाठ है। हमारी बुद्धि अर्थरूपी श्रीभगवान के विषय में पातिव्रत्य धर्म का आचरण करती है, वह क्षणमात्र के लिये भी श्रीभगवान को छोड़ना नहीं चाहती है। सर्वदा श्री भगवान का ही स्मरण करती रहती है। श्रीभगवान के मन्त्रों का जप करना श्रीभगवन्नामों की आवृत्ति करना, श्रीभगवान का आराधन करना, श्रीभगवान का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थों को पढ़ना और पढ़ाना, वैसे ग्रन्थों का निर्माण करना और सर्व वस्तुओं में श्रीभगवान को देखना इत्यादि भगवद्धर्मों का वह आचरण करती रहती है। जिस प्रकार पतिव्रता लड़कियों से पितृकुल की कीर्ति बढ़ती है, वैसे ही मेरी बुद्धि से मेरी कीर्ति बढ़ी है। इस संपूर्ण श्रेय का मूल कारण श्रीरामानुज स्वामी जी का सम्बन्ध है जो जन्म से लेकर अनुवृत्त रहता है। इससे यही महा फल हमको प्राप्त हुआ है कि मेरी बुद्धि श्रीभगवान् के विषय में अनन्य पतिव्रता बन गयी है। इससे बढ़कर और महाफल क्या हो सकता है?

श्रीभाष्यकार स्वामी जी के ग्रन्थों का अध्ययन कर विद्वत्समाज ने

वर्ण्यते यत् *"यत्सारस्वतदुग्धसागरसुधादुग्धौषधास्वादिनां भगवन्मायामहायामिनी प्रस्वापाय न बोभवीति" श्रीभाष्यकारस्य सारस्वतं वाक्समूह एव दुग्धसागरः क्षीरसागरः क्षीरसागरवत् श्रीभाष्यकारवाचां भोग्यत्वात् । तादृशवाक्प्रतिपाद्यार्था एव सुधाक्षीरसागरोद्भूतामृतवदेषामर्थानामतिभोग्यत्वात् । इयं श्रीभाष्यकारग्रन्थप्रतिपाद्यार्थरूपा सुधैव सिद्धौषधम्, यथा सिद्धौषधसेवनं महाव्याधीन् हरति तथा श्रीभाष्यादिग्रन्थप्रतिपादितार्थानुसन्धानमपि संसाररूपं महाव्याधिं हरति। इदं श्रीभाष्याद्यर्थरूपं सिद्धौषधममृतमयम् अतो मधुरौषधवत् अतिरुच्या सेवितुं

जो लाभ उठाया, वह आगे बतलाया जाता है कि "यत्सारस्वतदुग्धसागरसुधासिद्धौषधास्वादिनां भगवन्मायामहायामिनी प्रस्वापाय न बोभवीति"— श्रीभाष्यकार स्वामी जी के श्रीमुख से निकले हुये सरस्वती प्रवाह ने ही श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ रूप को धारण किया। श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ ही क्षीर सागर हैं। क्षीर सागर जैसा भोग्य है वैसे ही श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ भी भोग्य हैं। अन्तर इतना ही है कि क्षीर सागर रसनेन्द्रिय से भोग्य है, श्रीभाष्य आदि ग्रन्थ श्रोत्रेन्द्रिय से भोग्य है। इन दोनों की भोग्यता में कोई अन्तर नहीं हैं। क्षीर सागर में मन्दर पर्वत से मन्थन कर अमृत निकाला गया है वह अमृत क्षीर सागर से भी बढ़कर भोग्य है। वैसे ही श्रीभाष्य आदि रूपी क्षीर सागर में बुद्धि रूपी मन्दर पर्वत को डालकर तर्क रूपी रस्सी से मन्थन कर जो सिद्धान्तार्थ रूपी अमृत निकाला जाता है, वह परम भोग्य है। ये सिद्धान्तार्थ ही सिद्धौषध हैं। सिद्धौषध महान व्याधि को भी नष्ट करता है, यह सिद्धान्तार्थ रूपी सिद्धौषध संसार रूपी महा व्याधि को नष्ट करता है। यह सिद्धौषध अमृतमय होने से अत्यन्त मधुर है, सब बड़ी रुचि से

शक्यते कटुत्वे हि औषधं व्याधिनिवारणार्थं महता क्लेशेन सेवनीयं स्यात्। इदं तु अमृतमयं सिद्धौषधमतिरुच्या सेवितुं शक्यते। लोकेऽनुभूयते निद्राविच्छेदकमौषधं सेवमानानां निद्रावर्धकरात्र्युपस्थितावपि निद्रा न भवति ते रात्रावपि जागरूका एव भवन्तीति। तथैवामृतपायिनो देवा अपि अनिमिषाः सन्तो रात्रावपि न निद्रान्ति तथैव श्रीभाष्यकारसारस्वतदुग्धसागरसुधासिद्धौषधास्वादिनोऽपि भगवन्मायारूपायां महायामिन्यामपि न प्रस्वपन्ति। यथा महायामिनी लोकं निद्रामग्नं कुर्वाणा ज्ञानात्यन्ताभावं साधयति स्वप्नकाले लोकस्य तत्तद्वस्तुस्वरूपं तिरोदधाना विपरीतज्ञानं जनयति कृत्स्ना रात्रिर्निद्रया भोक्तव्येति

इसका सेवन कर सकते हैं। लोक में देखा जाता है कि यदि कोई निद्रा को नष्ट करने वाले औषध का सेवन करता रहे तो उनको रात्रि में भी निद्रा नहीं आती है यद्यपि रात्रि सबको निद्रा में डालने वाली है, तथापि सिद्धौषध के समक्ष शक्तिहीन हो जाती है। अतएव सिद्धौषध का सेवन करने वाले सज्जन निद्रा को बढ़ाने वाली रात्रि उपस्थित होने पर भी निद्रा नहीं लेते किन्तु रात्रि में भी जागते ही रहते हैं। देवतागण भी अमृत पीकर अमृत के प्रभाव से जागते ही रहते हैं, उनको निद्रा नहीं आती, अतएव देवता अनिमिष कहलाते हैं उनके नेत्र बन्द नहीं होते सदा खुले ही रहते हैं। वैसे ही सिद्धान्तार्थ रूपी सिद्धौपध का सेवन करने वाले श्रीवैष्णव भगवन्माया रूपी महा रात्रि में भी न निद्रा लेते हैं न स्वप्न देखते हैं, किन्तु जागते ही रहते हैं। श्रीभगवान् की माया और रात्रि में अत्यन्त समता है। रात्रि सबको निद्रा में डालकर ज्ञान शून्य कर देती है, रात्रि सबको स्वप्न दर्शन कराती हुई वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को छिपाकर विपरीत ज्ञान

लोकस्य स्वविषये भोग्यताबुद्धिं जनयति तथैव "मम माया दुरत्यया" इति वर्णितप्रभावा भगवन्मायापि भगवत्स्वरूपतिरोधानकरी विपरीतज्ञानजननी स्वविषयायाश्च भोग्यबुद्धेर्जननी। रात्रावुपस्थितायां यथा सर्वेषां निद्रा अनिवार्या तथा मायारूपप्रकृतिसम्बन्धात् सर्वेषां तत्वज्ञानाभावोऽनिवार्यः। अतएव हि "अनादिमायया सुप्तः" इति वर्ण्यते। तथा निद्राविच्छेदकदिव्यौषधसेविनां समुपस्थितापि रात्रिर्न निद्रामापादयितुमलम् ते रात्रावपि यथा जागरूका एव वर्तन्ते तथैव श्रीभाष्यकारसार-

---

को उत्पन्न करती है, रात्रि सबके मन में इस इच्छा को उत्पन्न करती है कि मैं सम्पूर्ण रात्रि में निद्रित हो जाऊँ इस प्रकार सम्पूर्ण रात्रि का अनुभव करूं। कहने का भाव यह है कि रात्रि अपने विषय में भोग्यता बुद्धि को उत्पन्न करती है जिससे लोग रात्रि को परम भोग्य समझते हैं। वैसे ही श्रीभगवान् की माया भी सबको अज्ञानावस्था में डालकर ज्ञान शून्य कर देती है, श्रीभगवान् के स्वरूप को छिपा देती है जिससे माया में पड़े हुये लोग श्रीभगवान् को समझ नहीं पाते, विपरीत ज्ञान को भी उत्पन्न करती है। श्रीभगवान् की माया नाना

स्वतामृतसेविनां विषये उपस्थितापि महामाया न तत्वज्ञानाभावं साधयितुमलम् ते च भगवन्मायारात्र्यामपि जागरूका एव वर्तन्त इति भावः ॥६६॥

अनेन श्लोकेन जन्मनः प्राक्कालादारभ्य स्वबुद्धेर्जातं तं तमुत्कर्षं वर्णयन् तत्र श्रीरामानुजश्रीसूक्तीनां निरतिशयोत्कर्ष-जनकत्वरूपं महिमानमाह—

शुद्धादेशवशंवदीकृतयतिक्षोणीशवाणीशता (त)
प्रत्यादिष्टबहिर्गतिः श्रुतिशिरः प्रासादमासीदति ।
दुग्धोदन्वदपत्यसन्निधिसदासामोददामोदर-
श्लक्ष्णालोकनदौर्ललित्यललितोन्मेषा मनीषा मम ॥

की माया में पड़े रहने पर भी जागते ही रहते हैं। जिस प्रकार सिद्धौषध का सेवन करने वालों को रात्रि निद्रा में डाल नहीं पाती वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी के सिद्धान्तों को मानने वालों को माया भी अज्ञान में नहीं डाल पाती है। श्रीभाष्यकार स्वामी जी के कृपापात्र श्रीवैष्णव श्रीभाष्य आदि में प्रतिपादित सिद्धान्तों को हृदयंगम कर मायातीत हो जाते हैं। यही श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों का अभ्यास करने वाले विद्वत्समाज को मिलने वाला महा लाभ है ॥६६॥

इस श्लोक से श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि मेरी बुद्धि अधिक सौभाग्य से युक्त है क्योंकि जन्म के पूर्व से ही लेकर इसका अधिका-धिक महत्व बढ़ते ही आया है, महत्व बढ़ाने में श्रीरामानुज श्रीसूक्तियों का प्रमुख हाथ है—

दुग्धोदन्वदपत्यसन्निधिसदासामोददामोदरश्लक्ष्णालोकनदौर्ललित्यललि-तोन्मेषा—क्षीर समुद्रजा लक्ष्मी के सान्निध्य के कारण सदा प्रसन्न

*"दुग्धोदन्वदपत्यसन्निधिसदासामोददामोदरश्लक्ष्णालोक-नदौर्ललित्यललितोन्मेषा" सर्वेषु समुद्रेषु दुग्धोदन्वाँनुत्कृष्टः यतस्तस्य संपत्समृद्धिरधिका रत्नानि प्रस्तरखण्डवत् तत्र सर्वत्र सुलभानि विप्रकीर्णानि सन्ति मुक्ताराशयः सिकताराशिवत् सन्ति प्रवाललताः शैवालयन्ते कल्पवृक्षास्तस्यवेलाप्ररूढावृक्षाः सुधा तत्र भैक्षं वस्तु तस्य नामैव रत्नाकर इति तदनेनोपपादनेन तस्य संपत्समृद्धिरभ्यधिकेति सिध्यति। एवं संपत्समृद्धः सन्नपि स

भगवान् के कटाक्ष से विकसित, *मम मनीषा*—मेरी बुद्धि, *शुद्धादेशवशंवदीकृतयतिक्षोणीशवाणीशतप्रत्यादिष्टबहिर्गतिः*—सदाचार्य के उपदेश से यतिराज की सूक्तियों का ज्ञान प्राप्त कर इधर उधर न जाकर, *श्रुतिशिरः प्रासादमासीदति*—वेदान्त के प्रासाद में पहुंचती है।

"दुग्धोदन्वदपत्यसन्निधिसदासामोददामोदरश्लक्ष्णालोकनदौर्ललित्यललि-तोन्मेषा"—मेरी बुद्धि का विकास सर्वप्रथम तब हुआ जब श्रीमहालक्ष्मी जी और श्रीमन्नारायण भगवान् की कृपा दृष्टि मेरी बुद्धि पर पड़ी। गर्भ में रहते समय में ही श्रीमहालक्ष्मी जी की कृपा दृष्टि पड़ी। उत्पन्न होते समय श्रीभगवान की कृपा दृष्टि पड़ी। श्रीमहालक्ष्मी जी क्षीर सागर की पुत्री हैं। सब समुद्रों में क्षीर समुद्र श्रेष्ठ है क्योंकि वह अधिक संपन्न है, उसमें सर्वत्र रत्न ही रत्न भरे हैं जैसे भूलोक में सर्वत्र पत्थर के टुकड़े सुलभ हैं वैसे वहाँ रत्न सुलभ हैं। बालू की राशि की तरह वहाँ मोतियों की राशि लगी रहती है। शैवाल की तरह वहाँ प्रवाल (मूंगा) की लतायें फैली हुई हैं। वहाँ उगने वाले वृक्ष तो कल्प वृक्ष हैं, वहाँ अमृत सब भिक्षुकों को रूप में दिया जाता है, क्षीर समुद्र का नाम ही रत्नाकर है। इस निरूपण में पाठकों के समझ में आया होगा कि द सम्पन्न है। अत्यन्त सम्पन्न

न कदर्यः किं तु महावदान्यः यतः सः स्वं मथ्नतामपि सर्वेषां देवानामभिमतप्रदानेन मनोरथान् पूरयामास। अतएव हि तस्यौदार्यमित्थं वर्ण्यते "लक्ष्म्या श्रीपुरुषोत्तमो हिमरुचा गौरीप्रियोऽलंकृतः देवेन्द्रोऽपि विमानवारणहयस्त्रीरत्नकल्पद्रुमैः। पीयूषैरमितैस्त्वया दिविषदश्चान्ये कृतार्थीकृताः श्रीमन् क्षीरनिधे त्वदीयमहिमा नूनं न वाग्गोचरः॥" इति। अस्य क्षीरसमुद्रस्य पुत्री महालक्ष्मीः सापि सर्वसंपन्निधिर्महावदान्या। अस्याः कृपाकटाक्षो

होता हुआ भी क्षीर समुद्र कृपण नहीं है, वह अत्यन्त उदार है। उसने शत्रुओं को भी सर्वस्व दिया। देवता और असुर मथकर उसको अपार कष्ट देरहे थे, तो भी उसने इन लोगों को सर्वस्व दिया। उसके समक्ष सब देवता याचक बन गये, वह दाता बन गया। सब देवताओं का हाथ नीचे रह गया, उसका हाथ ऊपर हो गया। बड़े बड़े देवताओं को भी उसके समक्ष हाथ पसारने में संकोच नहीं हुआ उसको देने में संकोच नहीं हुआ। उसने अपनी कन्या श्रीमहालक्ष्मी जी को पुरुषोत्तम श्रीभगवान को प्रदान कर सम्मानित किया, चन्द्रमा देकर श्रीशङ्कर जी को अलंकृत किया, विमान ऐरावत गज उच्चैःश्रवा अश्व अप्सरा रत्न और कल्पवृक्ष देकर त्रिलोक के अधिपति इन्द्रदेव को सम्मानित किया, अमृत पिलाकर सब देवताओं को कृतार्थ किया। तैंतीस करोड़ देवताओं में एक भी न बचा जिसने क्षीर समुद्र से कुछ न कुछ लिया न हो। लोक न्याय यही है कि कष्ट देने वालों को दण्ड देना चाहिये। यहाँ तो मन्थन करने वाले देवताओं को प्रेम से सर्वस्व देकर क्षीर समुद्र ने अपने को महोदार सिद्ध किया। क्षीर समुद्र की महिमा वाणी से कही नहीं जा सकती। इसी क्षीर समुद्र की पुत्री श्रीमहालक्ष्मी जी संपूर्ण संपत्ति की स्वामिनी हैं, अत्यन्त उदार भी हैं। यदि गर्भस्थ

स वै मोक्षार्थचिन्तकः । पश्यत्येनं जायमानं ब्रह्मा रुद्रोऽथवा पुनः । रजसा तमसा चास्य मानसं समभिप्लुतम् ॥ इति । इत्थं विधः श्रीभगवत्कटाक्षो मयि जन्मकाल एव निपतितः अत्र हेतुस्तस्य दयोद्रालोकनस्य दौर्ललित्यं स्वैर व्यापार एव मयि तत्प्राप्त्यनुगुणा योग्यता तु नास्ति श्रीभगवत्कटाक्षविषयीकारोत्तरं मम मनीषाऽद्वेषाभिमुख्यसात्त्विकसंभाषणादिललितोन्मेषवती जाता । एषु सद्गुणेषु संपन्नेषु आचार्यसम्बन्धोऽवश्यंभावी । "ईश्वरस्य च सौहार्दं यदृच्छासुकृतं तथा । विष्णोः कटाक्षमद्वेष

पर पड़े तो वह जीव अवश्य सात्त्विक हो जायगा, तथा मोक्षोपयोगी अर्थों का चिन्तन करता रहेगा। यदि जन्मते समय किसी जीव पर ब्रह्मा जी या शिवजी की दृष्टि पड़ जाय तो उस जीव का मन रजोगुण और तमोगुण से व्याप्त हो जायगा। तीनों देवों की कृपादृष्टि में इतना अन्तर इसलिये हुआ करता है कि ये तीनों देव सत्त्व रज और तम इन तीनों गुणों के अधिष्ठातृ देवता हैं।' श्रीभगवान की कृपादृष्टि जन्मते समय मेरे ऊपर पड़ी। इसमें कारण यह नहीं है कि मैंने कोई प्रबल पुण्य किया हो, किन्तु उस कृपादृष्टि का स्वच्छन्द व्यापार ही इसमें कारण है। वह कृपादृष्टि स्वच्छन्द है, मेरे ऊपर पड़ने के लिये मुझे ढूंढती रही, मैं मिल गया, मेरे ऊपर पड़ गयी। श्रीभगवान की कृपादृष्टि से पड़ने से आत्मकल्याण के मार्ग में अग्रसर होते हुए मैंने सदाचार्य के सम्बन्ध को पाया। शास्त्र में सदाचार्य का सम्बन्ध प्राप्त करने के लिये छः कारण बतलाये हैं—(१) सर्वप्रथम जीवों के विषय में श्रीभगवान कल्याण कामना करते हैं, (२) अनन्तर उस कल्याण कामना के प्रभाव से जीव यदृच्छा से बिना समझे बूझे सुकृत करने लगते हैं, (३) उन सुकृतों को निमित्त बनाकर श्रीमन्नारायण भगवान विशेष रूप

आभिमुख्यं च सात्विकैः। संभाषणं षडेतानि ह्याचार्यप्राप्ति-हेतवः॥" इति ह्युच्यते।

*"शुद्धादेशवशंवदीकृतयतिक्षोणीशवाणीशताप्रत्यादिष्टबहिर्गतिः"। एवं सदाचार्यसंबन्धे संपन्ने आचार्यकृपया शुद्धादेशः सत्संप्रदायसिद्धसमीचीनोपदेशो लभ्यते अथवा शुद्धानां भ्रमप्रमादाशक्तिविप्रलम्भदोषरहितानामाचार्याणां सकाशादुपदेशो लभ्यते। तेन वशंवदीकृता स्वायत्तीकृता भवति यतिक्षोणीशस्य श्रीयतिराजस्य वाणी तस्या अभ्यासेन तस्यामीशता तदर्थनिर्णय सामर्थ्यं भवति, तयेशतया प्रत्यादिष्टबहिर्गतिर्निराकृतबहिर्व्यापारा

से कृपाकटाक्ष करते हैं (४) उस कृपादृष्टि के प्रभाव से जीवों के मन से द्वेष भाव मिट जाता है (५) अनन्तर जीव श्रीभगवान के अभिमुख होने लगता है (६) अनन्तर सात्विकों के साथ वह संभाषण करता है, अनन्तर सत्सङ्ग के प्रभाव से वह सदाचार्य के समीप पहुंचता है। इसी रीति से हमको सदाचार्य श्रीवादिहंसाम्बुवाहाचार्य का सम्बन्ध प्राप्त हुआ।

"शुद्धादेशवशंवदीकृतयतिक्षोणीशवाणीशताप्रत्यादिष्टबहिर्गतिः"—इस प्रकार सदाचार्य संबन्ध प्राप्त होने के अनन्तर शुद्ध आचार्य से शुद्ध उपदेश हम को प्राप्त हुआ, भ्रम प्रमाद अशक्ति और प्रतारण करने की इच्छा, इन दोषों से रहित होने के कारण आचार्य अत्यन्त शुद्ध हैं। सत्संप्रदाय परम्परा से उपदेश प्राप्त हुआ, अतः उपदेश भी शुद्ध है। सदाचार्य के उपदेश से यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी की सभी वाणियां अर्थात् सभी ग्रन्थ स्वायत्त हुये, उन ग्रन्थों का अभ्यास करते २ उन ग्रन्थों पर मेरी बुद्धि का पूरा आधिपत्य होगया। उन ग्रन्थों के अर्थों का निर्णय करने में मेरी बुद्धि पूर्ण सामर्थ्य रखती है। इन

भवति मे मनीषा एतद्रस्यतातिरेकादन्यत्र न गच्छतीत्यर्थः। एवं विधा मे मनीषा श्रुतिशिरः प्रासादं श्रुतिशिरोरूपं वेदान्तरूपं प्रासादं राजगृहमासीदति प्राप्नोति सर्ववेदार्थनिर्णयाय प्रभवतीत्यर्थः।

अथवा अनेन श्लोकेन श्रीदेशिकः स्वबुद्धेराचार्योपदेशलाभतन्निबन्धन - श्रीरामानुजदिव्यसूक्तिवशीकरणतद्धेतुकबहिर्मतनिरासतत्कृतश्रीभगवत्कटाक्षलाभतत्कृतनवनवोन्मेषशीलत्वतत्कृतवेदान्ताचार्यकनिर्वहणसामर्थ्यादिरूपं महिमानं सदृष्टान्तमाह।

ग्रन्थों के अनुभव में मग्न मेरी बुद्धि ने बाहर इधर उधर जाना छोड़ दिया अर्थात् इतर ग्रन्थों का अवलोकन करना छोड़ दिया। उन ग्रन्थों से प्राप्त होने वाला रसास्वाद मेरी बुद्धि को उन ग्रन्थों में लगा देता है। "मे मनीषा श्रुतिशिरः प्रसादामासीदति" इस प्रकार श्रीभाष्यकार स्वामी के ग्रन्थों के मनन से परिपूर्ण पाण्डित्य को प्राप्त कर मेरी बुद्धि वेदान्त रूपी प्रासाद में पहुँच रही है। वेदों का शिर है वेदान्त। वेदान्त ही एक प्रासाद है, उसमें चढ़कर मेरी बुद्धि विहार करती है, वेदान्त के अर्थों का निर्णय करती है। मेरी बुद्धि ने इतनी योग्यता को प्राप्त कर लिया। श्रीरामानुज स्वामी जी के ग्रन्थों के अध्ययन से ही यह योग्यता प्राप्त हो सकी।

इस श्लोक का दूसरा अर्थ भी है, वह इस प्रकार है श्रीदेशिक स्वामी जी इस श्लोक में कहते हैं कि मेरी बुद्धि ने आचार्य के उपदेश से श्रीरामानुज स्वामी जी की श्रीसूक्तियों को वश में किया, उससे उन नास्तिकों के मतों का खण्डन किया जो वेदों को प्रमाण न मानते थे, अतएव वेदों के बाहर रहते थे। परमत खण्डन से प्रसन्न श्रीभगवान की कृपा दृष्टि मेरी बुद्धि पर पड़ी, उससे मेरी बुद्धि नव २ विकासों

प्रायं सूचितवति सति तदभिज्ञाय तदनुभवार्थं प्रासादमारोहतीति दार्ष्टान्तिको यथा—श्रुतिशिरोरूपे दिव्यप्रासादे उत्तमनायके श्रीभगवति विराजमाने सति तदनुभवोत्सुकां मन्मनीषारूपा-मुत्तममनीषां वाह्यकुदृष्टिषु रुन्धत्सु सत्सु मन्मनीषारूपा नायिका शुद्धस्य श्रीवादिहंसाम्बुवाहस्य सदाचार्यस्यादेशेन श्रीयतिराजस्य दिव्याज्ञारूपं वाणीशतं प्राप्य तादृशाज्ञाभिर्वाह्यकुदृष्टीन् निरस्यो-

---

उत्तम नायक अपने नेत्रों से अभिप्राय को सूचित करता है, नायिका समझ लेती है कि ये बुलाते हैं, अनन्तर वह नायिका अपने हाव भाव को व्यक्त करती हुई उसे मिलने के लिये उस प्रासाद में चढ़ती है, उन दोनों का उस प्रासाद में जो वार्तालाप इत्यादि हुआ, वह वर्णनातीत है। यह एक दृष्टान्त है। अब दार्ष्टान्तिक का निरूपण किया जाता है। वेदों का शिर उपनिषद् भाग वेदान्त कहलाता है वही एक प्रासाद है उसमें श्रीभगवान विराजमान हैं क्योंकि उपनिषदों में ही श्रीभगवान का विशद वर्णन मिलता है, श्रीभगवान ही उत्तम नायक हैं, उनका अनुभव करने के लिये हमारी बुद्धि लालायित रहती है, हमारी बुद्धि ही वह नायिका है। वेदों को न मानने वाले नास्तिक लोग तथा वेदों को प्रमाण मानकर भी गलत अर्थ करने वाले कुदृष्टि लोग ही वे दुष्ट हैं जो हमारी बुद्धि रूपी नायिका को अपने सिद्धान्त में फंसाना चाहते हैं, अतएव हमारी बुद्धि को रोक रक्खे हैं श्रीभगवान रूपी उत्तम नायक से मिलने नहीं देते हैं। बुद्धि रूपी नायिका इस आपत्ति से बचने के लिये सदाचार्य रूपी सत्पुरुषों के शरण में जाती है, उन लोगों के आदेश से श्रीयतिराजरूपी महाराज के आज्ञा पत्रों को प्राप्त करती है, श्रीयतिराज के ग्रन्थ ही वे आज्ञा पत्र हैं, श्रीयतिराज की आज्ञारूपी ग्रन्थों को उन्हें सुनाती है। इन दिव्याज्ञाओं को सुनते ही

त्तमनायकं श्रीभगवन्तमनुबुभूषन्ती श्रुतिशिरः प्रासादस्थे श्रीभगवति चेदं सर्वं दृष्ट्वाऽस्मासु प्रेमातिरेकादेव हीयं बाह्यकुदृष्टीन् निराचकारेति सानुग्रहकटाक्षविशेषैः स्वाशयं प्रकाशितवति सति तल्लाभेन नवनवोन्मेषान् भजन्ती श्रीभगवन्तमनुभवितुं श्रुतिशिरः प्रासादमारोहतीति ।

***"शुद्धादेशवशंवदीकृतयतिक्षोणीशवाणीशतप्रत्यादिष्टबहिर्गतिः"**

वे नास्तिक और अर्धनास्तिक रूपी दुष्ट लोग भाग जाते हैं । इस प्रकार उन दुष्टों को भगाकर मेरी बुद्धि श्रीभगवान से मिलने के लिये चेष्टा करती रहती है । वेदान्तरूपी प्रासाद में विराजने वाले श्रीभगवान इस संपूर्ण घटना को स्वयं देखकर सोचते हैं कि इस बुद्धि को वस्तुतः मेरे विषय में विशुद्ध उत्कट प्रेम है, इस लिये इसने यतिराज श्रीरामानुज स्वामी जी की दिव्याज्ञारूपी ग्रन्थों को बड़े परिश्रम से प्राप्त कर उन आज्ञाओं को सुनाकर उन धूर्तवादियों को भगाया जो इसको अपने वश में करना चाहते थे । अब मुझ को इस पर अवश्य प्रेम करना चाहिये, मेरे प्रेम को प्राप्त करने की पूरी योग्यता इसी में है । इस प्रकार सोचकर श्रीभगवान श्रीमहालक्ष्मी जी के साथ आनन्दित होते हुये अपने नेत्रों से अपने अनुकूल अभिप्राय को सूचित करते हैं । उन कटाक्षों को प्राप्त कर मेरी बुद्धि ने समझ लिया कि श्रीभगवान मुझे बुलाते हैं, तथा अपने संपर्क में रखना चाहते हैं । इससे प्रफुल्लित मेरी बुद्धि नव विकासों से अपने हाव भावों को व्यक्त करती हुई वेदान्तरूपी उस प्रासाद में चढ़ती है । अनन्तर वहाँ उन दोनों का जो व्यवहार हुआ उसे बतलाने के लिये कोई शब्द मेरे पास नहीं है । इस भाव को इस श्लोक से व्यक्त करते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं—

मम मनीषा काचिदुत्तमनायिका श्रुतिशिरः प्रासादस्य श्रीभगवतोऽनुभवार्थमेवोत्पन्ना वशीकरणेच्छुभिर्बाह्यकुदृष्टिभिः स्वस्वमतप्रदर्शनेन प्रतार्यमाणा निरुध्यमाना च सती तान्निराचिकीर्षन्त्यपि निराकरणोपायमजानाना शुद्धं सदाचार्यं श्रीवादिहंसाम्बुदाचार्यं शरणमुपगम्य तदनुग्रहेण यतिराजस्य दिव्याज्ञारूपं वाणीशतं प्राप्तवती येन बाह्यकुदृष्टीनां रोधकानां निरासः सुखेन संपद्येत।

"शुद्धादेशवशंवदीकृतयतियतिक्षोणीशवाणीशतग्रस्यादिष्टबहिंगतिः"—श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि मेरी बुद्धि एक नायिका स्त्री है, पुरुषोत्तम श्रीभगवान उत्तम नायक हैं जो वेदान्तरूपी प्रासाद में विराजमान रहते हैं। *श्रीभगवान का अनुभव करने के लिये ही मेरी* बुद्धि उत्पन्न हुई है, अतएव श्रीगोदाम्बा जी की तरह मेरी बुद्धि बचपन से ही श्रीभगवान के विषय में आसक्त हो गई है। नास्तिक और अर्ध नास्तिक मेरी बुद्धि को अपने सिद्धान्तों में फंसाना चाहते थे, मैं सोचता था कि मेरी बुद्धि उनकी चिकनी चुपड़ी बातों में अब फंसी अब फसी। परन्तु मेरा सोचना गलत था, मेरी बुद्धि उन लोगों के वादों से विचलित नहीं हुई। मेरी बुद्धि चाहती थी कि इन सब धूर्तों को परास्त कर यहाँ से भगा दें, परन्तु क्या किया जाय, भगाने का कोई उपाय उसे नहीं सूझता था। वह विह्वल हो उठी, श्रीभगवान की *निर्हेतुक कृपा काम कर गई सौभाग्य से* मेरी बुद्धि को एक सत्पुरुष से भेंट हो गई, वे सत्पुरुष अत्यन्त शुद्ध हैं, भ्रम प्रमाद अशक्ति और धोखा देने की इच्छा इत्यादि सभी दोषों से वे अलिप्त हैं वे सत्पुरुष दूसरे कोई नहीं, मेरे आचार्य श्रीवादिहंसाम्बुदाचार्य ही हैं, उनके विशुद्ध उपदेशों को मेरी बुद्धि सुनने लगी। वह उपदेश आचार्य परम्परा से प्राप्त हुआ था, अतएव अत्यन्त शुद्ध था, उसमें काल्पनिक

श्रीवादिहंसाम्बुदाचार्यः स्वयं शुद्धः तदुपदेशश्च शुद्धः अतएव यतिराजस्य दिव्याज्ञारूपं वाणीशतं यथावत् सुलभमभूत्। अन्येषामुपदेशोऽपरिशुद्धः तेन यतिक्षोणीशस्य दिव्याज्ञारूपं वाणीशतं न यथावदवगन्तुं शक्यम्। "अस्मद्देशिकसंप्रदायरहितैरद्यापि नालक्षितः" इति ह्युच्यते। सदाचार्यस्य सदुपदेशेन मन्मनीषया यतिक्षोणीशवाणीशतं वंशवदीकृतमभूत् यथोत्तमनायिकया सत्पुरुषाणामादेशेन राज्ञः सकाशादाज्ञापत्राणि लभ्यन्ते। श्रीवादिहं-

---

अर्थ कहीं नहीं था। हमारे आचार्य इस बात को ताड़ गये थे कि मेरी बुद्धि असल में क्या चाहती है। वे बहुत हर्षित हुये। वे यही चाहते थे कि योग्य अधिकारी को सब शास्त्रों को पढ़ा कर बुद्धि को इतनी विकसित करा दी जाय जिससे वह बुद्धि नास्तिक और अर्धनास्तिकों का खण्डन करती हुई श्रीभगवान में अत्यन्त आसक्त हो जाय। इस सदिच्छा से प्रेरित होकर हमारे आचार्य ने सदुपदेश देना प्रारम्भ किया। इस प्रकार सदुपदेश पाकर मेरी बुद्धि ने बीस वर्षों के अन्दर यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी की दिव्याज्ञारूपी सभी ग्रन्थों को स्वायत्त किया। उन ग्रन्थों के मर्म को अच्छी तरह से हृदयंगम किया। उनके सदुपदेश के प्रभाव से ही ऐसा हो सका। दूसरों से उपदेश प्राप्त करने पर इतनी योग्यता न हो सकती थी। आचार्य अनुग्रह से मेरी बुद्धि ने उन ग्रन्थों में सर्वाधिकार प्राप्त किया। इसके समक्ष उन ग्रन्थों का कोई भाव छिपा नहीं रह गया। श्रीयतिराज की दिव्याज्ञारूपी ग्रन्थों का प्राप्त करना और राजा की आज्ञा को प्राप्त करना एक ही बात है। जिस प्रकार वह उत्तम नायिका राजा की आज्ञाओं को प्राप्त कर उन धूर्तों को सुनाती है जो इसको अपने वश में रखना चाहते थे, तदर्थ चिकनी चुपड़ी बातें कहकर इसको रोक रहे और थे जो एक प्रकार

साम्बुदाचार्योपदेशेऽपति श्रीभाष्यादिसूक्तीनां यथावदर्थो न ज्ञायेत सदाचार्योपदेशात् सम्यक्स्पर्थान् विदित्वा मन्मनीषा श्रीभाष्य-कारश्रीसूक्तिषु सर्वाधिकारं प्राप। यथा सोत्तमनायिका राज्ञ आज्ञाः प्राप्य स्ववशीकरणार्थमुपस्थितान जारपुरुषान्निराकरोति एवं मन्मनीषा मदाचार्योपदेशात् यतिराजवाणीशतं प्राप्य स्वं वशयितुमुपस्थितान् बाह्यकुदृष्टीन् प्रत्यादिष्टवती येषां वेदाद् बहि-र्गतिर्भवति। श्रीवादिहंसाम्बुदाचार्यादुपदेशेऽलब्धे श्रीभाष्याद्यर्था अविदिता एव स्युः तेष्वविदितेषु बाह्यनिरासोऽपि न सिद्धयेत्। यथा तयोत्तमनायिकया स्वस्वपत्नीर्हित्वा बहिर्गमनशीला जार-पुरुषा निराक्रियन्ते तथैव मन्मनीषयापि वेदबाह्या निराकृताः।

से जार पुरुषों के समान कार्य करते थे। वैसे ही मेरी बुद्धि भी सदाचार्य के उपदेश से श्रीयतिराज की दिव्याज्ञारूपी श्रीसूक्तियों को प्राप्त कर उन नास्तिक और अर्धनास्तिकों को सुनाने लगी जो मेरी बुद्धि को अपने सिद्धान्तों में फंसाना चाहते थे, तदर्थ कपट युक्तियों को सुनाकर मेरी बुद्धि को श्रीभगवान के भजन से रोकते थे। जिस प्रकार उस उत्तम नायिका के मुख में राजाज्ञा को सुनते ही वे धूर्त भाग जाते हैं, वैसे ही श्रीयतिराज की दिव्याज्ञारूपी श्रीसूक्तियां को सुनते ही ये नास्तिक और अर्धनास्तिक शास्त्रार्थ भूमि से भाग से जाते हैं। यह सब आचार्यानुग्रह का प्रभाव है, यदि श्रीवादिहंसाम्बुवाहाचार्य का सदुपदेश प्राप्त नहीं हुआ होता, तब श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों का स्वायत्त करना असंभव है, इन ग्रन्थों को पूरा स्वायत्त किये बिना नास्तिकों का परास्त करना सर्वथा कठिन है। जिस प्रकार वह उत्तम नायिका उन धूर्त जार पुरुषों को राजाज्ञा सुनाकर भगाती है जो अपनी २ स्त्रियों का परित्याग कर बाहर २ घूमते थे, वैसे ही मेरी बुद्धि भी

किं च यथा धार्मिकराजस्य राज्ये राजाज्ञाबलात् स्त्रियो बहिर्गतिं हित्वा भर्तृमते वर्तन्ते तथैव मन्मनीषापि श्रीयतिराजवाणीबलात् विषयान्तरप्रवेशं दुर्मतप्रवेशं च हित्वा भागवतमते वर्तते । किंच यथा सत्पुरुषाणां प्रबोधनेन स्त्रियः पतिव्रतानामुत्तमपुरुषवंशजानामुत्तमस्त्रीणां संसर्गेण बहिर्गमनादिदोषरहिता भवन्ति तथा मदीया मनीषापि सदाचार्याणामुपदेशेन भगवदेकप्रतिपादिकानां यतिराजोद्भवानां वाणीनां सततपरिचयान्मतान्तरप्रावण्यं विषया-

---

उन नास्तिक और अर्ध नास्तिकों को भगाती है जो वेदों की आज्ञाओं को न मानते थे, तथा वेदों से बहिर्भूत सिद्धान्त क्षेत्र में विचरते थे। किंच, जिस देश में धार्मिक राजा का शासन चलता है उस देश की स्त्रियाँ बाहर मनमानी घूमना इत्यादि छोड़कर भर्ता के मत में स्थिर रहती हैं। वैसे ही श्रीवैष्णवों के हृदय राज्य में यतिराज का शासन चलता है, अतएव मेरी बुद्धि विषयों में आसक्त होना तथा दुष्ट मतों में प्रवेश करना इत्यादि मनमाने आचरण को परित्याग कर जगत के भर्ता श्रीभगवान के सम्मत भागवत मत में स्थिर रहती है। किंच, लोक में देखा जाता है कि सत्पुरुष अभिभावकों के सदुपदेश पाकर स्त्रियाँ उन उत्तम स्त्रियों के संसर्ग में रहा करती हैं जो उत्तम वंश में उत्पन्न हुई हैं तथा पतिव्रता हैं। इन उत्तम स्त्रियों के सहवास से सामान्य स्त्रियाँ भी बाहर मनमाना घूमना इत्यादि छोड़कर पतिव्रता बन जाती हैं। वैसे ही मेरी बुद्धि भी सदाचार्य के उपदेश से उन दिव्य वाणियों के परिचय को बढ़ाने लगी जो श्रीयतिराज के विद्यावंश में आविर्भूत हुई है तथा जगत के पति श्रीभगवान के प्रतिपादन में ही तात्पर्य रखती हैं। इन दिव्य वाणियों के अनवरत परिचय के प्रभाव से मेरी बुद्धि विषयासक्ति और मतान्तर प्रवेश को छोड़कर

न्तरश्रावणं च निराकृतवती यथा तयोत्तमनायिकया वशीकरणो-त्सुकेषु जारपुरुषेषु राजाज्ञाः श्रावयित्वा विद्रावितेषु सत्सु प्रासादस्थनायको मयि प्रेमातिरेकादेव किलेयमिमान् दूरान्निरा-चकारेति संतुष्य कटाक्षविशेषैः स्वाभिप्रायं सूचयति, तथा श्रीयतिराजवाणीशतश्रावणेन बाह्यकुदृष्टिषु मन्मनीषया निराकृतेषु सत्सु दिव्यदम्पतिभ्यां मन्मनीषाकटाक्षितेत्याह—

*"दुग्धोदन्वदपत्यसन्निधिसदासामोददामोदरश्लक्ष्णालोकन-दौर्ललित्यललितोन्मेषा मम मनीषा श्रुतिशिरः प्रासादमासीदति।"

इति । दुग्धोदन्वदपत्यं श्रीमहालक्ष्मीः तस्याः सन्निधानात् सदा

श्रीभगवान के विषय में उत्तम पतिव्रता बन गई है। जिस प्रकार राजाज्ञा को सुनाकर उस उत्तम नायिका के द्वारा उन धूर्त जार पुरुषों को भगाये जाने पर प्रासादस्थनायक इस नायिका के निश्छल प्रेम को समझ कर उस नायिका को अपनाने के लिये इङ्गितों से अपने अभिप्राय को सूचित करता है, उसी प्रकार श्रीयतिराज की दिव्या-ज्ञाओं को सुनाकर मेरी बुद्धि ने जब नास्तिक और अर्ध नास्तिकों को भगा दिया, तब वेदान्तरूपी प्रासाद में विराजने वाले श्रीलक्ष्मी नारायण रूपी दिव्य दम्पति ने अपने करुणा कटाक्षों से अपना सम्मति को व्यक्त करते हुये मेरी बुद्धि को आकृष्ट किया। यह अर्थ आगे इस प्रकार कहा जाता है कि—

"दुग्धोदन्वदपत्यसन्निधिसदासामोददामोदरश्लक्ष्णालोकनदौर्ललित्य-ललितोन्मेषा"—श्रीमहालक्ष्मी जी क्षीर समुद्र की पुत्री है, वह सर्वदा श्रीभगवान के समीप में ही रहती है, इस अभिप्राय से सर्वदा समीप में रहती है कि न जाने किस समय कौन जीव श्रीभगवान का आश्रय लेने के लिये दौड़ आयेगा, उस समय उसके पापों को गिनकर

सानन्दो वर्तते दामोदरः रूपलावण्यादियुक्तत्वात् श्रीमहालक्ष्म्या श्रीभगवत आनन्दो भवत्येव "जनकस्य सुताऽभीष्टा" इत्युक्तरीत्या यथा श्रीरामचन्द्रस्य जनकसुतात्वदृष्ट्या श्रीजानकी अत्यन्तमभिमतासीत् तथा श्रीमहालक्ष्मीः श्रीभगवतः सर्वदेवमनोरथपूरक-संपदाढ्यस्य रत्नाकरस्य क्षीरसागरस्य दुहितेत्यतो हेतोरत्यन्तमभिमता वर्तते। लोके पितरि अनभिजाते दरिद्रेऽस्पृहणीये च सति तत्पुत्र्यां भर्तुः प्रीतिर्ह्रसेत् किल नैवं प्रकृते श्रीमहालक्ष्म्यां क्षीरसागरकन्यकात्वाद्भगवतः प्रीतिरभ्यधिकैव वर्तते। किं च

श्रीभगवान दण्ड देने लगेंगे तो बहुत आपत्ति होगी, अतः जीवों को दण्ड से बचाने के लिये सर्वदा श्रीभगवान के समीप में रहना चाहिये, कभी इनसे अलग नहीं होना चाहिये। इस अभिप्राय से श्रीमहालक्ष्मी जी श्रीभगवान के समीप सर्वदा रहा करती हैं। इससे श्रीभगवान सर्वदा संतुष्ट रहते हैं। श्रीभगवान का श्रीमहालक्ष्मी के विषय में प्रसन्न रहने का कारण यह है कि श्रीभगवान समझते हैं कि यह श्रीमहालक्ष्मी जी उस क्षीर समुद्र की पुत्री हैं जो रत्नों का आकर है, तथा सर्व देवताओं के मनोरथों को पूर्ण करने के लिये पर्याप्त सर्वविध सम्पत्ति को अपने पास रक्खा करता है. तथा अत्यन्त उदार है। श्रीवाल्मीकि रामायण में वर्णन आया है कि "जनकस्य सुताऽभीष्टा" अर्थात श्रीरामचन्द्र जी श्रीसीता जी को यह समझकर अधिक पसन्द करते थे कि यह श्रीजनकराज की पुत्री हैं। वैसे ही श्रीभगवान यही समझकर श्रीमहालक्ष्मी जी पर अधिक प्रेम करते हैं कि यह श्रीक्षीर समुद्रराज की पुत्री हैं। लोक में देखा जाता है कि यदि कन्या का पिता कुलीन न हो दरिद्र हो तथा उदार नहीं हो तो उस कन्या के विषय में न केवल श्वशुर गृह वाले किन्तु पति भी कम ही प्रेम करते हैं। ऐसी बात प्रकृत

मन्मनीषया बाह्यकुदृष्टिषु निराकृतेषु श्रीभगवान् श्रीमहालक्ष्मी-मेत्यानया मनीषया न दुर्मतेषु प्रविष्टम् किंतु बाह्यकुदृष्टयो निराकृता इत्येतमर्थं कथयन् तया सह सानन्दो वर्तते। एवं सानन्दत्वादेव दिव्यदम्पत्योः करुणामयः सौम्यः कटाक्षो मन्मनीषायां प्रवृत्तः सामोदत्वाभावे नैवं विधः कटाक्षः प्रवर्तेत। किं च श्रीभगवान् दयालुत्वात् परमसुलभः अतएव हि यशो-

---

में नहीं है। यहाँ तो क्षीर समुद्र की पुत्री समझकर श्रीभगवान श्रीमहालक्ष्मी के विषय में अधिक प्रेम ही करते हैं, अतएव इन दोनों में कभी मतभेद नहीं होता, अतएव सृष्टि भी सुव्यवस्थित चलती है। जब मेरी बुद्धि ने शास्त्रार्थ में नास्तिक अर्धनास्तिकों को परास्त कर दिव्य दम्पति के प्रति अपने अडिग विश्वास को प्रकट किया, तब श्रीभगवान ने प्रसन्न होकर श्रीमहालक्ष्मी जी से कहा कि हे देवि ? देखो इस सुबुद्धि ने नास्तिक और अर्धनास्तिकों को परास्त किया श्रीमद्वेदमार्ग का प्रतिष्ठापन किया, हम दोनों की महिमा को जगत में विस्तारित किया, तीस बार श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों का प्रवचन कर हमारे श्रीभागवत मत को जगत के कोण २ में फैलाने में कुछ भी न उठा रक्खा ऐसा कार्य तो किसी ने अब तक नहीं किया, श्रीवैष्णवों के नित्य अनुभव के लिये इस दिव्य बुद्धि ने सौ से अधिक दिव्य ग्रन्थों का निर्माण किया। इस प्रकार निःस्वार्थ भाव से जन्म से लेकर हमारी सेवा इसने की इसको समुचित पारितोषिक देना चाहिये। इस प्रकार वार्तालाप करते हुये आनन्दित होकर उन दोनों दिव्य दम्पति ने मेरी बुद्धि पर करुणाकटाक्षों की वर्षा करदी। श्रीमहालक्ष्मी जी जगन्माता हैं, अतः किसी न किसी तरह जीवों का कल्याण करने में ही वे दृष्टि रखती हैं। श्रीभगवान परमदयालु हैं, अतएव सर्व सुलभ

दयोलूखले दाम्ना बद्धो दामोदर इति प्रथते। एवं विधयोः सानुकम्पयोः परमसुलभयोर्दिव्यदम्पत्योः कटाक्षे मन्मनीषायां प्रवृत्ते तेन च तयोः शुभसंकल्पे विज्ञाते मन्मनीषायां ललितोन्मेषाः प्रादुर्भूताः भगवत्कृपादृष्टिपात्रभूतायां मनीषायां नवनवोन्मेषाः प्रादुर्भवेयुरेव "प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता" इति ह्युच्यते। यथा नायकाभिप्राये विदिते नायिका ललितचेष्टाः कुर्वाणा नायकेन संजिगमिषन्ती नायकाधिष्ठितं प्रासादमधिरोहति, तथा गाम्भीर्यौदार्यादिमहागुणपरिपूर्णस्य क्षीरसागरस्य कन्यकायां सर्वकल्याणगुणनिधानभूतायां श्रीमहालक्ष्म्यां भगवदनुभवेन कृतार्था भवतु इति सानुग्रहं दृष्टिं पातयन्त्यां श्रीभगवति च श्रीमहालक्ष्मीमन्मनीषयोर्मनोरथसिद्धिर्भवतु इति सस्पृहमीक्षमाणे मन्मनीषापि नवनवोन्मेषान् विदधती दिव्यदम्पत्यनुभवार्थं

हैं, यहाँ तक सुलभ हैं कि प्रेमी भक्त उन्हें नचा सकते हैं तथा बाँध सकते हैं। इसलिये तो उनका दामोदर नाम पड़ा। उनके उदर में यशोदा से बंधी हुई रस्सी का चिन्ह अब तक है, इसलिये भक्त लोग उन्हें दामोदर पुकारते हैं। इस प्रकार ये दानों एक से बढ़कर एक दयालु हैं, इन दोनों को मेरी बुद्धि पर कृपा कटाक्षों की वर्षा करने में होड़ लग गई। गाम्भीर्य औदार्य इत्यादि महान गुणों के आकर क्षीर समुद्र की पुत्री तथा सर्व कल्याण गुणों के निधि जगन्माता श्रीमहालक्ष्मी जी ने यह कहकर कृपाकटाक्षों की वर्षा की कि यह सुबुद्धि हम दोनों के सम्पर्क में रहकर सर्वदा हमारे कल्याण गुणों का अनुभव करती हुई कृतार्थ हो जाय। श्रीभगवान ने यह कहकर कृपा दृष्टि डाली कि आपका मनोरथ पूर्ण हो तथा इस सुबुद्धि के सम्बन्धियों को भी यह सौभाग्य प्राप्त हो। दिव्य दम्पति की कृपा दृष्टि पड़ने की ही

दिव्यदम्पतिभ्यामधिष्ठितं श्रुतिशिरः प्रासादमासीदति । मन्मनीषाया एवं विधं भागधेयं दृष्ट्वा ममापि महानानन्दो भवति । यथा एकस्य पाठशालयामधीतवतोर्द्वयोर्मध्ये एकस्योत्कर्षे जाते परस्तेन सह स्वसम्बन्धं कुचेलन्यायेन प्रकाशयन् स्वस्याप्युत्कर्षमनुभवति तथा एकस्मिन् संसारे सहावस्थाय तापत्रयं भुक्तवतोरावयोर्मध्ये मनीषाया उत्कृष्टश्रीभगवत्सम्बन्धेन समुत्कर्षे जाते ऽहमपि मम मनीषेति सम्बन्धं प्रथयन् उत्कर्षं कृतकृत्यतां कृतार्थतां चानुभवामि ॥६७॥

श्रीभाष्यादिमर्मज्ञास्तिष्ठन्तु श्रीभाष्यादिशास्त्रं च तिष्ठतु

देर थी, फिर क्या कहना है, कृपा दृष्टि पड़ते ही हमारी बुद्धि में नूतन २ विकास अपने आप उसी प्रकार होने लगे जिस प्रकार वर्षा होते ही खेत में बीज अपने आप उगने लगते हैं। "मम मनीषा श्रुतिशिरः प्रासादमासीदति" जिस प्रकार वह नायिका नायक के अभिप्राय को इङ्गितों से जानकर हर्ष से हाव भावों को व्यक्त करती हुई उस प्रासाद पर चढ़ती है जहाँ पर नायक विराजमान रहते हैं। वैसे ही मेरी बुद्धि भी दिव्य दम्पति के कृपा कटाक्षों को प्राप्त कर नित्य नूतन विकासों को व्यक्त करती हुई वेदान्तरूपी प्रासाद में चढ़ती है जहाँ पर वे दिव्य दम्पति विराजमान हैं। जिस प्रकार प्रासाद में पहुंचने के बाद उस नायिका और नायक में होने वाले गुप्त वार्तालाप इत्यादि दिव्य व्यवहार, वर्णनातीत हैं, वैसे ही वेदान्तरूपी प्रासाद में पहुँचकर वहाँ विचरण करती हुई मेरी बुद्धि ने उन दिव्य दम्पति के गुणों का अनुभव कर जो दिव्य विमल आनन्द को प्राप्त किया वह भी वर्णनातीत है ॥६७॥

इस श्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि श्रीभाष्यकार

केवलं मम पुरतो वादाहवेषु को वा चक्षुरुन्मीलयितुं शक्त इत्यनेन श्लोकेनाह—

आस्तां नाम यतीन्द्रपद्धतिजुषामाजानशुद्धामति-
स्तच्चाव्याजविदग्धमुग्धमधुरं सारस्वतं शाश्वतम् ।
को वा चक्षुरुदञ्चयेदपि पुरस्साटोपतर्कच्छटा-
शस्त्राशस्त्रिविहारसंभृतरणास्वादेषु वादेषु नः ॥६८॥

स्वामी जी के संप्रदाय में विराजने वाले श्रीभाष्य आदि ग्रन्थों के मर्म समझने वाले निर्मल बुद्धि संपन्न सदाचार्यों को इन परवादियों को परास्त करने के लिये अपनी बुद्धि को उपयोग में लाने की आवश्यकता नहीं। उन लोगों के उत्तम ग्रन्थों को भी उपयोग में लाने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि अकेला मैं ही इनको परास्त करने के लिये पर्याप्त हूँ। मेरे सामने शास्त्रार्थ में कौन प्रतिवादी नेत्र खोलकर देख सकता है अतः श्रीवैष्णवों को श्रीसिद्धान्त को प्रतिवादियों से बचाने के लिये चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। अतः सभी श्रीवैष्णव निश्चिन्त होकर आत्मकल्याण मार्ग में अग्रसर हों, मैं श्रीसंप्रदाय की सेवा करने के लिये संनद्ध हूँ। इस अर्थ को व्यक्त करते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं।

यतीन्द्रपद्धतिजुषामाजानशुद्धामतिरास्तां नाम—जन्म से ही यतिराज संलग्न आचार्यों की बुद्धि स्वभावतः निर्मल है परवादियों को परास्त करने के निमित्त उनको अपनी बुद्धि लगाने की आवश्यकता नहीं, *अव्याज विदग्धमुग्धमधुरं शाश्वतं तच्चसारस्वतमास्तां नाम*—उनकी वाणी का प्रवाह सत्य शुद्ध सुन्दर मधुर और स्थायी है, उसे भी उपयोग में लाने की आवश्यकता नहीं, *साटोपतर्कच्छटाशस्त्राशस्त्रिविहारसंभृतरणा-*

*"यतीन्द्रपद्धतिजुषामाजानशुद्धा मतिरास्तां नाम" श्रीभाष्य-कार मतस्थानां श्रीकूरेशश्रीकुरुकेशश्रीप्रणतार्तिहराचार्यप्रभृतीनां जन्मनः प्रभृति स्वतः परिशुद्धा मतिरास्तां नाम तस्या दुर्वादिनो न पर्याप्ता इति भावः ।

*"अव्याजविदग्धमुग्धमधुरं शाश्वतं तच्च सारस्वतमास्तां नाम" यतीन्द्रपद्धतिजुषां यत् अव्याजं यथा तथा स्वभावतो विदग्धं प्रौढमर्थप्रतिपादनसमर्थं मुग्धं मनोहरं ललितं शब्दसौम्य-

---

स्वादेषु वादेषु नः पुरः को वा चक्षुरुदञ्चयेदपि—शास्त्रों द्वारा होने वाले युद्ध की तरह ही घटाटोप के साथ तर्क के बल पर होने वाले हमारे शास्त्रार्थों को कौन आँख उठाकर देख सकता है ?

"यतीन्द्रपद्धतिजुषामाजानशुद्धा मतिरास्तां नाम"—यतिराज श्रीभाष्य-कार स्वामी जी के सम्प्रदाय में जितने विद्वान विद्यमान हैं, उन लोगों की बुद्धि स्वभाव से निर्मल है, क्योंकि जन्म लेते समय श्रीभगवान की कृपा दृष्टि पड़ने से उनकी बुद्धि सत्वगुण से परिपूर्ण हो गई है, अतएव निर्मल है, भ्रम और संशय ही बुद्धि के मल हैं बुद्धि में रजो-गुण और तमोगुण होने पर ही भ्रम और संशय हुआ करते हैं सत्व-गुण से परिपूर्ण होने के कारण यथार्थ ज्ञान ही रहता है। यही बुद्धि की निर्मलता है। इन परवादियों को परास्त करने के लिये इनको अपनी निर्मल बुद्धि का उपयोग करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि ये सम्पूर्ण परवादि गण मिलकर भी उस बुद्धि के लिये पर्याप्त नहीं है। मशक को मारने के लिये दण्ड प्रयोग की आवश्यकता नहीं है।

अव्याजविदग्धमुग्धमधुरं शाश्वतं तच्च सारस्वतमास्तां नाम"—इन लोगों की वाणी का प्रवाह इतना उत्तम है कि उसमें सब गुण विद्यमान हैं। इनकी वाणी का प्रवाह ग्रन्थ हैं। ये ग्रन्थ अत्यन्त श्रेष्ठ हैं, ये ग्रन्थ

तादियुक्तं मधुरं रसवद् अर्थमाधुर्ययुक्तं शाश्वतमेवं गुणोपेत-तयोत्तरकालेऽप्यनुसन्धातॄणां सुलभत्वात् चिरस्थापि वाद्यन्तरा दूषणीयं च यत् सारस्वतं प्रबन्धरूपमस्ति तदप्यास्तो नाम तदप्ये-तेषां निरासे नापेक्षणीयमिति भावः ।

*"साटोपतर्कच्छटाशस्त्राशस्त्रिविहारसंभृतरणास्वादेषु वादेषु नः पुरः को वा चक्षुरुदञ्चयेदपि" "मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति

स्वभाव से ही प्रौढ रहते हैं, अनेक सूक्ष्म अर्थों का प्रतिपादन करने में सामर्थ्य रखते हैं, ये ग्रन्थ मनोहर हैं, ललित हैं, सुनने में मधुर लगने वाले शब्दों से पूर्ण हैं तथा ये ग्रन्थ मधुर हैं, रस से पूर्ण हैं, अर्थों का माधुर्य इनमें व्याप्त हैं। ये ग्रन्थ शाश्वत हैं चिरस्थायी हैं क्योंकि जब उक्त गुण इनमें विद्यमान हैं, अतः इनका पठन पाठन चलता ही रहेगा, अतः ये ग्रन्थ चिरस्थायी हैं। किं च, ये ग्रन्थ परवादियों से खण्डित नहीं हो सकते हैं। इस प्रकार इन लोगों का ग्रन्थरूपी जो सरस्वती प्रवाह है, उसे भी उपयोग में लाने की आवश्य-कता नहीं। तब शङ्का उठती है कि इन परवादियों को कैसे परास्त किया जाय ? उत्तर में श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि—

"साटोपतर्कच्छटाशस्त्राशस्त्रिविहारसंभृतरणास्वादेषु वादेषु नः पुरः को वा चक्षुरुदञ्चयेदपि"—मैं अकेला ही इनको परास्त करने में समर्थ हूँ मुझे भी इनको परास्त करने के लिये अधिक शक्ति का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है, हमारे शास्त्रार्थों में ये परवादिगण नेत्र खोलकर देख नहीं सकते हैं, उत्तर देना तो दूर। हमारे शास्त्रार्थ ऐसे होते हैं कि उनमें तर्करूपी शस्त्रों से खेला जाता है, वादियों में परस्पर तर्कों का प्रहार चलता है, जिस प्रकार लोक में शस्त्रों से युद्ध किया जाता है, वैसे ही शास्त्रार्थ में वादी लोग तर्कों से युद्ध करते हैं, परस्पर तर्कों

तत्र वनौकसः। मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्तिसुग्रीवसन्निधौ ॥ अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबलाः। न हि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः॥" इति श्रीजानकीं समाश्वासयन् पवन-

---

से तर्कों को काटते हैं, नये २ तर्कों का प्रयोग करते हैं, उस समय वादियों को वही रसानुभव प्राप्त होता है, जो अच्छे योद्धाओं को युद्ध में रसास्वाद प्राप्त होता है, देखने वाली जनता को भी वही रसास्वाद मिलता है जो युद्ध देखने वाली जनता को प्राप्त होता है। इस प्रकार के हमारे शास्त्रार्थों में कौन नेत्र खोलकर देख सकता है? उत्तर देना तो दूर है, सर्व शास्त्रों में पूर्ण विद्वान भी नेत्र खोलकर देख नहीं सकते हैं। हमारे शास्त्रार्थ को भयंकरता को समझकर सब दुर्वादी अपने आप भाग जाते हैं। अतः मेरे रहते श्रीवैष्णवों को श्रीसम्प्रदाय की रक्षा के लिये चिन्तित नहीं होना चाहिये। सब लोग निश्चिन्त होकर आत्मकल्याण मार्ग में अग्रेसर होने की चेष्टा करें। मेरा यह कथन आत्म प्रशंसा के लिये नहीं किया गया है, किन्तु श्रीवैष्णवों को निश्चिन्त बनाने के लिये तथा परवादियों के समक्ष अपने यथार्थ स्वरूप को रखने के लिये कहा गया है। यह कथन श्रीहनूमान जी के उस कथन के समान है जो उन्होंने श्रीसीता जी के समक्ष कहा था। सुन्दरकाण्ड की कथा है कि जब श्रीसीता जी ने श्रीहनूमान जी से पूछा कि यहाँ सब वानर कैसे आयेंगे, मुझे तो यही प्रतीत होता है कि श्रीगरुड़ जी वायुदेव और आपकी ही यहाँ तक आने की शक्ति है चतुर्थ कोई नहीं आ सकता, तब श्रीहनूमान जी उत्तर में कहते हैं कि अर्थात् हे देवि! श्रीसुग्रीव के दरबार में हमसे श्रेष्ठ वानर रहते हैं, अथवा मेरे समान वानर रहते हैं, हमसे निकृष्ट वानर सुग्रीव के दरबार में नहीं है, मैं यहाँ आ गया हूँ, उनके लिये क्या कहना है, वे

तादियुक्तं मधुरं रसवद् अर्थमाधुर्ययुक्तं शाश्वतमेवं गुणोपेत-तयोत्तरकालेऽप्यनुसन्धातॄणां सुलभत्वात् चिरस्थापि वाद्यन्तरा दूषणीयं च यत् सारस्वतं प्रबन्धरूपमस्ति तदप्यास्तो नाम तदप्ये-तेषां निरासे नापेक्षणीयमिति भावः ।

"साटोपतर्कच्छटाशस्त्राशस्त्रिविहारसंभृतरणास्वादेषु वादेषु नः पुरः को वा चक्षुरुदश्वयेदपि" "मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति

स्वभाव से ही प्रौढ रहते हैं, अनेक सूक्ष्म अर्थों का प्रतिपादन करने में सामर्थ्य रखते हैं, ये ग्रन्थ मनोहर हैं, ललित हैं, सुनने में मधुर लगने वाले शब्दों से पूर्ण हैं तथा ये ग्रन्थ मधुर हैं, रस से पूर्ण हैं, अर्थों का माधुर्य इनमें व्याप्त हैं। ये ग्रन्थ शाश्वत हैं चिरस्थायी हैं क्योंकि जब उक्त गुण इनमें विद्यमान हैं, अतः इनका पठन पाठन चलता ही रहेगा, अतः ये ग्रन्थ चिरस्थायी हैं। किं च, ये ग्रन्थ परवादियों से खण्डित नहीं हो सकते हैं। इस प्रकार इन लोगों का ग्रन्थरूपी जो सरस्वती प्रवाह है, उसे भी उपयोग में लाने की आवश्य-कता नहीं। तब शङ्का उठती है कि इन परवादियों को कैसे परास्त किया जाय ? उत्तर में श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि—

"साटोपतर्कच्छटाशस्त्राशस्त्रिविहारसंभृतरणास्वादेषु वादेषु नः पुरः को वा चक्षुरुदश्वयेदपि"—मैं अकेला ही इनको परास्त करने में समर्थ हूँ मुझे भी इनको परास्त करने के लिये अधिक शक्ति का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है, हमारे शास्त्रार्थों में ये परवादिगण नेत्र खोलकर देख नहीं सकते हैं, उत्तर देना तो दूर। हमारे शास्त्रार्थ ऐसे होते हैं कि उनमें तर्करूपी शस्त्रों से खेला जाता है, वादियों में परस्पर तर्कों का प्रहार चलता हैं, जिस प्रकार लोक में शस्त्रों से युद्ध किया जाता है, वैसे ही शास्त्रार्थ में वादी लोग तर्कों से युद्ध करते हैं, परस्पर तर्कों

इदानींतनानां मृषावादिनां खण्डनार्थमपेक्षितं तर्कमीमांसादिशास्त्रपाण्डित्यं मम परिपूर्णं वर्तते यतीन्द्रेण तस्य मृषामतस्य खण्डितचरत्वात् तद्विषयेऽस्माभिश्चिन्तनीयं किमपि नास्ति अत इदानींतना मृषावादिनः सुखेन निरसितुं शक्या इत्यनेन श्लोकेनाह—

पर्याप्तं पर्यचैषं कणचरणकथामाक्षपादं शिशिक्षे
मीमांसामांसलात्मा समजनिषि मुहुः सांख्ययोगौ

शास्त्रार्थ में कोई भी वादी टिक नहीं सकता, मैं सब वादियों को परास्त कर सकता हूँ। यहां पर यह शंका होती है कि संपूर्ण भारतवर्ष में अद्वैत सिद्धान्त को मानने वाले अनेक विद्वान भरे पड़े हैं, वे अनेक दर्शनों को भी जानते हैं, उनको आप कैसे परास्त कर सकते हैं? इस शंका के उत्तर में श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि मैं इन मायावादी अद्वैतियों को अनायास परास्त कर सकता हूँ, कई बार मैंने किया भी है, मैं सभी दर्शनों को पूर्ण रूप से जानता हूँ अतः वे इन दर्शन शास्त्रों के सहारे हमारे सामने टिक नहीं सकते, किंच, श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने ही इस अद्वैत सिद्धान्तरूपी जंगल को पहले ही काट डाला है, अतः उनको परास्त करना सरल हो गया है हम लोगों को इस विषय में अणुमात्र भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।

इदानींतनानां मृषावादिनां खण्डनार्थमपेक्षितं तर्कमीमांसादिशास्त्रपाण्डित्यं मम परिपूर्णं वर्तते यतीन्द्रेण तस्य मृषामतस्य खण्डितचरत्वात् तद्विषयेऽस्माभिश्चिन्तनीयं किमपि नास्ति अत इदानींतना मृषावादिनः सुखेन निराकर्तुं शक्या इत्यनेन-श्लोकेनाह—

पर्याप्तं पर्यचैषं कणचरणकथामाक्षपादं शिशिक्षे
मीमांसामांसलात्मा समजनिषि मुहुः सांख्ययोगौ

शास्त्रार्थ में कोई भी वादी टिक नहीं सकता, मैं सब वादियों को परास्त कर सकता हूं। यहां पर यह शंका होती है कि संपूर्ण भारतवर्ष में अद्वैत सिद्धान्त को मानने वाले अनेक विद्वान भरे पड़े हैं, वे अनेक दर्शनों को भी जानते हैं, उनको आप कैसे परास्त कर सकते हैं? इस शंका के उत्तर में श्रीदेशिक स्वामी जी कहते है कि मैं इन मायावादी अद्वैतियों को अनायास परास्त कर सकता हूँ, कई बार मैंने किया भी है, मैं सभी दर्शनों को पूर्ण रूप से जानता हूँ अतः वे इन दर्शन शास्त्रों के सहारे हमारे सामने टिक नहीं सकते, किंच, श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने ही इस अद्वैत सिद्धान्तरूपी जंगल को पहले ही काट डाला है, अतः उनको परास्त करना सरल हो गया है हम लोगों को इस विषय में अणुमात्र भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। इस समाधान को व्यक्त करते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं—

कणचरणकथां पर्याप्तं पर्यचैषम्—कणाद के वैशेषिक दर्शन को मैं पूर्ण रूप से जानता हूँ, *आक्षपादं पर्याप्तं शिशिक्षे*—अक्षपाद के न्याय दर्शन से भी मैं पूर्णतया परिचित हूं, *मीमांसामांसलात्मा समजनिषि*—मीमांसा से मेरा मन सुदृढ़ होगया है, *सांख्ययोगौ मुहुः समाख्यम्*—

समाख्यम् । इत्थं तैस्तैर्यतीन्द्रत्रुटितबहुमृषातन्त्रकान्तारपान्थैरन्तर्मोहक्षपान्धैरहह किमिह नश्चिन्तनीयं तनीयः ॥६६॥

*"कणचरणकथां पर्याप्तं पर्यचैषम् अाक्षपादं पर्याप्तं शिशिक्षे मीमांसामांसलात्मा समजनिषि, मुहुः सांख्ययोगौ समाख्यम्" अहं कणादप्रणीतं वैशेषिकदर्शनं पर्याप्तं परिचितवानस्मि अक्षपादप्रणीतं न्यायदर्शनमपि पर्याप्तं शिक्षितवानस्मि अतो मृषावादिनस्तर्कबलेन वादे मां जयेयुरिति न शङ्कनीयम् तयोः शास्त्रयोर्मम पूर्णपाण्डित्यस्य सत्वात् तदुक्ततर्कान् प्रतितर्कैः खण्डयित्वा मया ते सुखेन जेतुं शक्यन्ते । किं चाहं

सांख्य और योग का भी मैंने अभ्यास और प्रवचन किया है, *इत्थं यतीन्द्रत्रुटित बहुमृषा तन्त्रकान्तारपान्थैः अन्तर्मोहक्षपान्धैः तैस्तैः नः तनीयश्चिन्तनीयः किम् अहह*—इस प्रकार के अनेक दर्शनों के पाण्डित्य प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं । कारण यतिराज ने मिथ्यावाद के जंगल को काट डाला । फिर उस जंगल में स्थित हीन वादियों से जिनकी दृष्टि अज्ञानान्धकार के कारण लुप्त हो गई है हमें शास्त्रार्थ करने की क्या चिन्ता है ?

"कणचरणकथां पर्याप्तं पर्यचैषम् आक्षपादं पर्याप्तं शिशिक्षे मीमांसामांसलात्मासमजनिषि मुहुः सांख्ययोगौ समाख्यम्"—श्रीकणाद महर्षि ने वैशेषिक दर्शन का निर्माण किया, उस दर्शन को मैं पूर्ण रूप से जानता हूं । श्रीअक्षपाद महर्षि ने न्यायदर्शन का निर्माण किया, उस दर्शन में मैं पूर्ण रूप से शिक्षित हूँ । ये दोनों दर्शन तर्क शास्त्र कहलाते हैं । तर्क शास्त्र में मेरी पूर्ण गति है । अतः अद्वैती लोग तर्क शास्त्र

मीमांसामांसलात्मा समजनिषि, मीमांसावर्धितमनस्को जातोऽस्मि अतो मीमांसादर्शनेऽपि ममाप्रतिहतं वैदुष्यं विद्यते, सांख्ययोगौ मुहुः समाख्यम्, सांख्ययोगदर्शने पुनः पुनः प्रोक्तवानस्मि, अतस्तैर्मीमांसासांख्ययोगदर्शनबलावलम्बनेन मम पुरतः प्रत्यवस्थातुं न शक्यम् तैर्यच्छास्त्रावलम्बनेन प्रत्यवस्थीयेत, तत्तच्छास्त्ररीत्यैव तान् खण्डयितुमहं परिपूर्णं तत्तच्छास्त्रपाण्डित्यं वहामि, अतस्ते सुनिरस्ता इति निश्चितम् ।

*"इत्थं यतीन्द्रत्रुटितबहुमृपातन्त्रकान्तारपान्थैरन्तर्मोहस्वपान्धैस्तैस्तैर्नस्तनीयश्चिन्तनीयं किम् ? अहह" इत्थं नानादर्शनपाण्डित्ये सत्यपि मम तत्प्रयोगावश्यकता नास्तीति प्रतिभाति

की सहायता लेकर यदि शास्त्रार्थ करेंगे तो उनसे वर्णित तर्कों को मैं तर्कों से ही काटकर उनको परास्त कर दूँगा। किंच मैंने मीमांसा दर्शन का पूर्ण रूप से अध्ययन किया, उससे मेरा मन सुदृढ़ हो गया मानों मांसल हो गया, हमारे मन से सारी अशक्ति निकल गई। मैंने सांख्य दर्शन और योगदर्शन का अभ्यास कर अनेक बार प्रवचन किया। अत: इन तीनों दर्शनों में मेरी गति अप्रतिहत है। इन दर्शनों का बल लेकर भी प्रतिवादी अद्वैती लोग शास्त्रार्थ में विजय नहीं पा सकते। वे लोग जिन २ शास्त्रों की सहायता लेकर शास्त्रार्थ करेंगे, मैं उन २ शास्त्रों की पद्धति के अनुसार ही खण्डन कर उनको परास्त कर सकता हूँ।

"इत्थं यतीन्द्रत्रुटितबहुमृपातन्त्रकान्तारपान्थैरन्तर्मोहस्वपान्धैस्तैस्तैर्नस्तनीयश्चिन्तनीयं किमस्ति ? अहह"—इस प्रकार यद्यपि मेरे पास अनेक शास्त्रों में पूर्ण पाण्डित्य है, तथापि प्रतीत होता है कि इन अद्वैतियों को परास्त करने के लिये उसको उपयोग में लाने की आवश्यकता

यतस्ते सुखेन जय्या इति भाति यथा गहनकान्तारमध्ये संचरन्तः कान्तारपथाभिज्ञास्तेषु कान्तारपथेष्वहरहर्गतागतकुर्वाणा, चोरा दुर्निरसाः तथैवानेकमृषावादितन्त्ररूपमरुकान्तारे संचरन्तः स्तत्रत्यात्मरक्षकमार्गाभिज्ञस्तेषु मार्गेष्वहरहः संचरन्त एते भगवद्विभूतिद्रव्यापहारिणो मृषावादिचोरा अपि दुर्निरसा इति

नहीं पड़ेगी क्योंकि श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने ही श्रीभाष्य में अद्वैत मत का अच्छी तरह से खण्डन कर दिया। लोक में देखा जाता है कि चोर चोरी करके भयंकर जंगल में जाकर छिप जाते हैं वे वहाँ के सब प्रकार के सरल और कुटिल मार्गों को जानते हैं, यदि उन्हें पकड़ने के लिये राजपुरुष वहाँ पहुँचते हैं तो वे उन मार्गों से गहन जंगल में पहुंच जाते हैं, राजपुरुष उन चोरों को पकड़ ही नहीं सकते दण्ड देना तो दूर है, जनता जब सावधान नहीं रहती है, तब वे आकर सर्वस्व का हरण करके चले जाते हैं, जनता दरिद्र बनती जाती है, इसे देखकर वहाँ के राजा को बहुत दुःख होता है, वह राजा उस जंगल को काट देता है तब राजपुरुषों को वहाँ घुसकर उन चोरों को पकड़ने में कोई क्लेश नहीं होता है, वे अनायास उन्हें पकड़ लेते हैं, यदि वे चोर अन्धे हों तो उनका पकड़ना और सरल हो जाता है, वे उनको दण्ड देकर जनता को सम्पन्न बना देते हैं क्योंकि चोरों के दण्डित होने पर जनता को सम्पन्न होने में कोई प्रतिरोध नहीं रहता है। यह एक दृष्टान्त है जो इस श्लोक से सूचित होता है। अब दार्ष्टान्तिक का निरूपण किया जाता है। श्रीभगवान की दो विभूतियाँ हैं (१) लीलाविभूति (२) और भोगविभूति। यह संसार लीलाविभूति है जहाँ श्रीभगवान बद्ध जीवों के साथ लीला करते है। यहाँ श्रीभगवान को लीलारस प्राप्त होता है। त्रिपाद विभूति इस लीलाविभूति

यद्यपि संभाव्यते, तथापि केनचिद्राज्ञा तस्मिन्गहने कान्तारे नाशिते सति यथा तत्स्थास्ते चोराः सुखेन ग्रहीतुं दण्डयितुं च शक्यन्ते, तथैव अतिगहनस्य मृषावादितन्त्ररूपस्य तस्य

से तीन गुना बड़ी है। त्रिपाद विभूति को ही भोगविभूति कहते हैं जहाँ श्रीभगवान नित्य और मुक्तों के साथ भोगरस का अनुभव करते हैं। श्रीभगवान श्रीमान हैं, उनको सम्पत्ति भी अपार है। बलवान डाकू लोग सामान्यों के घर में डाका नहीं डालते किन्तु प्रबल श्रीमानों के यहाँ डाका डालते हैं। वैसे ही ये अद्वैतीवादी लोग श्रीमान श्रीभगवान के यहाँ डाका डालते हैं, उनकी सम्पूर्ण सम्पत्ति का अपहरण करते हैं श्रीभगवान की इन दोनों विभूति और विग्रह तथा कल्याण गुणों को मिथ्या कहते हैं। इनको मिथ्या कहना और चोरी करना एक ही बात है, इन सम्पत्तियों को मिथ्या कहने से श्रीभगवान दरिद्र सिद्ध होते हैं, सम्पत्ति की चोरी करने पर भी श्रीमान दरिद्र हो जाते हैं। ये लोग श्रीभगवान की विभूतियों की चोरी करते हैं, इतनी ही बात नहीं, किन्तु जीवों की कल्याणकारी ज्ञान सम्पत्ति की भी चोरी करते हैं। जीवों का कल्याण करने वाली सम्पत्ति यही ज्ञान है कि मैं श्रीभगवान का दास हूँ परतन्त्र हूँ, श्रीभगवान हमारे स्वामी हैं, समस्त कल्याण गुणों से युक्त हैं इत्यादि। "जीव और भगवान में भेद नहीं, श्रीभगवान ही जीव है, जीव श्रीभगवान का दास नहीं है, न भगवान ही जीवों के स्वामी हैं" इत्यादि हानिकारक उपदेश देते हुये ये अद्वैती वादिगण जीवों की ज्ञान सम्पत्ति को भी चुराते हैं इससे जीव भी ज्ञान दरिद्र होते जाते हैं, इस प्रकार श्रीभगवान और जीवों के यहाँ डाका डालकर ये लोग अद्वैतमत रूपी जंगल में जाकर निवास करते हैं। अद्वैतमत बड़ा विकट गहन बन

कान्तारस्य यतिराजेन विनाशितत्वात् तत्र संचरन्त एते विभूति-द्वयचोरा अपि अस्माभिः सुखेन ग्रहीतुं दण्डयितुं च शक्यन्ते किं चैते अन्तर्मोहत्तपान्धा आन्तराज्ञानरूपया रात्र्या अन्धास्तत्व-दर्शनहीना जाताः अतोऽन्धचोराणां दण्डनं यथा सुकरम्, तथाऽज्ञानान्धानामेषां निरासोऽपि सुकरः अस्यां दशायामेषां निरासार्थं चिन्तनीयोऽल्पतरांशोऽपि किमस्ति, ? नैवास्ति, अतो निश्चिन्तं हेलयेवैते सुनिरसा इति भावः ।

है, वहाँ कोई जाकर इन्हें पकड़ नहीं सकता अर्थात् शास्त्रार्थ कर इन्हें कोई परास्त नहीं कर सकता । इस अद्वैतमत रूपी भयंकर अरण्य में बहुत से कुटिल मार्ग हैं अर्थात कुटिल सिद्धान्त हैं । यदि कोई विद्वान शास्त्रार्थ में इन्हें परास्त करने के लिये प्रवृत्त होते हैं तो ये लोग उन कुटिल सिद्धान्तों की सहायता से दुर्गम स्थान में पहुँच जाते हैं । इन लोगों के कारण श्रीभगवान भी सबकी दृष्टि में दरिद्र बनने लगे, जनता भी ज्ञान दरिद्र बनने लगी । अद्वैतियों के इन उत्पातों को देखकर श्रीयतिराज से रहा नहीं गया । यतिराज श्रीरामानुज स्वामी जी ने प्रमाण तर्करूपी आयुधों से अद्वैतमत रूपी जंगल को काट डाला । वहाँ के कुटिल सिद्धान्त रूपी कुटिल मार्गों को भी बन्द कर दिया । श्रीयतिराज के द्वारा मायावाद रूपी जंगल कट जाने के कारण यतिराज के अनुयायी अस्मदादिकों को इन अद्वैतियों को शास्त्रार्थ में पकड़ कर परास्त करने में कोई क्लेश नहीं हैं । ये लोग दृष्टि हीन अन्धों के समान हैं क्योंकि अज्ञानान्धकार के कारण इनकी भीतरी दृष्टि लुप्त हो गयी है । अब इन अन्धों को पकड़ने में क्या कठिनाई है ? अतः इनको शास्त्रार्थ में पकड़ने तथा परास्त करने के लिये हम लोगों को अणुमात्र भी चिन्ता नहीं करना चाहिये ।

अथवा ननु "को वा चक्षुरुदञ्चयेत्" इति सर्वेषां वादिनां वादारम्भे एव भङ्गादुक्तिपरम्परारूपवादो न संभवतीति तस्यानावश्यकत्वं कथं प्रतिज्ञायते ? अस्मदुपजीव्यार्थराशिभरितवैदिकन्यायवैशेषिकपूर्वमीमांसासांख्ययोगदर्शननिष्ठानां वादिनां दार्शनिकानामभञ्जनीयत्वात् विप्रतिपन्नांशसद्भावे विप्रतिपन्नसंप्रतिपन्नार्थविवेचनार्थं विरुद्धार्थानां खण्डनार्थं च वादस्य

इस श्लोक का दूसरा अर्थ भी है, वह बतलाया जाता है पूर्व श्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी ने कहा कि मेरे साथ शास्त्रार्थ करने के लिये कौन वादी संनद्ध होगा कोई भी नहीं होगा यदि संनद्ध होंगे तो सभी शास्त्रार्थ के आरम्भ में ही हार जायेंगे, आगे शास्त्रार्थ बढ़ाने के लिये आवश्यकता ही नहीं होगी। यहाँ पर यह शङ्का उपस्थित होती है कि सब वादियों के साथ शास्त्रार्थ कैसा ? न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा, सांख्य और योग इन दर्शनों को मानने वाले वादियों के साथ शास्त्रार्थ नहीं हो सकता क्योंकि ये सभी दर्शन वैदिक दर्शन हैं, महर्षियों द्वारा प्रणीत हैं, इन दर्शनों के अनेक सिद्धान्त श्रीवैष्णवों को मान्य हैं, ऐसी स्थिति में इन लोगों के साथ शास्त्रार्थ कैसे किया जा सकता है ? उनको शास्त्रार्थ में परास्त करना कैसे उचित होगा ? यदि कहा जाय कि श्रीरामानुज स्वामी जी ने भी इनके कई सिद्धान्तों का खण्डन किया है। अतः सिद्ध होता है कि इनके सिद्धान्तों में कई सिद्धान्त हम लोगों को मान्य हैं, कई सिद्धान्त हम लोगों को मान्य नहीं हैं। ऐसी स्थिति में अमान्य सिद्धान्तों के विषय में शास्त्रार्थ छिड़ने पर इनको परास्त करना उचित ही है। यदि यह बात है, तब तो इन लोगों के साथ शास्त्रार्थ करना होगा तभी तो विदित होगा कि अमान्य सिद्धान्तों के विषय में ये लोग क्या कहते हैं। यदि उन सिद्धान्तों के

प्रवर्तनीयत्वात् किं च तत्तद्दर्शनानभिज्ञेन तत्तन्निरासश्च कथं संभवेदित्यत्र सर्वेषु दर्शनेषु कूलंकषप्रज्ञाया आचार्यकृपयाऽधिगतत्वात् विप्रतिपन्नसंप्रतिपन्नांशविवेचनपूर्वं प्रणीतैः विप्रतिपन्नार्थखण्डनसंप्रतिपन्नार्थमण्डनपरसेश्वरमीमांसासर्वार्थसिद्धितत्वमुक्ताकलापन्यायपरिशुद्धिन्यायसिद्धाञ्जनादिग्रन्थैरेव वेदान्तोपकारस्य सुसाधत्वात् तदर्थं विप्रतिपन्नार्थभरितानां दर्शनान्तराणामनुपजीव्यत्वात् सर्वदर्शनवेदिनां सर्वतत्वनिष्कर्षवतामस्माकं तत्व-

---

विषय में इन लोगों का कथन युक्ति युक्त होगा तो श्रीवैष्णव लोगों को उन सिद्धान्तों की मान्यता देनी चाहिये। यदि इन लोगों का कथन अशुद्ध होगा तो श्रीवैष्णवों को चाहिये कि अशुद्धि दिखाकर तत्व निर्णय में सहायता करें। शास्त्रार्थ के आरम्भ में उनको परास्त करना तो उचित नहीं है। किंच, उनके दर्शनों को न जानने पर उनका खण्डन कैसे किया जा सकता है? इस शङ्का के उत्तर में श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि श्रीसदाचार्य के अनुग्रह से मैंने सभी दर्शनों में प्रगाढ़ पाण्डित्य प्राप्त किया। मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि उन दर्शनों में कौन २ सिद्धान्त समीचीन हैं कौन २ सिद्धान्त असमीचीन है। मैंने सेश्वरमीमांसा तत्वमुक्ताकलाप सर्वार्थ सिद्धि

सन्देहाभावेन तत्वनिर्णयार्थवादवर्धनस्यानपेक्षितत्वात् विप्रति-पन्नार्थावलम्बनेन प्रत्यवतिष्ठमानास्ते वादारम्भे एव भज्येरन्निति प्रतिज्ञा युज्यत इत्यनेन श्लोकेनाह—

अहमपि कणचरणकथां प्रमाणशून्यलोकरञ्जनविचित्र-वाक्यप्रचुरकथासदृशं कणादप्रोक्तं वैशेषिकदर्शनं पर्याप्तं परि-चितवानस्मि, अक्षपादप्रोक्तं न्यायदर्शनमपि पर्याप्तं शिक्षित-वानस्मि, मीमांसामांसलात्मा पूर्वमीमांसावर्धितमनस्कश्च समजनिषि जातोऽस्मि सांख्ययोगौ समाख्यं सांख्ययोगदर्शनेऽध्यापित-

---

नहीं। सन्देह होने पर ही निर्णय प्राप्त करने के लिये वादरूपी शास्त्रार्थ हुआ करता है, जब सन्देह ही नहीं है, तब शास्त्रार्थ बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है, जनता के सन्देह को दूर करने की आवश्यकता है, उसके लिये सरल उपाय यही है कि शास्त्रार्थ के आरम्भ में परवादियों को परास्त किया जाय, इससे जनता जान जायेगी कि किसका सिद्धान्त समीचीन है किसका असमीचीन है। वृथा शास्त्रार्थ को बढ़ाने से जनता को निर्णय करने में असुविधा होगी, अतः यह कथन उचित ही है कि परवादी लोग शास्त्रार्थ के आरम्भ में ही परास्त हो जायेंगे उनसे विवाद बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। इस समाधान को व्यक्त करते हुये श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं—

मैं कणाद महर्षि द्वारा प्रणीत वैशेषिक दर्शन से पूर्ण परिचित हूँ, वह दर्शन कथा के समान है। जिस प्रकार दन्त कथा बेसिरपैर की होती है, वैसे ही वह दर्शन है, उसमें प्रमाण और तर्कों के आधार पर कोई भी बात नहीं कही जाती है। मैं अक्षपाद महर्षि से प्रणीत न्याय दर्शन में भी सुशिक्षित हूँ। पूर्व मीमांसा दर्शन का अभ्यास कर मेरा मन परिपक्व हो गया है, मैंने सांख्यदर्शन और योगदर्शन का बारम्बार

णीयमवशिष्यते तनुतरमपि नावशिष्यते, अस्मदज्ञातान् तत्तद्दर्शनार्थानुक्त्वा एते स्वस्वदार्शनिकार्थं निर्वहेयुरिति संभावनायां सत्यां किल वादः प्रवर्तयितुं शक्यते एते तु एकैकदर्शनकान्तारपान्थाः तत्रापि अन्तर्मोहान्धाः अहं तु नानाकान्तारमार्गवेदी चक्षुष्मान् । चक्षुष्मताऽन्धैः सह विचार्याज्ञातार्थो न कश्चिद्वेदितव्योऽस्ति किल । अतो हेतुप्रयोजनाभावात् एतैः सह तत्वनिर्णयार्थो वादोऽसंभवी । वयं तु न विजिगीषव इति न जल्पवितण्डयोरप्य-

---

वाले तथा अज्ञानान्धकार के कारण दृष्टि हीन उन दार्शनिक विद्वानों के साथ विचार कर निर्णय करने के लिये कौन सा अंश अवशिष्ट रह गया ? कुछ भी नहीं । हम लोगों के अज्ञात कुछ अर्थ को ये कहेंगे ऐसा प्रतीत होने पर तो इनसे विचार करना उपयुक्त होगा। ऐसा प्रतीत तो होता नहीं क्योंकि ये कुछ दर्शनों के ज्ञाता हैं मैं सभी दर्शनों का ज्ञाता हूँ ये अज्ञानान्धकार के कारण आन्तर दृष्टि से शून्य हैं, अतएव अन्धे हैं, मैं तत्वज्ञ होने के कारण दृष्टि सम्पन्न हूँ, दृष्टि शक्ति सम्पन्न पुरुष को अन्धों के साथ विचार करने की आवश्यकता नहीं है। शास्त्रार्थ करने का कारण अर्थ में सन्देह है क्योंकि किसी अर्थ में सन्देह होने पर ही शास्त्रार्थ किया जा सकता है। शास्त्रार्थ का प्रयोजन दो हैं (१) तत्व निर्णय (२) और जय। मुझको किसी अर्थ में सन्देह नहीं है, सर्वत्र मुझको निर्णयात्मक ज्ञान है। अतः कारण और प्रयोजन नहीं होने से इन लोगों के साथ वादरूपी शास्त्रार्थ किया नहीं जा सकता क्योंकि सन्देह होने पर निर्णय प्राप्त के लिये वह शास्त्रार्थ किया जाता है। मैं सांसारिक फलों से विमुख हूँ मुझको जय प्राप्त करने की इच्छा नहीं है, अतः इन लोगों के साथ जल्प और वितण्डारूपी शास्त्रार्थ भी नहीं हो सकता क्योंकि

वसरः। लोकस्य सन्देहनिवृत्त्यर्थं वादे प्रवृत्ते एते उपक्रमे एव भज्येरन् तावतैव लोको वस्तुतत्त्वं विद्यादिति वादवर्धनस्यावश्यकता नास्तीति सुष्ठूक्तमिति भावः ॥६६॥

पूर्वश्लोके मृषातन्त्रमद्वैतमतं यतीन्द्रेण त्रुटितमित्युक्तम्। तत्र मृषातन्त्रप्रवर्तको रुद्रावतारः शङ्कर इति महाप्रभावेण तेन प्रवर्तितं तन्त्रं कथं त्रोटयितुं शक्यमित्यत्रातिप्रबलतत्तन्मतप्रवर्तकेषु बुद्धकपिलादिषु जितेषु शङ्करादिजयः कैमुतिकसिद्ध इत्याह गाथेत्यादिना। न्यायवादिनः साधुजनानपन्यायवादिभिः कुतर्कैर्व्यामोह्यमानान् दृष्ट्वा राज्ञि सिंहासनमधिष्ठाय यथान्यायं विचारयितुमुद्युक्ते सति यथाऽपन्यायवादिनः कांदिशीकाः पला-

---

वे शास्त्रार्थ जय को प्राप्त करने के लिये किये जाते हैं। जनता के सन्देह को दूर करने के लिये यदि शास्त्रार्थ छिड़े तो आरम्भ में ही ये परास्त हो जायेंगे। आगे शास्त्रार्थ बढ़ाने की आवश्यकता नहीं। जब आरम्भ में ही ये हराये जा सकते हैं तब उस शास्त्रार्थ के विषय में अणुमात्र भी चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है ॥६६॥

पूर्व श्लोक में श्रीदेशिक स्वामी जी ने कहा कि श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने जगत को मिथ्या सिद्ध करने वाले अद्वैत सिद्धान्त का खण्डन किया। वहाँ पर यह शङ्का होती है कि अद्वैत सिद्धान्त के आचार्य श्रीशङ्कराचार्य हैं जो श्रीशिवजी के अवतार हैं उनके सिद्धान्त का खण्डन कैसे हो सकता है। इस शङ्का के समाधान में दृष्टान्त के साथ श्रीदेशिक स्वामी जी कहते हैं कि लोक में देखा जाता है कि न्याय की बात करने वाले सत्पुरुषों को अन्याय करने वाले असत्पुरुष यदि कुतर्कों से बहकाकर मार्ग भ्रष्ट करें यदि यह वृत्तान्त राजा के यहाँ पहुँच जाय तो राजा सिंहासन पर विराजमान होकर दोनों पक्षों को

येरन् तथा यतिराजे श्रीभाष्यकारे परमप्रमाणभूतवेदसिंहासनमधिष्ठाय तत्त्वनिर्णयार्थविचारे प्रवृत्ते सति बौद्धसांख्ययोगिकाणादशैवभाट्टप्राभाकरादिषु पराजितेषु सत्सु मृषावादिप्रभृतीनां विषये किमुवाच्यमित्याह—

गाथा ताथागतानां गलति गमनिका कापिली क्वापि लीना क्षीणा काणादवाणी द्रुहिणहरगिरः सौरभं नारभन्ते। क्षामा कौमारिलोक्तिर्जगति गुरु-

---

सुनकर न्याय के अनुसार यदि निर्णय करने लगे तो अन्याय पक्ष को मानने वाले लोग अपना पराजय निश्चित समझकर भाग जाते हैं, वैसे ही हमारे यतिराज श्रीभाष्यकार स्वामी जी वेदों को परम प्रमाण मानते हुये वेदरूपी सिंहासन पर विराजमान होकर तत्त्व निर्णय करने के लिये जब विचार में प्रवृत्त होते हैं तब बौद्ध जैन सांख्य वैशेषिक नैय्यायिक शैव मीमांसक इत्यादि दिग्गज दार्शनिक विद्वान पराजय मानकर भाग जाते हैं ऐसी स्थिति में अद्वैती इत्यादि विद्वानों के विषय में क्या ही कहना है। आषाढ़ मास के झंझावात में जब गुरुतर वस्तुयें भी उड़ जाती हैं तब कपास की रुई के लिये क्या कहना है इन लोगों के पराजय में शङ्का ही नहीं है। इस अर्थ को श्रीदेशिक स्वामी जी इस श्लोक से कहते हैं—

जगति—जगत में, *यतिपतौ*—यतिराज के, *त्रिवेदी भद्रवेदीं भजति*—वेदत्रयी की भद्रवेदी पर विराजमान होने पर, *ताथागतानां गाथा गलति*—बौद्धों की गाथा समाप्त हो जाती है, *कापिली गमनिका क्वापि लीना*—कपिल की प्रक्रिया कहीं छिप जाती है, *काणाद वाणी क्षीणा*—वैशेषिक की वाणी क्षीण हो जाती है, *द्रुहिणहरगिरः सौरभ नारभन्ते*—

मतं गौरवाद् दूरवान्तं का शङ्का शङ्करादेर्भजति यतिपतौ भद्रवेदीं त्रिवेदीम् ॥७०॥

*"जगति यतिपतौ त्रिवेदीं भद्रवेदीं भजति सति" यद्यपि वेदाश्चत्वारः तथापि अथर्ववेदो यजुर्वेदेऽन्तर्गत इति संप्रदायमनुसृत्य त्रिवेदी त्रयीतिव्यवहारः। त्रिवेदी एव भद्रवेदी मङ्गला-

---

हिरण्यगर्भ और शिव की उक्तियाँ सुगन्ध नहीं देतीं, *कौमारिलोक्तिः क्षामा*—कुमारिल की वाणी दुर्बल हो गई है, *गुरुमतं गौरवाद् दूरवान्तं*—प्रभाकर का मत बहुमान के साथ दूर छोड़ दिया गया है, *शंकरादेः का शंका*—फिर शंकराचार्य आदि से शंका ही क्या ?

"जगति यतिपतौ त्रिवेदीं भद्रवेदीं भजति सति"—सब प्रमाणों में वेद ही सर्वोत्तम प्रमाण है। प्रमाण तीन हैं (१) प्रत्यक्ष (२) अनुमान (३) और शब्द। इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य पदार्थ ही प्रत्यक्ष प्रमाण से विदित होते हैं। वे अतीन्द्रिय पदार्थ जो इन्द्रियों से गृहीत नहीं हो सकते हैं प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं हो सकते हैं। अनुमान प्रमाण से वे परोक्ष पदार्थ विदित होते हैं जो इन्द्रिय ग्राह्य पदार्थों के सजातीय हैं। उदाहरणार्थ—पर्वत के उस पार्श्व में रहने वाला अग्नि परोक्ष है, वह अग्नि अनुमान प्रमाण से विदित होता है। वह पर्वतस्थ अग्नि उस महानस के अग्नि के सजातीय हैं जो प्रत्यक्ष दिखाई देता है। अनुमान प्रमाण से भी अतीन्द्रिय पदार्थ सिद्ध नहीं हो सकते। अतीन्द्रिय पदार्थ शब्द प्रमाण से ही सिद्ध होते हैं। पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरक, ईश्वर और देवता इत्यादि पदार्थ अतीन्द्रिय हैं, ये पदार्थ इन्द्रियों से विदित नहीं होते हैं ये पदार्थ वेद इत्यादि शब्द प्रमाण से ही सिद्ध होते हैं। वेदों से ही हम लोग अनेक अतीन्द्रिय पदार्थों को जान सकते हैं। अतः प्रमाणों में वेद उत्तम प्रमाण समझा जाता

वेदिका सर्वमङ्गलावहत्वात्। तां त्रिवेदीं भद्रवेदीं यतिराजश्रीभाष्यकारो भजति परमप्रमाणत्वेन स्वीकरोति। यथा राजा न्यायाधिकरणे सिंहासनमधितिष्ठति तथा यतिराज त्रिवेदीरूपं भद्रासनमधिष्ठाय तत्त्वार्थनिर्णये प्रवर्तते। इत्थं जगति यतिपतौ त्रिवेदीं भद्रवेदीमधिष्ठाय तत्त्वनिर्णयार्थं प्रवृत्ते सति यद्यदभूत् तद्वर्ण्यतेऽग्रे—

*"ताथागतानां गाथा गलति" चतुर्विधानां बौद्धानां गाथारूपं शास्त्रं गलति युक्तिप्रमाणवैधुर्यात् तद्विरुद्धत्वाच्च।

है। यह वेद सर्व मङ्गलकारी श्रीभगवान की आज्ञा है इससे वेदों को प्रमाण मानकर चलने वाले मङ्गल के भागी होते हैं। वेद चार हैं (१) ऋग्वेद (२) यजुर्वेद (३) सामवेद (४) अथर्ववेद। शास्त्र में अथर्ववेद का यजुर्वेद में अन्तर्भाव कर वेद तीन कहे जाते हैं। इन वेदों को परम प्रमाण मानकर श्रीरामानुज स्वामी जी ने वैदिक सिद्धान्त की स्थापना की। श्रीरामानुज स्वामी जी के लिये ये वेद ही आधार हैं। राजा जिस प्रकार सिंहासन रूपी आधार पर विराजते हैं, वैसे ही हमारे यतिराज वेदरूपी आधार पर विराजमान हैं वेद ही इनके लिये सिंहासन के समान आधार है। वेदरूपी मंगलवेदी पर विराजकर जब श्रीरामानुज स्वामी जी तत्त्व निर्णय करते थे, उस समय जो परिणाम हुआ, वह आगे कहा जाता है।

"ताथागतानां गाथा गलति"—बौद्ध चार प्रकार के हैं (१) माध्यमिक (२) योगाचार (३) सौत्रान्तिक (४) वैभाषिक। इन लोगों का कथन केवल कथन रूप है, इसमें प्रमाण और युक्ति इत्यादि कुछ भी नहीं। माध्यमिक बौद्ध का सिद्धान्त है कि शून्य ही तत्त्व है, शून्य से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। योगाचार बौद्ध का कथन है कि ज्ञाता ज्ञेय और ज्ञान

तथा च श्रीभाष्ये तर्कपादे चतुर्विधबौद्धमतानि खण्डितानि। अत्र जैनमप्युपलक्षणीयं वेदबाह्यत्वात्। तन्निरासोऽपि तर्कपादे।

*"कापिली गमनिका क्वापि लीना" कपिलोक्ता पद्धतिः क्वचिल्लीनाऽभूत्। स्वतन्त्रप्रकृतिकारणत्ववादिनां कापिलानां निरीश्वरवादिनां मतं श्रीभाष्ये तर्कपादे विस्तरेण खण्डितम्।

*"काणादवाणी क्षीणा" वैशेषिकाणां मतं क्षीणम् अत्र समानतन्त्रत्वात् आक्षपादवाण्यपि उपलक्षणीया। एतन्मत-निरासः श्रीभाष्ये महद्दीर्घाधिकरणे द्रष्टव्यः।

*"द्रुहिणहरगिरः सौरभं नारभन्ते" हिरण्यगर्भप्रोक्तं योग-

इन तीनों में ज्ञान मात्र सत्य है ज्ञाता और ज्ञेय मिथ्या हैं। सौत्रान्तिक बौद्ध का कथन है कि ज्ञाता और ज्ञेय भी सत्य हैं परन्तु वे प्रत्यक्ष नहीं हैं, किंतु अनुमान से विदित होते हैं? वैभाषिक का कथन है कि ये सब प्रत्यक्ष हैं किंतु स्थिर नहीं हैं, क्षणिक हैं। एक क्षण भर रहते हैं दूसरे क्षण में नष्ट हो जाते हैं। श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने ब्रह्म सूत्र द्वितीय अध्याय द्वितीयपाद में समुदायाधिकरण में वैभाषिक और सौत्रान्तिक के सिद्धान्त का, उपलब्ध्यधिकरण में योगाचार के सिद्धान्त का सर्वथानुपपत्यधिकरण में माध्यमिक के सिद्धान्त का खण्डन किया। तथा जैनों के सिद्धान्त का खण्डन "एकस्मिन्नसंभव" अधिकरण में किया। ये बौद्ध और जैन वेदों को प्रमाण नहीं मानते हैं अतएव ये वेद बाह्य कहलाते हैं। इन लोगों के सिद्धान्त श्रीभाष्यकार स्वामी जी के समक्ष गल जाते हैं। इस प्रकार बौद्ध और जैन पराजित हुये।

"कापिली गमनिका क्वापि लीना, काणादवाणी क्षीणा, द्रुहिणहरगिरः सौरभं नारभन्ते"—श्रीभा[illegible] स्वामी जी के तत्व निर्णय करते समय श्रीकपिल की पद्धति क[illegible] की वाणी क्षीण होगई,

शास्त्रं शिवप्रोक्तं पाशुपतं च न सुगन्धं वहति। एतयोर्मतयो-निरासोऽपि श्रीभाष्ये योगप्रत्युक्त्यधिकरणे पाशुपताधिकरणे च द्रष्टव्यः।

*"कौमारिलोक्तिः क्षामा" पूर्वमीमांसादर्शनस्य द्वौ प्रधान-व्याख्यातारौ कुमारिलभट्टः प्रभाकरश्चेति। प्रभाकर एव गुरु-रित्युच्यते। तत्र भाट्टानामुक्तिः क्षीणा समन्वयाधिकरणे देवता-धिकरणे च तन्मतस्य विशिष्य खण्डितत्वात्।

*"गुरुमतं गौरवाद् दूरयान्तम्" गुरोः प्रभाकरस्य मतं

ब्रह्मा जी और शिवजी की वाणी से सुगन्धि नहीं निकलती। भाव यह है कि इन लोगों के सिद्धान्त खण्डित हुये। श्रीकपिल महर्षि सांख्य मत के प्रवर्तक हैं श्रीकणाद महर्षि वैशेषिक मत के प्रवर्तक हैं, श्रीअक्षपाद महर्षि न्याय मत के प्रवर्तक हैं। श्रीशिवजी पाशुपत मत के प्रवर्तक हैं। ये लोग वेदों को प्रमाण मानते हुये भी यह कहते हैं कि हमारे अनुमान प्रमाणों से सिद्ध सिद्धान्तों का ही वेद प्रतिपादन करते हैं। इस लिये ये लोग वेदों को प्रमाण मानते हुये भी अपनी बातों को वेदों पर लादते हैं। श्रीरामानुज स्वामी जी ने श्रीभाष्य में रचनानुपपत्त्यधि-करण में कपिल महर्षि द्वारा वर्णित सांख्य सिद्धान्तों का, योगप्रत्युक्त्यधि-करण में श्रीब्रह्मा जी द्वारा प्रवर्तित योग सिद्धान्त का, महद्दीर्घाधिकरण में भी कणाद और श्रीअक्षपाद महर्षि द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त का, पाशुपताधिकरण में श्रीशिवजी द्वारा प्रवर्तित पाशुपत सिद्धान्त का खण्डन प्रमाण और तर्कों से किया।

"कौमारिलोक्तिः क्षामा, गुरुमतं गौरवाद् दूरयान्तम्"—श्रीभाष्यकार स्वामी जी के तत्त्व निर्णय करते समय में कुमारिल भट्ट का कथन क्षीण होगया, गुरु प्रभाकर के मत गौरव दोष के कारण बहुत दूर परास्त

गौरवाद्वेतोर्दूरे त्विसम् एतन्मतखण्डनं जिज्ञासाधिकरणे।

"*शङ्करादेः का शङ्का" एवमतिप्रबलेष्वपि प्रतिवादिषु पराजितेषु सत्सु सवितुरन्धकारेणेव ज्ञानरूपस्य ब्रह्मणोऽज्ञानेन तिरोधानं मुक्तावहमर्थविनाश इत्याद्यनुपपन्नार्थकल्पकस्याणु मात्रमपि प्रामाणिकमर्थमकथयतः शङ्करस्य निरासे किमुवाच्यम् "सांख्यसौगतचार्वाकसंकराच्छंकरोदयः। दूषणान्यपि तान्यत्र पुनस्तदधिकानि च॥" इत्युक्तेर्मूलभूतसांख्यादिमतनिरासेनैव निरस्तत्वात् भेदाभेदवादिनोर्जैनगन्धिभास्करयादवयोर्मतस्य जैन

होगया। भाव यह है कि पूर्व मीमांसा दर्शन के व्याख्याता दो हैं (१) कुमारिल भट्ट और (२) प्रभाकर गुरु। ये दोनों ईश्वर को नहीं मानते, देवताओं के विग्रह आदि को भी नहीं मानते। ये दोनों वेदों को प्रमाण मानते हुये भी अर्धनास्तिक हैं। इनके सिद्धान्तों का खण्डन श्रीभाष्य के जिज्ञासाधिकरण समन्वयाधिकरण और देवताधिकरण में किया गया है।

"शङ्करादेः का शङ्का"—मीमांसा न्याय सांख्य और योग इन दर्शनों में कई संग्रह करने योग्य अच्छे सिद्धान्त भी विद्यमान हैं। श्रीशङ्कराचार्य भास्कराचार्य और यादव प्रकाशाचार्य इन तीनों के मतों में संग्रह करने योग्य अच्छे सिद्धान्त एक भी नहीं हैं। वे बड़े २ दार्शनिक आचार्य ही जब परास्त हो गये तब इनको क्या शङ्का करनी है, इस विषय में शङ्का हो ही नहीं सकती। श्रीशङ्कराचार्य के सिद्धान्त के विषय में कहा गया है कि अर्थात सांख्य बौद्ध और चार्वाक के सिद्धान्तों के संकर से श्रीशङ्कराचार्य की सिद्धान्त बना है। उन सिद्धान्तों के विषय में लागू होने वाले सभी दूषण श्रीशङ्कराचार्य के सिद्धान्त में लागू होते हैं। अधिक दूषण भी लागू होते हैं। जैनों के सिद्धान्त के

निरासेनैव निरस्तत्वात् का शङ्का शङ्करादेरित्युक्तम् । अतोऽनेक-परमतनिरासेन त्रिवेदीमतं प्रतिष्ठापितवतो यतिराजस्य प्रभावो वाङ्मनसागोचरो दुरपन्हवश्चेत्युक्तं भवति । कणादपरिपाटिभि-रिति श्लोक तद्व्याख्ययोर्विस्तरोद्रष्टव्यः ॥७०॥

आधार पर भास्कराचार्य और यादवप्रकाशाचार्य का सिद्धान्त बना है। ऐसी स्थिति में मूलभूत सांख्य, बौद्ध और जैनों के सिद्धान्तों का जब खण्डन हो गया, तब उनके आधार पर टिकने वाले ये सिद्धान्त कैसे जीवित रह सकते हैं। श्रीशङ्कराचार्य कहते हैं कि ब्रह्म अज्ञान से आच्छादित हो जाता है, अद्वैत विद्या को समझने वाला जीव उस अज्ञान को नष्ट करता है। इस सिद्धान्त को सुनकर बालक भी हँसते हैं। सूर्य अन्धकार को नष्ट करने वाला है, वह तेजोमय है। सूर्य का अन्धकार से आच्छादित होना जैसे असंभावित है। वैसे ही जीवों के अज्ञान का निवर्तक ज्ञान स्वरूप परब्रह्म का भी अज्ञान से आच्छादित होना असंभावित है। जिस प्रकार पङ्क में फँसे हुये हाथी का सियार से उद्धार असंभावित है वैसे ही अज्ञान में फँसे हुये सर्वशक्ति-सम्पन्न परब्रह्म का जीवों से उद्धार होना भी असंभावित है। किंच, अद्वैती लोग कहते हैं कि मोक्ष में अहं पदार्थ नष्ट हो जाता है, ऐसी स्थिति में मोक्ष के लिये किसी की भी प्रवृत्ति नहीं हो सकती क्योंकि जब वह समझ जायेगा कि मोक्ष दशा में मैं मिट जाऊँगा तब वह उस मोक्ष को प्राप्त करने के लिये प्रवृत्त नहीं होगा, किन्तु उससे बचने के लिये ही प्रयत्न करेगा। श्रीशङ्कराचार्य के ये सिद्धान्त अत्यन्त अनुपपन्न हैं। भास्कर और यादव प्रकाश जीव और ब्रह्म में भेद और अभेद को मानते हैं, भेद और अभेद परस्पर विरुद्ध हैं, एक स्थान में रह नहीं सकते। अतः इनका सिद्धान्त भी अनुपपन्न है। इस प्रकार बालकों

यतिराजस्य श्रीभाष्यकारस्य यशो वचश्च एकार्णववत्सर्वत्र व्याप्तमगाधं वर्तते तत्र सश्रद्धं कृतावगाहैराचार्यैस्तद्वैभवं ज्ञापितो यतिराजस्तुत्यर्थं प्रेरितो वेङ्कटेश इमां यतिराजसप्ततिं प्रणीय तया सतां प्रीतिं वर्धयामासेत्याहानेन श्लोकेन—

विष्वग्व्यापिन्यगाधे यतिनृपतियश (वच) स्संपदेकार्णवेऽस्मिन् श्रद्धाशुद्धावगाहैः शुभमतिभिरसौ वेङ्कटेशोऽभिषिक्तः। प्रज्ञादौर्जन्यगर्जत्प्रति-

कथकवचस्तूलवातूलवृत्त्या सतत्या सारवत्या
समतनुत सतां प्रीतिमेतां समेताम् ॥७१॥

*"विष्वग्व्यापिन्यगाधेऽस्मिन् यतिनृपतियश (वच) स्संपदे-
कार्णवे श्रद्धाशुद्धावगाहैः शुभमतिभिरभिषिक्तोऽसौ वेङ्कटेशः"
श्रीभाष्यकारस्य यशो वचश्च श्रीवैष्णवानां संपत् तद्भोग्यत्वा-
दापदि रक्षकत्वाच्च । चत्वारः समुद्रा एकार्णवभावमुपेता यदा
भवन्ति, तदा तेनैकार्णवेन यथा कृत्स्ना भूमिर्व्याप्ता भवति

के द्वारा अभिषिक्त, असौ वेंकटेशः—इस वेंकटनाथ ने, *प्रज्ञादीर्जल्प-गर्जत्प्रति कथकवचस्तूलवातूलवृत्त्या*—दुष्टता के कारण गरजने वाले प्रतिवादियों की रुई सरीखी उक्तियों को उड़ाने वाली वायु सरीखी, *सारवत्या सतत्या सतां समेतामेतां प्रीतिं समतनुत*—सारभूत अर्थों से परिपूर्ण यतिराज सप्तति स्तोत्र की रचना कर इन सत्पुरुषों को प्रीति का सम्पादन किया है।

"विष्वग्व्यापिन्यगाधेऽस्मिन् यतिनृपतियश (वच) स्संपदेकार्णवे श्रद्धाशुद्धावगाहैः शुभमतिभिरभिषिक्तोऽसौ वेङ्कटेशः"—श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कीर्ति और वाणी श्री वैष्णवों की संपत्ति है। संपत्ति भोग्य है तथा आपत्ति के समय में रक्षा करती है। वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कीर्ति और वाणी भोग्य हैं, तथा आपत्ति के समय में रक्षा करती हैं। संपत्ति कमाकर सुरक्षित रक्खी जाती है। वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कीर्ति और वाणी को सुनकर श्रद्धालु श्रीवैष्णव श्रद्धा के साथ हृदय में उसे सुरक्षित रखते हैं। श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कीर्ति और वाणी समुद्र के समान हैं। चारों समुद्र मिल कर जब एक हो जाते हैं, तब एकार्णव कहलाते हैं। वह एकार्णव अगाध होता है

तथा यतिनृपतेर्यशसा वचसा च कृत्स्ना भूमिर्व्याप्ता भवति। यथा एकार्णवोऽगाधो भवति तथा श्रीभाष्यकारस्य यशो वचश्चागाधं भवति। यथा एकार्णवः सर्वतो व्यापी भवति तथा यशोवचश्चसर्वदेशसर्वकालसर्वावस्थाव्यापकं भवति। यथा संपदपव्ययवर्जनपूर्वं रक्ष्यते तथा यतिराजस्य यशो वचश्च नित्यानुसन्धानपूर्वकं रक्ष्यते। श्रीयतिराजस्य यशो वचश्च सर्वव्यापकमस्तीति सर्वैः प्रत्यक्षतो द्रष्टुं शक्यम् अस्मिन्नितीदन्तया हितश्चकास्ति, यथा सर्वं व्याप्य स्वसमीपपर्यन्तमागत एकार्णवोऽयमिति भाति तथेदं यशो वचश्च सर्वं देशं व्याप्य स्वसमीपपर्यन्तमागतमस्मिन्निति निर्दिश्यते। यथाऽर्णवे सश्रद्धं पावनमवगाहनं क्रियते, तथा श्रीभाष्यकारस्य यशसि श्रीभाष्यादिरूपे वचसि च श्रीवैष्णवैः सश्रद्धमवगाहनं क्रियते। सश्रद्धं श्रीभाष्यकारस्य यशसः श्रवणेन

तथा संपूर्ण पृथ्वी को व्याप लेता है, वैसे ही श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कीर्ति और वाणी अगाध है क्योंकि इनके मर्म को समझना अत्यन्त कठिन है तथा ये दोनों संपूर्ण भूमण्डल में व्याप्त हैं। श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कीर्ति और वाणी रूप समुद्र अगाध और व्यापक है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। सब को व्यापकर अपने समीप आने वाले समुद्र को जिस प्रकार सब लोग प्रत्यक्ष देख सकते हैं वैसे संपूर्ण भूमण्डल को व्याप कर हमारे समीप पहुँचने वाली इस कीर्ति और वाणी को भी सब प्रत्यक्ष देख सकते हैं। श्रद्धा से पवित्र होकर समुद्र में लोग स्नान करते हैं, समुद्र में स्नान करने पर वह महाफल मिलता है जो सब नदियों में स्नान करने पर मिलता है। समुद्र में एक बार स्नान करने पर अन्यत्र कहीं स्नान करने के लिये भटकने की आवश्यकता नहीं। वैसे ही श्रीवैष्णव श्रद्धा से श्रीभाष्यकार स्वामी जी की

सनियमं श्रीभाष्यादिवचसः श्रवणेन च ते शुभमतयः संपन्नाः महतामादर्शमयस्य चरितस्य सद्ग्रन्थानां च श्रवणेन बुद्धिः शुभा भवतीति लोकसिद्धम् । एवं शुभमतिभिस्तैरसौ वेङ्कटेशोऽभिषिक्तोऽभूत् तादृशयशोवैभवं वचो वैभवं च ज्ञापितः सन् श्रीभाष्यकारविषयकस्तुतिनिर्माणरूपे कैङ्कर्येऽभिषिक्तः प्रेरितोऽभूत् । ते शुभमतय इत्यसन्दिग्धम् मतेः शुभत्वं निरसूयत्वम् । लोके ईषज्ज्ञाने जाते सति महाविद्वांसमपि ज्ञातृत्वेनाभ्युगन्तुं कोऽपि सन्नद्धो न भवति । स्वयं श्रीभाष्यकारस्य यशसि वचसि

कीर्ति और वाणी का श्रवण करते हैं। इनका श्रवण करने पर वह महाफल प्राप्त होता है कि जो सत्पुरुषों के विविध चरित्रों और अनेक ग्रन्थों को सुनने पर प्राप्त होता है। श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कीर्ति और वाणी का एक बार श्रवण करने पर अन्य किसी का श्रवण करने की आवश्यकता नहीं होती है। श्रीभाष्यकार स्वामी जी की कीर्ति और वाणी को बारम्बार सुनकर श्रीवैष्णवों की बुद्धि बहुत सुधर गई है। लोक में देखा जाता है कि सत्पुरुषों के आदर्शमय चरित्र और वाणी को सुनने पर अवश्य बुद्धि सुधर जाती है, जो बुद्धि अशुभ हो, वह शुभ हो जाती है। इस प्रकार शुभ उत्तम बुद्धि से सम्पन्न आचार्य ने मुझे श्रीभाष्यकार स्वामी जी की पवित्र कीर्ति और वाणी को सुनाया। सब श्रीवैष्णवों ने श्रीभाष्यकार स्वामी जी के विषय में स्तुति करने के लिये मेरा अभिषेक कराकर प्रेरित किया। ये लोग शुभ बुद्धि से सम्पन्न हैं, इसमें सन्देह नहीं, क्योंकि इनकी बुद्धि में असूया इत्यादि दोष अणुमात्र भी नहीं। लोक में देखा जाता है कि अल्प पाण्डित्य रखने वाला मनुष्य भी दूसरे महा विद्वान को विद्वान मानने के लिये तैयार नहीं होता है क्योंकि उसके मन में असूया भरी रहती है। ये

वदाचरतीयं सप्ततिः । इयं सप्ततिः सारवती सारार्था रस्या च । तया सप्तत्या सह समेतां सतामेतां प्रीतिं समतनुत । सन्तोऽस्यां सप्तत्यामेव रज्यन्ते यतिराजसप्ततिश्रवणानन्तरं सतां प्रीतिरन्यत्र न भवति । तथा सप्तत्या समेतां सतां प्रीतिं विस्तारितवान् । यद्वा सप्तत्या हेतुना समेतां परिपूर्णां सम्यग्युक्तामप्रच्युतां सतां प्रीतिं स्वस्मिन् वर्धयामास एतत्सप्ततिश्रवणेन सन्तस्सन्तुष्यन्तो ग्रन्थकर्तरि प्रसन्ना रज्यन्त इति प्रत्यक्षसिद्धम् । अतएवैतां प्रीतिमिति निर्दिश्यते । तदेवं यतिराजसप्ततिस्तोत्रनिर्माणेन सतां प्रीतिमाप्तवान् वेङ्कटेशाभिधानोऽहं कृतार्थोऽभूवमिति भावः ॥७१॥

दुर्वादिनो दुर्मतेषु दुराशया श्रीयतिराजस्य चरणयोराशाम-

देने में यह यतिराज सप्तति स्तोत्र चण्डमारुत के समान कार्य करता है, यह स्तोत्र सारभूत अर्थों से परिपूर्ण है, तथा रस परिपूर्ण है मैंने सत्पुरुषों की सम्पूर्ण प्रीति को इस स्तोत्र में एकत्रित कर दिया। इस स्तोत्र को सुनने पर सत्पुरुष बारम्बार इसका ही श्रवण करना चाहते हैं, उनकी प्रीति अन्यत्र जाना नहीं चाहती है। इस स्तोत्र के कारण मैं सत्पुरुषों की अविचल सम्पूर्ण प्रीति का पात्र बन गया हूँ। इस स्तोत्र को सुनकर सत्पुरुष मेरे ऊपर अपार प्रीति करने लगे हैं, ऐसा मुझको प्रत्यक्ष हो रहा है। सन्तों की इस प्रीति को सब लोग देख सकते हैं कि यह प्रीति उत्तरोत्तर मेरे ऊपर प्रवाहित हो रही है। इस प्रकार इस स्तोत्र का निर्माण कर मैं उन पूर्वाचार्यों का कृपा पात्र बना हूँ जिनमें श्रीरामानुज स्वामी जी प्रमुख हैं, साथ में श्रीवैष्णवों की प्रीति का पात्र बन गया हूं। इससे मैं वस्तुतः कृतार्थ हो गया हूँ ॥७१॥

इस श्लोक से श्रीदेशिक स्वामीजी कहते हैं कि यह स्तोत्र श्रीवैष्णव विद्वानों तथा परवादियों को भी अत्यन्त लाभदायक है। परवादी लोगों

कुर्वाणा नश्यन्ति तैः सह वादाहवं चिकीर्षन्तः श्रीवैष्णवास्तेषां कर्णे एवं सिंहनादं यदि पातयेयुः तर्हि तेषामाशारूपा मत्तगजा इतस्ततो धावनं हित्वा श्रीयतिराजस्य पादे सज्जेरन् तेन तेषां सद्गतिश्च स्यादित्येतमर्थमनेन श्लोकेनाह—

आशामतङ्गजगणानविषह्यवेगान्
पादे यतिक्षितिभृतः प्रसभं निरुन्धन् ।
कार्यः कथाहवकुतूहलिभिः परेषां
कर्णे स एष कवितार्किकसिंहनादः ॥७२॥

*"अविषह्यवेगानाशामतङ्गजगणान् यतिक्षितिभृतः पादे

की आशायें मत्तगज की तरह इधर उधर दौड़ती रहती हैं, इससे उन लोगों की दुर्गति निश्चित है। जिस प्रकार सिंह का गर्जन सुनने पर मत्तगज इधर उधर दौड़ना छोड़कर पर्वत के निम्न भूमि में अचल रहते हैं, वैसे ही इस स्तोत्र को यदि परिवादी लोग सुनेंगे तो उनकी आशायें इधर उधर विषयों में भटकना छोड़कर श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरणों में केन्द्रित हो जायेंगी इससे उन परवादियों का कल्याण होगा। अतः इस स्तोत्र को परवादियों के कान में डालना चाहिये। इस बात को इस श्लोक से व्यक्त करते हैं—

प्रसभं निरुन्धन् स एष कवितार्किकसिंहनादः कथाहवकुतूहलिभिः परेषां कर्णे कार्यः" अत्रायं दृष्टान्तोऽभिप्रेतः—दुर्दमवेगा मत्तगजा इतस्ततो धावन्त उत्पातान् कुर्वते तेषां कर्णे यदि सिंहनादः पतेत् तदा ते मत्तगजा भीताः सन्त इतस्ततो धावनं हित्वा क्षितिभृतः पर्वतस्य पादे प्रत्यन्तपर्वते रुद्धास्सन्तस्तत्रैव चिरं निभृतं तिष्ठन्ति सिंहनादस्य तेषां कर्णे पतनमेवावश्यकम् ते शान्तमदवेगा पर्वतस्य पादेऽचञ्चलास्तिष्ठेयुः नान्यः कश्चिदुपायोऽस्ति। एवं दुर्वादिनां आशारूपा मत्तगजा अपि असह्यवेगा वर्तन्ते, यथा तत्र तत्र स्वैरं धावतां मत्तगजानां ग्रहणमसाध्यम् तथैव विषयेष्वितस्ततो धावन्तीनामाशानां निरोधोऽपि दुष्करः।

रहते हैं। परवादियों की आशायें बढ़ जाती हैं वे मत्तगजों की तरह विषयों में इधर उधर दौड़ती रहती हैं, मत्तगजों के वेग को रोकना बहुत कठिन है। आशाओं के वेग को रोकना भी बहुत कठिन है। मत्तगज अपने ऊपर धूल को फेंक कर मलीन हो जाते हैं आशायें अपने ऊपर वासनारूपी धूलों को झोंककर मलीन हो जाती हैं। मत्तगजों को रोकने के लिये यदि कोई सामने आवे तो उनको मारकर मत्तगज आगे बढ़ जाते हैं, आशाओं को विफल बनाने के लिये यदि दूसरा कोई प्रयत्न करे तो आशायें तत्क्षण क्रोध रूप को धारण कर उसको नष्ट कर आगे बढ़ जाती हैं। मत्तगजों को सिंह का गर्जन ही रोक सकता है। मैं कवितार्किकसिंह हूँ। मेरा विरुद कवितार्किकसिंह है। यह स्तोत्र कवितार्किकसिंह का नाद है, यह सिंहनाद ही प्रतिवादियों की आशा रूपी मत्तगज को रोक सकता है। एकाएक सिंह का नाद सुनाई देने पर भयभीत मत्तगज इधर उधर दौड़ना छोड़कर पर्वत की निम्न भूमि में निश्चल होकर

सिंहनादे स्तोत्रे पतिते एवैवं संभवि नान्यथा। अतोऽयं सिंहनादः कथाहवकुतूहलिभिर्वादसंग्रामप्रसितैः श्रीवैष्णवैः परेषां वादिनां कर्णे कार्यः। तच्छ्रवणसमनन्तरमेव ते वादिनो भग्नदर्पाः श्रीभाष्यकारस्य चरणौ संश्रयेयुस्सद्गतिं च प्राप्नुयुरिति भावः ॥७२॥

अथैतत्प्रबन्धमध्येतॄणां फलमाह—

उपशमितकुदृष्टिविप्लवानां
उपनिषदामुपचारदीपिकेयम् ।
कवलितभगवद्विभूतियुग्मां
दिशतु मतिं यतिराजसप्ततिर्नः ॥७३॥

कवितार्किकसिंहनादरूपी स्तोत्र को परवादियों के कान में डालना चाहिये। अतः परवादियों के शास्त्रार्थरूपी संग्राम करने के इच्छुक श्रीवैष्णव विद्वान् रूपी महावीरों को चाहिये कि इस सिंहनाद रूपी स्तोत्र को परवादियों के कान में अवश्य डालें, इससे उन लोगों का दर्प नष्ट हो जायगा। वे श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरणों का आश्रय लेकर धन्य हो जायेंगे। श्रीवैष्णव विद्वानों को भी शास्त्रार्थ संग्राम में जयश्री प्राप्त होगी ॥७२॥

श्रीदेशिक स्वामीजी इस स्तोत्र का अनुसन्धान करने वालों को प्राप्त होने वाले फल का इस श्लोक में वर्णन करते हैं—

उपशमितकुदृष्टिविप्लवानां—मतान्तर वादियों के द्वारा होने वाले विप्लव के शान्त होने पर, *उपनिषदामुपचारदीपिकेयम्*—उपनिषदों की उपचार दीपिका है। *इयं यतिराज सप्ततिः*—यह यतिराज सप्तति, *कवलित-*

अतर्कितोपनतः सिंहनाद एव तानितस्ततो धावतो मत्तगजान् पर्वतस्य पादे निरोद्धुं प्रभवति, सिंहनादे श्रुतमात्रे ते मत्तगजा इतस्ततो धावनं हित्वा पर्वतस्य पादे निभृतं तिष्ठन्ति भीत-भीताः। तथा इतस्ततो धावन्त्यो दुर्वादिनां दुराशाः कविता-र्किकसिंहनादरूपेऽस्मिन् स्तोत्रे श्रुतमात्रे इतस्ततो धावनं हित्वा यतिक्षितिभृतो यतिराजस्य पादे निश्चलास्तिष्ठेयुः अतर्कितोपन-तोऽयं स्तोत्ररूपः कवितार्किकसिंहनाद एव ता दुराशा निरोद्धुं प्रभवति। गजभयङ्करसिंहनादवदयं कुदृष्टिभयङ्करः कवितार्किक-सिंहस्य ममायं स्तोत्ररूपो नादः। गजानां कर्णे सिंहनादे पतिते एवैवं संभवि नान्यथा। तथा दुर्वादिनां कर्णेऽस्मिन् कवितार्किक-

---

खड़े रहते हैं। पर्वत को संस्कृत भाषा में क्षितिभृत कहते हैं। बड़े पर्वत के नीचे जो छोटे २ पर्वत हैं उन्हें पाद कहते हैं। सिंहनाद ही उन मत्तगजों को क्षितिभृत् अर्थात् पर्वत के नीचे रहने वाले पाद अर्थात् छोटे पर्वत में रोक कर रख सकता है। वैसे ही मुझ कवितार्किकसिंह के नादरूपी इस स्तोत्र के सुनाई देने पर परवादियों की आशायें इधर उधर दौड़ना छोड़ कर श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरण में केन्द्रित होकर निश्चल रहेंगी। संस्कृत भाषा में राजा को क्षितिभृत् कहते हैं, चरण को पाद कहते हैं। श्रीभाष्यकार स्वामी जी यतियों के राजा हैं इसलिये यतिक्षितिभृत कहलाते हैं। यह सिंहनाद रूपी स्तोत्र ही परवादियों की आशाओं को यतिक्षितिभृत के पाद में अर्थात् यतिराज के चरण में स्थिर रख सकता है। सिंहनाद गजों को भयभीत कर देता है, यह स्तोत्र परवादियों को भयभीत कर देता है। युद्ध में शत्रुओं के गजों को भयभीत करना हो तो उनके कान में सिंहनाद को पहुंचाना चाहिये। शास्त्रार्थ में यदि परवादियों को भयभीत करना हो तो इस

सिंहनादे स्तोत्रे पतिते एवैवं संभवि नान्यथा। अतोऽयं सिंहनादः कथाहवकुतूहलिभिर्वादसंग्रामप्रसितैः श्रीवैष्णवैः परेषां वादिनां कर्णे कार्यः। तच्छ्रवणसमनन्तरमेव ते वादिनो भग्नदर्पाः श्रीभाष्यकारस्य चरणौ संश्रयेयुस्सद्गतिं च प्राप्नुयुरिति भावः ॥७२॥

अथैतत्प्रबन्धमध्येतॄणां फलमाह—

उपशमितकुदृष्टिविप्लवानां
उपनिषदामुपचारदीपिकेयम् ।
कवलितभगवद्विभूतियुग्मां
दिशतु मतिं यतिराजसप्ततिर्नः ॥७३॥

कविताकिंकसिंहनादरूपी स्तोत्र को परवादियों के कान में डालना चाहिये। अतः परवादियों के शास्त्रार्थरूपी संग्राम करने के इच्छुक श्रीवैष्णव विद्वान् रूपी महावीरों को चाहिये कि इस सिंहनाद रूपी स्तोत्र को परवादियों के कान में अवश्य डालें, इससे उन लोगों का दर्प नष्ट हो जायगा। वे श्रीभाष्यकार स्वामी जी के चरणों का आश्रय लेकर धन्य हो जायेंगे। श्रीवैष्णव विद्वानों को भी शास्त्रार्थ संग्राम में जयश्री प्राप्त होगी ॥७२॥

श्रीदेशिक स्वामीजी इस स्तोत्र का अनुसन्धान करने वालों को प्राप्त होने वाले फल का इस श्लोक में वर्णन करते हैं—

उपशमितकुदृष्टिविप्लवानां—मतान्तर वादियों के द्वारा होने वाले विप्लव के शान्त होने पर, *उपनिषदामुपचारदीपिकेयम्*—उपनिषदों की उपचार दीपिका है। *इयं यतिराज सप्ततिः*—यह यतिराज सप्तति, *कवलित*-

*"उपशमितकुदृष्टिविप्लवानां उपनिषदामुपचारदीपिकेयम् यतिराजसप्ततिः" कुदृष्टिभिरपार्थेषु कर्षणेनोपनिषदामुपप्लव उपद्रवः कृतः। श्रीभाष्यकारेण कुदृष्टिमतानि निरस्य यथावस्थितार्थवर्णनादुपनिषद उपशमितकुदृष्टिविप्लवा कृताः। तासामुपनिषदां विषये इयं यतिराजसप्ततिरुपचारार्थं गृह्यमाणा मङ्गलदीपिकेव वर्तते। यथा सूर्येण तमसि निरस्ते दिवा भगवदुत्सवे करदीपिकोपचारार्थं गृह्यते न तु तमोनिरासार्थं निरसनीयतमो-

---

भगवद्विभूतियुग्मां मतिं—भगवान् की उभय विभूति का अनुभव कराने वाली बुद्धि, *दिशतु*—प्रदान करे।

"उपशमितकुदृष्टिविप्लवानां उपनिषदामुपचारदीपिकेयम् यतिराजसप्ततिः"—मतान्तरस्थ विद्वान उपनिषदों को अपने अभिमत अर्थ में लगाने के लिये प्रयत्न करते हैं परन्तु उपनिषद उनके अभिमत असाधु अर्थों को बतलाने के लिये सज्ज नहीं है। इससे वे लोग उपनिषदों की खींचातानी करते हैं। इससे उपनिषदों का अपार कष्ट होता है। श्रीरामानुजस्वामी जी ने उन मतान्तरों का खण्डन कर उपनिषदों का यथार्थ अर्थ का निरूपण कर उस उपद्रव को दूर किया जो मतान्तरस्थ विद्वानों के द्वारा उपनिषदों को पहुंचाया जाता था। उन आपत्तियों में सुरक्षित उपनिषदों के अभिनन्दन के लिये यह स्तोत्र निर्मित हुआ। यह स्तोत्र उस मङ्गल दीप के समान है जो श्रीभगवान के उत्सव में उपचार के लिये हाथ में धारण किया जाता है। उस दीप को उपचार दीपिका कहते हैं। वह दीप तम को दूर करने के लिये नहीं लिया जाता है, किन्तु उपचार के लिये अर्थात् सेवा के लिये धारण किया जाता है क्योंकि सूर्य अन्धकार को नष्ट कर देते हैं। दिन में उत्सव होता है, उस समय वह दीप हाथ से लिया जाता है। अतः वह दीप उपचार

ऽभावात् । तथोपनिषदां कुदृष्टिकृते उपद्रवे श्रीभाष्यकारेण निवर्तिते सति इयं यतिराजसप्ततिरुपचारार्थमेव विद्वद्भिर्धृता भवति न तु कुदृष्टिनिरासार्थं निरसनीयानां कुदृष्टीनामभावात् ।

*"कवलितभगवद्विभूतियुग्मां नः मतिं दिशतु" यथा करदीपिकाग्रहणरूपेणोपचारेणाराधितो भगवान् ज्ञानमाराधकाय ददातीति करदीपिकाज्ञानहेतुर्भवति तथाऽनया यतिराजसप्तत्या मङ्गलदीपिकया आराधिता उपनिषदः सार्वज्ञ्यं प्रयच्छन्तीतीयं

के लिये ही होता है । वैसे यह स्तोत्र भी उपनिषदों की सेवा के लिये ही निर्मित हुआ है । यद्यपि इससे परवादी लोग निरस्त हो सकते हैं, तो भी यह स्तोत्र परवादियों को परास्त करने के उद्देश्य से निर्मित नहीं हुआ क्यों कि श्रीरामानुज स्वामी जी ने परवादियों को परास्त कर उपनिषदों को स्वस्थ बना दिया । इसलिये इस स्तोत्र को विद्वान लोग उपनिषदों का उपचार करने के लिये धारण करते हैं । अतः यह स्तोत्र उपचारार्थ मङ्गलदीप के समान सिद्ध हुआ ।

"कवलितभगवद्विभूतियुग्मां मतिं नः दिशतु"—उत्सवों में हाथ में दीप लेकर जो लोग श्रीभगवान का उपचार अर्थात् सेवा करते हैं श्रीभगवान प्रसन्न होकर उनको ज्ञान का प्रकाश देते हैं । श्रीभगवान का यह नियम है, "जो जैसी सेवा करते हैं उनको वैसा फल देते हैं ।" श्रीगीता में श्रीभगवान ने कहा कि "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" अर्थात् जो हमको जैसा भजते हैं मैं उनको वैसा भजता हूं । भक्त हाथ में दीप लेकर श्रीभगवान् को मानो दीप प्रकाश देता है । इससे प्रसन्न होकर श्रीभगवान् भक्त को ज्ञान प्रकाश देते हैं । वैसे ही इस यतिराज सप्ततिरूपी दीप से जब कुदृष्टियों के उपद्रव से खिन्न उपनिषदों का उपचार किया जायगा, तब इससे आराधित वे उपनिषद् रूपी देवियाँ

स्तुतिः सार्वज्ञ्यहेतुर्भवति । अतः प्रार्थयामहे यदियं यतिराजसप्ततिर्लीलाविभूतिभोगविभूतिरूपभगवद्विभूतिद्वयं कबलयन्तीमर्थात् सर्वार्थगोचरां मतिमस्मभ्यं प्रयच्छत्विति । "तत्पादभक्तिज्ञानाभ्यां फलमन्यत् कदाचन । न याचेत्प्रणतो नित्यं याचनान्नश्यति ध्रुवम् ॥" इतिभगवद्भक्तिज्ञानप्रार्थनायाः स्वरूपानुरूपत्वाज्ज्ञानं प्रार्थयामहे ॥७३॥

एतत्प्रबन्धाध्येतॄणां वैभवमाह—

भी ज्ञान प्रकाश को प्रदान करेंगी । सामान्य ज्ञान प्रकाश को नहीं किंतु ऐसे उच्च कोटि के ज्ञान प्रकाश को प्रदान करेंगी जो ज्ञान प्रकाश संपूर्ण विश्व को व्याप्त कर लेगा । स्वरूप रूप गुण विग्रह युक्त श्रीभगवान् और उनकी लीला विभूति तथा भोगविभूति को भी अपनी मुट्ठी के अन्दर कर लेगा । अर्थात् उपनिषदों से सर्वज्ञता प्राप्त हो जायगी । सर्वज्ञता प्राप्त करने का कारण यह यतिराज सप्तति स्तोत्र है । अतः हम लोग प्रार्थना करते हैं कि यतिराज सप्तति स्तोत्र हम लोगों को उस सुबुद्धि को प्रदान करे जो श्रीभगवान को संपूर्ण विभूति को अपनी मुट्ठी के अन्दर ले लेती है । शास्त्र में कहा गया है कि प्रपन्नजन श्रीभगवान् के विषय में ज्ञान और भक्ति की प्रार्थना कर सकते हैं, उससे कोई हानि नहीं है । इन दोनों को छोड़कर यदि कोई अन्य फल की प्रार्थना करे तो नष्ट हो जायगा । अतः सिद्ध होता है कि ज्ञान की प्रार्थना की जा सकती है । अतः हम लोग स्वरूपानुरूप होने के कारण प्रार्थना करते हैं कि यह यतिराज सप्तति स्तोत्र हम लोगों को वह सर्वज्ञता प्रदान करे जिससे संपूर्ण भगवत्तत्व और विभूतियाँ ज्ञात हो जायं ॥७३॥

श्रीदेशिक स्वामी जी इस श्लोक में इस ग्रन्थ के अध्ययन करने

करतलामलकीकृतसत्पथाः
श्रुतिवतंसितसूनृतसूक्तयः ।
दिवसतारकयन्ति समत्सरान्
यतिपुरन्दरसप्ततिसादराः ॥७४॥

इति श्रीकवितार्किकसिंहस्य सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्य श्रीमद्वेङ्कटनाथस्य वेदान्ताचार्यस्य कृतिषु यतिराजसप्ततिः सम्पूर्णा ॥

०"यतिपुरन्दरसप्ततिसादराः करतलामलकीकृतसत्पथाः श्रुतिवतंसितसूनृतसूक्तयः समत्सरान् दिवसतारकयन्ति" ये विद्वांसो यतीन्द्रविषयके श्लोकसप्तत्यात्मकेऽस्मिन् स्तोत्रे आदरवन्तस्सन्तः सश्रद्धमेतदनुसंदधते ते समत्सरान् सद्वेषान् यतिवरसिद्धान्तविप्रतीपवादिनः कुदृष्टीन् दिवसतारकयन्ति दिवसनक्षत्रवत् कुर्वन्ति

वालों के प्रभाव का वर्णन करते हैं—

यतिपुरन्दरसप्तति सादराः—यतिराज सप्तति का आदर करने वालों ने, करतलामलकीकृतसत्पथाः—सत्सम्प्रदाय (सत्पथ) को हस्तामलक किया है, श्रुतिवतंसितसूनृतसूक्तयः—श्रीसूक्तियों को कर्णभूषण बनाया है, समत्सरान् दिवसतारकयन्ति—और द्वेषी जनों को दिन में नक्षत्रों के समान अदृश्य कर दिया है।

"यतिपुरन्दरसप्ततिसादराः करतलामलकीकृतसत्पथाः श्रुतिवतंसितसूनृतसूक्तयः समत्सरान् दिवसतारकयन्ति"—इस यतिराज सप्तति स्तोत्र का अनुसन्धान करने वाले सूर्य की किरणों के समान हैं। सूर्य की किरणें अन्धकार को नष्ट कर जगत में प्रकाश को फैलाती हैं, इस स्तोत्र का अनुसन्धान करने वाले श्रीवैष्णव अज्ञानान्धकार को दूर कर जगत् में

यथा दिवसे नक्षत्राणि सन्त्यपि प्रकाशहीनानि भवन्ति तथा तान् प्रकाशहीनान् कुर्वन्ति। तथा च यतिपुरन्दरसप्ततिसादराः सूर्य-किरणसंनिभाः। सूर्यकिरणा एव हि दिने नक्षत्राणि प्रकाश-हीनानि कुर्वन्ति। सूर्यकिरणानामेषां च साम्यपरं विशेषणद्वयम्। सूर्यकिरणास्सत्पथं नक्षत्रमार्गमाकाशं करतलामलकमिव स्वाधीनं कुर्वन्ति अतएव हि नक्षत्रदेशपर्यन्तं प्रसृत्य तानि प्रकाशहीनानि कुर्वन्ति। तथैतेऽपि सत्पथं सन्मार्गं करतलामलकं स्फुटदृष्टं कुर्वन्ति। त्रयीमयत्वात्सूर्यस्य वेदरूपासूनृतवाणी सूर्यकिरणैः प्रचार्यमाणा सर्वेषां कर्णभूषणीभवन्ति। तथैषां सूनृतवाणी सर्वैः

ज्ञान प्रकाश को फैलाते हैं। जगत का जीवन सूर्य किरणों पर अवलम्बित है। जगत का उज्जीवन इन श्रीवैष्णवों पर अवलम्बित है। सूर्य की किरणें जब प्रसारित होती हैं, तब सुदिन होता है, इन श्रीवैष्णवों का जहाँ संचार होता है वहाँ सुदिन होता है। संस्कृत भाषा में सत्पथ शब्द के दो अर्थ हैं (१) सन्मार्ग (२) और नक्षत्रों का मार्ग आकाश। सूर्य की किरणें सत्पथ अर्थात् आकाश को इतना अपने अधीन कर लेती हैं जैसे किसी ने कोई आँवले को अपने हाथ में ले लिया हो क्योंकि संपूर्ण आकाश में सूर्य किरणें व्याप्त हो जाती हैं। ये श्रीवैष्णव लोग सत्पथ अर्थात सन्मार्ग को अपने अधीन में कर लेते हैं, हाथ में धरे आँवले की तरह सन्मार्ग को पूर्ण रूप से जानकर उस पर चलते हैं। सूर्य त्रयीमय अर्थात् वेदमय है, वेद वह वाणी है जो सबको प्रिय है तथा हित बताने वाली है। किरणों के द्वारा सूर्य इस वेद वाणी का प्रचार करते हैं, तब लोग वेद वाणी को सुन कर उसे अपने कर्णों का भूषण बना लेते हैं। सब लोगों के कर्ण भूषण बनने वाली वेद वाणी सूर्य किरणों के अधीन है। वैसे ही ये श्रीवैष्णव सबको प्रिय लगने

कर्णभूषणीक्रियते, किं चैते श्रीभाष्यादीः सूनृतसूक्तीः प्रियहित-सूक्तीः स्वकर्णभूषणीकुर्वन्ति। अतः सूर्यस्थानीयस्य मम किरणस्थानीया एते यतिपुरन्दरसप्ततिसादरास्च्छात्रा प्रतिवादिनः कुदृष्टीन् दिवसतारकयन्तीत्यहो महिमा यतिराजसप्तत्यनुसन्धातृणामिति भावः ॥७४॥

वाली तथा हित बताने वाली सूक्तियों का प्रचार करते हैं। लोग उन सूक्तियों को कर्ण भूषण बना लेते हैं। यह सूक्ति इन श्रीवैष्णवों के आधीन है। किंच ये श्रीवैष्णव श्रीभाष्य आदि दिव्य सूक्तियों को सुनते हुये अपने कर्ण भूषण बना लेते हैं। अस्तु ! सूर्य किरण वेदवाणी को दूसरों के कान तक पहुंचाते हुए नक्षत्रों के संचार मार्ग आकाश में नक्षत्र देश तक पहुंच कर जब अपने प्रकाश को फैलाते हैं, तब सभी नक्षत्र छिप जाते हैं क्योंकि नक्षत्रों के प्रकाश से बढ़कर सूर्य किरणों का प्रकाश है, वैसे ही यतिराज सप्तति का अध्ययन करने वाले श्रीवैष्णव सर्वत्र श्रीभाष्यादि सूक्तियों का प्रवचन करते हुये परवादियों के देश तक पहुँच कर जब अपने प्रकाश को फैलाते हैं तब नक्षत्रों के समान सभी परवादी बड़े बड़े ग्रहों के समान उनके आचार्य भी छिप जाते हैं, क्योंकि उन लोगों के ज्ञान प्रकाश से अधिक ज्ञान प्रकाश को ये श्रीवैष्णव रखते हैं। भाव यह है कि श्रीवेदान्त देशिक स्वामी जी सूर्य के समान हैं। उनके शिष्य सूर्य किरणों के समान हैं, किरण सूर्य से प्रकाश लेकर नक्षत्र मार्ग तक पहुंच वहाँ प्रकाश को फैलाते हैं, वैसे शिष्यगण श्रीवेदान्त देशिक स्वामी जी से यतिराज सप्ततिरूप दिव्य प्रकाश को प्राप्त कर प्रतिवादियों के देश में पहुंच कर इस प्रकाश को फैलाते हैं। इस प्रकाश के सामने वे सभी ग्रह और नक्षत्र धीरे धीरे हतप्रभ होकर छिप जाते हैं क्यों कि वे अन्धकारमय रात्रि में ही

वात्स्यश्रीनीलमेघार्यविदुषा यतिभूभृते ।
यतीन्द्रसप्ततिस्तोत्रव्याख्या सेयं समर्पिता ॥

प्रकाशित हो सकते हैं प्रकाशमय दिन में नहीं। वैसे ही इस यतिराज सप्ततिरूपी दिव्य प्रकाश के समक्ष वे प्रतिवादी विद्वान और उनके आचार्य हतप्रभ होकर छिप जाते हैं। यतिराज सप्तति का अध्ययन करने वाले श्रीवैष्णवों का ऐसा प्रभाव है ॥७४॥

कवितार्किकसिंहाय कल्याणगुणशालिने ।
श्रीमते वेङ्कटेशाय वेदान्तगुरवे नमः ॥



❀ शुद्धि-पत्र ❀



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	११	वृन्दैः	वृन्दैः
३	४	-खिलोज्ञौ	-खिलोज्ञौ
७	१३	उन्होंं	उन्होंने
१२	२	-शयात्	शयाद्
१४	८	शंकेत	शङ्केत
१५	१३	कया	या तो
१६	७	-शक्य	-शक्त
१८	१३	-मखम्	-सखम्
१६	१४	उपज्ञौ	उज्ञौ
२०	१०	लिसे	लिए
२१	१५	स्वमी	स्वामी
,,	१७	उच्छ्र्ण	अच्छ्रण
२३	१	कियन्तं	कियन्तंचन
,,	६	-नदी	-नदीसर्वा
,,	१८	जैसा	जैसे
,,	,,	वैसा	वैसे
२४	८	-रुद्गत	-रुद्गत
,,	१३	जैसा	जैसे
,,	२१	कहते हैं	प्रवाह है
२५	५	प्रकाशनात्	प्रकाशनाद्
,,	६	वैदिकार्थ	वैदिकार्था
,,	११	पुण्य	पुण्य
२५	१७	मन्ताप	स्वरूप
२६	२०	रहस्य	रहस्य
२७	१	तत्वम्	तत्त्वम्
,,	,,	भगवत्तत्वम्	भगवत्तत्त्वम्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७	६	तत्वम्	तत्त्वम्
,,	७	-तत्वं	तत्त्व
,,	७	-मत्य-	-मत्य
२८	१०	-त्तत्वं	-त्तत्त्वं
२८	१५	का	की
२६	१	भगवत्तत्व	भगवत्तत्त्व
२६	१४	श्लोक	पूर्वश्लोक
३१	३	-ऽर्थात्	-ऽर्थाद्
३२	७	-कांक्षा	-काङ्क्षा
३३	२	,,	,,
,,	३	,,	,,
३४	७	तच्छुद्धिं	तच्छुद्ध्यै
३६	१	हननात्	हननाद्
३७	८	-यमु	-ऽयमु
३७	१०	मदिरा	मदिरा-
३८	२	मदरागात्	मदरागाद्
३८	८	-मावर्त	-मावर्त-
३८	१०	अर्थात्राग	एवं राग
३८	१६	इसके	इसका
,,	,,	आमय	आशय
३६	१	-शक्य	-शक्त
४०	१	विगादे	विगादे।
,,	३	-शययन्ति	-शमयन्ति
,,	१०	सामद	सादर
,,	१७	मदरात	मदरािन
४१	६	योजना	योजना।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४१	११	यामुनाचार्यको	यामुनाचार्य	७३	६	वर्ण्यते	वर्ण्यते।
४३	६	-मभ्यस	-मभ्यस्य	७३	६	यथा	। यथा
४४	१	प्राह	प्राहस्म	७४	३	वश्यमिति	-वश्यकमिति
४७	१७	कण्कमय	कण्टकमय	७४	१८	सामानता	समानता
४७	२२	स्वामीजी ने	स्वामी जी	७५	३	शरीरार्थ-	शरीरार्थदण्ड
४६	१	च	च।	७६	१३	पुण्य फल	पुण्य का फल
५०	१०	परिपूर्ण-तयापि	परिपूर्ण-स्यापि	,,	१६	ऊर्ध्वपुण्ड्र का	ऊर्ध्वपुण्ड्र
				,,	२१	स्वाभाव	स्वभाव
५०	११	पूरित	पूरितो	७७	३	रज्ञि	राज्ञि
५१	१	इतिमहापूर्णेन	महापूर्णेन	७७	१५	श्रीभाप्यकार	श्रीभाष्यकार
५३	१	यावता	यावद	,,	१६	हैं	है
५३	८	वणयितुं	वर्णयितुं	,,	१७	हैं	है
५५	५	व्यथिता	व्यथितानि	,,	२४	वस्त्र	साधन
,,	११	तो वे	वे	७८	१०	शङ्का	शङ्काओं
५६	१	क्रान्ता	क्रान्तानि	७६	४	शक्य	युज्य
,,	३	-मानिकात्वा	-मानिकत्व	८२	१६	भी	ही
५७	६	उनके	उनको	,,	१८	लोगों को	लोगों की
,,	१६	स्त्री का	स्त्री के	८३	१६	अपृक	अपृथक्
५६	४	सैरन्ध्रिकाभि	सैरन्ध्रिकाभिः	,,	१७	वबृधे	ववृधे
६१	१६	त्रिकोली	त्रिलोकी	८७	१८	या	यो
,,	२२	ईडे	ईडे—	,,	१८	-वरजो	वरजः
६३	२१	प्रणतर्तिहर	प्रणतार्तिहर	,,	२२	वरजे	वरजः
६४	१३	को अपने	अपने	६०	६	गृह्णन्त	गृह्णन्ते
६८	७	सदा-	सदा	६०	६	गृह्णये	गृह्णते
६६	८	शोचत्सु।	शोचत्सु	६२	४	द्वितीयं	द्वितीयं
७०	२२	के नेता	नेता	६२	५	विशेपग	विशेषण
७१	१६	प्रपन्नों के	ने प्रपन्नों का	६६	६	-यर्थतः	-यर्थः
७२	१३	पहुंचाता	पहुंचता	६७	८	भीप्मा	भीष्मा
७२	१६	शरणगत	शरणागत	६६	२	प्रशमप्या-	प्रशमय्या-

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६६	१२	वधू की	वंधू के	१४६	१०	नाल्पा	नाल्पा:
,,	१६	ऐसा	ऐसी	१५१	१	महानसिक	माहानसिक
१०५	२३	सकता	सकते	१५२	१	पंकल	पङ्किल
१०७	१६	किया	दूर किया	,,	८	औदेशिका	औदेशिक:
११०	५	पंक्ति	पङ्क्ति	१५४	२०	जगन्नाथो	जगन्नाथ:
१११	१६	उसे	उस	१५५	१६	-यर्चेय	-यर्चये
११६	१	भवति	भवतीति	,,	२१	है	है कि
,,	६	परतत्व	परतत्त्व	१५६	३	(४)	(१)
११७	४	निष्ठः	निष्ठा:	,,	२४	अस्यन्त	अत्यन्त
,,	१७	। ऐसी	।	१५७	३	नहीं	नहीं हों
१२०	१	यथा	यथा परपक्षा:	१५८	१	कारयितु	कारयितृत्व
,,	३	वादिभि॰	वादिभिर्युक्ति-	,,	७	निर्मित	निर्णीत
,,	,,		भिर्वंत्रायुधै	१६०	१	कामयेत	कामयते
१२१	१०	की	की तरह	१६२	१	मति	ऽमति
१२२	१४	और	और स्वभाव	१६३	८	तच्छ	तच्च-
१२४	११	आदि	आर्द्र	१६४	६	शरण	चरण
१२८	२०	मानना	माना	१६५	५	महर्ति	महति
१२६	४	नारायणं	नारायणचरणं	१६६	३	भावीतीति	भावीति
१३०	८	मात्रापि	मात्रयापि	,,	५	संशयात	मंशयित
१३१	१	मंपूर्णं	सम्पूर्ण	१७२	३	तिष्ट	तिष्ठ
१३५	६	गुणों	गुणों से	,,	३	उपादिश	उपदिश
१३६	४	कुर्वाण:	कुर्वाणा:	१७४	१२	विश्वास	निश्वास
१३८	१०	न तदीये	तदीये	१७५	५	प्रभाव:	प्रभावा:
१३६	४	पद्मवा	पद्मसमा	१८१	१	संनिभा	संनिभा:
,,	२४	मन्त्री से	मन्त्री	१८१	२	तत्व	तत्त्व
१४५	१	सामग्री	सामग्री	१८३	६	भावार्थ	अनर्थ
१४६	३	दत्ता	दत्त्वा	१८३	२०	किस	जिस
१४६	४	धूल	धूलि	१८६	१३	प्राप्त	में प्राप्त
,,	७	दोष	महादोष	,,	२३	मान	मानव

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३७६	७	सन्नि	तन्नि
,,	२२	के	से
३७७	१४	,वैसे	,
३७९	४	बसते	बजते
३८०	१८	किसी	किसी भी
३८५	२	लेखक	लेख
३८८	८	साधस्थिर	विवादों का निरर्थक
३८९	६	निगुणत्वे	निर्गुणत्वे
३९१	१	पूर्वं	पूर्वे
३९२	७	माहत	माहृत
३९७	२	मुखै	मुख
३९७	२१	बनने	बढ
४००	२०	श्व	श्च
४०५	६	तर्हितर्हि	तर्हि
४०५	१२	मोक्षानुभव	परावरज्ञान
४०६	१	विचार	विचारे
	४	ऽय	ध्य
४०७	४	निधि	निधि
	१०	स्वर्ग	स्वर्ण
	३	लोक	लोके
	१	बाध्ये	बाध्यं
	१६	दूसरे	तथा दूसरे
			[illegible]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४२६	८	परि	पर
,,	६	ब्रह्मधेये	ब्रह्मधेयं
,,	१६	आत्मा को	को
४२७	३	ब्रह्मपृ	ब्रह्मापृ
४२८	१६	लीली	लीला
४३३	२३	यह	इस
४३४	१४	हैं	कहते हैं
४३८	२	व्पति	व्यति
४३९	८	त्का	त्वा
४४०	२३	चरिताश	चरितार्थ
४४२	४	कलह	कलहः
४४३	१	नाम	नाम्नो वा
,,	,,	मात्रेण वा	मात्रेण
४४४	३	निरासोच	निरासश्च
४४५	६	उस इच्छा	उस
४४६	६	प्रतिष्ठ	प्रतिष्ठि
४५१	३	सूक्ति	सूक्तिः
४५३	२१	छोड़कर	को छोड़कर
४५६	१२	तज्रायुध	वज्रायुध
४६१	४	भञ्ज्यु	भुञ्ज्यु
४६२	६	पर्वणिः	पर्वणि
४६३	६	वर्धते	वर्धते इति
४६६	६	कान्त्य	कान्त्यं
४६७	१	तरङ्गि	तरङ्गित्व

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
			तर्कपाद में	३२६	६	ऽय	ऽयं
२८६	६	गंभीर	गभीरा	३३१	४	निपतेत	निपतेत्
२६०	७	रामायणवत	रामायण	३३३	२१	ही	भी
,,	८	तात्पर्यं	तात्पर्यवद्	,,	२१	जगह	जगह ही
२६१	२	श्रीवैष्णवाना	श्रीवैष्णवानां	,,	२२	रहता	रहती
२६३	११	लौकिक	इस	३३४	५	द्धरतो	इधारे
२६४	४	शांफरितां	शोभरितां	३३६	१६	महर्षि	महर्षियों ने
३००	३	खण्ड	खण्ड्	३३८	६	व्रर्ति	र्वर्ति
३०१	१७	दूसर	दूसरे	३३६	१	मुण्ड	मणु
३०२	१७	श्रीभाष्ययार	श्रीभाष्यकार	,,	२	लक्षण	लक्षणं
,,	१६	समान	सम्मत	३४२	२	ष्ठता	ष्ठिता
३०३	१५	वादिगण	वादिगण ने	३४४	२	मनि	मानि
,,	१८	गण	गण ने	३४५	२०	इन दोनों	इन
३०६	१	पुंस्त्वे	पुंस्त्वे	३४६	५	लिङ	लिङ्
३०८	१६	सकते	सकता	३४८	२	मेयमा	मेयतामा
३०६	१	नापादि	लापादि	३४६	१२	लगा	लगे
३११	७	विवेच	विवेच	३५०	२	सतर्क	सत्तर्क
३१२	२	प्रदोप	दोप	३५०	७	होना भी	होगा तभी
,,	१५	स्वामो जी	स्वामी जी की	३५६	१५	वेद	वेप
३१४	६	मौलिक	मौक्तिक	३५८	१०	नहीं	ही
३१७	८	मग्नं	मुग्नं	३५८	२०	काय	कार्य
३१८	५	ब्रह्म	ब्रह्म	३५६	४	पति	यति
३२०	१६	हापत	हर्पित	३६१	३	कि	किं
३२३	५	मते	मत	३६६	४	प्रभा	प्रमा
३२४	१	महीतु	महांतु	,,	२१	जो	को
३२५	४	कल्प	कत	३६८	६	पोन:	पोत:
३२६	६	मत	मतं	३७१	६	द्धाश्च	द्धांश्च
३२७	५	पाद्म	पाद्मं	,,	१७	वर्तित	प्रवर्तित
,,	६	लो चलो	लो	३७२	७	अविहिता:	अवहिता:

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३७६	४	सन्नि	तन्नि	४२६	८	परि	पर
„	२३	के	से	„	९	ब्रह्मधेये	ब्रह्माधेयं
३७७	१५	,वैसे	,	„	१९	आत्मा को	को
३७९	४	वनते	वजते	४२७	३	ब्रह्मप्र	ब्रह्माप्र
३८०	१८	किसी	किसी भी	४२८	१६	लीली	लीला
३८५	३	लेखज	लेख	४३३	२३	यह	इस
३८८	८	सार्थस्थिर	विवादों का	४३४	१४	हैं	कहते हैं
			निर्णायक	४३८	२	व्पति	व्यति
३८९	६	निगुणत्वे	निर्गुणत्वे	४३९	८	क्ता	क्त्वा
३९१	१	पूर्व	पूर्वं	४४०	२३	चरिताथ	चरितार्थ
३९३	७	माहत	माहृत	४४२	४	कलह	कलहः
३९७	२	मुखै	मुख	४४३	१	नाम	नाम्नो वा
३९७	२१	वनने	वह	„	„	मात्रेण वा	मात्रेण
४००	२०	श्व	श्च	४४४	३	निरासोच	निरामश्च
४०५	६	तर्हितर्हि	तर्हि	४४५	९	उस इच्छा	उस
४०५	१३	मोक्षानुभव	परावरज्ञान	४४९	९	प्रतिष्ठ	प्रतिष्ठि
४०६	१	विचार	विचारे	४५१	३	सूक्ति	सूक्तिः
„	४	ऽय	ग्य	४५३	२१	छोड़कर	को छोड़कर
४०७	४	निधि	निधि	४५६	१२	तज्रायुध	वज्रायुध
„	२०	स्वर्ग	स्वर्ण	४६१	४	भञ्ज्यु	भुञ्ज्यु
४०९	३	लोक	लोके	४६२	६	पर्वणिः	पर्वणि
४१२	१	बाध्ये	बाध्यं	४६३	९	वर्धते	वर्धते इति
„	१९	दूसरे	तथा दूसरे	४६६	९	कान्त्य	कान्त्यं
४१३	५	वस्थां	वस्थां	४६७	१	तरण्वि	तरण्विव
४१४	१०	निकृष्ट	तथा निकृष्ट	„	५	व ना	वहुना
४१६	२	समुत्थ	समुत्थं	„	„	तृ	तृ (दीर्घ)
४१९	१२	विधि	विध	४६८	२२	अमत	अमृत
४२०	१७	करती	कराती	४६९	२	र्थवद्तदर्था	वद्
४२५	८	पट	पर	„	२	भवन्ति	भवति

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६६	१५	एक	एक रूप	४९९	६	सदा	सदाऽऽ
४७०	१	तृ	तृ (दीर्घ)	५००	१	गरिमाणो	गरिमाणः
,,	४	वधि	वधिरे	५०१	५	को	को तथा
४७२	१०	विद्वता	विद्वत्ता	५०३	११	होंगे	होंगे हो
,,	१५	वदान्ती	वेदान्ती	५०५	४	विकमिता	विकासिता
४७४	४	कर्पं	कर्पो	५०६	२	जायमान	पीयमान
४७६	८	मेद	भेद	५१२	३	तृं	तृं (दीर्घ)
,,	२०	नन्दन	नन्दिन	,,	२४	नीर	तीर
४७७	८	तिष्ठ	तिष्ठि	५१३	३	कर्तृणां	कर्तृ
,,	१३	आश्वास्तवद	आश्वस्तवेद	५१६	१०	छोड़ना	छोड़ता
४८०	१	यिप्पा	यिप्या	५२१	४	मतना	मतना
४८१	७	व्यालोर्ध	व्यालोर्च	५२२	५	सिद्धयेत	सिद्धयेन
,,	१३	विस्त	विस्ता	,,	१६	कृपात्र	कृपापात्र
,,	२०	त्यत	त्यते	५२३	६	गङ्गयाः	गङ्गायाः
,,	२३	को	से	५२८	१	प्रभवति	भवति
४८२	१७	उम	उस समय	,,	१४	पुवाचार्यों	पूर्वाचार्यों
४८६	१२	के	ने	५२९	१	प्रवदा	प्रवाहा
४८९	८	एव्य	एवा	,,	१३	यदृच्छग	यदृच्छा
४९०	२	निकर्पे	निकर्पा	५३०	१	उत्यरव	उत्यत्त
,,	११	में था	में नहीं था	५३१	४	कि	कि
,,	२३	याथिक	याथित	५३५	७	कि मरदू	मरदू
४९१	१९	निजमत	निजमति	,,	१६	पुण्य	पुण्य
४९२	६	तेषामु	तस्यो	५३७	८	श्यामा	श्यामो
,,	१३	नवीनता	नवीन	५३९	५	दुर्गा	दुर्गा
४९३	१९	संग्रह	संग्रह और त्याग	,,	१०	तस्मासु	तस्मासु
४९४	८	हों	न हों	,,	२४	नर्णय	निर्णय
,,	८	होनी	होनी चाहिये	५४३	१७	मे	मे उन की हर
४९६	१०	मन	मन मन	५४४	११	[illegible]	[illegible]
४९७	४	मुनिनिर	मुनिमि	५४५	८	[illegible]	[illegible]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध
५४७	१२	मानना	मनाते	,,	३	चोरा
५४८	६	दण्दै	दण्डै	६१०	१	कर्तुं
५५०	२	स्म	स्मः	,,	६	शङ्काम
५५४	५	गुगे	युगे	६१०	१०	सहः
५५५	२३	के समान	के	६१३	१७	स्वामी
५६५	६	जी	जी का	६१४	५	मङ्गला-
५६६	८	सकल्पितः	कल्पितः	,,	८	वहुमान
५६७	१३	ये	इन	,,	,,	साथ
,,	२३	होने	न होने	६१५	३	यतिराज
५६९	३	सत्कीत्ति	सत्कीर्ति	६१६	२	जैन
५७०	२०	निश्चिय	निश्चित	६१८	२१	कि अर्था
५७४	१	वर्ण्यते यत्	वर्ण्यते	६२४	१	कुर्वाणाः
,,	१	दुग्धौ	सिद्धौ	,,	२	निदर्शन्
५७८	२२	को	को भिक्षा के	,,	२	एवमभि
५८१	१८	कृपादृष्टि से	कृपादृष्टि के	६२६	२	एवं
५८४	६	दृष्ट	दुष्ट	,,	१८	मतवाले
५८५	४	मनीषां	नायिकां			
५८७	१	प्रासाद	प्रासादस्थ	६२९	६	तृ
५८८	२४	और थे	थे	,,	१२	के
५९५	३	एकस्य	कस्यांचित्	६३०	११	आभिमत
५९८	२	स्थापि	स्थायि	६३२	४	नित्यं
,,	३	यास्तो	यास्तां	,,	७	तृ
६००	८	शक्नोति	शक्नुयात	६३३	१४	हो
,,	१२	आवश्य	अवश्य	६३४	६	भवन्ति
६०३	१	मासला	मांसला	६३५	५	तृ
६०४	२	गत	गतं			

एक

आदर्श समत्व योगी

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥